खण्ड २

यशोदाजी ने सुना तब वे कन्हैया को लिटाकर साधु के लिये मणि और माणिक्य ले आई; जिन्हें देख शिवजी हाथ जोड़कर कहने लगे- हे मैय्या! मुझे द्रव्य की तनिक भी इच्छा नहीं।

तव सुत अखिल बिस्व आधारा। अकथ कीतिधर सुख आगारा॥
तातें तुअ उन्ह बदनु देखाई। देहुँ सद्य मोहि धन्य बनाई॥

तुम्हारा पुत्र सम्पूर्ण विश्व का आधार, अकथनीय कीर्ति को धारण करनेवाला और सुख का धाम है। अतः आप तो मुझे उसका मुख दिखलाकर शीघ्र-ही धन्य कर दीजिये।

मैं त निपट चहुँ हिय सुखकारी। उन्ह जगपतिहि पदाम्बुज छारी॥

मैं तो केवल उन जगत्पति के चरणकमलों की रज चाहता हूँ, जो मन को सुख देनेवाली है।

सो.- अथिर जननि भइ भीत सुनत हरषि पै तड़ित सम।
मुख दुति जदपि पुनीत पुनि न होइ यह तिमिरचर॥॥

यह सुन मैय्या हर्षित हो गई, फिर बिजली के समान अधीर हुई वे भयभीत हो उठी। (वे सोचनें लगी) यद्यपि इनके मुख पर पवित्र आभा है, किन्तु पुनः यह कोई निशाचर न हो।

चौ.- तुम सारिखे प्रथम हहिं आए। गुन मम सुतहिं बहुत जिन्हँ गाए॥
राम धरे मुख बगल कटारा। निपट अहित उन्ह चहेहुँ हमारा॥

फिर उन्होंने कहा- आप जैसे पहले भी आए थे, जिन्होंने बहुत प्रकार से मेरे बालक के गुण गाये। किन्तु मुख में राम और बगल में छुरी लिये, उन सब ने हमारा अहित ही करना चाहा।

बिगत सूल मम हृदयँ महाना। तातें सेव लेहुँ कोउँ आना॥
परिछित तबहि उमा तहँ आई। परिचित मुनितिय बेषु बनाई॥

बीती बातों का दुःखद शूल मेरे हृदय में गड़ा हुआ है; अतः आप कोई अन्य सेवा कहिये। हे राजन! उसी समय यशोदाजी की परिचित एक ऋषिपत्नि का वेष लिये पार्वतीजी वहाँ आई।

पुनि कह ऐ त महातम सोई। बसइ रमापति मानस जोई॥
जनम रहित गुनपर गुनरासी। गिरि कैलास बासि अबिनासी॥

फिर उन्होंने यशोदाजी से कहा कि ये तो वे महात्मा हैं, जो कमलापति भगवान के हृदय में बसते हैं। ये अजन्में, गुणों से परे, गुणों की राशि, अविनाशी और कैलाश पर्वत पर निवास करनेवाले हैं

त्रिपुर पाइ इन्ह दय कइ छाई। फूरइ फरइ लहइ सितलाई॥
उमा प्रबोधि भाँति एहि जबहीं। नृपति मानि महतारी तबहीं॥

तीनों लोक इन्हीं की दयारूपी छाया में फूलते-फलते और शान्ति प्राप्त करते हैं। हे परीक्षित! ऋषिपत्नि के रूप में पार्वतीजी ने जब भली प्रकार समझाया तब मैय्या मान गई।

पै कह बिकट बेषु अति तोरा। डरपहि अलप बयस सुत मोरा॥
तातें दूरहि तें लखि ताहीं। तोष मानिहहुँ निज हिय माहीं॥

किन्तु उन्होंने कहा कि आपका वेष बड़ा ही विकट है, मेरा अल्पवय बालक आपको देखकर डर जाएगा। इसलिये आप दूर से ही उसे देखकर हृदय में संतोष मान लीजियेगा।

दोहा- आनि सुतहि बाहिज तदुप जतिहिं लागि दरसाइ।
हर भै पूरनकाम तब मूरति सुरति बसाइ॥३२०॥

तदुपरान्त वे लल्ला को बाहर ले आई और शिवरूपी उन यति को उसका दर्शन कराने लगी। तब भगवान की उस बालमूर्ति को स्मृतियों में बसाकर शिवजी पूर्णकाम हो गए।

चौ.- मुदित बंदि पद बारहि बारा। गै निज धाम उमेस उदारा॥
बिगत मास षट् हरषि अपारा। सुत अनप्रासन जसुमति सारा॥

फिर आनन्दपूर्वक बार-बार प्रभु के चरणों की वन्दना करके, उदार उमापति अपने धाम लौट गए। तत्पश्चात् छः मास बीतनें पर मैय्या ने अत्यन्त हर्ष से पुत्र का अन्नप्राशन-संस्कार कराया।

जानि सुतहि अनप्रासन लायक। भाउबिभोर भए ब्रजनायक॥
भयउँ सपच्छ तासु आनंदा। उड़ेउँ कलपनहिं नभ तजि फंदा॥

इधर नन्दजी भी लल्ला को अन्नप्राशन के योग्य हुआ जानकर भावविभोर हो उठे। उनका आनन्द पङ्खयुक्त हो गया और मर्यादाओं को त्यागकर, कल्पनारूपी आकाश में उड़ चला।

पुनि सुत बत्सलतहिं अतुराए। अनप्रासन हित बिप्र बोलाए॥
बिप्रबृंद तब श्रुति अनुहारा। सारेहुँ अनप्रासन सँस्कारा॥

फिर पुत्रवत्सलता से अधीर हुए, उन नन्दबाबा ने अन्नप्राशन-संस्कार के लिये ब्राह्मणों को बुलवाया। तब ब्राह्मणों ने वेदोक्त-रीति से कन्हैया का अन्नप्राशन-संस्कार सम्पन्न कराया।

हरि सुषमा सुरसरि सम पावनि। तेहिं सवँ लखि पर अति मनभावनि॥
बारिज मुकुल जुगल अलसाए। सोहइ मृदु आलोक बसाए॥

उस समय श्रीकृष्ण की गङ्गा-सी पवित्र सुन्दरता बड़ी ही मनभावन जान पड़ रही थी। उनके कमलकली के-से अलसाए दोनों नेत्र मृदुल आभा लिये सुशोभित हो रहे थे।

बिच बिच गहि पवमान प्रसंगा। भ्रुअ सरि बल कइ उमग तरंगा॥
भ्रम उपजावन परम प्रबीना। अलक जलद अवगुंठन झीना॥

बीच-बीच में हवा के झोंकों के कारण उनकी भौंहरूपी नदी में बलरूपी तरङ्गें उमड़ पड़ती थी। उनके केशरूपी मेघों का झीना आवरण, जो भ्रम उत्पन्न करने में परम चतुर था,

मुखससि आपन परिधि दुराई। चहहि अकेल सुधा छबि पाई॥
मुख साखा जुग खग अलसाई। सोए अधर पल्लवन्ह लाई॥

उनका मुखरूपी चन्द्रमा अपनी परिधि में छिपाकर, उनके सुन्दरतारूपी अमृत को अकेले ही पाना चाहता है। उनकी मुखरूपी शाखा पर दाँतरूपी दो पक्षि अधररूपी पत्तों को ओढ़े सोए थे।

नाक सेबिका स्वाँसन्ह चाँमर। करहि मंद गति पवन निरंतर॥
हृदयँ बिसाल सोह मनिहारा। षडबिध बिभव धरे बिस्तारा॥

जिन पर नाकरूपी सेविका श्वाँसरूपी चामर लिये मन्दगति से निरन्तर पवन कर रही थी। उनके विशाल वक्ष पर उनके षड्विध वैभव के विस्तृतरूप को धरे हुए मणिहार सुशोभित था।

गिरा माँझ रव कोकिल केरा। प्रतिछिन सृजइ उछाह घनेरा॥

उनकी वाणी में कोयल के शब्द की मिठास, प्रतिक्षण गहरे उत्साह का सृजन कर रही थी।

दोहा- **बिहँसनि गरभु रहस्य कोउ हिय अचरज अति देइ।**
जिअत प्रस्न केउ जनु सबन्हँ बुद्धि परीछा लेइ॥३२१॥

उनके हास्य के गर्भ में कोई रहस्य छिपा था, जो हृदय को अत्यन्त चकित कर देता था। जैसे कोई सजीव प्रश्न ही सबकी बुद्धि को परख रहा हो।

चौ.- **सुत छबि मधुर परस हिय पाई। गोरस थारि मातु तब लाई॥**
पुनि कह कान्हँ अजहुँ प्रिय मोरा। मम कर गहहि प्रथम अन कौरा॥

पुत्र की ऐसी सुन्दर छबि का अपने हृदय में अनुभव करके, मैय्या यशोदा गोरस की थाली ले आई और बोली- आज मेरा प्रिय कान्हा मेरे हाथ अन्न का पहला कौर ग्रहण करेगा।

तदुप सपदि बढ़ि करिहि अपारा। तात मात हिय मुद संचारा॥
भुजबल सुबिधा सकल जुड़ाई। करिहहि दुखि मनुजता सहाई॥

तदुपरान्त शीघ्र ही बड़ा होकर वह अपनी मैय्या व बाबा के हृदय में अपार आनन्द का सञ्चार करेगा और अपनी बाहुबल से सारे साधन जुटाकर दुःखी मानवता की सहायता करेगा।

सुन्दर सपुन इहइ दृग लाई। तोरि जननि रहि तोहि जिंवाई॥
एवमस्तु जनु धरि मृदु हासा। स्याम गहेउ प्रथम दधि ग्रासा॥

हे पुत्र! इसी सुन्दर स्वप्न को अपने नेत्रों में बसाकर तुम्हारी मैय्या तुम्हें भोजन करा रही है। तब श्यामसुन्दर ने जैसे मधुर हास्य से एवमस्तु कहकर दहीं का पहला कौर ग्रहण किया।

मिसरि सहित तद्यपि दधि खाटा। गहतहि तनु भा मृदु संकाटा॥
सकुचे अधर नाक खटुआई। नयनन्हि धाइ तड़ित चपलाई॥

मिश्रीयुक्त होकर भी दहीं खट्टा था, जिसे खाते ही कन्हैया के शरीर में मधुर कँपकपी व्याप गई। (खट्टेपन की अधिकता से) उनके होंठ सिकुड़ गये व नेत्रों में बिजली की-सी चञ्चलता दौड़ गई।

जननि सो छबि छिनु सहित जुड़ाई। सुरति लोक महुँ लीन्ह बसाई॥
पुनि सोइ सकुचनि सैन बुझानी। हरषि पतिहिं तें लागि देखानी॥

मैय्या ने उस दृश्य को क्षण के साथ हृदय में उतारकर अपने स्मृतिलोक में बसा लिया। फिर वे कन्हैया की इस प्रतिक्रिया को सङ्केत करके, आनन्दपूर्वक नन्दरायजी को दिखाने लगी।

हँसे नंद चितवतहि ठठाई। लेत भई रोहिनी बलाई॥

नन्दजी भी यह देख ठहाका मारकर हँस पड़े व रोहिणीजी बालक की बलैया लेने लगी।

दोहा- **बिगत मास कछु कान्हँ जब आपु बैठि महि लाग।**
नृपति बधावा कीन्ह गृह नंद परम अनुराग॥३२२॥

हे परीक्षित! कुछ माह बीतने पर जब कन्हैया अपने आप ही भूमि पर बैठने लगे, तब नन्दजी ने अत्यन्त प्रेम से अपने घर बधावा किया।

चौ.- **अकसर किलकत नंदउ गोदा। खेलि रहे हरि नृपति प्रमोदा॥**

तब पितु निज कर गहि कर तासू। तारि बाजवहि लग उल्लासू॥

हे राजन! एकदिन श्रीहरि नन्दजी की गोद में किलकते हुए, बड़े ही आनन्द से खेल रहे थे। तभी उनका हाथ अपने हाथों से पकड़कर, वे बड़े उत्साह से उनसे ताली बजवाने लगे।

पुनि बहुबिधि सुत कहँ उकसाई। सजतन बोलन लाग सिखाई॥
बा बा ता ता अस कहि स्यामा। पीट तारि मुख हास ललामा॥

पुनः वे लल्ला को बहुत प्रकार से उकसाकर, यत्नपूर्वक बोलना सिखाने लगे। तब घनश्याम 'बा-बा', 'ता-ता' इस प्रकार कहते हुए ताली पीटने लगे। उनके मुख पर मोहक हास्य था।

बहुरि अजिर बिहगन्हँ चपलाई। लखि उछंग उझकहिं किलकाई॥
अधर बीच जुग रद रुच कैसे। पुहुप पल्लवन्हि जलकन जैसे॥

फिर आँगन में चहकते पक्षियों की चञ्चलता देख कन्हैया गोद ही में किलककर उछलने लगे। उनके अधरों के बीच दो दन्तुलियाँ कैसे शोभित थी; जैसे कमलपत्रों पर जलकण शोभा देते हैं।

चितवहि खगन्हँ दृष्टि गम्भीरा। बहुरि गहे उन्ह होत अधीरा॥
गहि पितु पट लघु हाथ पसारी। उन्ह देखात कबु आतुर भारी॥

वे पक्षियों को गम्भीर दृष्टि से देख रहे हैं, फिर उन्हें पकड़ने के लिये अधीर हो जाते हैं और कभी नन्दजी का वस्त्र पकड़कर, उतावली से अपने छोटे-से हाथ को फैलाकर, वे उन पक्षियों को उन्हें दिखाने लगते हैं।

तोरनु चलत कबहुँ लखि द्वारा। करइ साचरज तहाँ हिसारा॥
उतसुकता धरि हृदयँ अगाहा। पूछइ मनहुँ तात यह काहा॥

भवन के द्वार पर हिलते हुए तोरण को देखकर कभी वे आश्चर्य से उस ओर सङ्केत करते हैं, मानों हृदय में अपार उत्सुकता धरकर वे पूछते हैं कि बाबा यह क्या है?

दोहा- सुत मुख अचरजमय हरष लखि पुलके पितु गात।
सींव रहित उन्ह मानसहुँ बत्सलता न अमात॥३२३॥

अपने पुत्र के मुख पर आश्चर्य मिश्रित उस हर्ष को देखकर नन्दजी का शरीर पुलकित हो गया। उस समय उनके सीमारहित हृदय में वात्सल्य समाता नहीं था।

चौ.- एहि प्रकार बीतेहुँ कछु काला। जानु पानि चरि लग नंदलाला॥
गौर स्याम सुन्दर दुहुँ बालक। करइ परम सुखि आपन पालक॥

इस प्रकार कुछ समय और बीत गया और नन्दलाल श्रीकृष्ण घुटनों व हाथों के बल सरकने लगे। गोरे और श्यामवर्णवाले वे दोनों सुन्दर बालक अपने पालकों को महान सुख देने लगे।

बैठे अजिर दोउ एक बारा। मोचत सिसुकेलिहि मृदु धारा॥
पुरट अजिर मनि खचित सो रहा। तातें पर प्रतिबिम्ब उन्ह तहाँ॥

एकबार भवन के आँगन में बैठे वे दोनों बालक्रीड़ाओं की मधुरधारा बहा रहे थे। वह स्वर्णनिर्मित आँगन मणियों से जड़ा था; इसलिये उसकी भूमि पर उनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा था।

हरि धरि मानस कौतुक भारी। रहे सतत निज बिम्ब निहारी॥

करि अनुसरन तासु बरजोरा। बिम्बहि तसहि लखहि उन्ह ओरा॥

बालकृष्ण मन में बड़ा ही कौतुहल लिये एकटक अपना प्रतिबिम्ब देख रहे थे। उनका प्रतिबिम्ब भी बलपूर्वक उन्हीं का अनुसरण करते हुए, निरन्तर उन्हीं की ओर देख रहा था।

तेहिं पकरन कन्हँ हाथ बढ़ावा। पै न बिम्ब जब उन्ह कर आवा॥
जानु पानि तब रूठि चले हरि। ढीठ धोइ कर गयउ पाछ परि॥

कान्हा ने उसे पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाया, किन्तु जब प्रतिबिम्ब हाथ नहीं आया, तब वे कान्हाँ रूठकर घुटनों के बल चल दिए। यह देख ढीठ प्रतिबिम्ब हाथ धोकर उनके पीछे पड़ गया।

ते जहँ जात बिम्ब संघाता। लखि उन्ह हिय अचरज न अमाता॥
तब ते बल दिसि ताकइ कैसे। पूछि रहे तिन्ह कारनु जैसे॥

वे जहाँ जाते, प्रतिबिम्ब भी उनके साथ ही जाता है, यह देखकर उनके मन में आश्चर्य समाता न था। तब वे दाऊ की ओर कैसे देखने लगे; जैसे वे इसका कारण उनसे पूछ रहे हों।

सहज कहा कछु बल करि सैना। बूझि मुदित भै राजिवनैना॥
दधि बिलोत तेहिं दिनु महतारी। भीतर तें उन्ह रही निहारी॥

तब दाऊ ने सहज ही में इशारा करके, कुछ कह दिया, जिसे समझकर कमलनयन आनन्दित हो गये। उस समय दहीं मथती हुई मैय्या उन्हें भवन के भीतर से देख रही थी।

दृस्य सृजत भा यह सुखकारी। जननिहिं हिय रस संसृति भारी॥
टेरन लगि तें उन्ह मृदु भाषा। काहे न आवहि सुत मम पासा॥

यह सुखदायक दृश्य मैय्या के हृदय में प्रेम की महान सृष्टि करने लगा, जिससे वे उन्हें मधुर वाणी से पुकारने लगी- अरे पुत्रों! तुम अपनी मैय्या के पास क्यों नहीं आते?

सपदि कान्ह बल इहँ चलि आवौ। मैं कढ़ि राखेउँ माखन तावौ॥
जननिहि रव सुनतहि पहिचानी। माखन सुनि आवा मुख पानी॥

अरे कान्हा! दाऊ! शीघ्र यहाँ आओ, मैंने तुम्हारे लिये ताजा माखन निकाला है। मैय्या की वाणी सुनते ही पहचानकर और "माखन है" सुनते ही उनके मुख में पानी आ गया।

दोहा- **तब आतुर बल धाइ परे कन्हँ घुटुअन्हँ लपकेउँ।**
पै जातहि तें द्वार सन देहरि पर अटकेउँ॥३२४॥

तब बलदाऊ बड़ी उतावली से मैय्या की ओर दौड़ पड़े और कन्हैया घुटनों के बल लपके। किन्तु भवन के भीतर जाने से पहले ही वे द्वार की देहरी पर अड़ गये।

चौ.- **पुनि पुनि बहुबिधि करइ प्रयासा। पै देहरि भइ रिपु अनयासा॥**
जब कन्हँ चढ़ि चह भुजन्हि बढ़ाई। तबहिं फिरइ ढरकन भय पाई॥

वे बार-बार अनेक प्रयत्न करते हैं, किन्तु देहरी अनायास ही उनकी शत्रु हो गई। कन्हैया भुजाओं को बढ़ाकर जैसे ही देहरी पर चढ़ना चाहते हैं, वैसे ही गिरने के भय से लौट पड़ते हैं।

कवनि भाँति जब पार न पावा। अति निरास कन्हँ रुदन मचावा॥

एतनेहुँ नंद गए तहँ आई। पुचुकि लीन्ह उन्ह केड़ उठाई॥

प्रयत्न करने पर भी देहरी न लाँघ सकनें के कारण निराश होकर कन्हैया रोने लगे। इतने में ही नन्दजी वहाँ आ गए और उन्होंने पुचकार कर उन्हें गोद में उठा लिया।

पराभूत जब जय निज पाई। किलकि उठे कर चरन चलाई॥
तब उभयन्ह सनमुख बैठारी। भइ खबात माखन महतारी॥

हारे हुए बालकृष्ण ने जब इस प्रकार से अपनी विजय हुई देखी तब वे हाथ-पैर चलाकर किलकारी मारनें लगे। तत्पश्चात् मैय्या दोनों को अपने सन्मुख बैठाकर माखन खिलाने लगी।

ग्रसन रीति उन्ह लखि पितु माता। हरषे पुलक उमगि उन्ह गाता॥
कबहुँ त खात सचाउ कन्हाई। महतारिहि लग कबहि खवाई॥

उनके खाने का ढंग देख नन्दजी और यशोदाजी हर्षित हो गए; उनका शरीर पुलकित हो उठा। कन्हैया कभी तो बड़े चाव से खाते हैं और कभी मैय्या को खिलाने लगते हैं।

दोहा- **कर गहि माखन कौर लघु पितु कहँ कबहि देखात।**
पै उन्ह बढ़तहि फेरि कर मंद मंद मुसुकात॥३२५॥

कभी वे हाथ में माखन का छोटा-सा कौर लेकर नन्दबाबा को दिखाते हैं, किन्तु जब वे खाने के लिये बढ़ते हैं, तभी कन्हैया हाथ पीछे खींचकर मन्द-मन्द मुस्कुराने लगते हैं।

चौ.- **लखि तन सुधि परिहरि पितु माता। चलि रोमांच धार उन्ह गाता॥**
दृग अस दृस्य अमिअमय पाई। भए सुफल सबबिधि महिराई॥

यह देख मैय्या और बाबा शरीर की सुध भूल गए और उनके अङ्गों में रोमान्च की धारा दौड़ गई। हे राजन! उनके नेत्र ऐसे अमृतमय दृश्य को पाकर सब प्रकार से सफल हो गए।

अकसर रबि परसेहुँ उदयाचल। बिगसे सरसिज खग दृग सुचपल॥
गावत तब सुत चरित पुनीता। दधि मथि जननि कढ़ेहुँ नवनीता॥

एक बार सूर्य ने उदयाचल का स्पर्श किया, जिससे कमल व पक्षियों के चञ्चल नेत्र खिल उठे। उस समय लल्ला के पवित्र चरित्रों का गान करते हुए, मैय्या ने दहीं मथकर माखन निकाला।

मृदहि कठौति धरा पुनि ताहीं। देखइ बैठि स्याम उन्ह पाहीं॥
लालचु बढ़त भयउँ उन्ह कैसे। महि अंकुर बढ़ द्रुत गति जैसे॥

फिर उसे मिट्टी के एक कटोरे में रख दिया। कन्हैया उनके निकट ही बैठे सब देख रहे थे। इससे उनका लालच कैसे बढ़ने लगा; जिस प्रकार भूमि में अङ्कुर शीघ्रता से बढ़ता है।

एतनेहुँ अनत जननि चित लागा। छीक खसेहु मनु मरजरि भागा॥
तरकि सुराज कान्हँ हरषाए। जानु पानि अति आतुर धाए॥

इतने में मैया का चित्त किसी कार्य में लग गया, मानों बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा हो। ऐसा सुअवसर देख कन्हैया हर्षित होकर बड़ी उतावली से हाथों व घुटनों के बल दौड़े।

स.- **धावत स्याम छुधातुर माखन राखेहुँ बेगि तहाँ चलि आए।**
हाथ लह्यो नवनीत घनौ अरु चोरन भाँति चले चुप लाए॥

धूरि बिभूषित चारु पदाम्बुज बाजत पैंजनि देव लोभाए।
साँध डटे गह माखन आनन दोउ कपोल लए लपटाए॥

भूख से व्याकुल कन्हैया दौड़ते हुए वहाँ चले आए, जहाँ माखन रखा था। फिर उन्होंने हाथ में बहुत-सा माखन निकाल लिया और चोरों के समान चुपचाप चल पड़े। उनके धूल-धूसरित, सुन्दर चरणकमलों में बजती हुई पैंजनी के शब्द पर देवता लुब्ध हो उठे। वहाँ से चलकर वे एक कोने में जा डटे और माखन खाने लगे, जिससे उनके दोनों गालों पर माखन लग गया।

सो.- **गह नवनीत चुराइ फिरी जननि देखेहुँ कन्ह।**
धरा कान तिन्ह जाइ हरषि साचरज बहुरि उन्ह॥३२६॥ (क)

जब मैय्या लौटी और उन्होंने देखा कि कान्हाँ चुराकर माखन खा रहा है, तो उन्होंने चकित व हर्षित होते हुए, चुपचाप जाकर उनका कान पकड़ लिया।

दोहा- **जुग जुग लगि परब्रह्म कर यह सुचारु सिसु रूप।**
रहहिं सहृदयन्हँ कबित कर सुखप्रद साध्य अनूप॥३२६॥ (ख)

परब्रह्म का यह अत्यन्त सुन्दर बाल-स्वरूप युगों-युगों तक सहृदयों की कविता का सुखदायक साध्य बना रहेगा।

चौ.- **एहिबिधि सुत कहँ कछु दिनु जाता। ठाढ़त आपु लखेहुँ जब माता॥**
तब सप्रेम निज अँगुरि बढ़ाई। सुत कर कमलन्हँ दीन्हि धराई॥

इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर मैय्या ने अपने पुत्र को जब अपने आप खड़ा होता पाया, तब उन्होंने बड़े प्रेम से अपनी अँगुली बढ़ाकर कन्हैया के करकमलों में पकड़ा दी।

पुनि पाँ पाँ कहि ताहिं दुलारी। चलन सिखात भई महतारी॥
चकित निरखि उन्ह दिसि किलकाई। लगे एक एक चरन बढ़ाई॥

फिर पाँ-पाँ इस प्रकार कहकर दुलारते हुए मैय्या उन्हें चलना सिखाने लगी। तब चकित कन्हैया उनकी ओर देखकर किलकारते हुए, एक-एक करके अपना चरण बढ़ाने लगे।

सँभरि चलहि डग डग भय प्रेरे। पै मृदु पद लटि पर उन्ह केरे॥
नृप उन्ह लखि डगमगत मथारी। भुज भरि लेति तुरत सम्भारी॥

वे गिरने के भय से डग-डग करके, सम्भलकर चलते हैं, किन्तु उनके कोमल चरण डगमगा ही जाते हैं। हे राजन! उन्हें डगमगाते देख मैय्या उन्हें तुरन्त भुजाओं में भरकर सँभाल लेती हैं।

श्रवनन्हँ हित सुख अकथ जुड़ाई। नूपुर चरन रहे कस गाई॥
सीतल सान्त सलिल सरि केरा। जस कलकलहि मृदुल गति प्रेरा॥

कानों के लिये अकथनीय सुख समेंटे हुए उनके चरणों के नूपुर किस प्रकार बज रहे हैं; जिस प्रकार शान्त नदी का शीतल जल मन्द गति के कारण कल-कल करता है।

अलक भ्रमर मुख कमल दुराए। जनु चह निज अधिकार जनाए॥

केशरूपी भौरे उनका मुखरूपी कमल छिपाकर; मानों उस पर अधिकार व्यक्त कर रहे हैं।

दोहा- **एतनेहुँ आवत पितहि तहँ देखेहुँ जब घनस्याम।**

छिटकि चले घुटुरुअन्हँ बल उन्ह दिसि सपदि सकाम॥३२७॥

इतने में ही घनश्याम ने अपने बाबा नन्दजी को वहाँ आते हुए देखा, तब वे माता के हाथों से छिटककर तुरन्त ही किसी इच्छा से घुटनों के बल उनकी ओर दौड़ चले।

चौ.- मधुमय कपट निरखि सुत केरा। जननिहिं भा आचंभ घनेरा॥
नंद सुतहि निज हृदय लगाई। चलन सिखात भए हरषाई॥

अपने पुत्र का ऐसा मधुर छल देखकर मैय्या के हृदय में बड़ा ही आश्चर्य हुआ। तब नन्दजी हर्षित होकर कन्हैया को हृदय से लगाकर चलना सिखाने लगे।

दिग दिग कहत चलन हित प्रेरी। नंद सुतहि राखेउँ भुज घेरी॥
दोइक डग बढ़ाइ पद अंबुज। ढरकि परे कन्हँ धरनि जानु भुज॥

दिग, दिग कहते हुए, नन्दजी ने पुत्र को चलनें के लिये प्रेरित करके, भुजाओं से घेर रखा है। किन्तु चरणों को एक-दो डग बढ़ाकर ही कन्हैया हाथ व घुटनों के बल भूमि पर गिर पड़े।

तब तें खीझि रोहिनिहिं पासा। गए बदनु उन्ह मधुर निरासा॥
पुनि दुहुँ हाथ धरे निज लोचन। ररि लग त्रिपुर नयनजल मोचन॥

तब वे रूठकर रोहिणीजी के पास चले गए। उनके मुख पर मधुर निराशा छाई हुई थी। फिर त्रिलोकी के नेत्रों से अश्रु पोंछनेवाले वे हरि अपने नेत्रों को दोनों हाथों से ढँककर रोने लगे।

करि झुनझुनहिं श्रवनप्रिय नादा। रोहिनि तब उन्ह हरेउँ बिषादा॥
निरखि बलहि पुनि खेलत द्वारा। गै उन्ह पहि कछु किए बिचारा॥

तब रोहिणीजी ने झुनझुने का कर्णप्रिय शब्द सुनाकर उनका बालसुलभ दुःख हर लिया। दाऊ को द्वार पर खेलते हुए देखकर कन्हैया मन में कुछ विचारकर उनके पास चले गए।

पै पट लखि छबि अलपु नहारा। डरपे नरकेहरि बिकरारा॥

किन्तु द्वार पर एक तुच्छ सिंह का चित्र देखकर विकराल नृसिंह श्रीकृष्ण डर गए।

दोहा- तब बा बा कहि पाछ भजे बहुरि दुरे पितु गोद।
अस बिलोकि रोहिनि जसुदा हँसि परि मानि प्रमोद॥३२८॥

तब वे बा-बा इस प्रकार कहते हुए वापस भाग आए और नन्दबाबा की गोद में दुबक गए। यह देखकर रोहिणीजी और यशोदाजी अत्यन्त आनन्द मानकर हँस पड़ी।

चौ.- एहिबिधि स्याम कछुक दिनु जाई। आपु चलत भै जतन जुड़ाई॥
भीतर तें बाहेर लौ आवत। डेरि अबहि श्रमु कछुक करावत॥

इस प्रकार कुछ दिन और बीतने पर श्यामसुन्दर यत्न करके, अपने-आप चलने लगे। वे भीतर से बाहर की ओर आ जाते हैं, किन्तु देहरी अब भी उनसे कुछ श्रम करवाती है।

सजतन सहज न जाति लँघाई। हार पै न लहँ नैंकु कन्हाई॥
जथा बालखग उड़न प्रयासा। खसत बार बहु लहँ न निरासा॥

यत्न करने पर भी वह उनसे सहज लाँघी नहीं जाती। किन्तु फिर भी कन्हैया हार नहीं मानते। जैसे पक्षि का बच्चा उड़ने के प्रयास में बार-बार गिरने पर भी निराश नहीं होता है।

लखि बिरंचि अस कह मुसुकाई। लील त्रिबिक्रम कस सिसु नाई॥
सुफल भयउँ श्रमु जब हरि केरा। किलकि कीन्ह जयनाद घनेरा॥

यह देख ब्रह्माजी मुस्कुराकर बोले- देखो तो! भगवान त्रिविक्रम कैसी शिशुलीला कर रहे हैं। जब कन्हैया देहरी लाँघ गए, तब अपनी विजय पर उन्होंने किलकारकर जयध्वनि की।

उझकि उझकि पुनि पीटइ तारी। असफुट कह जनु देहरि पारी॥
जननि हृदयँ लखि हरष उमग कस। जलप्रपात महि परि उमगइ जस॥

फिर उछल-उछलकर ताली बजाने लगे, मानों अस्पष्ट से कह रहे हो कि मैंने देहरी जीत ली। यह देख मैय्या के मन में हर्ष कैसे उमड़नें लगा; जैसे झरना भूमि पर गिरते ही फैल जाता है।

दोहा- **अकसर कन्हँ मैआँ कहेउ सुनि भइ मातु बिभोर।**
घुमरत घन तर गहरि मनु राग मल्हार हिलोर॥३२९॥

एक बार कन्हैया ने यशोदाजी को मैय्या कहा जिसे सुनकर वे मैय्या विभोर हो गई। मानों घुमड़ते हुए मेघों के नीचे राग मल्हार की तरङ्ग गहरा गई हो।

चौ.- **मोद परिधि बढ़ि पुलक जुड़ाई। गातन्हँ कन कन रही सिंचाई॥**
सुनि प्रसंग पितु बिप्र बोलाए। उन्ह परितोषि सुआसिस पाए॥

पुलकन लिये, आनन्द की परिधि बढ़ी और मैय्या के शरीर का कण-कण सींचने लगी। यह प्रसङ्ग सुन नन्दबाबा ने ब्राह्मणों को बुलाया और उन्हें सन्तुष्ट करके, उत्तम आशीर्वाद पाया।

कछु दिनु बिगत चलत भै स्यामा। बोलइ तोतरि बानि ललामा॥
एकउ बार भए भिनुसारा। भई मथत दधि जननि उदारा॥

कुछ दिनों के पश्चात् श्यामसुन्दर स्वयं चलनें लगे। वे मन को हरनेंवाली तोतली वाणी बोलते हैं। एक बार प्रभात होने पर उदार हृदयवाली मैय्या यशोदा दहीं मथने लगी।

छुधावंत तेहिं सँव जुग भाई। अए तुरत नृप तहँ अतुराई॥
गहि बहोरि रजु सहित मथानी। पदन्ह पटकि कह हरि मृदुबानी॥

हे परीक्षित! भूख से आतुर दोनों भाई उस समय तुरन्त ही वहाँ आ पहुँचे। तब रस्सी सहित मथानी पकड़कर हठ करते हुए पैरों को भूमि पर पटककर कन्हैया कोमल वाणी में बोले-

मैय्या देहुँ हमहि नवनीता। अजहुँ उदर भा प्रातहि रीता॥
एहि प्रकार कर कंज बढ़ाई। माँगि रहे पुनि पुनि दुहुँ भाई॥

हे मैय्या! हमें माखन दो। आज तो पेट प्रातः से ही खाली हो गया। इस प्रकार हाथरूपी कमल को बढ़ाकर, वे दोनों भाई बार-बार मैय्या से माखन माँग रहे हैं।

अति अनुरागि कहा तब माता। थोबु तनक आतम सुखदाता॥
अबहि त बठि मैं दधिहुँ बिलोवन। एहि समउँ जनि उपजेउ माखन॥

तब अत्यन्त प्रेम में भरकर मैय्या ने कहा- हे आत्मा को सुख देनेवाले पुत्र! तनिक ठहरो। अभी-अभी तो मैं दहीं मथने बैठी हूँ, इस समय इसमें माखन नहीं आया है।

अग्रज बूझि धीर हिय ठाना। किन्तु मरमु कछु अनुज न जाना॥

दाऊ ने मैय्या की बात समझकर धैर्य धर लिया, किन्तु कृष्ण कुछ समझ नहीं पाए।

दोहा- तें त उधम पुनि पुनि करइ माखन हित करि पानि।
अति अधीर लखि मातु तिन्ह बहलत भइ मृदु बानि॥३३०॥

वे तो माखन लेने के लिये हाथ बढ़ाकर बार-बार हठ कर रहे हैं। तब भूख से अधीर देखकर मैय्या उन्हें कोमल वाणी से बहलाने लगी।

चौ.- नाचेहुँ काल्ह भाँति जेहिं स्यामा। मोहि देखाहु सो नाच ललामा॥
ठुमुकि ठुमुकि करि पैंजनि नादा। मेटेउ तैं सब सुरन्हँ बिषादा॥

हे कन्हैया! तुम कल जिस प्रकार नाचे थे, मुझे अपना वही मनभावन नृत्य दिखाओ। ठुमक-ठुमककर पैंजनियाँ बजाते हुए तुमने समस्त देवताओं का विषाद हर लिया था।

ते रीझे तउँ नयन बिसाला। देइ तोहि अब सुन्दर ख्याला॥
बिबुध निरखि पर किन्ह सम माता। खेलिहि तें कि हमार सँघाता॥

वे तुम्हारे विशाल नेत्रों पर रीझ गए हैं, इसलिये अब वे तुम्हें सुन्दर-सुन्दर खिलौने लाकर देंगे। तब कान्हा ने कहा- हे मैय्या! देवता कैसे दिखते हैं; क्या वे हम भाईयों के साथ खेलेंगे?

कहु मैय्या तें कब लौ आवहि। केते ख्याल मोर हित लावहि॥
अस सुनि दाउ कहेउ मैं माता। लउँब ख्याल घनस्याम सँघाता॥

हे मैय्या! कहो वे कब तक आवेंगे और मेरे लिये कितने खिलौने लावेंगे। तब बलदाऊ ने कहा कि हे मैय्या! मैं भी घनश्याम के साथ उनसे खिलौने लूँगा।

बलहि त एक न देउब माता। रहत असित कहि मोहि खिजाता॥
देत ललुअ एहिंभाँति मथारी। बातन्ह कन्हहि भुलानेउँ भारी॥

तब कन्हैया ने कहा- हे मैय्या! मैं दाऊ को एक भी खिलौना नहीं दूँगा। ये मुझे काला- काला कहकर चिढ़ाते हैं। इस प्रकार मैय्या ने कन्हैया को बहलाकर बातों में अत्यन्त उलझा लिया।

तब तें मुदित करत मृदु बाता। खेलत भै तहँ दाउ सँघाता॥

तब वे आनन्दित होकर मीठी-मीठी बातें करते हुए वहीं पर दाऊ के साथ खेलने लग गए।

दोहा- मथत उएहुँ इत माखन जननि लए उन्ह बोलि।
झाँकि दोनि महुँ लोनि लखि लागे दुहुँ तहँ डोलि॥३३१॥

इधर मथते-मथते जब माखन निकल आया, तब मैय्या ने दोनों को बुला लिया। तब दहीं की उस मटकी में झाँककर और उसमें माखन का लोदा देखकर वे वहीं मँडराने लगे।

चौ.- लउँब लउँब मैं अग महतारी। दाउ तें भूख मोहि लगि भारी॥
तब जसुदा रोहिनिहिं बोलाई। रोटि परातन्हि लीन्ह मँगाई॥

कन्हैया ने कहा- हे मैय्या! पहले मैं लूँगा, पहले मैं लूँगा। क्योंकि मुझे दाऊ से अधिक भूख लगी है। तब यशोदाजी ने रोहिणीजी को बुलाकर दो थालियों में रोटी मँगवा ली।

पुनि नवनीत रोटि पर चौपी। मातु परातन्हि उभयन्हँ सौंपी॥

कन्ह कह अधिक दीन्ह तैं दाउहि। मोरेहिं देत कि आनउँ बाउहि॥

फिर मैय्या ने उन पर माखन लगाया और थालियों में रखकर उन दोनों को दे दी। तब कन्हैया ने कहा- मैय्या! तुमने दाऊ को अधिक दिया है, मुझे भी देती हो या बिच्छू लाऊँ।

अस सुनि तरकि सुतहि चतुराई। जसुमति हरषि कछुक चकराई॥
धाक कानि करि सुत सुख आपन। जननि बिहँसि पुनि दीन्हेहुँ माखन॥

यह सुन पुत्र की चतुराई अनुमानकर, मैय्या हर्षित और कुछ चकित हुई। फिर पुत्र द्वारा दिखाए गए भय का मान रखते हुए, मैय्या हँस पड़ी और उन्हेंथोड़ा माखन और दे दिया।

उभय भ्रात तब उमगि उमंगा। माखन पूप खात भै संगा॥
कछुक खाइ कछु धरनि गिराई। लाग परसपर बिहँसि दुकाई॥

तब दोनों भाई साथ-साथ बड़ी उमंग से माखन और रोटी खाने लगे। कुछ खाई और कुछ भूमि पर गिरा दी, फिर हँसते हुए एक-दूसरे को ललचानें लगे।

धरि परात कबहूँ कर खेला। खगन्हँ उड़ात कबहि हति ढेला॥
पुनि फिरि लाग उभय तेहिं खाई। रहे दाउ गहि प्रथम कन्हाई॥

कभी रोटी को थाली में छोडकर्, वे खेलने लगते हैं, तो कभी ढेले से पक्षियों को उड़ाते हैं। फिर वे दोनों लौटकर रोटी खाने लगे; इस बीच कन्हैया अपनी रोटी दाऊ से पहले खा गए।

उन्ह माँगिसि तब बल तें जाई। तें कह ताहि अँगूठ देखाई॥
तै त लुतरिआ देउ न तोहीं। जननि समुख अति हेठेहुँ मोहीं॥

तब उन्होंने दाऊ से जाकर रोटी माँगी, तो वे अँगूठा दिखाते हुए कहने लगे कि तुम तो चुगलखोर हो, तुम्हें नहीं दूँगा। तुमने मुझे मैय्या के सन्मुख बहुत नीचा दिखाया।

खीझे कान्हँ बात भइ मोटी। तब गहि धाइ परसपर चोटी॥
बल समुझहि पै ढीठ कन्हाई। उधम करइ बहुभाँति रिसाई॥

यह सुनते ही कन्हैया चिढ़ गये। जब बात बढ़ गई, तब दौड़कर दोनों ने एक-दूसरे की चोटी पकड़ ली। दाऊ समझते हैं, किन्तु कन्हैया ढीठ हैं, वे क्रोधित होकर अनेक उत्पात करते हैं।

दोहा- जदपि जननि जुग बरजि उन्ह दीन्हिसि सुरह कराइ।
पै उन्ह झगरनि केलि मृदु सुरति रूप हिय छाइ॥३३२॥

यद्यपि मैय्या ने दोनों को रोककर उनमें सुलह करा दी। किन्तु उनके झगड़ने की रीति स्मृति बनकर माता के हृदय में छा गई।

चौ.- तेहिं छिनु द्वार बनिक एक आवा। माल लेहुँ एहिंभाँति गगावा॥
सुनि हरि चकित तासु दिसि धाए। तिन्ह कर माल देखि हरषाए॥

उसी समय द्वार पर 'माला ले लो', इस प्रकार पुकारता हुआ एक वणिक आया। उसकी वाणी सुनकर चकित हो कन्हैया उसकी ओर दौड़े और उसके हाथों में मालाएँ देख हर्षित हो गए।

जब हठि तेहिं तें माँगन लागे। तात मात लखि अति अनुरागे॥
बनिक भोरपनु लखि सिसु केरा। प्रेम बूड़ि तेहिं सिरु कर फेरा॥

जब वे हठपूर्वक उससे माला माँगने लगे, तो यह देख मैय्या, बाबा प्रेममग्न हो गए। वणिक भी उन बालकृष्ण का भोलापन देखकर प्रेम में डूब गया और उसने उनके सिर पर हाथ फिराया।

पुनि दुइ माल तेहिं हरषाई। काढ़ि उभय भ्रातन्हँ पहिराई॥
नंद लाग जब मोल चुकाने। लीन्ह न कछुक रहा हठ ठाने॥

फिर उसने हर्षित होकर उन दोनों भाईयों को दो मालाएँ निकालकर पहना दी। नन्दजी ने उनका मूल्य देना चाहा किन्तु वणिक ने कुछ नहीं लिया। वह न लेने का ही हठ ठाने रहा।

नंद तेहिं तब भोज कराई। बिदा कीन्ह सबिनय हरषाई॥
जसुमति रोहिनि लगि गृहकाजा। बैठे अजिर खटुलि ब्रजराजा॥

तब नन्दजी ने उसे भोजन कराया, फिर हर्षित हो विनयपूर्वक उसे विदा किया। तब यशोदाजी और रोहिणीजी घर के कार्यों में लग गई और नन्दजी आँगन में खटिया डालकर बैठ गए।

तुलसि मंजरी गहि एक गोपी। आइ लागि उन्ह आँगन रोपी॥

तभी एक गोपी तुलसी-मञ्जरी लेकर वहाँ आई और उसे उनके आँगन में रोपने लगी।

दोहा- **चकित कान्हँ पूछा तब एहि तें होइहि काह।**
गोपि कहेहु उपजिहिं पउध मंजरि लगिहिं अगाह॥३३३॥

उस समय चकित होकर कन्हैया ने गोपी से पूछा कि इससे क्या होगा? तब गोपी ने कहा कि इससे एक पौधा उगेगा जिस पर बहुत-सी मञ्जरियाँ लगेंगी।

चौ.- **तब हरि आपन माल उतारी। बावत भए गोपि अनुहारी॥**
नंद चकित तब पूछेहुँ आई। यह तुम का करि रहे कन्हाई॥

तब कन्हैया अपनी माला उतारकर गोपी के समान ही उसे बोने लगे। यह देखकर नन्दजी चकित हुए और उनसे पूछने लगे कि अरे कन्हैया! तुम यह क्या कर रहे हो?

रोपि रहा मैं आपुनु माला। उपजिहि जेहिं तें बिटप बिसाला॥
लगिहि माल बहु तापर जबहीं। देउँ तोहि अरु मैयहिं तबहीं॥

(तब कन्हैया ने कहा कि) मैं अपनी माला को बो रहा हूँ; जिससे बहुत बड़ा वृक्ष उत्पन्न होगा और जब उस पर बहुत-सी मालाएँ लगेंगी, तब आपको और मैय्या को दूँगा।

हँसे ठहकि पितु सुनि सुत बानी। गोपि चकित भइ अति सुखमानी॥
बल जल ढारि माल सो सींची। कछुक छिनुहि हरि ताहिं उलीची॥

पुत्र की बात सुनते ही, नन्दबाबा ठहाका मारकर हँस दिये और चकित हुई उस गोपी ने बड़ा सुख माना। दाऊ ने जल से उसे सींचा, किन्तु कुछ ही क्षण पश्चात् कान्हा ने उसे निकालकर,

पितु यह अब लौ उगि किउ नाहीं। तें कह उपजिहि कछु दिनु माहीं॥
तब खेलन हित जग सुखदाता। निकसे बीथि दाउँ संघाता॥

पूछनें लगे अरे बाबा! माला अब तक उगी क्यों नहीं? उन्होंने कहा- कुछ दिनों में उग आएेगी। तब संसार को सुख देनेवाले श्रीकृष्ण, दाऊ के साथ गली में खेलने निकले और

निज निज लकुट जाँघ बिच लाई। हय हय खेलन लग दुहुँ भाई॥

लखि एक गोपि गई उन्ह पासा। धरि हिय तेन्ह दुलारन आसा॥

अपनी-अपनी लकड़ियों को जाँघों के बीच लेकर वे दोनों घोड़ा-घोड़ा खेलनें लगे। उन्हें खेलते हुए देखकर एक गोपिका उन्हें दुलारने की इच्छा से उनके पास गई।

पुनि कह कान्हँ हय त अति सुन्दर। मैंपि बैठि चहऊँ एहि ऊपर॥
हरि कह तुरग त मम अति छोटा। बहुरि तिहार गात अति मोटा॥

और बोली अरे कन्हैया! तुम्हारा घोड़ा तो बड़ा सुन्दर है। मैं भी इस पर बैठना चाहती हूँ। तब कन्हैया ने कहा कि मेरा यह घोड़ा तो बहुत छोटा और तुम्हारा शरीर तो बहुत मोटा है।

जे मम हय दबिहहिं तव भारा। होन परिहि मोरेहिं पदचारा॥
तब ग्वालिनि घन रस उमगाई। चूमेहुँ तिन्ह कपोल उर लाई॥

यदि मेरा घोड़ा तुम्हारे भार से दब गया, तो मुझे भी पैदल ही चलना पड़ेगा। तब वह गोपी प्रेमाधिक्य से अधीर हो उठी और उसने कन्हैया को हृदय से लगाकर उसके गाल चूम लिये।

पुनि कह लला चलहु गृह मोरे। माखन मिसरि देउँ मैं तोरे॥
अबहि त मोहि भूख अह नाहीं। साँझ सबंधु आउँ तव पाहीं॥

फिर उसने कहा- लल्ला! तुम मेरे घर चलो। मैं तुम्हें माखन-मिश्री दूँगी। तब कन्हैया ने कहा- अभी मुझे भूख नहीं है, किन्तु मैं संध्या के समय दाऊ सहित तुम्हारे पास आऊँगा।

पुनि प्रसंसि तेहिं चलत भए जब। अस कटाछ ग्वालिनि कीन्हेंहु तब॥
कान्हँ धूम सम बरन तुम्हारा। दाउहि गौर तुअँ त अति कारा॥

फिर उसकी प्रशंसा करके, जब वे दोनों जाने लगे तब गोपी ने उन्हें सुनाकर कटाक्ष किया, अरे कन्हैया! तुम्हारे शरीर का रङ्ग तो धुएँ-सा है। दाऊ ही गोरे है, तुम तो बहुत काले हो।

फिरि कह हरि तेहिं आँखि देखाई। तुअहि कारि मोरे कह काई॥
तुम जे मोहि कहा पुनि कारा। कहउँ जननि तें नाउँ तुम्हारा॥

तब कन्हैया ने पलटकर आँख दिखाते हुए कहा- मुझे क्या काला कहती हो, तुम स्वयं ही काली हो। यदि फिर मुझे काला कहा तो मैं मैय्या से जाकर तुम्हारा नाम कह दूँगा।

दोहा- जानि दाउ निज लागत गोपि परम हरषाइ।
कर तें कूचि कपोल तिन्ह पुनि कछु दीन्ह सुनाइ॥३३४॥

अपना दाव लगता हुआ जानकर गोपी अत्यन्त हर्षित हुई। उसने कन्हैया के कपोलों को जोर से कुचलकर पुनः कुछ सुना दिया।

चौ.- जातें पाहन निकट उठाई। मारेहुँ तेहिं घनस्याम खिझाई॥
देखेसु तैं अब मैं दुरि आई। तव गौ बछुरन्हँ बंध छराई॥

जिसके कारण कन्हैया ने चिढ़कर निकट पड़ा हुआ पत्थर उठाकर उसे मार दिया और बोले तुम देखना! अब मैं छिपते-छिपाते आकर तुम्हारी गायों के बछड़ों के बन्धन खोलकर

गउन्ह दूध सब तेन्ह धवाई। देउँ बिपिन गुपचाप चलाई॥
कान्हँ धौंस सुनि तें चकरानी। अवसि कान्हँ फुरि सक निज बानी॥

गायों का सारा दूध उन्हें ही पिलाकर, चुपके से उन्हें वन में भगा दूँगा। कन्हैया की यह धमकी सुन वह गोपी चकरा गई। कन्हैया अपना कहा ही अवश्य पूरा कर सकता है, क्योंकि

अति उतपाति भरोष न ताहीं। अस बिचार करि लगि मनु माहीं॥
हहरि संक एहि लागि दुलारी। तब कन्हँ चले देत तेहिं गारी॥

वह बड़ा उत्पाती है, उसका भरोसा नहीं। मन में वह ऐसा विचार करने लगी। इसी आशङ्का से घबराकर, जब वह कन्हैया को दुलारने लगी, तब कन्हैया उसे गाली देकर भाग चले।

खेलत श्रमित भए दोउँ भ्राता। मुद सम श्रमकन उमगे गाता॥
बल कह अब त भूख लगि भारी। पुनि पथु जोहति होब मथारी॥

जब खेलते हुए दोनों थक गए, तो उनके अङ्गों पर आनन्द-सी पसीने की बूँदे उभर आई दाऊ ने कहा- अरे कन्हैया! अब तो बड़ी भूख लगी है और मैय्या भी राह देख रही होगी।

अब चलिअहि तब दुहुँ सुकुमारा। हयन्हँ फेरि गृह पंथ निहारा॥
हरदि मलय उबटन गहि थारी। सुतन्ह जोहि रहि इत महतारी॥

अब चलना चाहिये। तब दोनों सुकुमार बालक लकड़ीरूपी घोड़ों को मोड़कर घर की ओर चल पड़े। इधर हल्दी और चन्दन का उबटन थाली में लिये मैय्या उनकी प्रतिक्षा कर रही थी।

दोहा- ऐतनेहुँ सावन जलद सम मृदु रव करत किलोल।
उभयँ बत्स आए भवन ठुमकत हिय कर लोल॥३३५॥

इतने में ही श्रावण महीने के मेघों के समान मधुरध्वनि से कल्लोल करते हुए वे दोनों भवन में लौट आए। उस समय ठुमकते हुए वे देखनेवालों के हृदय को वात्सल्य से अधीर कर रहे थे।

चौ.- सुनि पदचाप जननि उमगानी। हिय लाए उभयन्हँ सुखमानी॥
पुनि कह सुत अब करु असनाना। उबटन मैं तव हेतु जुड़ाना॥

उनकी पदध्वनि सुनकर माता उनके पास आई और उन्हें सुखपूर्वक हृदय से लगा लिया। फिर उन्होंने कहा- पुत्रों! अब आकर स्नान कर लो। मैंने तुम्हारे लिये उबटन तैयार कर रखा है।

पै हरि निज लघु हाथ बढ़ाई। चौकउँ दिसि कह सेन बुझाई॥
जननी छुधा लागि अति भारी। देहुँ मोहि दधि कछुक निकारी॥

किन्तु कन्हैया ने अपना छोटा-सा हाथ बढ़ाकर चौके की ओर सङ्केत करके, मैय्या से समझाकर कहा- हे मैय्या! बड़ी भारी भूख लगी है, मुझे थोड़ा सा दहीं निकालकर दो।

पुनि सारिहि अंचल गहि तासू। चले ठुमुकि रसोइ कर आसू॥
सुतहि अधीर निरखि महतारी। कह मैं जाउँ लला बलिहारी॥

फिर वे मैय्या की साड़ी का पल्लू पकड़कर ठुमकते हुए रसोई की ओर चले। कान्हा को अधीर देखकर मैय्या ने कहा- हे लल्ला! मैं तुम पर बलिहारी जाती हूँ।

प्रथम न्हाइ तैं होवहुँ पावन। तदुप देउँ मैं उभयन्ह माखन॥
पै हरि मचलि लाग महि लोटी। मैं त प्रथमहिं लउँब दधि रोटी॥

तुम नहाकर पहले शुद्ध हो जाओ, तदुपरान्त मैं तुम दोनों को माखन दूँगी। किन्तु कन्हैया मचलकर भूमि पर लोटने लगे और कहने लगे कि मैं तो पहले दहीं व रोटी ही लूँगा।

प्रतिदिनु मैं केहि कारन न्हाऊँ। न्हाइ बृथा किउँ भार घटाऊँ॥
चकित मातु तब पूछेहुँ स्यामा। सीख तोहिं केहिं दइ अस बामा॥

मैं रोज-रोज किस कारण नहाऊँ और नहाकर व्यर्थ ही में अपना भार क्यों कम करूँ? यह सुनकर चकित हुई मैय्या ने पूछा- अरे कन्हैया! ऐसी उल्टी बात तुम्हें किसने सिखा दी।

गाँउ गोपि मोहि नित समुझावहिं। न्हाए तनु घिसि घिसि हरुआवहिं॥
सुनि हँसि जननि लागि समुझाई। न्हाए घिसहि न चाम कन्हाई॥

तब कन्हैया ने कहा कि मुझे गाँव की गोपियाँ नित्य समझाती है कि नहाने से शरीर घिसकर हल्का होता है। तब मैया ने हँसकर समझाते हुए कहा- कन्हैया! नहाने से चमड़ी नहीं घिसती।

दोहा- जे तुअ असित नहाइ लग होइहि तनु तव गौर।
तब सोइ ग्वालिनि कहिहि कस कारौ नंदकिसोर॥३३६॥

तू श्याम रङ्ग का जो यदि नहाने लग गया तो तुम्हारा शरीर गोरा हो जाएगा। तब वहीं ग्वालिनें कैसे कह पायेंगी कि नन्दजी का पुत्र काला है?

चौ.- उन्ह मिल अति मुद तोहि खिजाई। तातें तोहिं अस फिरइ सिखाई॥
किन्तु बात उन्ह बाम बिहावौ। आइ बेगि उबटाइ नहावौ॥

तुम्हें चिढ़ानें में उन्हें बड़ा आनन्द आता है, इसलिये वे तुम्हें ऐसा सिखाती फिरती है (ताकि गोरे न हो जाओ)। किन्तु तुम उनकी उल्टी बातों को भूल जाओ और शीघ्र ही आकर उबटन लगवाकर नहा लो।

तब ठुमकत नटखट निअराने। जननि पाट उन्ह हरषि बठाने॥
भुज बहोरि तिन्हँ दुहुँ उनतानी। दुहुँ दिसि जननि लागि उबटानी॥

तब ठुमकते हुए वे नटखट उनके निकट आ गए और मैय्या ने हर्षित होकर उन्हें पाटे पर बैठा दिया। फिर उनकी दोनों भुजाएँ ऊपर करवाकर मैय्या दोनों ओर से उन्हें उबटन लगानें लगी।

पीठि उदर उर कंठ प्रदेसा। उबटे पदन्ह समेत बिसेषा॥
मलि मलि मंद मंद महतारी। तुरत दीन्ह सब मयर उतारी॥

पीठ, पेट, छाती और पैरों सहित गले के आस-पास भली-प्रकार से उबटन लगाया। इस प्रकार मैय्या ने धीरे-धीरे मल-रगड़कर तुरन्त ही उनके शरीर से सारा मैल उतार दिया।

निंब फाक एक गहि पुनि पाछे। कुंतल कुटिल मले अति आछे॥
पाछ श्रवन अरु कंठ सँभारी। उभय आस धोए महतारी॥

फिर नीम की एक फाँक लेकर उससे उन्होंने कन्हैया के घुँघराले केशों को भली-प्रकार मला। तत्पश्चात् मैय्या ने उनके कानों व कण्ठ को दोनों ओर से सम्भालकर धोया।

दोहा- नख धोवाइ तातउँ सलिल जननि न्हवानेहुँ ताहि।

तदुप पोछि तनु मोट पट भलिबिधि दीन्ह सुखाहि॥३३७॥

फिर नखों को धोकर तप्त जल से मैय्या ने उन्हें स्नान कराया। तदुपरान्त एक मोटे वस्त्र से पोंछकर उन्होंने उनके शरीर को भली-भाँति सुखा दिया।

चौ.- गाइ सुतहि गुन ललित मथारी। बहु बिधान तेहिं दीन्ह सिंगारी॥
तदुप थारि एक तात सँघाता। भोजन कीन्ह हरषि दुहुँ भ्राता॥

पुत्र के नटखट और मनोहारी चरित्र गाते हुए मैय्या ने उन्हें अनेक प्रसाधनों से शृङ्गार धराया। तत्पश्चात् दोनों भाईयों ने नन्दबाबा के साथ बैठकर, एक ही थाली में हर्षपूर्वक भोजन किया।

निबरि अजिर दुहुँ करि लग केली। सींचन तात मात पृह बेली॥
खेलत करइ परसपर बाता। दाउहि कहि लागे सुखदाता॥

भोजन से निवृत्त होकर वे दोनों मैय्या-बाबा की इच्छारूपी लता सींचने के लिये, आँगन ही में खेलनें लगे। खेलते समय परस्पर बातें करते हुए बालकृष्ण बलदाऊ से कहने लगे- अरे दाऊ!

जे तुम होहु बसहँ असवारा। तो निज हित आनौं मैं न्हारा॥
छुद्र बृषभ तव डग डग चलिही। पुनि मम न्हार छरागन्हि भरिही॥

जो यदि तुम बैल पर सवार होओगे तो अपने बैठने के लिये मैं सिंह ले आऊँगा। तुम्हारा तुच्छ बैल डग-डग करके, चलेगा और मेरा सिंह तो बड़ी-बड़ी छलाँगे भरेगा।

श्रवन उमेंठौं जे कित ठारा। करउँ अरिन्ह सन समर अपारा॥
जे रनु माँझ कंस मोहि भेंटौं। पठवउँ जमपुर एक चपेटौ॥

जब वह कहीं खड़ा हो जाएगा, तो मैं उसके कान मरोड़ूँगा और शत्रुओं से भयङ्कर युद्ध करूँगा। युद्ध में यदि कंस से भेंट हो गई, तो मैं एक ही चपेटे में उसे यमलोक भेज दूँगा।

रिपुता मम प्रति गोपि बढ़ावहि। तनक न मोहि नवनीत खबावहि॥
बिनु माखन केहि बिधि बढ़ि पैऔं। बढ़े बिना किमि अरिहि सिखैऔं॥

गोपियाँ भी मुझसे शत्रुता बढ़ाती हैं। मुझे तनिक भी माखन नहीं खिलाती। बिना माखन खाये मैं किस प्रकार बड़ा हो पाऊँगा और बढ़े बिना शत्रुओं को कैसे दण्ड दूँगा?

मोर बंधु प्रिय तुम बलदाऊ। तातें तोहि एक भेद बतावऊँ॥

हे बलदाऊ! तुम मेरे प्रिय भैय्या हो, इसलिये तुम्हें एक गुप्त बात बताता हूँ।

दोहा- मैं अस चतुर सिरोमनि ग्वालिन्ह बात न अैहु।
जे न देइ दधि सुमन तब दुरि छीकन्ह चढ़ि खैहुँ॥३३८॥

मैं ऐसा चतुर शिरोमणी हूँ कि गोपियों की (चिकनी-चुपड़ी) बातों में नहीं आऊँगा। जो यदि वे मुझे स्वयं दहीं नहीं देंगी, तब मैं छिपकर उनके छींकों पर चढ़कर दहीं खाऊँगा।

चौ.- आँखि देखावहि तें रिस लावौ। किंतु कि मैं उन्ह तें भय खावौं॥
ब्रजपति तनय अहूँ मैं दाऊ। कंस होइ तेहिं तहहिं पजाऊँ॥

अरे दाऊ! वे मुझे बहुत आँखें दिखाती है, किन्तु क्या मैं उनसे डरता हूँ? अरे दाऊ! मैं भी नन्दजी का बच्चा हूँ, यदि कंस भी हो, तो उसे भी मैं वहीं पटक दूँगा।

नृप बालोचित अस मधु बैना। करहि दाउ सन राजिवनैना॥
नंद जसोदा अजिरउँ लागे। उन्ह बतकही सुनहिं अनुरागे॥

हे परीक्षित! इस प्रकार भगवान बालकृष्ण बलदाऊ से बालसुलभ मधुर बाते करते हैं। नन्दजी और यशोदाजी भी आँगन में ही थे और बड़े प्रेम से उनकी ऐसी बातें सुन रहे थे।

तब कन्हँ कपि होइ आँखि देखाई। परे मात पितु पाछे धाई॥
तब तें सुतहि केलि सहचारे। भजे पेमुबस डरपत भारे॥

उस समय कन्हैया बन्दर बन गए और आँख दिखाकर मैय्या-बाबा के पीछे दौड़ पड़े। तब वे लल्ला की बाल-लीला में मिल हो गए और प्रेमवश अत्यन्त भयभीत हो भाग चले।

जब निज कहुँ अति थकित देखाई। बैठे नंद खाट पर जाई॥
तब कन्हँ कपि कटकत किलकारी। भय देखाइ उन्ह पाग उतारी॥

भागते हुए नन्दजी स्वयं को थका दिखाकर, जब खटिया पर जा बैठे, तब वानर कन्हैया ने दाँत कटकटाए और किलकारी मारकर उन्हें डराया, फिर उनकी पगड़ी उतार ली।

कोउँ न समुख होत तेहिं काला। कीस खेल करि लग नंदलाला॥
प्रमुदित ग्वाल करत तब सोरा। अवलोके हित भै चहुँ ओरा॥

उस समय कोई भी उनके सामने नहीं होता, इस प्रकार नन्दनन्दन वानर का खेल करने लगे। आनन्दित हुए ग्वालबाल तमाशा देखकर, कोलाहल करते हुए, उनके चारों ओर आ लगे।

दोहा- **नंद हृदय प्रमुदे नृपति चितवहि चरित रसाल।**
हृदय छितिज उन्ह उमगि परि पुलक पताक बिसाल॥३३९॥

हे परीक्षित! नन्दरायजी मन-ही मन आनन्दित हुए से बालकृष्ण की सुन्दर लीलाएँ देख रहे हैं। उनके हृदयरूपी क्षितिज पर पुलकनरूपी विशाल पताका लहरा उठी।

चौ.- **गोठ तें तदुप लकुट एक लाई। जंघन्हि बिच तेहिं कान्हँ बसाई॥**
अस्वारोहि सरिस भै तापर। बाम दाम धरि कोड़ दहिन कर॥

तदुपरान्त गोष्ठ से एक लकड़ी लाकर कन्हैया ने अपनी जङ्घाओं के मध्य रखी और घुड़सवार से उस पर सवार हो गए। उनके बाएँ हाथ में लगाम और दाहिने हाथ में कोड़ा था।

चल चल चपल तुरग मम नटखट। छुपुकि लगाम चले पुनि सरपट॥
टप टप मुख तें कहि हरि धावहि। जननिहिं हय पर बठन बोलावहि॥

चल मेरे चञ्चल-नटखट घोड़े चल; ऐसा कहते हुए, रस्सी खींचकर, वे सरपट दौड़ चले। मुख से टप-टप की ध्वनि करके, वे दौड़ते हैं और मैय्या को घोड़े पर बैठने के लिये बुलाते हैं।

पंथ जे ग्वाल बाल कोउँ आवहि। सावधान करि ताहि बुझावहि॥
बंधु तुरग मम तेज तरारा। सहज न मोतें जाइ सँभारा॥

उस समय उनके मार्ग में जो कोई भी ग्वाल-बाल आते, तो वे उन्हें सावधान करके, समझाकर कहते हैं- हे भाई! मेरा यह अश्व तेज-तर्रार है। मुझसे सरलता से सँभाला नहीं जाता।

परे पंथ याकें अति हानी। मारहि लात धरहुँ सउधानी॥

घास खबात सलिल तेहिं प्यावत। निरखि पितुहि अस गप्प लरावत॥

इसके रास्ते में आने पर बहुत हानि है, यह लात मारता है, अतः सावधान रहो। वे घोड़े को घास खिलाते व पानी पिलाते हैं और नन्दबाबा को देखकर यह गप्प हाँकते हैं,

खर खच्चर जग फिरहि अनेका। तुरग परन्तु अहहि मम ऐका॥
नंद चकित सुनि तुरत सिहावा। जननि लाइ हिय मोद जुड़ावा॥

हे बाबा! संसार में गधे व खच्चर तो बहुत फिरते हैं, किन्तु अश्व एक मेरा ही है। यह सुन चकित हुए नन्दजी सद्य अश्व की प्रशंसा करने लगे और मैय्या उन्हें हृदय से लगाकर हर्षित हुई।

दोहा- माय जासु बिरचहि सहज त्रिगुन कोटि ब्रह्मंड।
तात मातु सुख लीलहि सोइ भगवंत अखंड॥३४०॥

जिनकी माया त्रिगुणयुक्त करोड़ों ब्रह्माण्ड सहज ही में रच देती है, वे अखण्ड भगवान मैय्या और बाबा के सुख के लिये सुन्दर लीलाएँ करते हैं।

चौ.- रोहिनि तेहिं सव गहि तेहिं गोदा। पूछन लगि अस किए बिनोदा॥
कस अह कान्हँ बदनु तव माता। देहुँ देखाइ तनक सुखदाता॥

उस समय रोहिणीजी बालकृष्ण को गोद में लिये विनोद करके यह पूछने लगी- अरे कान्हा! अरे सुखदायक पुत्र! तुम्हारी मैय्या का मुख दिखने में कैसा है, तनिक मुझे भी दिखा।

तब कन्हँ आपन नाक सकोरी। अधर रदन्ह धरि अंगुरि ठोरी॥
पुनि कह मैयहि मुख एहिंभाँती। लखि साचरज जननि मुसुकाती॥

तब कन्हैया ने नाक सिकोड़ी व अधरों को दाँतों तले दबाया। फिर एक अँगुली अपनी ठोढ़ी पर रखकर कहा- मैय्या का मुख इस प्रकार दीखता है। यह देख चकित हुई मैया मुस्कुराने लगी।

ब्रजपति चलहि भाँति जस गाँऊ। तनक सो बिचरनि मोहि देखाऊ॥
बालमुकुंद सुनत मुसुकाए। बहुरि लकुटि आपन लै आए॥

पुनः रोहिणीजी ने पूछा अरे लल्ला! नन्दजी गाँव में जिस प्रकार चलते हैं, उनकी वही चाल तनिक मुझे तो दिखा। यह सुनकर बालमुकुंद मुस्कुराए और अपनी लकड़ी ले आए।

तदुप भए निहुरे कटि कर धरि। लकुट सहार अजिर लग बिचरी॥
हँसे नंद अवलोकि ठठाई। मातु बलैया लइ उर लाई॥

तदुपरान्त वे झुके और एक हाथ कमर पर रख लिया। फिर लकड़ी के सहारे वे आँगन में चलने लगे। यह देख नन्दजी ठहाका मारकर हँसे और मैय्या ने उन्हें हृदय से लगाकर बलैया ली।

चलत ठाढ़ कत स्वास फुलाई। मनहुँ जरठ जिय रहेहुँ फिराई॥

चलते हुए श्वास फुलाकर वे कहीं खड़े हो जाते हैं। मानों कोई वृद्ध सुस्ता रहा हो।

दोहा- नंद मुकुंदहिं तदुप कह सुना सुजसु तव नाच।
सकुच अपछरा तव समुख कान्हँ कि बच यह साँच॥३४१॥

तदुपरान्त नन्द बाबा ने बालमुकुन्द से कहा- अरे लल्ला! मैंने तुम्हारे नृत्य की बहुत प्रशंसा सुनी है। अप्सराएँ भी तुम्हारा नृत्य देखकर लजा जाती हैं; क्या यह सत्य है?

मासपारायण ग्यारहवाँ बिश्राम

चौ.- तात अवसि मैं नाच देखावौं। पै तुम निज कर तारि बजावौ॥
तब रोहिनि जसुदा के संगा। नंद भै तारि बजात उमंगा॥

कन्हैया ने कहा- हे बाबा! मैं नृत्य तो अवश्य दिखाऊँगा किन्तु आप अपने हाथ से ताली बजाइये। तब रोहिणीजी और यशोदाजी के साथ बाबा नन्द बड़े उत्साह से ताली बजाने लगे।

सुनि नटनागर सिसु अनुरूपा। ठुमुकि नृत्य करि लाग अनूपा॥
पद अनुहरत मृदुल लघु बाहू। झहरि ढार दृग जीवन लाहू॥

यह सुन नृत्यप्रवीण वे हरि, बालक के समान ठुमकते हुए अनुपम नृत्य करने लगे। पैरों का अनुसरण करती हुई अत्यन्त छोटी भुजाएँ लहराकर नेत्रों में जीवन का लाभ उड़ेल रही थी।

झलकति छबि अति मति गति मारी। नूपुर किंकिनि रव पइसारी॥
लहिबे सुधाकर मनहुँ बढ़ाई। ता महुँ जिरेहुँ सुधाकर आई॥

उद्भासित होती उनकी महाछवि, बुद्धि की गति पङ्गु करके नूपुर और मेखला के शब्द में उतर गई। मानों अमृतमय होने का यश पाने के लिये स्वयं चन्द्रमा आकर उनमें विलीन हो गया।

अकथ सबद सो श्रवन जुड़ाई। पुनि तारक सोइ नृत्य बसाई॥
रोहिनि सहित जसोमति नंदा। नख सिख लौ बूड़े आनंदा॥

फिर उस अकथनीय ध्वनि को कानों में भरकर और उस नृत्य को नेत्रों के तारकों में बसाकर रोहिणीजी से नन्दजी और यशोदाजी नख से लेकर शिखा तक आनन्द में डूब गए।

जस न सबद तनु लहँ रुचिराई। तसहि दसा उन्ह बरनि न जाई॥
अकसर साँझ काज कछु पाई। निकसे द्वार नंद नरराई॥

जैसे भोजन का स्वाद शब्दों में नहीं ढल सकता, वैसे ही उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। हे राजन! एकबार संध्या समय किसी कार्य से नन्दरायजी भवन के द्वार पर निकले।

निरखि नीलमनि अति हठ पागे। संग होन उन्ह पाछे लागे॥

बीचहि बरजेहुँ तब महतारी। कान्हँ रुदन करि लागेसि भारी॥

यह देख नीलमणि-सी आभावाले कृष्ण उनके साथ जाने के लिये हठपूर्वक, पीछे हो लिये। यह देखकर मैय्या यशोदा ने उन्हें बीच में ही रोक लिया। तब कन्हैया अत्यधिक रोने लगे।

दोहा- **जननि अनेक जतन करत उन्ह कहँ लागि बुझाइ।**
किंतु स्याम जनि मानेहुँ अधिक अधिक मचलाइ॥३४२॥

अनेक प्रकार के यत्न करते हुए, मैय्या उन्हें समझाने लगी। किन्तु कन्हैया नहीं माने और अधिक-अधिक मचलने लगे।

चौ.- **तब सुत कहँ कौतुक भरमाई। जसुदा तुरत अजिर चलि आई॥**
ऊँच उठाइ ताहि पुनि अंका। देखराएहुँ नभ उदित मयंका॥

तब लल्ला को चकितकर मैय्या तुरन्त ही भवन के आँगन में चली आई। फिर उन्होंने उसे गोद में ही ऊँचा उठाकर, आकाश में उदित हुआ चन्द्रमा दिखलाया (और कहा-)

सुत न रोउ मैं तव बलिहारी। देखु उदित नभ ससि सुखकारी॥
एहि चितवत दृग सीतल होई। इहि तें सुधाकर कहिअत सोई॥

अरे लल्ला! रोओ मत, मैं तुम्हारी बलिहारी जाऊँ। देखो तो आकाश में सुख की राशि चन्द्रमा प्रकट हुआ है। इसे देखने से नेत्र शीतल होते हैं, इसी कारण यह सुधाकर कहलाता है।

तनक न रुरु नत ससि अस कहिही। नंद सुत त नित रोवत रहही॥
तब कन्हँ चकित बिचारन लागे। यह कस फल जे दूर अति लागे॥

तुम तनिक भी रुदन मत करो, अन्यथा चन्द्रमा कहेगा कि नन्दजी का पुत्र तो सदैव रोता ही रहता है। तब चकित हुए कृष्ण विचारने लगे कि यह कैसा फल है, जो बहुत दूर लगा है।

देखन यह त लाग अति नीका। होइहि सरस खाटउँ कि फीका॥
उन्ह चुप लखि जननी अनुरागी। लगे कान्हँ ऐतनेहु ससि माँगी॥

देखने में तो बड़ा सुन्दर जान पड़ता है, किन्तु यह मीठा होगा अथवा खट्टा या फीका होगा? उन्हें चुप हुआ जान मैय्या प्रेम में मग्न हो गई, इतने में ही कन्हैया उनसे चन्द्रमा माँगने लगे।

मैआँ भूख मोहि लगि आई। ससिहि खाउँ मोहि देहुँ मँगाई॥
देहुँ देहुँ लउँ तिन्ह रुचिराई। एहिबिधि कन्हँ पुनि धरि मचलाई॥

वे बोले- हे मैय्या! मुझे भूख लगी है। मैं चन्द्रमा को खाऊँगा, मुझे ला दो। मँगा दो, मँगा दो, मैं उसका स्वाद देखना चाहता हूँ। यह कहकर कन्हैया पुनः हठ करके, मचल उठे।

दोहा- **तब बिचार कर जननि मन हौंही बात बिगारि।**
देखरानेहु ससि खाइबै अब बालक हठ धारि॥३४३॥

तब मैय्या यशोदा मन में विचार करने लगी कि मैंने ही बनी हुई बात बिगाड़ दी, जो इसे चन्द्रमा दिखाया। अब यह बालक चन्द्रमा को खाने के लिये हठ कर रहा है।

चौ.- **कान्हँ चंद्र हित हठकर भारी। कस बुझाउँ अस सोच मथारी॥**
कत न सुना तेहिं खाएहुँ कोऊँ। सब बालकन्ह ख्याल अह सोऊँ॥

कन्हैया चन्द्रमा के लिये बड़ा हठ कर रहे हैं, तब मैय्या ने सोचा- इसे कैसे समझाऊँ? अरे लल्ला! ऐसा तो कहीं नहीं सुना कि उसे किसी ने खाया है, वह तो सब बालकों का खिलौना है।

पुनि सुत तुम तेन्हहि चह खाई। बात असम्भव यह त कन्हाई॥
तेइ देइ प्रतिदिनु माखन मोहिं। दै पावति एहि कारन तोही॥

फिर हे पुत्र! तुम उसे ही खा लेना चाहते हो। अरे कन्हैया! यह बात तो असम्भव है। वही तो प्रतिदिन मुझे माखन देता है और मैं इसी कारण उस माखन को तुम्हें दे पाती हूँ।

अब तुअँ जे तेहिं डारसि खाई। माखन कस दै सकउँ कन्हाई॥
सुत न करहु तुम एहिबिधि आरी। नव माखन मैं धरेउँ निकारी॥

अरे कन्हैया! अब जो तू उसे खा ही डालेगा, तो मैं तुम्हें माखन कैसे दे पाऊँगी? लल्ला! तुम इस प्रकार हठ मत करो। मैंने तुम्हारे लिये ताजा माखन निकालकर रखा हुआ है।

बहुरि मेव मधु भावइ जोई। माँगहु अबहि देउँ मैं सोई॥
रिस परन्तु परिहरहुँ कन्हाई। मोट बपुष न त तोर सुखाई॥

साथ ही मेवा, शहद तुम्हें जो भी अच्छा लगे माँग लो, मैं अभी दे दूँगी। किन्तु कन्हैया तुम इस क्रोध को त्याग दो अन्यथा तुम्हारा यह मोटा शरीर सूख जाएगा।

दोहा- जद्यपि जननि प्रबोधेहुँ नृपति तदपि जनि मान।
बहुरि पटकि गोदहुँ चरन नृप अस कह भगवान॥३४४॥

हे परीक्षित! यद्यपि मैय्या ने कन्हैया को बहुत समझाया फिर भी वे नहीं माने और उनकी गोद में ही चरण पटककर वे भगवान उनसे इस प्रकार कहने लगे।

चौ.- जे तें ख्यालहि तदपि मँगावौ। अंकहि न त मैं अबहि परावौं॥
मकु महि परुँ पै गोद न आवौं। नंदसुतहि बनु तव न कहावौं॥

यदि वह खिलौना है, तब भी मँगा दो, अन्यथा मैं तुम्हारी गोद से अभी भाग जाऊँगा! भले ही भूमि पर लोट जाऊँगा पर तुम्हारी गोद में नहीं आऊँगा। मैं केवल नन्दबाबा का ही पुत्र बनूँगा, तुम्हारा पुत्र नहीं कहलाऊँगा।

नाहिं पीउँ पय धौरिहि केरा। बेनि गुथाउँ न उठौं सबेरा॥
तब सुत कहँ अजिरहि बैठारी। जलपुट एक आन महतारी॥

न धौरी गाय का दूध पीऊँगा, न चोटी गुथवाऊँगा और न ही प्रातः (शीघ्र) उठूँगा। तब परेशान हुई मैय्या ने लल्ला को आँगन में बैठा दिया और जल से भरा एक पात्र ले आई।

पुनि कह चंद आहु मम पासा। धरहुँ सुतहिं अधरन्ह मृदु हासा॥
कान्हँ खेलि चह तुम्हरे संगा। तहि लहिबे इहि केति उमंगा॥

फिर वे बोली- हे चन्द्र! निकट आओ और मेरे लल्ला के अधरों पर मधुर मुस्कान रख दो। कन्हैया तुम्हारे साथ खेलना चाहता है। तनिक देखो तो! तुम्हें पाने के लिये इसे कितनी उमंग है।

तनक न धरिहि तोहि धरनी पर। बसन तोहि पहिरावहि सुन्दर॥
आपु खाइ तहि दैइहि नाना। मधु मेवा माखन पकवाना॥

मेरा लल्ला तुम्हें तनिक भी भूमि पर नहीं धरेगा। तुम्हें सुन्दर वस्त्र पहनायेगा। शहद, मेवा, माखन और अनेक प्रकार के पकवान स्वयं खाकर तुम्हें भी खिलायेगा।

अस कहि जलपुट बिम्ब देखाई। कह लै लै यह इंदु कन्हाई॥
मैं बिहंग एक सरग पठाई। एहि तव सुख हित लीन्ह बोलाई॥

ऐसा कहकर जलपात्र में चन्द्रमा की छाया दिखाकर, मैय्या ने कहा- ले कन्हैया! ले! ये रहा तेरा चन्द्रमा। मैंने एक पक्षि को स्वर्ग में भेजकर वहाँ से तुम्हारे सुख के लिये इसे मँगवा लिया है।

मकु अब गहि एहि खाहुँ कन्हाई। अथवा खेलु ख्याल के नाई॥
झाँकि कठौतिहुँ हरि हरषाने। ससिहि जननि कहँ लाग देखाने॥

अरे लल्ला! अब भले ही तुम इसे पकड़कर खाओ अथवा खिलौने के समान इससे खेलो। तब पात्र में झाँककर मुकुन्द हर्षित हो गए और मैय्या को बिम्बरूपी वह चन्द्रमा दिखाने लगे।

भ्रमबस बिम्बहि चंद्र बिचारी। हरि अजानुभुज गहन पसारी॥
हाथ तामरसु तें परसेहुँ जस। पुट जल बिम्ब सहित मचलेउँ तस॥

फिर भ्रमवश बिम्ब को ही चन्द्र समझकर कृष्ण ने पकड़ने के लिये अपनी लम्बी भुजा बढ़ाई। किन्तु जैसे ही उनके हाथरूपी कमल का स्पर्श पाया; वैसे ही जल सहित वह बिम्ब हिल उठा।

जननि तोहि गनि निज महतारी। नाचहि लखु प्रमुदित जलजारी॥

यह देखकर वे मैय्या से बोले- मैय्या! देखो तो कमलों का यह शत्रु तुम्हें अपनी मैय्या समझकर आनन्दित होकर नाच रहा है।

दोहा- अस कहि हाथ पसारि पुनि हरि तेहिं गहन चहेहुँ।
नीरबंधु पै चंचल जतने कर न परेहुँ॥३४५॥

ऐसा कहकर पुनः अपना हाथ बढ़ाकर बालकृष्ण ने उस चन्द्रमा को पकड़ना चाहा। किन्तु जल का बंधू वह चञ्चल चन्द्रमा यत्न करने पर भी उनके हाथ नहीं आया।

चौ.- पुनि बहु जतने बाल मुकुंदा। कर न परन्तु चढ़ेउँ नभकंदा॥
तब जननिहिं कहि लाग कन्हाई। भ्राताश्रय सम एहि कुटिलाई॥

बालमुकुन्द ने पुनः बहुत-बार प्रयत्न किया; किन्तु आकाश का वह फल उनके हाथ नहीं आया। तब वे मैय्या से कहने लगे कि इस चन्द्रमा की गति भी सर्पों के समान टेढ़ी है।

मैं जाना यह तोहि गनि माई। नाचि प्रमुद निज रहा देखाई॥
किंतु यह त मोहि असुफल पाई। हरषि नाचि मोहि रहा खिझाई॥

मैं समझा कि यह तुम्हें अपनी मैय्या समझकर नाचते हुए आनन्द व्यक्त कर रहा है। किन्तु यह तो मुझे असफल हुआ जानकर हर्ष से नाचते हुए मुझे चिढ़ा रहा है।

मैआँ चिंत करु न उर माहीं। पुनि मैं तनक रुदन करु नाहीं॥
सुनि जसुदा अतिसय हरषानी। पुनि कह तेहिं सुराज निज जानी॥

हे मैय्या! अब तुम मन में चिन्ता मत करो। मैं पुनः जरा भी नहीं रोऊँगा। यह सुनकर मैय्या यशोदा अत्यन्त हर्षित हुई और अपना दाव लगा जानकर वे पुनः कन्हैया से बोली।

बात कहउँ सुत तोहि दुराई। तुम फिरि कहेहुँ न बल समुहाई॥
जब तुअँ बढ़ि जुआन होइ जैहौ। बल तें पहिल तोहि परनैहौं॥

अरे लल्ला! मैं तुम्हें एक बात छिपाकर कहती हूँ, तुम उसे बलदाऊ के सन्मुख न कहना। जब तुम बड़े होकर तरुण हो जाओगे, तब दाऊ से पहले मैं तुम्हारा विवाह करा दूँगी।

दूलहि एक देउँ तोहि आनी। सुनि मोहन तब कह मृदु बानी॥
मैआँ बल तें मैंहि अधिक गुनि। तातें दूलहि मैं लहिहौं दुनि॥

मैं तुम्हें एक दुल्हिन ला दूँगी। यह सुनकर मोहन कोमल वाणी से बोले कि अरी मैय्या! दाऊ से तो मैं अधिक ही गुणवान हूँ, इसलिये दुलहिन भी उससे दूगुनी ही लूँगा।

दोहा- तासु भोरपनु भूमि पर जननिहिं बच जल पाइ।
प्रस्नांकुर अगनित उए पुनि बढ़ि लग अतुराइ॥३४६॥

फिर उसकी अबोधत्वरूपी भूमि पर मैय्या का वचनरूपी जल पाकर प्रश्नों के अनगिनत अङ्कुर उग आए और तीव्रता से बढ़ने लगे।

चौ.- पुनि जननिहिं पूछेहूँ नरनाहा। बढ़न काह पुनि काह बिआहा॥
दुलहिनि काह होत महतारी। सत्य सत्य मोहि तुरत बुझा री॥

हे परीक्षित! फिर कन्हैया ने मैय्या से पूछा- ऐ री मैय्या! यह बड़ा होना क्या होता है और यह विवाह क्या होता है? हे मैय्या! यह दुल्हन क्या होती है, मुझे तुरन्त सच-सच समझा।

जननि कहति कछु कन्हँ कहँ जब लौ। लाग कान्हँ कहि अस पुनि तब लौ॥
बलहि न मैं यह बात बतावौं। तातहि कहि मोहि दुलहि हिसावौ॥

फिर मैय्या कन्हैया को कुछ कह पाती इससे पहले ही कन्हैया मैय्या यशोदाजी से कहने लगे कि मैं दाऊ को यह बात नहीं बताऊँगा। तुम बाबा से कहकर मुझे दुल्हिन दिला दो।

सारहुँ मातु बात मम ऐती। पुरवहुँ मैं आयसु तव जेती॥
अब तें प्रतिदिनु मैं बन जाई। तव सुबिधा करुँ काठ जुड़ाई॥

हे मैय्या! मेरी इतनी बात पूरी कर दो। फिर मैं तुम्हारी जितनी भी आज्ञाएँ होंगी, उन्हें पूरा करूँगा। अब से नित्य वन जाकर, लकड़ियाँ लाकर तुम्हारे लिये सुविधा कर दिया करूँगा।

तुअ जहँ कहबि तहाँ बठि जावौं। रुदन करौं जनि उधम मचावौं॥
बिपिन माँझ तव गाइ चरावौं। बहुरि काज सब तोर सरावौं॥

री मैय्या! तुम जहाँ कहोगी, मैं वहीं बैठूँगा; न रोऊँगा और न ही कोई उत्पात मचाऊँगा। वन जाकर तुम्हारी गायें चराऊँगा और साथ-ही तुम्हारे सब कार्य भी कर दिया करूँगा।

दोहा- पनघट तें जल आनउँ सिरु धरि दुइ दुइ माँट।
चरन चाँपि नाचब समुख तैं देखेसु बठि खाट॥३४७॥

सिर पर दो-दो मटकियाँ रखकर मैं तुम्हारे लिये जल भर लाया करूँगा। तुम्हारे चरण दबाऊँगा, तुम्हारे सन्मुख नाचुँगा भी और तुम केवल खटिया पर बैठकर देखा करना।

चौ.- तनक न होन देउँ तोहि क्लेसा। अब कहु लारि बसहि केहि देसा॥
जे जनाहुँ तुम एहि सव जाई। दुरि दुलहिनि मैं लाउँ उठाई॥

मैं तुम्हें तनिक भी कष्ट नहीं होने दूँगा; अब तुम मुझे बताओ कि दुल्हिन किस देश में निवास करती है? जो यदि तुम मुझे बता दो; तो मैं इसी समय जाकर छिपते-छिपाते उसे उठा लाऊँ।

एहिं तें होब न श्रम कछु तोरे। फरिहि आपु पुनि मनरथ मोरे॥
समुझि सुतहि जिग्यासा भारी। प्रथम त जसुदा भई सुखारी॥

इससे तुम्हें तनिक भी कष्ट नहीं होगा और मेरा मनोरथ भी अपने-आप पूरा हो जाएगा। अपने पुत्र की इस प्रकार की जिज्ञासा को समझकर पहले तो मैय्या यशोदा अत्यन्त सुखी हुई।

पाछ बिहँसि कह तेहिं उर लाई। कान्हँ मैं त तोहि रहि बहिलाई॥
एहि सव तुम जनि ब्याहन जोगा। हँसिहि तोहि जब सुनिहहि लोगा॥

फिर हँसते हुए कन्हैया को हृदय से लगाकर, उन्होंने कहा- अरे कन्हैया! मैं तो तुम्हें बहला रही थी। तुम इस समय ब्याह के योग्य नहीं हो। जब लोग यह सुनेंगे तो तुम्हें हँसेंगे।

अस सुनतहि हरि मृदु रिस पागे। हठ करि कहि लग धीरजु त्यागे॥
मैं त ब्याह करु जननि इहि समउँ। नतरु जल न गहुँ अरु जनि जवऊँ॥

यह सुनते-ही कन्हैया मधुर क्रोध में भरकर तोतली भाषा में मैय्या को खरी-खरी सुनाने लगे। अरे मैय्या! मैं तो इसी समय विवाह करूँगा, अन्यथा न जल पीऊँगा और न भोजन करूँगा।

तैं मोहि गनि बालक नादाना। बिबिध लोभ दइ अति डहकाना॥
नृपति बालहठ हरि पुनि ठाना। देखि मातु पछिताति महाना॥

तुमने मुझे अज्ञानी बालक समझ अनेक लोभ देकर बहुत अधिक ललचाया। हे परिक्षित! यह कहते हुए भगवान ने पुनः बालहठ ठान लिया। यह देखकर मैय्या अत्यधिक पछताने लगी।

हाँ री माइ काह मैं कीन्हा। कर पाहन हठि पग पर लीन्हा॥
सीस धुने अब होइहि का री। आपुहि सँवरी बात बिगारी॥

वे स्वयं से बोली- हा री मैय्या! यह मैंने क्या कर दिया? हाथ का पत्थर हठ करके, पैरों पर पटक लिया। री यशोदा! अब सिर धुनकर क्या होगा? बनी बात तो तूने स्वयं ही बिगाड़ ली।

दोहा- जब मानेहुँ सुत हरष बस तिन्ह बिआह कइ बात।
मैंहि कीन्हि तेहिं दीन्ह दुख हा तिय कत न समात॥३४८॥

वे फिर बोली-जब लल्ला मान गया था, तब हर्ष के मारे उसके ब्याह की बात मैंने ही छेड़ दी और उसे दुःख दे दिया। हा री स्त्री! तू कहीं भी नहीं समाती।

चौ.- एहि प्रकार करि निज सन बाता। नृप पछिताइ लागि अति माता॥
अकसर एक बिप्र ब्रज आवा। नंदद्वार सन अलख जगावा॥

हे परीक्षित! इस प्रकार स्वयं से ही बाते करते हुए मैय्या यशोदा अत्यधिक पछताई। एक बार एक ब्राह्मण गोकुल में आया और उसने नन्द के द्वार पर अलख जगाया।

जसुमति तब द्विज इच्छा चीन्ही। पाक बस्तु सादर उन्ह दीन्ही॥

बिप्र सरस तब खीर बनाई। धरि नबेद हेरेहुँ जगसाँई॥

तब यशोदाजी ने ब्राह्मण की इच्छा देख उसे आदर से रसोई के लिये सामग्री दी। तब विप्र ने रुचिकर खीर बनाई और नैवेद्य के रूप में रखकर, उसने जगत्पति भगवान का स्मरण किया।

नयन मूँदि पुनि करि लग ध्याना। अस बिलोकि बिहँसे भगवाना॥
पुनि आतुर तेहिं पास सिधाए। खीरपान करि लग मुसुकाए॥

फिर वह नेत्र बन्द करके, ध्यान करने लगा; यह देख बालमुकुन्द मुस्कुराए। वे उतावली से उस ब्राह्मण के सन्मुख गए और नैवेद्य के रूप में रखी हुई खीर पीकर मुस्कुराने लगे।

लखि द्विज कह जसुमतिहि बोलाई। नटखट तनय तोर री माई॥
जब मैं हरि हित भोग लगावा। यह बालक अवचट तेहिं खावा॥

यह देख ब्राह्मण यशोदाजी को बुलाकर कहने लगा- री मैय्या! तेरा लल्ला बड़ा नटखट हैं। जब मैंने खीर बनाकर भगवान को भोग लगाया, तो यह बालक अचानक उस खीर को खा गया।

जसुदा हबि असुद्ध अब यह भइ। सामुहि तातें देहुँ मोहि नइ॥

हे यशोदा! यह खीर अब अशुद्ध हो गई है, इसलिये तुम मुझे नई सामग्री लाकर दो।

दोहा- **तीनि बार एहिंभाँति द्विज हबि करि धरेहुँ नबेद।**
किन्तु कान्हँ गहि बार प्रति भयउँ बिप्र हिय खेद॥३४९॥

उस ब्राह्मण ने तीन बार इसी प्रकार खीर बनाकर भगवान श्रीहरि के सन्मुख नैवेद्य के रूप में रखी। किन्तु कन्हैया हर बार उसे खा गए। यह देखकर ब्राह्मण के हृदयँ में खेद हुआ।

चौ.- **जसुमति कान्हहि बहुत बुझावा। लल्ला किउँ अस उधम मचावा॥**
मैं बहु बार सामुही दीन्हीं। तुम प्रति बार अपावन कीन्ही॥

यशोदाजी ने कन्हैया को बहुत समझाया कि लल्ला तुमने ऐसा उत्पात क्यों मचाया? मैंने ब्राह्मण को बहुत-बार भोजन सामग्री दी, किन्तु तुमने प्रत्येक बार उसे अपवित्र कर दिया।

सुनत सकुच कछु नाक सकोरी। कान्हँ कहा कछु मोर न खोरी॥
द्विजहि मोहि प्रति बार बोलावहि। गहुँ नबेद तब आँखि देखावहि॥

यह सुनकर संकोच से कुछ नाक सिकोड़ते हुए कन्हैया ने कहा कि इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। यह ब्राह्मण ही मुझे हर बार बुलाता है और जब मैं नैवेद्य को खाता हूँ तब आँखे दिखाता है।

सुनि सुत बचन जननि अचरानी। तब तपबल द्विज गै सब जानी॥
भजत रहा मैं जेहिं दिनुराता। समुख भए अज सोइ सुखदाता॥

लल्ला के वचन सुन मैय्या आश्चर्य में पड़ गई। किन्तु विप्रदेव तपोबल से सारा भेद जान गये। वे सोचने लगे- मैं दिनरात जिन्हें भजता रहा, वे प्रभु आज मेरे सन्मुख आ गए,

भ्रमबस किन्तु न मैं पहिचाना। अस बिचारि लग तें पछिताना॥
प्रगट कहेहुँ पुनि सुनु कल्यानी। तनक न हृदयँ करहु तुम ग्लानी॥

किन्तु मैं भ्रमवश उन्हें पहचान न सका। इस प्रकार सिर धुनकर वे विप्र पछताने लगे। फिर वह प्रकटरूप में बोला- हे कल्याणी! तुम अपने हृदयँ में तनिक भी दुःख न मानो।

सिसुही होत सरिस भगवाना। तातें मैं न अहित कछु माना॥

क्योंकि बालक भी भगवान के समान होता है। इसलिये मैंने कुछ भी बुरा नहीं माना।

दोहा- **कीन्हि मनहिं मन अस्तुति तदुप बिप्र सिरु नाइ।**
प्रमुदित भोजन लाग करि कान्हँ निकट मुसुकाइ॥३५०॥

तदुपरान्त ब्राह्मण ने सिर नवाकर मन ही मन भगवान बालकृष्ण की स्तुति की। फिर वे बड़े आनन्द से भोजन करने लगे। उस समय कन्हैया उनके निकट बैठै मुस्कुरा रहे थे।

चौ.- **लखि सिसु चरित सुतहि एहिंभाँती। जननि स्वमुख निज भाग सिहाती॥**
परिछित कथा सुनहु अब आगे। जिन्हँ सुनि मीचु प्रेत भय भागे॥

लल्ला के ऐसे बालचरित्र देख मैय्या अपने मुख से अपने भाग्य को सराहने लगी। हे परीक्षित! अब आप आगे की कथा सुनिये, जिससे मृत्युरूपी प्रेत का भय भाग जाता है।

एक दिनु जननि भए भिनुसारा। गइ पनघट गहि केड़ कुमारा॥
तहँ अवलोकि सघन तरु छाई। तेन्ह कान्हँ कहँ दीन्ह बैठाई॥

एक दिन प्रभात होने पर मैय्या यशोदा कन्हैया को अपनी कमर पर बैठाकर पनघट पर गई। फिर वहाँ वृक्ष की सघन छाया देखकर उन्होंने कन्हैया को वहाँ बैठा दिया।

तदुप करत भइ तें असनाना। प्रभु कहँ निरखि धरनि सुख माना॥
ममहि बिनय जगपति अवतारे। मैं अब लौ जनि चरन पखारे॥

तदुपरान्त वे स्नान करने लगी। इधर बालमुकुन्द को देखकर पृथ्वी ने सुख माना। वे सोचने लगी- मेरी ही प्रार्थना पर प्रभु अवतरित हुए और मैंने अब तक उनके चरण नहीं पखारे।

बीते जुग मम लोचन तरसे। बर अवसर पद पंकज परसे॥
अस बिचारि पुनि पुनि हरषाई। धरनि मातु तब तिय तनु आई॥

नेत्रों को तरसते कई युग बीत गए। भगवान के चरणकमलों के स्पर्श का यह बड़ा उत्तम अवसर है। ऐसा विचारकर और बार-बार हर्षित होकर पृथ्वी स्त्री का रूप धरे प्रकट हुई।

दोहा- **जोइ चरन रज ब्रह्म सिव जतनें सहज न पाव।**
सोइ मोहि गृह बसत दइ प्रभु गुन कहे न आव॥३५१॥

उन्होंने विचार किया कि ब्रह्मा और शिवजी प्रयत्न करके, भी जिस चरणरज को सहजता से प्राप्त नहीं कर पाते। प्रभु ने मुझे वहीं रज घर बैठे दे दी। प्रभु के गुण कहे नहीं जा सकते।

चौ.- **जेहिं आपन गोपुर कर नीचे। अज हर बिबुधादिक पुर सींचे॥**
भ्रुव बिलास पारस परसाई। अमरावति जेहिं सून्य बसाई॥

जिन्होंने अपने गोलोक के नीचे ब्रह्मा, शिव और देवताओं आदि के लोकों का सृजन किया है। जिन्होंने भृकुटीविलासरूपी पारस का स्पर्श कराकर आकाश में अमरावती बसाई।

जेहिं बहुबार अनेक सरीरा। मर्दे अघ प्रतीक रनधीरा॥

जासु भजन प्रमुदित रह संता। बन्दउ सादर उन्ह भगवंता॥

जिन्होंने बहुत बार अनेक शरीर धरकर, 'पाप प्रतीक' बहुत-से योद्धाओं को मारा और संत जिनके भजन में निरन्तर परमानन्दमग्न रहते हैं, मैं सादर उन भगवान की वन्दना करती हूँ।

अज सोइ कंस ससिहि कर राहू। अए देन मोहि जीवन लाहू॥
बन्दउ पद अंबुज धरि माथा। मोपर करिअ कृपा जगनाथा॥

आज कंसरूपी चन्द्र के लिये राहुरूप, वे भगवान मुझे जीवन का लाभ देने आए हैं। हे प्रभु! मैं आपके चरणकमलों पर सिर रखकर आपकी वन्दना करती हूँ; हे जगत्पति! कृपा कीजिये।

परम प्रेम हबि बिप्र समरपी। तसहिं अर्पि चहुँ प्रभु कछु मैंपी॥
पै गरीब मैं पुनि भगवाना। गरिबनिवाज तुम्ह सम न आना॥

जैसे विप्र ने प्रेम सहित आपको खीर समर्पित की थी, वैसे ही मैं भी आपको कुछ अर्पित करना चाहती हूँ। किन्तु मैं दीन हूँ और प्रभु के समान दीनों का बन्धु कोई और नहीं है।

एहि समउ मम अंचल माहीं। रज यह निरस आन कछु नाहीं॥
तुमहि जनाउ लच्छिसिरताजू। देउ नबेद कवन तोहि आजू॥

इस समय मेरे आँचल में केवल यह नीरस मिट्टी ही है, दूसरा कुछ नहीं। हे महालक्ष्मी के पति! आप ही बताइए, मैं आपको नैवेद्य के रूप में क्या दूँ?

लखि दीनता भुविहि मुसुकाई। एहिभाँति कहि लाग कन्हाई॥
बिमल ग्यान जिन्हँ सपनेहु नाहीं। मति संतत जिन्हँ कलिमल माहीं॥

पृथ्वी की इस दीनता को देखकर श्रीकृष्ण मुस्कुराए और इस प्रकार कहने लगे- जिन्हें स्वप्न में भी निर्मल ज्ञान नहीं है और जिनकी बुद्धि निरन्तर कलि के विकारों से ग्रस्त हैं।

तेइ अधम आपन अग्याना। गनहिं भगति कहँ जिनिस समाना॥
किन्तु तुम त निरमल रस केरी। भगतिगंग सुखखान घनेरी॥

वे अधम ही अपने अज्ञान में भक्ति को वस्तु के समान गिनते हैं। किन्तु तुम तो निर्मल प्रेम की महान सुख की खान भक्तिगङ्गा हो।

तवहि भगतिबस धरि अवतारा। आउँ धाइ मैं बारहि बारा॥
उजवल गोपय फेन समाना। बिदित मोहि तव नेह महाना॥

तुम्हारी ही भक्ति के वश अवतार लेकर मैं बार-बार दौड़ा आता हूँ। गाय के दूध के फेन के समान तुम्हारा उज्जवल और महान प्रेम मुझे भलिभाँति विदित है।

मैं बसबर्ति न कलि कर फंदा। मोहि अमल रस देत अनंदा॥

मैं कलि के प्रपञ्चों के वश नहीं हूँ। मुझे तो केवल निर्मल प्रेम ही आनन्दित करता है।

छन्द- **आनंददायक मोहि भगति सोइ अमल रस मंडित जही।**
घट सोम कर मोहि तुच्छ लग अति भगति रस सनमुख मही॥
मृतिका महारसपूर तव मोहि धेनु कर माखन सऊँ।
सो भोग एहि कर करउँ हरि बोले बचन महि अनुसऊ॥

मुझे वही भक्ति आनन्दित करती है, जो निर्मल प्रेम से पूर्ण हो। हे पृथ्वी! भक्ति व प्रेम के सन्मुख मुझे अमृत के घड़े भी अत्यन्त तुच्छ लगते हैं। तुम्हारी मिट्टी ही मेरे लिये व्रज की गायों के माखन के तुल्य महारस से पूर्ण है। अतः मैं इसे ही ग्रहण करता हूँ, इस प्रकार श्रीहरि पृथ्वी के अनुकूल वचन बोले।

सो.- गाँठि उठाइ उठाइ पुनि सप्रेम गहि लाग प्रभु।
चली चखन्ह उमगाइ निरखि धरनि कइ अमल रति॥॥

तदुपरान्त भगवान बालकृष्ण मिट्टी की छोटी-छोटी गोलियाँ उठा-उठाकर बड़े प्रेम से खाने लगे। यह देखकर पृथ्वी का निर्मल प्रेम उसके नेत्रों से उमड़ चला।

रसनिधान कइ आहि भूप प्रीति कइ रीति एहिं।
फिरि धरि निज हिय माहिं बंदि जेहिं सादर धरनि॥॥

हे परीक्षित! प्रेम के धाम भगवान श्रीहरि के प्रेम की यही रीति है, जिसे सादर नमन करके, हृदय में धारण कर पृथ्वी लौट गई।

चौ.- कन्हँ कहँ माटि खात जब देखा। गोपिन्हँ हिय भा सोच बिसेषा॥
तब सब गवनि जसोमति पासा। पुनि सुनाइ उन्ह सब मिलि भाषा॥

इधर जब कुछ गोपियों ने कन्हैया को माटी खाते देखा, तो उनके मन में बड़ी चिन्ता हुई। तब वे सब मिलकर यशोदाजी के पास गई और उन्हें सुनाते हुए उन सबने कहा-

नंदरानि सुत तव अति खोटा। मृदा खात तउँ आँखिन्ह ओटा॥
हम देखेहुँ तुम तरु तर ताहीं। बैठारत लागिसि जस न्हाहीं॥

अरी नन्दरानी! तुम्हारा लल्ला तो बड़ा ही खोटा है। ये तुम्हारी दृष्टि से बचकर, मिट्टी खाता है। हमने देखा कि तुम उसे वृक्ष के नीचे बैठाकर जैसे ही नहाने लगी,

तसहि तें दूरि जाइ लखि सूना। पाइ सुराज फुरेहुँ हिय दूना॥
पुनि गहि लाग ढेप कर ढेपा। मनहुँ महोदर मोदकु खेपा॥

वैसे ही दूर जाकर और सूना देख, उत्तम अवसर पाया हुआ यह मन में दूना हर्षित हुआ। ढेले पर ढेले मिट्टी खाने लगा, मानों लम्बोदर गणेशजी मोदक की खेप खा रहे हो।

हम जानइ तिन्ह चपल सुभाऊ। किंतु चतुर जस चलि लखि पाऊ॥
जद्यपि बरजेहुँ बहुत प्रकारा। तदपि न लट तें निज ब्यवहारा॥

हम उसके चञ्चल स्वभाव को जानती है, किन्तु वह चतुर कितना है। यह तुम स्वयं चलकर देख लो। यद्यपि हमनें उसे बहुत प्रकार से रोका, फिर भी वह अपने व्यवहार से नहीं मुड़ा।

दोहा- अस सुनि चिंतातुर जननि भई सोचबस भारि।
यह कुटैउ कस कन्हँ प्रकृति मम देखत पइसारि॥३५२॥

यह सुनकर चिन्तित हुई मैय्या यशोदा महन सोच के वश हो गई। (वे सोचने लगी कि) मेरे देखने के उपरान्त भी कन्हैया के स्वभाव में यह बुरी आदत कैसे आ गई?

चौ.- **पुनि कह जननि तनय पहि जाई। लल्ला तैं किउँ छारी खाई॥**
नवलख सुरभि अजिर रह छाई। जिन्हँ दधि कमु न कोटि तुम्ह नाई॥

फिर मैय्या यशोदा ने जाकर कन्हैया से कहा- अरे लल्ला! तूने मिट्टी क्यों खाई? हमारे आँगन में नौ लाख गायें बँधी रहती हैं, जिनका दहीं तुम जैसे करोड़ों बालकों के लिये भी कम नहीं।

तब केहि कारन खाइसि माटी। जननि लागि एहिबिधि उन्ह डाँटी॥
तब कौतुकि प्रभु डरपन्ह लागे। जस सभीत ससि राहू आगे॥

तब तुमने मिट्टी किस कारण खाई; इस प्रकार मैय्या उन बालमुकुन्द को डाँटने लगी। यह देख कौतुकप्रिय प्रभु डरने लगे, जैसे; राहू के सन्मुख चन्द्रमा भयभीत हो जाता है।

नाक सकोरि कहेहुँ पुनि स्यामा। जननि तुअँपि भइ मम प्रति बामा॥
गोपिन्हँ बैर मोर प्रति साधा। सिसु परन्तु मैं गत अपराधा॥

श्यामसुन्दर ने नाक सिकोड़कर मैय्या से कहा- अरी मैय्या! तू भी मेरे लिये विपरीत हो गई। गोपियों ने तो मेरे प्रति शत्रुता ठान रखी है; किन्तु मैं एक निरपराध बालक हूँ।

साँचि बात मम झूठ न लेसा। तोहि कुपित लखि मोहि कलेसा॥
गतदिनु इत मैं खेलन आयौ। तब इन्ह मिलि मोहि बहुत पजायौ॥

अरी मैय्या! मेरी बात सत्य है पर तुम्हें कुपित देखकर मुझे बहुत कष्ट होता है। कल मैं इधर खेलने के लिये आ निकला था। तब इन सबने मिलकर मुझे बहुत पीटा था।

तेहिं सव सून रहेउ अकेला। बिनु प्रतिकार कोप इन्ह झेला॥

उस समय सूने में मैं अकेला था, इसलिये बिना किसी विरोध के मैंने इनका क्रोध सहा।

दोहा- **यह प्रपंच सब इन्हहि कृत जुगुति किए ए आइ।**
श्रवन फूँकि एहि भाँति तउँ ऐ चह मुअ पजुआइ॥३५३॥

यह सब इन गोपियों का ही षड्यंत्र हैं, ये सब योजना बनाकर यहाँ आई है। इस प्रकार से मेरे विरुद्ध तुम्हारे कान फूँक कर ये सब मुझे तुमसे पिटवाना चाहती है।

चौ.- **प्रथम त हठि हरि मम दधि खावा। तापर चख देखाइ धमकावा॥**

कहा तोहि कहिबे मैं ज्योंही। कूचि कपोल कहा इन्हँ त्योंही॥

पहले तो इन्होंने बलपूर्वक मेरा दहीं छीनकर खा लिया; उस पर आँखें दिखाकर धमकाया भी और मैंने ज्यों-ही तुम्हें कह देनें के लिये कहा, त्यों-ही इन्होंने मेरे कपोल कुचलकर कहा कि

एक बार जनि कहु सय बारा। मानिहिं नहिं सो आँधरि नारा॥
सुनत गोपि अस होत अवाकी। लगी एक दूजन्हि मुख ताकी॥

एक बार नहीं सौ बार कह देना, वह अन्धी स्त्री तुम्हारी बात नहीं मानेगी। यह सुनते-ही सब गोपियाँ अवाक् रह गई और एक-दूसरे का मुँह देखने लगी।

पुनि हरि कह इन्ह कीन्हि अनीती। बहुरि तुअँपि परि इन्हहि प्रतीती॥
देत मोहि रज एहि सिखावहि। कान्हँ माटि गुनि बपुष बढ़ावहि॥

कृष्ण ने पुनः कहा- इन्होंने अनीति की है और मैय्या! तुम भी इनकी बातों में आ गई हो। मुझे मिट्टी देते हुए यही सिखाती है कि मिट्टी गुणकारी होती है, जो शरीर को मोटा करती है।

तदपि न मैं इन्ह मत ब्यौहारा। तातें इहँ इन्ह बयर सँभारा॥
मैं इन्ह कपट थाह अब पाई। देखि चहै मम होत पजाई॥

फिर भी मैंने इनकी बात नहीं मानी। इसलिये इन्होंने यहाँ आकर बैर सँभाला है। अब मैंने इनके कपट की थाह पा ली है, ये सब मेरी पिटाई होते देखना चाहती हैं।

एहिबिधि नागर प्रपंच रचना। गढ़ि गढ़ि गोपि बिमुख कह बचना॥
सुनि कह जननि खाइ जनि माटी। तब देखाहुँ निज मुख उदघाटी॥

इस प्रकार बखेड़े खड़े करने में निपुण वे नटखट बना-बनाकर गोपियों के विरुद्ध वचन कह रहे हैं। जिसे सुन मैय्या ने कहा- यदि तुमने मिट्टी नहीं खाई तो अपना मुख खोलकर दिखाओ।

दोहा- **नृप तब धरि चख मकर सम अनृत खारजुत बारि।**
रुदन स्वाँग करि लाग प्रभु संकट समुख बिचारि॥३५४॥ (क)

हे परीक्षित! तब सन्मुख सङ्कट आ गया है, ऐसा विचारकर अपने नेत्रों में मगरमच्छ के समान कपटरूपी खारेपन से युक्त जल भरकर भगवान बालकृष्ण रोने का ढोंग करने लगे।

कान्हँ मुखरता चतुरपनु निरखि ग्वालि चकराइ।
उन्हपि कहेहुँ जे गहि न रज मुख निज देहु देखाइ॥३५४॥ (ख)

इधर कन्हैया की ऐसी वाक्पटुता और चतुराई देखकर ग्वालिनें चकरा गई। तब उन्होंने भी कहा कि यदि तुमने मिट्टी नहीं खाई है तो अपना मुख खोलकर दिखा दो।

चौ.- **मेटन तब उन्ह मोह अपारा। नारायन निज बदनु पसारा॥**
कान्हँ जसहि निज आनन खोला। लखि कौतुक जननिहिं मनु डोला॥

तब उनका अपार मोह मिटाने के लिये, उन नारायण ने मुख फैलाया। कन्हैया ने जैसे ही मुख खोला, वैसे ही उनके मुख में हो रहा कौतुक देखकर मैय्या का हृदय भयभीत हो उठा।

तेहिं सवँ सुत मुख जननि निहारा। द्वीप सप्त महिधर बिस्तारा॥
चौदह भुवन सहित ब्रह्मंडा। सुर अरु असुर लखे बरिबंडा॥

उस समय मैय्या ने अपने लल्ला के मुख में सातों-द्वीप व पर्वतों का विस्तार देखा। चौदहों-भुवनों सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, देवतागण और बड़े-बड़े बलवान दैत्यों को भी देखा।

सरिता नद्य सरोवर नाना। सहित बिलोके जलधि महाना॥
ब्रज समेत मुख आपुहि देखी। भयउँ जननि उर सोच बिसेषी॥

नदियाँ, नद्य व अनेक सरोवरों के साथ महासमुद्र भी देखे। फिर व्रज के साथ-साथ स्वयं को भी कन्हैया के मुख में स्थित देख मैय्या यशोदा के हृदय में विशेष भय उत्पन्न हो गया।

पुनि बिराट बपु हरि कर हेरी। जननि भयातुर भई घनेरी॥
बूझि न होइ रहेउ यह काहा। सत्य कि भ्रम यह मोर अगाहा॥

फिर भगवान के विराट रूप का स्मरणकर मैय्या भय से अत्यन्त आतुर हो उठी। वे समझ नहीं पाई कि यह क्या हो रहा है? वे सोचने लगी कि जो देखा, वह सत्य है या मेरा गम्भीर भ्रम!

दोहा- **एतनेहुँ सिरजन अरु प्रलय हरि देखरावा मातु।**
हहरि बाँधि चख बैठि तब मनहुँ ग्रस्त खल वातु॥३५५॥

इतनें में ही भगवान श्रीकृष्ण ने मैय्या को सृजन और प्रलय का दृश्य दिखलाया। तब वे घबराकर अपने नेत्र बन्द करके, भूमि पर बैठ गई, मानों दुष्ट वायु से ग्रस्त हो गई हों।

चौ.- **पुनि बिचार करि लागेसि माता। सिसु मुख यह का कौतुक जाता॥**
ए केउ अवसि अनिष्ट अपारा। जे मम तनय मुखहुँ पइसारा॥

वे मैय्या पुनः विचार करने लगी कि मेरे बालक के मुख में यह क्या कौतुक हो रहा है? अवश्य ही ये कोई महान अनिष्ट है, जो मेरे पुत्र के मुख में प्रविष्ट हो गया है!

अब धौं काह होइ भगवाना। सुत सिरु संकट चढ़ेहुँ महाना॥
हरि जब जननिहिं बिकल निहारी। दीन्ह दरस धरि बपु भुजचारी॥

हे भगवान! अब क्या होगा? मेरे पुत्र के सिर पर महान सङ्कट चढ़ गया है। जब श्रीकृष्ण ने मैय्या को व्याकुल होते देखा, तो उन्होंने चतुर्भुज स्वरूप धारण करके, उन्हें दर्शन दिया।

सत्य रूप एहि भाँति देखाई। प्रभु बिमोह उन्ह दीन्ह मेटाई॥
तदुप सुरति उन्ह सब उचटाई। सिसु तनु समुख लाग मुसुकाई॥

इस प्रकार अपने वास्तविक रूप का दर्शन कराकर, भगवान ने उनके महामोह को हर लिया। तदुपरान्त उन्होंने उनकी स्मृति हर ली और बालरूप धरकर सन्मुख मुस्कुरानें लगे।

बिकल मातु तब तेहिं उर लावा। पुलक सरीर नयन जल छावा॥
दधि नवनीत सरस सुत त्यागे। मृतिकहुँ ब्यरथ तोर मनु लागे॥

तब व्याकुल मैय्या ने उन्हें हृदय से लगा लिया। उनका शरीर पुलकित व नेत्रों में जल भर आया। (वे बोली-) अरे लल्ला! स्वादिष्ट दही माखन छोड़कर तुमने व्यर्थ ही मिट्टी में मन लगाया।

बिहँसि स्याम उन्हँ कहा बुझाई। अह अनंत महि रज प्रभुताई॥
एहिं गिरि पादप सर नद बागा। मम हित बसहि परम अनुरागा॥

तब मुस्कुराते हुए कन्हैया ने उन्हे समझाकर कहा- मैया! भूमि की इस रज की महिमा अनन्त है। इसके पर्वतों, वृक्षों, सरवरों, नद्यों और उपवनों में मेरे प्रति अपार प्रेम बसता है।

दोहा- उदित होत जिन्हँ पुन्यरबि एहि सो जन परसाइ।
बसत प्रान मम इन्हहि रज ये मम उर निअराइ॥३५६॥

जिनके सत्कर्मों का सूर्य उदित होता है, वही मनुष्य इसका स्पर्श पाता है। इसकी रज में ही मेरे प्राण बसते हैं और ये मेरे हृदय के निकट है।

चौ.- सुनि अस परम गूढ़ सुत बानी। माय बस्य जननी अचरानी॥
पुनि भइ बार मनहि अस लाई। फिरि घर सुत कहँ गोद उठाई॥

पुत्र की ऐसी अत्यन्त रहस्यमयी बातें सुनकर माया के वश हुई माता चकित हो गई और फिर विलम्ब हो गया ऐसा जी में जानकर कन्हैया को गोद में उठाकर अपने भवन लौट आई।

परिछित जस जस बढ़ दुहुँ बीरा। होत लरकपनु तेन्ह गभीरा॥
खेलत इत उत चर चपलाई। गाउ बहिज सरि तट निअराई॥

हे परीक्षित! वे दोनों भाई जैसे-जैसे बड़े होते हैं, वैसे-ही वैसे उनका लड़कपन भी और बढ़ता जाता है। वे अपनी चपलता से गोकुल के बाहर यमुना-तट पर यहाँ-वहाँ खेलते हैं।

बरजै मातु रहत जनि दोई। अस बिलोकि उन्ह भय अति होई॥
फिरत बिपिन हिंसक पसु नाना। पुनि दोउ कहै न लावत काना॥

मैय्या उन्हें रोकती है, किन्तु वे नहीं रुकते यह देखकर मैय्या को अत्यधिक भय होता है। वन में अनेक प्रकार के हिंसक पशु घूमते रहते हैं और वे दोनों उनके कहे पर कान नहीं देते।

बिकल जननि तब एक दिनु हारी। एहि भाँति हिय लागि बिचारी॥
करौं जतन अब मैं सोइ जाहीं। किए जाइ सक दुहुँ कत नाहीं॥

तब माता एक दिन व्याकुल होकर और हारकर इस प्रकार अपने हृदय में विचार करने लगी कि मैं अब वह यत्न करूँ; जिससे ये दोनों कहीं पर भी जा न सके।

तब उन्ह मूरति एक निरवाई। चितवत लाग जे अति भयदाई॥
गृहगत निकट बिटप एक चाखी। तेहिं तर उन्हँ सो मूरति राखी॥

तब उन्होंने एक मूर्ति बनवाई जो देखने में अत्यधिक डरावनी थी। फिर घर से बाहर एक वृक्ष देखकर मैय्या ने वह मूर्ति उसके नीचे रखवा दी।

उभन्ह कह पुनि निकट बोलाए। सुनु सुत बच मम कान लगाए॥
घर तजि खेलन दूर न जाऊ। गाँउ निकट दुरि फिर बहु हाऊ॥

फिर उन्होंने दोनों बालकों को निकट बुलाकर कहा- हे पुत्रों! मेरी बात ध्यान से सुनो। तुम घर से अधिक दूर खेलने न जाया करो, क्योंकि गाँव के निकट बहुत से हाऊ घूमते रहते हैं।

दोहा- बपुष बिसाल बिकट वदन तीछ दसन बहु घोर।
सिसु अकेल कत पाव जे गहि लै जइ निज ठौर॥३५७॥

उनका शरीर विशाल व मुख बहुत ही विकट होता है। उनके दाँत पैने और अत्यन्त भयानक होते हैं। वे जहाँ कहीं बालकों को पाते हैं; उन्हें पकड़कर अपने घर ले जाते हैं।

चौ.- नखन्ह बिदारि बहुरि तिन्ह खावहिं। तिन्हँ कर परै सो छूट न पावहिं॥
तातें घर बाहेर जनि जाऊ। काटि खाहिं न त उभयन्हँ हाऊ॥

नखों से विदीर्ण करके, वे उन्हें खा जाते हैं। जो भी उनके हाथों में पड़ता है वह बच नहीं पाता। इसलिये तुम दोनों घर से बाहर मत जाना, नहीं तो तुम्हें हाऊ काट खायेगा।

बहुरि तेन्ह आपुनु सँग हाँकी। गइ सोउ थल जहँ मूरति राखी॥
जातहि सैन देखाएसि हाऊ। यह सोइ बालकारि कन्हँ दाऊ॥

फिर उन्हें साथ लेकर, मैय्या वहाँ गई, जहाँ मूर्ति रखवाई थी। जाते ही उन्होंने सङ्केत से हाऊ दिखाकर कन्हैया और दाऊ से कहा- यहीं वह हाऊ है, जो बालकों का शत्रु है।

तब तेहिं देखि उभय अचराने। हरषि जननि डरपत उन्ह जाने॥
तदुप जननि फिरि करि उन्ह आगे। आइ अजिर दुहुँ खेलन लागे॥

तब हाऊ को देख दोनों चकित हुए, उन्हें डरते हुए देख मैय्या प्रसन्न हो गई। तदुपरान्त उन्हें आगे करके, वे पुनः भवन लौट आईं; तब दोनों भाई आँगन में खेलने लगे।

तेहिं सवँ पूछा बलहि कन्हाई। पूरब हाउ लख्यो नहिं भाई॥
यह अचंभ महि कब तें आवा। मैं जेहिं अब लौ बूझि न पावा॥

उस समय कन्हैया ने दाऊ से पूछा कि हे भाई! हमनें पहले तो कभी हाऊ नहीं देखे। यह अचरज कब से पृथ्वी पर आ गया। जिसे मैं अब तक नहीं समझ पाया हूँ।

दुरेहु सिंधु महुँ जे हरि बेदा। झष तन सो संखासुर भेदा॥

वेदों को चुराकर जो समुद्र में जा छिपा था, उस शङ्खासुर को मैंने मत्स्यशरीर धरकर मारा।

दोहा- सिंधु बुड़ेहु जब मंदर कच्छप तन करि पीठ।
हिरनाकुस अरु हेमदृग हते दोउ जब ढीठ॥३५८॥

समुद्रमन्थन के समय जब मन्दराचल समुद्र में डूब रहा था, तब कूर्म शरीर लेकर मैंने उसे पीठ पर धारण किया था। जब हिरण्याक्ष व हिरण्यकश्यप जैसे ढीठ योद्धाओं को मारा,

चौ.- तब मैं तहँ जनि देख्यो हायौ। जनि जब बलिहि पताल पठायौ॥
छत्रियकुल बहु बार सँहारा। हाउ फिरेहु किन तब तहँ आरा॥

तब मैंने वहाँ हाऊ को नहीं देखा और न ही उस समय जब बलि को पाताल पहुँचाया था। जब मैंने बहुत बार क्षत्रियकुल का संहार किया, तब इस हाऊ ने मुझे क्यों नहीं रोका?

दसमुख बिसभुज चौथ चुकाई। सहित बंधु सुत बधि कटकाई॥
सोत रहेहु तब ये कहँ भाई। एहि खलहिं किन राखेहुँ धाई॥

भाईयों, पुत्रों व सेना के साथ जब मैंने दस मुखों व बीस भुजाओंवाले रावण को दण्ड दिया, तब यह हाऊ कहाँ सो रहा था; तब इसने दौड़कर उस दुष्ट को क्यों नहीं बचाया?

इहइ सोचि कन्हिआ अचराने। दाउ लाग तब उन्ह समुझाने॥

तव झष रूप हाउ जब देख्यो। आपन काल सरिस तेहिं लेख्यो॥

यह बात सोचकर कन्हैया चकित रह गए। तब दाऊ आगे आकर उन्हें समझाने लगे- हे कन्हैया! जब इस हाऊ ने तुम्हारा मत्स्यरूप देखा, तो उसे अपने काल के समान समझा।

कमठ रूप जब तुम गिरि धरेहु। पीठि संघरष रव नभ भरेहु॥
जेहिं सुनि बधिर भयउँ यह हाऊ। भाजि दुरेहु घन जल जिव चाऊ॥

कूर्म होकर जब तुमने पर्वत धारण किया था, तब पीठ से हुए घर्षण का कठोर शब्द आकाश में भर गया था, जिसे सुन हाऊ बहरा हो गया और प्राण बचाकर गहरे जल में जा छिपा था।

पुनि दितिसुतन्हँ किए संघारा। तुम वराह नरहरि तन धारा॥
तब उन्ह कठिन दसन नख पेखी। हाउ हृदयँ भइ त्रास बिसेषी॥

दिति के पुत्रों का संहार करने के लिये जब तुमनें वाराह व नृसिंह अवतार धारण किये थे। तब उनके कठोर दाँत और नख देखकर इस हाऊ के हृदय में बड़ा ही भय उत्पन्न हुआ।

त्रिपुर फिरेहु भागत अकुलाई। भइ जे दसा बरनि नहि जाई॥

अकुलाकर यह त्रिलोकी में भागता फिरा। तब जो दशा हुई, उसे कहा नहीं जा सकता।

दोहा- तीछ परसु लखि परसुधर निरखि कठिन सर राम।
भय तैं कम्पित दुरि रहेहु निकस्यो जनि तजि धाम॥३५९॥

तदुपरान्त परसुरामजी का कठोर फरसा और राम के कठोर बाणों को देखकर यह भय से काँपता हुआ छिपा रहा और अपने घर से बाहर ही नहीं निकला।

चौ.- तातें कान्हँ हाउ यह आला। तोहि न निरखि परेहु तेहिं काला॥
अब सिसु तन धरि नंद अगारा। करि रहे तुम सिसुचरित अपारा॥

इसलिये हे कन्हैया! यह विचित्र हाऊ उस समय तुम्हें दिखाई नहीं पड़ा था। अब बालक का शरीर धारण करके, तुम नन्द के आँगन में अनेक प्रकार के बालचरित्र कर रहे हो।

मोहिं लागत सोइ देखन आसा। हाउ आइ ब्रज कीन्ह निवासा॥
सुनत मुकुन्द कहा मुसुकाई। तात सरल तुम बालक नाई॥

मुझे लगता है कि उन्हें ही देखने की आशा में यह हाऊ व्रज में आ बसा है। यह सुनकर मुकुन्द ने मुस्कुराकर कहा कि हे तात! तुम तो बालकों के समान भोले हो।

समुझि परहि मोहि अबोध जानी। आवा उर कुचाल केउ ठानी॥
अवसि होइ यह असुर कठोरा। करि चह जे छल कवन प्रघोरा॥

मुझे लगता है- यह मुझे बच्चा समझकर अपने हृदय में कुछ षड्यंत्र ठानकर आया है। निश्चय ही यह कोई कठोर राक्षस होगा, जो किसी प्रकार का भयङ्कर छल करना चाहता है।

अथवा गहि चह ब्रज नवनीता। हमहुँ करहि एहि ते भयभीता॥
चलि कछु करेहु सहाय हमारी। खलहिं देउँ छिनु माँझ पछारी॥

या तो फिर यह व्रज का माखन खाना चाहता है। इसीलिये यह हमें भयभीत कर रहा है। यदि तुम चलकर कुछ सहायता कर दो, तो इस दुष्ट को मैं क्षणभर में ही पछाड़ दूँगा।

तब बल कह तुम बालक स्यामा। बहुरि हाउ अतुलित बलधामा॥
सुनि अस आपन भुजन्हि पसारी। कहा कान्हँ मैं अपि बलि भारी॥

तब दाऊ ने कहा- हे कन्हैया! तुम बच्चे हो और यह हाऊ अतुलनीय बल का धाम है। ऐसा सुनकर कन्हैया ने भुजाएँ फैलाकर कहा कि अरे दाऊ! मैं भी अत्यधिक बलवान हूँ।

तुम त एक जघ बैठहुँ दाऊ। अबहि जाइ मैं ताहिं भयाऊँ॥

हे दाऊ! तुम तो एक स्थान पर जाकर बैठ जाओ। मैं अभी जाकर हाऊ को डराता हूँ।

दोहा- **अस कहि हाउ समुख गए जदपि कंप उन्ह गात।**
दाउ निकट उन्ह निरखि रहे मंद मंद मुसुकात॥३६०॥ (क)

ऐसा कहकर कन्हैया! हाऊ के निकट गए। यद्यपि उनके सारे अङ्ग काँप रहे थे। पास में ही उपस्थित दाऊ उन्हें देखकर मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे थे।

देखि बनाऊ हाउ कर जातहिं अति कम्पेउँ।
एतनेहुँ पात सुखान कछु पव प्रेरित खरकेउँ॥३६०॥ (ख)

निकट जाते ही, हाऊ के शरीर की बनावट का निरीक्षण करके, वे अत्यन्त काँप उठे। इतनें में ही वायु के झोंके के कारण, कुछ सूखे हुए पत्ते खड़खड़ा उठे।

तब पुकारि जननिहिं सभय भजे न चितवा पाछ।
चलत कहा मैय्या रखहुँ यह खल अतिहिं भदाछ॥३६०॥ (ग)

तब भय के मारे मैय्या को पुकारकर श्रीकृष्ण ऐसे भागे कि पीछे (पलटकर) भी नहीं देखा। भागते समय उन्होंने कहा कि हे मैय्या! मेरी रक्षा करो, यह हाऊ बड़ा ही वीभत्स है।

सुतहि नयन सुखदायिनी लीला लखि महतारि।
ताल ठोकि ठहकी पुनि उर लाएहु सुख भारि॥३६०॥ (घ)

नेत्रों को सुख देनेवाली कन्हैया की इस बाल लीला को देखकर मैय्या ताली पीटकर ठहाका मारकर हँस पड़ी और उन्हें बड़े ही सुख से अपने हृदय से लगा लिया।

रामेस्वर परब्रह्म प्रभु भगतन्ह सुख उर धारि।
अति अजान सिसु सरिस नित लीला करहि सुखारि॥३६०॥ (ङ)

परब्रह्म परमेश्वर भक्तों के सुख को अपनी हृदय में धारण करके, अत्यन्त अबोध बालक के समान नित्य ही सुखदायक लीलाएँ करते हैं

चौ.- **ब्रज घर घर ग्वालिन्ह एक बारा। दधि मंथत रहि हरष अपारा॥**
कंठ धरे कोकिल मधुराई। रहि सब बालकृष्न गुन गाई॥

व्रज में एक बार गोपियाँ अपार हर्ष से अपने-अपने घर दहीं मथ रही थी। वे सब अपने कण्ठ में कोयल की-सी मधुरता धरकर बालकृष्ण के गुण-समूहों का गान कर रही थी।

नंदभवन उठि प्रातहि काला। जसुमति मथि लगि दधि नरपाला॥
घरर घरर रव सुनत मथानी। कान्हहि काचि नींद उचटानी॥

हे परीक्षित! इधर नन्दभवन में बहुत सवेरे ही उठकर मैय्या यशोदा भी दहीं मथने लगी। मथानी का घर्र-घर्र शब्द सुनते-ही कन्हैया की कच्ची नींद टूट गई।

नयन उमींझत वदन बसोंदा। कान्हँ अए जहँ रही जसोदा॥
बिनु धोए उन्ह लोचन कंजा। बिगसित लाग परम दुतिपुंजा॥

नेत्र मसलते हुए कन्हैया बाँसी मुँह-ही उस स्थान पर आ गए, जहाँ मैय्या यशोदा बैठी थी। उनके नेत्रकमल बिना धोए ही, खिले हुए से और अत्यन्त तेजयुक्त दिखाई पड़ रहे थे।

तेहिं सवँ कान्हँ करन कुचपाना। आतुर नाचि लाग हठ ठाना॥
नाचत रुनझुन रुनझुन बाजी। कान्हँ केर करधनि कटि साजी॥

उस समय स्तनपान के लिये आतुर हुए कन्हैया हठपूर्वक मैय्या के सन्मुख नाचनें लगे। नाचते हुए उनकी कमर में रुनझुन-रुनझुन का शब्द करते हुए करधनी बजनें लगी।

सुनि पुनि कंकन नूपुर मधुरा। उपजा हास जननि कर अधरा॥
कन्हिआ भ्रमि भ्रमि सनमुख नाचहि। पुनि कुचपान करावन जाँचहि॥

जिसके साथ बजते हुए कङ्कणों व नूपुरों की मधुरध्वनि सुन मैय्या के अधरों पर मुस्कान उमड़ आई। कन्हैया घूम-घूमकर नाच रहे हैं और उनसे स्तनपान की याचना कर रहे हैं।

उमगि नेह तब गोद उठाई। जननि लागि उन्ह अयन पिबाई॥
कछु छिन बिगत तेन्ह अस जाना। चूल्हहि पय चलेउँ उमगाना॥

तब मैय्या ने स्नेहवश उन्हें अपनी गोद में उठा लिया और स्तनपान करानें लगी। फिर कुछ क्षण बीतनें पर उन्हें लगा कि चूल्हे पर रखा हुआ दूध उफन चला है,

तब तुरंत सुत कहँ तहँ छारी। आतुर चलि सोउ दिसि महतारी॥
निरखि रूखपनु उन्ह ब्यवहारा। खीझि उठे अति नंदकुमारा॥

तब पुत्र को तुरन्त उसी स्थान पर छोड़कर मैय्या उतावली से उसी ओर चली। उनके व्यवहार में ऐसा रूखापन देखकर नन्दकुमार कन्हैया चिढ़ गए।

पाइ निकट तब बेंत उठाई। कान्हँ दधिहि घट दीन्ह नसाई॥
छाइ बिलोवन लखि उठि भागे। आइ जननि रहि अचरज ठागे॥

तब निकट हीं में एक लकड़ी पाकर कन्हैया ने उससे दहीं का घड़ा फोड़ दिया। सारा बिलोवन भूमि पर फैल गया देख, वे उठ भागे। जब मैय्या लौटी तो ठगी-सी रह गई।

ताल देइ हँसि नाचि कन्हाई। दूर ठाढ़ि उन्ह लाग खिजाई॥

उधर कन्हैया दूर खड़े हो गये और ताली बजाते हुए नृत्य करके, उन्हें चिढ़ानें लगे।

दोहा- **सरिस बेत तब सोउ गहि जसुमति पाछे धाइ।**
क्रुद्ध जानि उन्ह अति सभय कान्हँ चले अतुराइ॥३६१॥

तब उसी छड़ी को उठाकर कुपित हुई मैय्या उन्हें पकड़नें के लिये, उनके पीछे दौड़ी। उन्हें क्रुद्ध हुई जानकर कन्हैया भी अत्यधिक भयभीत होकर उतावलीपूर्वक भाग चले।

चौ.- जिन्हँ श्रुति सारद सेष महेसा। कोटि जतन करि सहज न देखा॥
अगम अगोचर जे नित अहई। मातु मोहबस उन्ह धरि चहई॥

वेद, सरस्वती, शेष और महेश करोड़ों यत्न करके भी जिनका दर्शन सहज-ही में नहीं पा सकते। जो नित्य, अगम व अगोचर है, यशोदाजी उन्हें ही मोहवश पकड़ना चाहती हैं।

करत जतन नाना बिधि हारी। अजिरहि मातु श्रमित तब ठारी॥
श्रम तें स्वास चली उमगाई। अस बिलोकि गै निकट कन्हाई॥

अनेक यत्न करके, जब मैय्या थक गई, तब वे आँगन में ही खड़ी हो गई। दौड़ने के कारण उनका स्वास तीवृगति से चलनें लगा; यह देख कन्हैया उनके निकट चले गए।

भयहुँ कान्हँ मुख आव न बानी। श्रवन धरै तेहिं कहत रिसानी॥
चपल सुभाउ प्रथम तैं ओही। पुनि मैं लाड़ लड़ाएसि तोही॥

भयवश कन्हैया के मुख से वाणी नहीं निकलती; मैय्या ने कन्हैया का कान पकड़कर क्रोधित होकर कहा- स्वभाव से तो तू चञ्चल था ही; मैंने भी तुझसे बहुत लाड़ लड़ाये।

करै लाग अब उपद्रव नाना। मोर रिसहुँ तनक न भय माना॥
मानहुँ मैं न कहइ जब लोगा। भै तव काज प्रतारन जोगा॥

इसलिये तू बहुत उपद्रव करने लगा है, मेरे क्रोध का भी भय नहीं मानता। जब लोग कहते हैं, तो मैं उनकी बातें नहीं मानती; किन्तु तुम्हारे कार्य दण्ड देने योग्य हो गए हैं।

बाँधे बिनु न रहौं अब तोहीं। बहुत सताएहुँ अज तैं मोहीं॥

आज तुमने मुझे बहुत सताया, अब मैं तुम्हें बाँधे बिना नहीं रहूँगी।

दोहा- बाँधौ ओखल संग तोहिं करइ न कोउ सहाइ।
घाम खाइ जब दिवस लौ आवहि बुधि तव ठाइ॥३६२॥

ओखल से तुम्हें बाँध दूँगी और कोई भी तुम्हारी सहायता नहीं करेगा। इस प्रकार जब तुम दिन-भर धूप सहोगे, तब तुम्हारी बुद्धि ठिकानें आ जाएगी।

चौ.- अस कहि जननि नेति लै आनी। कनिअहिं भुज धरि कुपित कसानी॥
पुनि ओखल सँग तेहिं ठढ़ाई। मैय नेति तिन्ह कटि लपटाई॥

यह कहकर मैय्या रस्सी ले आई और कुपित होकर उन्होंने कन्हैया की भुजा कसकर पकड़ ली। फिर ओखल के निकट खड़ा करके, मैय्या ने उनकी कमर में रस्सी लपेट दी।

देन बहोरि लागि जब गाठी। दुइ अंगुल सो दामनि आठी॥
तब रजु आन आनि महतारी। उभयन्हि जोरि कीन्ह एकसारी॥

फिर जब वे गाँठ लगानें लगी, तो वह रस्सी दो अँगुल छोटी पड़ गई। तब मैय्या दूसरी रस्सी ले आई और उन दोनों को जोड़कर एक कर ली।

पुनि जब ताहिं बाँधि ते लागी। तेपि औटि हरि माया पागी॥
देखि जसोमति अति अचराई। नेति आन पुनि आनि जोड़ाई॥

फिर जब वे उसे बाँधनें लगी, तब भगवान की माया से वह रस्सी भी छोटी पड़ गई। यह देखकर यशोदाजी अत्यन्त ही चकित हो गई और दूसरी रस्सी लाकर उसमें जोड़ दी।

गाठत तेपि किन्तु भइ छोटी। लखि उन्ह दाम आनि पुनि मोटी॥
एहिबिधि एक एक करि माई। रसरी घर कइ सब लै आई॥

किन्तु गाँठ लगाते हुए वह भी छोटी पड़ गई, यह देखकर वे पुनः एक बहुत बड़ी रस्सी ले आई इस प्रकार एक-एक करके, मैय्या घर में रखी हुई सभी रस्सियाँ ले आई

परिछित जे जग बंधन हरही। जतन जननि उन्ह बाँधन करही॥
किन्तु गाँठ जब जब उन्ह लाई। रजुका घट तब तब सकुचाई॥

हे परीक्षित्! जो संसार के बन्धन हरनेंवाले हैं, मैय्या उन्हीं को बाँधनें का यत्न कर रही हैं। किन्तु जब-जब वे रस्सियों को गाठ लगाती हैं, तब-तब वह छोटी पड़ जाती है।

अस बिलोकि अचरज उन्ह केरा। बिहँसि करत भा सकुच घनेरा॥

यह देखकर उनका आश्चर्य हँसते हुए अत्यन्त सङ्कोच करने लगा।

छन्द- घन भयउँ उन्ह संकोच समुझ न परइ यह का होइ रह्यो।
थकि चूर भइ मुख स्वेद कच छाए मयहि लखि कन्हँ कह्यो॥
मैय्या दै मोहि रजु स्वकर बाँधौं निजहिं सुनि मैय्या हँसी।
पुनि दीन्ह रजु कन्हँ गाँठि मारेसि जननि अति अचरज लसी॥

उनका सङ्कोच अत्यन्त बढ़ गया। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है? थकान से उनके मुखमण्डल पर स्वेद व केश छा गए। तब कन्हैया ने कहा- री मैय्या! ला रस्सी मुझे दे, मैं अपने हाथों स्वयं को बाँधूँगा। यह सुनकर मैय्या मुस्कुरा दी और उन्हें रस्सी दे दी। तब कन्हैया ने स्वयं गाँठ लगा दी, यह देखकर मैय्या को अचरज हुआ।

दोहा- बाँधि सुतहिं एहिबिधि जननि जल हित गइ सरि तीर।
बंधन बैठे सुखद इत भए कछुक गम्भीर॥३६३॥

इस प्रकार अपने पुत्र को बाँधकर मैय्या यशोदा जल लाने के लिये यमुनाजी के तट पर चली गई। इधर बन्धन में बैठे हुए सुखदायक भगवान श्रीकृष्ण कुछ गम्भीर हो गए।

चौ.- अरजुन कर दुइ बिटप बिसाला। रहे अजिर जिन्हँ लखि तेहिं काला॥
हेरि लाग हरि सो इतिहासा। पूरब नृप जे जगत प्रकासा॥

आँगन में अर्जुन के दो विशाल वृक्ष थे, जिन्हें देखकर उस समय श्रीकृष्ण उस इतिहास का स्मरण करने लगे, जो पूर्वकाल में इस संसार में घटित हुआ था।

नलकूबर मनिग्रीव बिचारे। नारद साप भये तरु भारे॥
बरषा घाम प्रचंड बयारा। सहहि बिटप तनु प्रकृती मारा॥

बेचारे नलकूबर व मणिग्रीव, नारदजी के श्राप से विशाल वृक्ष होकर नग्न शरीर से वर्षा, धूप व प्रचण्ड वायु आदि के रूप में प्रकृति की मार सह रहे हैं।

कन्हिआँ उन्हहिं करन उद्धारा। जननिहिं सन यह उपद्रव सारा॥
मुनिवर जे नित अहहिं गोसाई। मुनि सो केहिं हित गए रिसाई॥

कन्हैया ने उन्हीं के उद्धार के लिये मैय्या के सन्मुख यह उपद्रव किया था। तब परीक्षित् ने पूछा- हे मुनिवर! जो मुनि नित्य इन्द्रियों के स्वामी हैं, वे ही किस कारण क्रुद्ध हो गए;

सुत ते दुहुँ गुह्यकपति केरे। नृप अकसर निज धन मद प्रेरे॥
तियन्हँ संग मंदाकिनि नीरा। बिहरि रहे भए नगन सरीरा॥

हे परीक्षित्! यक्षराज कुबेर के वे दोनों पुत्र, एक बार अपने वैभव के मद से प्रेरित हुए, अपनी स्त्रियों के साथ मन्दाकिनी के जल में निर्वस्त्र होकर विहार कर रहे थे।

मुख हरि नाउँ तेज तनु छाए। तेहिं अवसर सुररिषि तहँ आए॥
लखि उन्ह जच्छन्हि नारि लजाई। पट पहिरे अति आतुर धाई॥

तभी शरीर पर तेज लिये, मुख से हरिनाम का कीर्तन करते हुए, नारदजी वहाँ आए। उन्हें वहाँ देख यक्ष-स्त्रियाँ लज्जित हो गई और दौड़कर उन्होंने अपने वस्त्र पहन लिये।

किन्तु दम्भि ते परिहरि लाजा। नगनहिं रहे हँसत मुनिराजा॥
मुनि रूठे अस देखा जबहीं। हासि उभय पुनि करि लग तबहीं॥

किन्तु हे परीक्षित्! वे दम्भी लज्जा का त्याग करके मुनिराज का उपहास करते हुए नग्न ही रहे और जब उन्होंने देखा कि मुनि रुष्ट हो गए हैं, तब वे दोनों ही पुनः (उनकी) हँसी करने लगे।

लखि रिस लागेहुँ मुनिहिं अपारा। डपटि दुहुँन्ह एहिभाँति उचारा॥
सठ लहतहिं अलपाधिक ज्ञाना। दम्भि लहत सम्पदा महाना॥

यह देखकर उन मुनि को अत्यन्त क्रोध आ गया और डाँटते हुए उन्होंने दोनों से कहा- थोड़ा-बहुत ज्ञान पाते ही मूर्ख और अत्यधिक सम्पदा पाते ही अहङ्कारी मनुष्य

तुरतहिं भूलि धरम मरजादा। जग उपजात फिरहिं अपवादा॥
जछ मरजाद ऐहिंबिधि मोरी। उन्हहिं समान दसा भइ तोरी॥

शीघ्र-ही धर्म की मर्यादा भुलाकर संसार में अपवाद उत्पन्न करते फिरते हैं। यत्तों की मर्यादा का उल्लङ्घन करके, तुम्हारी दशा भी उन्हीं के समान हो गई है और

दोहा- एहि कारन तुअ निरलजन्हँ अति जड़ भए सुभाय।
गरुअ भयउँ पुनि हृदय अस तोहिं तें सह्यो न जाय॥३६४॥

इसी कारण तुम निर्लज्जों के स्वभाव भी ज्ञानरहित हो गए हैं। फिर अहङ्कार तो तुम्हारे मन में ऐसा हो गया है कि जो तुमसे सहा ही नहीं जा रहा है।

चौ.- तुअ गुर लघु के कानि बिसारी। एक मुनिहिं निज समुख निहारी॥
नगनहिं न्हात रहे इतराई। जड़ अरु अचल बिटप के नाई॥

तुम दोनों छोटे-बड़े की मर्यादा भुलाकर एक मुनि को अपने सन्मुख आया देखकर भी अहङ्कारवश किसी चेतनारहित व अचल वृत्त की भाँति नग्न होकर ही नहाते रहे।

तातें रूख होउ सठ धरनी। भोगहुँ सोउ तनु आपनि करनी॥
सुनि अस मुनि कर साप कठोरा। भयउ तिरोहित मद उन्ह घोरा॥

इसलिये रे मूर्खो! तुम पृथ्वी पर जाकर वृत्त हो जाओ और उसी शरीर से कुकृत्य का फल भोगो। महर्षि नारदजी का ऐसा कठोर श्राप सुनकर उनका महान अहङ्कार जाता रहा।

लाज बिबस उभयहिं सिरु ढारी। कम्पत रहे सभय अति भारी॥
तरकि बिटप जीवन कर कष्टा। परम अधीर भए दुहुँ दुष्टा॥

वे दोनों ही लज्जा के कारण सिर नीचा किये भयभीत हुए से अत्यधिक काँपते रहे। वृत्त के जीवन में प्राप्त होनेंवाले कष्टों का अनुमान करके, वे दोनों दुष्ट अत्यन्त अधीर हो उठे।

कछु छिन बिगत बिनय करि भारी। उभय ससाहस लाग उचारी॥
मुनि हम सठ निज सम्पति फूली। अति अपमान कीन्ह तव भूली॥

कुछ त्तण बीतनें पर साहस करके, दोनों ही अत्यन्त विनय करके, कहने लगे- हे मुनि! हम दोनों मूर्खों अपनी सम्पत्ति पर इतराकर अज्ञानवश आपका अत्यधिक अपमान कर दिया है।

हम पुनि पुनि पर पाँउ तिहारा। छमिअ नाथ अपराध हमारा॥
पुनि उपाय केउ देहुँ जनाई। जातें मुकुति सकहिं हम पाई॥

किन्तु हम बार-बार आपके चरण पड़ते हैं, हे नाथ! आप हमारा अपराध त्तमा कर दीजिये और कोई उपाय बता दीजिये, जिससे हम मुक्ति प्राप्त कर सकें।

सुनि अस मुनि मन दय अति लागी। कह उबार तोहिं जन अनुरागी॥

यह सुनकर मुनि को बड़ी दया आई और उन्होंने कहा- श्रीहरि तुम्हारा उद्धार करेंगे।

दोहा- बिबुधन्ह बीते सत बरिष होइहि हरि अवतार।
कर पबित्र तब तेन्हँ कर होब तोर उद्धार॥३६५॥

देवताओं के सौ वर्ष बीतने के उपरान्त भगवान श्रीहरि का अवतार होगा और उस समय उन्हीं के पवित्र हाथों से तुम्हारा उद्धार होगा।

मासपारायण बारहवाँ बिश्राम

चौ.- तेइ दिनु राजन तें दुहुँ भाई। अर्जुन बिटप भये ब्रज आई॥
दयासिंधु उन्ह यह दुख देखी। भए द्रवित हिय माँझ बिसेषी॥

हे परीक्षित्! उसी दिन से वे दोनों भाई व्रज में आकर अर्जुन के वृक्ष हो गए। उनके इस दुःख को देखकर दया के सागर भगवान श्रीकृष्ण अपने हृदय में विशेषरूप से द्रवित हो उठे।

तब उँधाइ ऊखल सो भारी। आरहुँ करि लीन्हा सकटारी॥
जननि ताहि उन्ह कटि बंधाना। हँसिटि चले तरु दिसि अतुराना॥

तब सकटशत्रु श्रीकृष्ण ने उस भारी ऊखल को गिराकर आड़ा कर लिया। मैया ने उस **ऊ**खल को उनकी कमर से बाँध रक्खा था, जिसे घसींटते हुए वे शीघ्रता से वृक्षों की ओर ले चले।

जातहि तेहिं दुहुँ मध्य अरावा। खींचि लाग पुनि भै समुहावा॥
एहि तें उभय बिटप सो भारी। उपटि परे समूल नृप धारी॥

वहाँ जाते ही ऊखल को वृक्षों के बीच अटका दिया और सामनें होकर उसे खींचने लगे। हे परीक्षित्! इस कारण वे दोनों महान वृक्ष जड़ सहित उखड़कर भूमि पर गिर पड़े।

परत दुहुन्हँ रव भीषन भयऊँ। सुनि जेहिं दिगसिंधुर बिचलयऊँ॥
तदुप तरुन्हँ तें धरि हरिरूपा। प्रगटे जच्छ पारि भवकूपा॥

उनके गिरते ही बड़ा भारी शब्द हुआ, जिसे सुन दिग्गज विचलित हो गए। तदुपरान्त वृक्षों से दिव्यरूप धरे, श्रापरूपी कूप से उबरकर दो यक्ष (नलकूबर व मणिग्रीव) प्रकट हुए।

दीन जानि हरि कीन्ह असोका। तब गै हरषि उभय निज लोका॥
गिरत तरुन्हँ धुनि भइ अति भारी। जेहिं सुनि भइ सभीत महतारी॥

भगवान ने उन्हें दीन जानकर शोकरहित कर दिया। तब वे हर्षित हो अपने लोक को चले गए। वृक्षों के गिरने से भीषण ध्वनि हुई थी, जिससे मैय्या भयभीत हो उठी और

तटहिं छारि जलघट हँहराई। तत छिन चली भवन दिसि धाई॥

घबराकर जल के घड़ों को यमुनातट पर ही छोड़कर वे उसी क्षण भवन की ओर दौड़ी।

दोहा- **सोउ धुनि सुनि हँहरत हृदय गोपि ग्वाल बहुतेर।**
उमगि परे नंदहि अजिर अचरज करत घनेर॥३६६॥

उस ध्वनि को सुनकर घबराये हुए मन से कई गोप-गोपियाँ आश्चर्य करते हुए नन्दरायजी के आँगन में उमड़ पड़े।

चौ.- **देखेहुँ सबनि बिटप महि छाए। बैठा कान्हँ साख अरुझाए॥**
एहि बिच अति चिंतित भय छाए। नंदराय पहुँचे तहँ धाए॥

सबनें देखा कि वृक्ष भूमि पर गिरे पड़े हैं और कन्हैया उसकी शाखाओं में उलझा हुआ बैठा है। इसी बीच भय व अत्यधिक चिन्ता से भरे नन्दजी भी भागे-भागे वहाँ आ पहुँचे।

देखा द्रुम साखा अरुझाए। बैठा कान्हँ तुरत निअराए॥
बूझि तेहिं छिन उन्ह सब बाता। लग मनाइ सुत के कुसलाता॥

फिर उन्होंने देखा कि कन्हैया वृक्ष की शाखाओं में उलझा हुआ बैठा है, वे तुरन्त ही उसके निकट गए। वे उसी क्षण सारी बात समझ गए और अपने पुत्र की कुशल मनानें लगे।

पुनि खोलत गँठ सुतहि छराई। पुचुकि लीन्ह पितु हृदय लगाई॥
नृप सब बंध कटहि जिन्हँ प्रेरे। नंद बंध काटेहुँ उन्ह केरे॥

गाँठ खोलकर पिता ने लल्ला को छुड़ाया और पुचकारकर हृदय से लगा लिया। हे राजन! जिनकी प्रेरणामात्र से सब बन्धन कट जाते हैं, उन्हीं ब्रह्म के बन्धन नन्दजी ने काटे।

तेहिं छिन मैय्या तहँ उमगानी। हेरि भूल निज लगि पछितानी॥
सजल नयन पुनि नेह अपारा। सुतहि आन उर बारहि बारा॥

तभी मैय्या भी आ पहुँची और अपनी भूल का स्मरणकर, अत्यधिक पछतानें लगी। फिर नेत्रों में जल भरकर अपार स्नेह से बार-बार उन्होंने अपने पुत्र को हृदय से लगाया।

लखि उन्ह नंद डाँटि कहि लागे। जात सिसुहि कोउ इहिबिधि त्यागे॥
सुनि लज्जित भइ अति महतारी। सबिनय त्रुटि आपन स्वीकारी॥

उन्हें देख नन्दजी डाँटकर बोले- भला कोई अपने पुत्र को इस प्रकार अकेला छोड़ता है? यह सुन यशोदाजी बहुत लज्जित हुई और उन्होंने विनम्रता से अपनी भूल मान ली।

कहा चकित तब गोप बिचारी। परे भूमि कस द्रुम यह भारी॥

तभी चकित हुए कुछ गोपों ने विचारकर कहा- ये विशाल वृक्ष भूमि पर कैसे गिर पड़े?

दोहा- **तड़ितपात नहिं सुनि परेउँ जनि चलि वात प्रचंड।**
तो सहसा कस उपटि गए आपु दुहुँहि बरिबंड॥३६७॥

न ही बिजली गिरते हुए देखी गई और न ही प्रचण्ड वायु चली, तो फिर ये दोनों ही विशाल वृक्ष इस प्रकार अचानक स्वयं कैसे उखड़ गए?

चौ.- **अचरज बहुरि होत यह भारी। आपु भई कस कन्हँ रखवारी॥**

तब कोउ कहेहुँ सुकृत पितु केरे। अवसि रहे सिसु कहँ तब घेरे॥

इस बात का भी बड़ा आश्चर्य होता है कि कन्हैया की रक्षा अपने-आप कैसे हो गई? तब किसी ने कहा कि उस समय बाबा नन्द के पुण्य अवश्य ही बालक को घेरे रहे होंगे।

सुनि दुहुँ सुतन्हँ नंद उर लाए। कहा कान्हँ तेहिं सवँ सिकुआए॥
पितु मैयहि उर अतिहि कठोरा। झूठ मूठ मम करइ निहोरा॥

यह सुनते ही नन्दजी ने दोनों पुत्रों को हृदय से लगा लिया। कन्हैया ने उलाहना देकर कहा- बाबा! मैय्या का हृदय बड़ा कठोर है; वे झूठमूठ ही मेरा निहोरा करती हैं।

प्रातकाल मैं माखन माँगा। लगि धमकान देखि मैं भागा॥
धाइ धरे तब बिनु अपराधा। गहि रजु मुअँ ऊखल तें बाँधा॥

सवेरे मैंने मैय्या से माखन माँगा, तो वे मुझे डरानें लगी, यह देखकर मैं भागा। तब उन्होंने दौड़कर मुझे पकड़ लिया और बिना ही अपराध के रस्सी लेकर मुझे ऊखल से बाँध दिया।

अस लखि कछुक गोपि तहँ आई। मैयहि लगि बहुबिधि उकसाई॥
मिलि पुनि सबनि बाँधि मोहि दीन्हा। जातें परे मोर कटि चीन्हा॥

यह देखकर कुछ गोपियाँ भी वहाँ आ गई और मैय्या को मेरे विमुख उकसानें लगी। फिर सबनें मुझे बाँध दिया, जिसके कारण मेरी कमर पर रस्सी के चिह्न पड़ गए और

अब लौ दुखत मोर मृदु गाता। बाँधत तनक झिझकि जनि माता॥
अब उन्ह पाहिं कबहुँ नहिं जैहौं। जवौं न उन्ह कर तनय कहैहौं॥

मेरे कोमल अङ्ग अब तक दुःख रहे हैं; मुझे बाँधते हुए मैय्या जरा भी नहीं झिझकी। अब मैं उनके पास कभी नहीं जाऊँगा, न उनके हाथों भोजन करूँगा और न उनका पुत्र ही कहाऊँगा।

दोहा- **उपालम्भ रव तोतरी सुनि पितु हँसे ठठान।**
पुनि कह लल्ला मोर प्रिय मैय्या तोर अजान॥३६८॥ (क)

तोतली वाणी में कन्हैया के द्वारा दिया गया यह उलाहना सुनकर नन्दबाबा ठहाका मारकर हँस पड़े और बोले- मेरे प्यारे लल्ला! तेरी मैय्या तो कुछ भी नहीं समझती।

अब तुअ छमि अपराध उन्ह दाउहि संग लगाइ।
बेगि नहावहुँ तदुप हम भोजन करब डटाइ॥३६८॥ (ख)

इसलिये अब तुम उनका अपराध क्षमा कर दो और दाऊ को साथ लेकर शीघ्र ही नहा लो। तदुपरान्त हम सब डटकर भोजन करेंगे।

बालसुलभ अटपट बचन कहि करि नटखट काज।
उभय बीर सुख देत अति पितु मैयहि ससमाज॥३६८॥ (ग)

(इस प्रकार) बालसुलभ अटपटे वचन कहकर व नटखटता से भरे हुए काम करके, वे दोनों भाई गोपगोपियों सहित मैय्या और बाबा को अत्यधिक सुख देते हैं।

चौ.- **बालकृष्न जब बीथिन्हँ बिचरहि। लखि लखि गोपि मोद नृप भरही॥**
कोउ गहि गोद चुम्ब मुख तासू। दधि खबात निरखत मृदु हासू॥

हे परीक्षित्! जब बालकृष्ण गोकुल की गलियों में विचरण किया करते थे, तब उन्हें देख-देखकर गोपियाँ आनन्द से भर जाया करती थी। कोई उन्हें अपनी गोद में लेकर उनका मुख चूमती और उनका मधुर हास्य देखते हुए उन्हें दहीं खिलाया करती थी।

कछु निरखत उन्ह राजिव नैना। सुनइ मुदित उन्ह कर मृदु बैना॥
ते जेइ बीथि जात नहिं कबहूँ। तहँ कइ गोपि बिकल रह तबहूँ॥

कुछ गोपियाँ उनके कमलोपम नेत्रों को देखकर आनन्दपूर्वक उनकी मधुर बातें सुना करती थी। जब वे कभी किसी गली में नहीं जा पाते, तो वहाँ की गोपियाँ व्याकुल हो जाया करती थी।

सजतन काज कवन उन्ह होइ न। बिचलित चित फिर भोजइ कोइ न॥
एहिबिधि मन तम बूड़ि घनेरा। बिफल जात दिनु सो उन्ह केरा॥

यत्न करने पर भी उनका कोई कार्य नहीं हो पाता और न ही कोई भोजन करती थी; (केवल) विचलित चित्त हो घूमती रहती थी। इस प्रकार मन की सघन निराशा में डूबकर उनका वह दिन व्यर्थ ही चला जाता था।

जब अधीरता बहि नहिं जाती। नंद अजिर उमगहि अकुलाती॥
पाइ कान्हँ कहँ तहँ तें धाई। लेति लाइ उर हठि रसु छाई॥

जब अधीरता उनसे उठाई नहीं जाती, तब वे अकुलाकर नन्दजी के आँगन में उमड़ पड़ती थी और कन्हैया को पाते ही प्रेम की मारी वे दौड़कर, हठपूर्वक उन्हें हृदय से लगा लेती थी।

सो अनंदु उन्ह कस न कहावै। जलधि तरंग जस न गनि जावै॥

उस समय उन्हें जो आनन्द होता है, उसका वर्णन किस प्रकार नहीं होता; जिस प्रकार समुद्र की तरङ्गों को गिना नहीं जा सकता।

दोहा- **पदमावति के बीथि कन्हँ दिनु एक गै जब नाहिं।**
भई बिकल सो खोजि लगि तेन्ह अनत गलि माहिं॥३६९॥ (क)

जब एक दिन कन्हैया पद्मावती की गली में नहीं जा सके, तो व्याकुल होकर वह उन्हें अन्य गलियों में खोजनें लगी।

पुनि मिलेउ तब बालसखा उन्ह सँग रहे घनेर।
पदमावति धमकात जिन्हँ तहँ तें दीन्ह खदेर॥३६९॥ (ख)

फिर (उनमें से एक गली में) जब वे मिल गए, तब उनके साथ उनके अन्य अनेक बालसखा भी थे, जिन्हें डरा-धमकाकर पद्मावती ने वहाँ से खदेड़ दिया।

चौ.- कहा कन्हहि पुनि चलु सँग मोरे। घन दधि माखन देउँब तोरे॥
बालसुलभ लालचबस कन्हिया। हरषि गए सो गोपिहि कनिया॥

फिर उसनें कन्हैया से कहा कि तुम मेरे साथ चलो, मैं तुम्हें बहुत-सा दहीं और माखन दूँगी। तब बालसुलभ लोभ के वश होकर कन्हैया प्रसन्न होकर उस गोपी की गोद में चले गए।

तब तें मुदित आइ निज बीथी। चित भा थिर जिय जरनी सीथी॥
तिन्ह सँग कान्हहि लखि हरषाई। कुंजहि अपर गोपि तहँ आई॥

तब वह आनन्दित हो अपनी गली में लौट आई। उसका चित्त स्थिर हो गया और जी की जलन जाती रही। उसके साथ कन्हैया को देख हर्षित हुई अन्य गोपियाँ भी वहाँ आ गई।

सोह सबनि बहुबिध सिंगारा। आतम श्रव बात्सल्य अपारा॥
सिसुहि घेरि सब जूथ बनाई। चूँबि लागि अति ममता छाई॥

वे सब अनेक प्रकार का श्रृङ्गार धरे शोभित हो रही थीं और उनकी आत्मा से अपार वात्सल्य झर रहा था। उन्होंने कृष्ण को समूह में घेर लिया और स्नेहाधिक्य से उन्हें चूमनें लगी।

बार बार पुनि तेहिं उर आनी। गोपि पूछि लगि एक मृदु बानी॥
कान्हँ बात तव प्रति सुनि राखी। अब लौ किन्तु नयन जनि चाखी॥

फिर बार-बार उन्हें हृदय से लगाकर एक गोपी मधुरवाणी में पूछनें लगी- अरे कन्हैया! तुम्हारे विषय में हमनें एक बात सुन रखी है, किन्तु अब तक उसे अपने नेत्रों से नहीं देखी।

नृत्य करइ तुअ अस निपुनाई। देखतही दृग जात लोभाई॥
अहहि नाच महुँ तुअ अति चातुर। हमहि देखाहु नाचि हिय आतुर॥

(वह बात यह है कि) तुम इस निपुणता से नृत्य करते हो कि देखते-ही नेत्र लुब्ध हो जाते हैं। नृत्य करने में तुम बड़े निपुण हो, इसलिये हृदय आतुर है, किन्तु हमें इस बात पर विश्वास नहीं।

सुनि कह कान्हँ बरुनि मटकाई। जे मैं नाचि लागु ठुमकाई॥
तब तुम सुधि तन केर बिसारी। बावरि सौं दइ लागब तारी॥

ऐसा सुनकर कन्हैया ने भौंहे मटकाकर कहा- जो यदि मैं ठुमका देकर नाचनें लग जाऊँ, तो तुम सभी अपने शरीर की सुध भूलकर पागलों के समान ताली बजाने लगोगी।

किन्तु प्रथम निज उदर भरावौं। तदुप नाचि मैं सबनि देखावौं॥

किन्तु पहले तुमसे अपना पेट भरवाऊँगा, तदुपरान्त मैं तुम सबको नाचकर दिखाऊँगा।

दोहा- तरकि कान्हँ चतुराइ अस माखन सब लै आनि।
ठाढ़ि घेरि तिन्हँ माखन दोना धरि निज पानि॥३७०॥

कन्हैया की इस चतुराई को समझकर सभी गोपियाँ माखन ले आई और अपने हाथ में माखन का दोना लिये, उन्हें घेर कर खड़ी हो गई।

चौ.- क्रम क्रम लगि सब माखन देई। प्रमुदित कान्हँ बोट मुख लेई॥
तदुप कसेउँ कटि चरन बढ़ाई। भुज उठाइ लग नाचि कन्हाई॥

सभी गोपियाँ एक-एक करके, माखन देने लगी और कन्हैया बड़े आनन्द से माखन मुख में लेनें लगे। तदुपरान्त कमर कसकर कन्हैया ने चरण बढ़ाया और भुजाएँ उठाकर नृत्य करने लगे।

नाचत लखि उन्ह प्रमुदित आली। मधुर मधुर दइ लागिसि ताली॥
कटि भुज पद भ्रुअ दृग कर अँगुरी। क्रम क्रम लाग ताल संगत करि॥

उन्हें नृत्य करते देख आनन्दित गोपियाँ मधुर-मधुर ध्वनि से ताली बजाने लगी। उनकी कमर, भुजाएँ, चरण, भौंहें, नेत्र, हथेलियाँ व अँगुलियाँ क्रमपूर्वक ताली से संगत करने लगी।

एहिबिधि गोपि सबहि हरषाई। माखन मिस लगि कन्हहि नचाई॥
माखन खात जात पुनि नाचत। गोपि समूह तालि मृदु बाजत॥

इस प्रकार सभी गोपियाँ हर्षित हो माखन के बहानें कन्हैया से नृत्य करवानें लगी और वे भी माखन खाते जाते थे और नाचते जाते थे और गोपियाँ मधुरध्वनि से तालियाँ बजा रही थी।

तातें कन्हँ अँग श्रमकन आए। नीलाम्बुज दल मनु मनि छाए॥
तेहिं सवँ चुअँ कपोल जब कोई। नाच न तेन्ह हृदय रिस होई॥

इससे कन्हैया के अङ्गों पर पसीनें की बूँदें उभर आई, मानों नीलकमल के दलों पर मणियाँ छा गई हों। उस समय जब कोई उनके कपोलों को चूमती है, तब वे रूठकर नृत्य नहीं करते।

गोपि करहि लखि बहुत निहोरा। नाच न तब नचाव बरजोरा॥

यह देखकर गोपियाँ उन्हें बहुत प्रकार से मनाती हैं और जब वे फिर भी नहीं नाचते हैं। तब वे उन्हें बलपूर्वक नचानें लगती हैं।

एहि बिच जब केउ गोपि खिजाती। कान्हँ मनावहि तेहिं बहुभाँती॥
माखन रुचिर तोर अति माई। देहुँ रहा मनु मोर हुकाई॥

इसी बीच जब कोई गोपी रूठती है, तब कन्हैया अनेक यत्न करके, उन्हें मनाकर कहते हैं- हे मैय्या! तुम्हारे घर का माखन बड़ा स्वादिष्ट है, अतः तुम माखन दो, मेरा मन आतुर हो रहा है।

छन्द- नृप जेन्ह दरसन लागि जतनहि जोगिजन बिधि हर सदा।
सो ब्रह्म ग्वालिन प्रीति बस भयै नट बिसारेसि चक गदा॥
उन्ह बाँह गहि गहि गोपि बाँवरि मुदित अजिर नचावही।

निज जनहि सन सब अर्पि पेमहि रीति कान्हँ निभावही॥

हे राजन! जिनका दर्शन पानें के लिये योगीजन, ब्रह्माजी और शिवजी भी सदैव यत्न किया करते हैं, उन्हीं परब्रह्म ने गोपियों की प्रीति के वश होकर अपनी गदा और चक्र त्याग दिये और नर्तक बन गए हैं। उनकी बाँह पकड़-पकड़कर पगली गोपियाँ आनन्दित होकर उन्हें अपने आँगन में नचा रही है और अपने भक्तों के सन्मुख अपना सब कुछ समर्पित करके, वे भगवान श्रीकृष्ण भी नृत्य करते हुए प्रेम की रीति का निर्वाह कर रहे हैं।

स.- **प्रीति की रीति निराली बड़ी जेहिं राखन ब्रह्म तजी प्रभुताई।**
जे कमलापति तेइ भिखारी से जाँचत गोपिन्हँ हाथ बढ़ाई॥
माखन दोन देखाई देखाई कै ग्वालिन नाचन हेतु पुकारे।
नाथ त्रिलोकि के माखन देखि कै नाचत डोलइ गोपिन्हँ द्वारे॥

प्रेम की रीति बड़ी निराली होती है, जिसकी रक्षा के लिये परब्रह्म ने अपनी प्रभुता तक त्याग दी। जो स्वयं महालक्ष्मी के स्वामी हैं, वे ही भिखारियों के समान गोपियों के सन्मुख हाथ फैलाकर याचना कर रहे हैं। गोपियाँ माखन का दोना दिखा-दिखाकर उन्हें नाचनें के लिये पुकारती हैं और वे त्रिलोकीनाथ माखन देखकर उन गोपियों के द्वार पर नाचते फिर रहे हैं।

दोहा- **जद्यपि कन्हिआ जगतपति स्वबस नित्य अबिकार।**
किन्तु मोद हित भगतन्हँ तेइ कर जतन अपार॥३७१॥

यद्यपि भगवान श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत के स्वामी, नित्य, निर्विकार और एकमात्र अपने ही वश में हैं। किन्तु फिर भी भक्तों के सुख के लिये वे अनेंक प्रकार के यत्न करते हैं।

चौ.- **किए जतन मुनि जाहिं न पावै। माखन हित तेइ जनहि मनावै॥**
जब उन्ह आतम ममतहि पागी। भइ अधीर अति सब सुधि त्यागी॥

यत्न करके, भी मुनि जिन्हें प्राप्त नहीं कर पाते, वहीं भगवान माखन के लिये, भक्तों को मना रहे हैं। जब गोपियों की आत्मा ममता से भर गई, तब वे अत्यन्त अधीर हो सुध-बुध खो बैठी।

धरे दोन महि माखन केरे। ठाढ़ भई सब कान्हहि घेरे॥
पेमु मगन हिय मुख हरि नाऊँ। नर्ति लागि एहिबिधि अति चाऊ॥

फिर माखन के दोनें भूमि पर रखकर सब कन्हैया को घेरे खड़ी हो गई। उनके मुख में कन्हैया का नाम और मन प्रेममग्न हैं, इस प्रकार वे सब भी बड़े ही चाव से नृत्य करने लगी।

तन आतम उन्ह हरिमय होने। लखि एहिबिच कन्हँ अबरेहुँ दोने॥
बेगि सबनि एक थाल जवाँने। पुनि गनि निजहि सुफल मुसुकाने॥

उनकी आत्मा व शरीर कृष्णमय हो गए, इसी बीच कन्हैया ने सभी दोनें इकट्ठे करके, उतावली से एक थाल में जमा लिये। फिर स्वयं को सफल हुआ जानकर वे मुस्कुराए।

तदुप सकपट कान्हँ अतुराई। भागे तहँ तें दूम दबाई॥
बहुरि सखन्हँ बिच आइ बिराजे। लखि उन्ह ग्वालबाल अति राजे॥

तदुपरान्त कन्हैया कपटपूर्वक वहाँ से आतुर होकर भाग छूटे और आकर अपने सखाओं के मध्य विराजमान हो गए। उन्हें आ गया देखकर सारे गोप-बालक अत्यन्त प्रसन्न हो उठे।

इहाँ गुवालिन्ह जब दृग खोले। भई चकित बनेउ न कछु बोले॥
दोन कतहि जब तेहिं न सूझा। तब उन्ह कन्हहि मधुर छल बूझा॥

इधर जब गोपियों ने आँखें खोली, तो वे ऐसी चकित हुई कि उनसे कुछ भी कहते न बना। फिर जब कहीं पर भी उन्हें दोनें न दिखे, तब वे कन्हैया के मधुर कपट को समझ गई।

हिय बिचारि असि कन्हँ चतुराई। मुख एक दूजन्हि तकहि खिसाई॥

कन्हैया की इस चतुराई को विचारकर, वे लज्जित हो एक-दूसरे का मुख ताकनें लगी।

दोहा- **नाच देखावन मिस कपटि हमरेहि नाच नचाइ।**
गुपचुप दोन बटोरि सब लखु कस गयौ पराइ॥३७२॥

(फिर उन्होंने आपस में कहा कि,) नृत्य दिखाने के बहानें हमीं को नाच नचाकर चुपचाप हमारे सारे दोनें बटोरते हुए देखो तो! यह कन्हैया कैसे चुपचाप भाग गया?

चौ.- **कान्हँ जनमदिनु अकसर पाई। नंद गोप सब नेवते जाई॥**
पुनि मनाइ अति भव्य उछाहू। उन्ह सुभोज दीन्हा सब काहू॥

एक बार कन्हैया के जन्मदिन का अवसर पाकर नन्दरायजी ने स्वयं जाकर समस्त गोपों को निमन्त्रण दिया और बड़े भव्य उत्सव का आयोजन करके, सबको उत्तम भोजन कराया।

पुनि चउठे एक सभा बोलाई। कहा जोरि कर सब रुख पाई॥
बंधु महाबन उत्तम थाना। किन्तु होत इहँ उपद्रव नाना॥

फिर आँगन में सभा आयोजित करके, नन्दरायजी ने सबका रुख पाकर हाथ जोड़कर कहा- हे भाईयों! 'महावन' नामक यह स्थान उत्तम है, किन्तु यहाँ बहुत-से उपद्रव होते हैं।

आजु लगि त भा ईस सहाई। किन्तु भरोस संकटहि काई॥
जे उपाय अबहि न हम करिहीं। करमहीन लखि हरिहि बिसरिहीं॥

यद्यपि आज तक तो ईश्वर की कृपा रही है, किन्तु सङ्कट का क्या भरोसा? यदि अब भी हम कोई उपाय नहीं करेंगे, तो भगवान भी हमें निकम्मा समझकर त्याग देगा।

सुनि अस बचन गोप उपनंदा। परम सुजान भ्रात रहे नंदा॥
उठे कान्हँ कहँ केड़ उठाई। पुनि बोलेउँ सबिनय सिरु नाई॥

यह वचन सुनकर उपनन्द नाम के एक गोप जो परम बुद्धिमान थे और नन्दरायजी के भाई थे, कन्हैया को अपनी गोद में लेकर उठे और विनम्रतापूर्वक सबको सिर नवाकर बोले-

अह उतपातन्हँ एक निदाना। चलिअ अनत तजि यह अस्थाना॥
मम मत बिंदराबन सो थाना। जहँ सुपास सब सान्ति महाना॥

इन सब उत्पातों का उपाय एकमात्र यही है कि हम यह स्थान त्यागकर कहीं अन्यत्र चलें और मेरे मत में वृन्दावन ऐसा ही स्थान है, जहाँ परम शान्ति व समस्त सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

दोहा- **कहा बुधन्हँ बैकुंठ तें उत्तम सो अस्थान।**

अमित बिपिनजुत गिरि निकट द्रोनपुत्र सुखखान॥३७३॥

बुद्धिमान पुरुषों ने उस स्थान को वैकुण्ठ-लोक से भी उत्तम कहा है। उसी के निकट अनेक वनों से आवृत्त सुख की खान द्रोणनन्दन गोवर्धन पर्वत भी विद्यमान है;

चौ.- जहँ परीत बहु परम बिसाला। नवल घासजुत रह सब काला॥
अखयजला बह तहँ अति पासू। गाइन्हँ होइहि सहज सुपासू॥

जिस पर अत्यन्त विशाल और बहुत से चरागाह हैं, जो सब ऋतुओं में हरे-भरे रहते हैं। यमुना भी वहाँ निकट ही बहती है, जिससे गायों के लिये सहज ही उत्तम सुविधा हो जाएगी।

तातें एकहि मोर सुझाऊ। तहँहि बसाइअ अब नव गाँऊ॥
सुनि उपनंद बचन ब्रजराजा। हरषि राजि भै सहित समाजा॥

अतः मेरा एक ही सुझाव है कि अब नवीन गाँव वहीं बसाया जाय। उपनन्दजी के ये वचन सुनकर समस्त गोपों सहित नन्दरायजी हर्षित हो उठे और इस कार्य के लिये सहमत हो गए।

पुनि पयान हित गोपन्हि बाँधी। घर कइ बस्तु सब सकट लाधी॥
गुर हर गौरि गनेसहि हेरी। तुरत चले सब हरष घनेरी॥

फिर प्रस्थान के लिये गोपों ने गृहस्थी की समस्त वस्तुएँ बाँधकर, छकड़ों पर लाद दी और शिवजी, पार्वतीजी व गुरु के साथ गणेशजी को स्मरणकर, सब अत्यन्त हर्षित हो तुरन्त चले।

सकट बिसाल साजि एक सुन्दर। जसुदा सहित नंद भए तापर॥
तेहिं सवँ कन्हँ रहे मैयहि गोदा। करइ मात पितु संग बिनोदा॥

एक विशाल छकड़ा सजाकर यशोदाजी समेत नन्दरायजी उस पर सवार हुए। उस समय कन्हैया यशोदाजी की गोद में बैठे थे और मैय्या-बाबा से अनेक प्रकार का विनोद कर रहे थे।

दाउहि गोद लिए रोहिनि इत। आन सकट चढ़ि चलि हृदय मुदित॥
पाछहि गाँउ बृद्ध सिसु नारी। निज निज सकट चले मुद भारी॥

इधर माता रोहिणी भी दाऊ को गोदी में लिये एक अन्य छकड़े पर चढ़कर प्रसन्न मन से चली। उनके पीछे गाँव के बूढ़े, बच्चे और स्त्रियाँ भी अपने-अपने छकड़ों में बड़े आनन्द से चले।

गावत हरि गुन अति रस पागे। बिप्र समूह चलहि उन्ह आगे॥

विप्रगण बड़े प्रेम से श्रीहरि का गुणगान करते हुए उन छकड़ों के आगे चल रहा है।

दोहा- अति बिसाल गौबृन्द उन्ह बृष बृष बत्स सँघात।
हाँकि ग्वाल बहुतक चलहि उन्ह पाछे अतुरात॥३७४॥ (क)

बैलों, साँड़ों व बछड़ों के साथ ही, उन गोपों की गायों का विशाल समूह हाँकते हुए, बहुत से ग्वाले शीघ्रतापूर्वक उनके पीछे-पीछे चल रहे हैं।

घेरि सबहि दिसि बृंद सो धरे हाथ धनु बान।
रच्छत गोप चलहि अमित निरखत अति सउधान॥३७४॥ (ख)

उस सम्पूर्ण समुदाय को सब ओर से घेरकर हाथों में धनुष-बाण धारण किये, अनेक ग्वाले बड़ी सावधानी से मार्ग का निरीक्षण करके, उनकी रक्षा करते हुए चल रहे हैं।

चौ.- उन्ह अनुसरन करत बृषभानू। चले सगाँउ करन तहँ थानू॥
एहिभाँति नृप उभय समाजा। बिंदराबन महि आइ बिराजा॥

उन्हीं का अनुसरण करते हुए वृषभानूजी भी अपने गाँव सहित वृन्दावन में बसने चले। हे परीक्षित्! इस प्रकार वे दोनों गोप-समुदाय वृन्दावन की भूमि पर आ विराजे।

कछु दिनु माँझ रम्य मन भावा। नंदगाँव तहँ नंद बसावा॥
निकट सैल बृतसान तराऊ। भानु बसानेहुँ आपन गाँऊ॥

कुछ ही दिनों में नन्दरायजी ने वहाँ रमणीक और अपना मनभाया नन्दगाँव नाम का गाँव बसा लिया। पास ही के पर्वत वृहत्सानु की तराई में वृषभानुजी ने अपना गाँव बसाया।

अति रमनीक नाम बरसाना। चितए लग जे दुरग महाना॥
एहिबिधि सब बिन्दराबन आई। बसन लाग निज निज घर छाई॥

बरसाना नामक वह गाँव अत्यन्त रमणीक था, जो देखने में किसी बड़े भारी किले-सा जान पड़ता था। इस प्रकार सब गोप वृन्दावन आए और अपने-अपने घर बनाकर वही बसने लगे।

एक बार खेलत सखपालक। अलपजोर चितए अति बालक॥
अहहि मनहिं नहिं कवनि उमंगा। द्युतिबिहीन दृग मुखादि अंगा॥

एक बार सखावत्सल श्रीकृष्ण ने खेलते समय देखा कि उनके बालसखा बड़े ही दुर्बल हैं। उनके मन में कोई उत्साह नहीं है और उनके नेत्र, मुख आदि अङ्ग भी कान्तिरहित हैं।

चकित कान्हँ तब पूछा तेहीं। सखा अलपु अस किउँ तव देहीं॥
जब चरात तुम दिनु भरि धेनू। उन्ह दधि माखन भा तव ऐनू॥

तब कन्हैया ने चकित होकर उन्हें पूछा- हे सखाओं! तुम्हारे शरीर इस प्रकार क्षीण क्यों है? जब तुम सब दिनभर गायें चराते हो, तो उनके दहीं और माखन पर तुम्हारा भी अधिकार हुआ।

तातें मिलइ कि नहिं तें तोहीं। बेगि कहिअ तव चिंता मोहीं॥
सुनि मन्सुखा कहेउ अटसाई। कान्हँ नाहिं सो हमरेइ गाई॥

इसलिये वह तुम लोगों को मिलता है, या नहीं। शीघ्र ही बताओं, क्योंकि मुझे तुम लोगों की बड़ी चिन्ता है। यह सुन मन्सुखा ने उबासी लेकर कहा कि हे कन्हैया! वे गायें हमारी नहीं है।

हम अपरन्ह कइ गाइ चरावत। ताकर फल पआर पुनि पावत॥

हम तो अन्य लोगों की गायें चराते हैं और उसके बदले वेतन प्राप्त करते हैं।

दोहा- जदपि ग्वाल हम अहहि सख गाइ न हमरेइ तात।
चहिअ हमहि दधि खान यह निपट हास कइ बात॥३७५॥

हे सखा! यद्यपि हम ग्वाले हैं, किन्तु हमारे पिता के पास गायें नहीं हैं। इसलिये यह तो केवल हँसनें जैसी बात है कि 'हमें दहीं खाना चाहिये'।

चौ.- कहा कान्हँ अह एक उपाई। किए सबनि सक माखन खाई॥
जद्यपि लोभिनि ग्वालिनि सबुही। मुख माँगे तें देइ न कबुही॥

तब कन्हैया ने कहा- एक उपाय है, जिसे करने पर तुम सब माखन खा सकोगे। यद्यपि गोपियाँ बड़े लोभी स्वभाव की हैं, मुख से माँगनें पर तो वे कभी नहीं देंगी।

पै अति उत्तम एक उपाई। अजहूँ तें सूनेहि घर जाई॥
दुरि दुराइ प्रतिदिनु दधि चोरी। खात रहब हम सब बरजोरी॥

किन्तु एक उपाय बड़ा ही उत्तम है, वह यह कि आज से हम सब सूनें घरों में जाएंगे और छिपते-छिपाते प्रतिदिन दहीं चुरा-चुराकर बलपूर्वक खाया करेंगे।

एहिभाँति मिल माखन सबुही। कृस तनु तोर मोटपनु लहही॥
सुनि श्रीदामा कह खिखिआई। अहो बात तुअ भली बताई॥

इस प्रकार तुम माखन भी खा सकोगे और तुम्हारे दुर्बल शरीर पुष्ट भी हो जाऐंगे। यह सुनकर श्रीदामा ने उपहासयुक्त मुस्कान से कहा- वाह! कन्हैया! तुमनें ये बड़ी अच्छी बात बताई।

तोर नीक मत अचरन जैहीं। सुनहुँ कान्हँ तब होइहि ऐहीं॥
तिय हति मूसल कर हम भूसा। कर आरति दै दै लत घूँसा॥

तुम्हारे द्वारा दी गई इस उत्तम सलाह को जब हम करने जाऐंगे तब होगा यह कि गोपियाँ मूसल से मार-मारकर हमारा भूसा निकाल देंगी और लात घूँसों से हमारी आरती उतारेंगी।

धान तुल्य अति कूटि बहोरी। खरन्ह बैठारि सबनि बरजोरी॥
गाँउ हमार निकारिहि डोला। हँसि हँसि गोप मारि चल टोला॥

धान के समान बहुत अधिक कूट-पीटकर हम सबको बलपूर्वक गधों पर बैठाकर वे गाँव में हमारी शोभा-यात्रा निकालेंगी और साथ चलते हुए ग्वाले हमें हँस-हँसकर तानें मारेंगे।

दोहा- **सब कर अस दुरगति निरखि तुअ घर जैहिं पराइ।**
नील पिअर निज मुखन्हि हम इत उत फिरब दुराइ॥३७६॥

हम सबों की ऐसी दुर्गति देखकर तुम तो अपने घर भाग जाओगे और मार खाकर नीले-पीले पड़ चुके अपने मुखों को हम यहाँ-वहाँ छुपाते फिरेंगे।

चौ.- **जब चुपचाप करिहि सब काजा। तौ कस पकरिहि गोपि समाजा॥**
पुनि जे कबहुँ करत दधि चोरी। कत धराहुँ तब जैअहुँ दौरी॥

तब कन्हैया ने कहा कि जब हम सारा कार्य ही चुपचाप करेंगे, तो फिर गोपियाँ कैसे हमें पकड़ पायेंगी? और यदि दहीं चुराते हुए, कहीं पकड़े जाओ, तो भाग जाना।

तुअ संतत मम आश्रय रहऊ। मैं तव सब संकट लखि लहऊँ॥
अब जेइ जेइ चह माखन खाई। चलहि संग मम तजि कदराई॥

तुम तो निरन्तर मेरी शरण में रहो, मैं तुम्हारे सब सङ्कट देख लूँगा। अब जो-जो भी माखन खाना चाहते हैं, भय त्यागकर वे मेरे साथ चले।

हरषि कान्हँ सँग तब सब बृंदा। सून बीथि पैठेहुँ सानंदा॥
सदन एक सोधा पुनि सूना। बढ़त भयउँ उन्ह साहस दूना॥

तब ग्वालबालों का सम्पूर्ण समूह प्रसन्नमन से कन्हैया के साथ होकर आनन्दपूर्वक एक सूनी गली में प्रविष्ट हुआ। वहीं पर एक सूने घर को देखकर उनका साहस बढ़कर दुगुना हो गया।

गृहस्वमिनी गई रहि पानी। अवसर एहि अति उत्तम जानी॥
आए सचुप भवन पछुआरे। पट उघारि भीतर पइसारे॥

उस समय गृहस्वामिनी जल लाने (यमुनातट पर) गई हुई थी, इसे अत्यन्त उत्तम अवसर जानकर वे सब चुपचाप उस घर के पिछवाड़े में आ गए और द्वार खोलकर भीतर घुस गए।

रहे तहाँ बहु घट दधि केरे। टूटि परे लखि कन्हँ बल प्रेरे॥

वहाँ दहीं के कई घड़े थे, जिन्हें देखते-ही कन्हैया के बल से, वे सब उन पर टूट पड़े।

दोहा- खान लगे प्रमुदित मनहिं लपकि झपटि अतुराइ।
मनहुँ जनम के छुधित केउ गए सुभोजन पाइ॥३७७॥

वे लपककर और झपटते हुए, अत्यन्त प्रसन्न मन से दहीं खाने लगे, मानों जीवन-भर के कोई भूखे उत्तम भोजन पा गए हों।

चौ.- खाइ खाइ जब सकल अघाने। लगे उदरतल हाथ फिराने॥
भा मन चीता अज सबही का। दधि माखन खाएहुँ अति नीका॥

जब खा-खाकर अघा गए, तब सभी अपने पेट पर हाथ फिराने लगे और बोले- आज सबको मनचाहा आनन्द मिला, क्योंकि सबनें जी-भरकर दहीं और माखन खाया।

तेहिं छिन कन्हहि सूझि चपलाई। तापर कत तें लकुटी पाई॥
एक एक करि सब घट फोरे। नाचि लाग बालक चहुँ ओरे॥

उसी क्षण कन्हैया को चपलता सूझी, इस पर उन्हें कहीं से लकड़ी मिल गई। तब उन्होंने एक-एक करके, सारे घड़े फोड़ दिए। यह देख सारे बालक चारों ओर खड़े होकर नाचनें लगे।

दधि माखन सब चौके छावा। ऐतनेहुँ अजिर सबद केउ पावा॥
तब आतुर भयभीत अपारा। चंपत भै सब पाछिल द्वारा॥

(घड़ों का) सारा माखन रसोई में फैल गया, इतनें में ही उन्हें आँगन में किसी के आने का शब्द सुनाई पड़ा। तब अत्यन्त भयभीत होकर वे सभी शीघ्रतापूर्वक पिछले द्वार से भाग छूटे।

आइ जुरे सब कज्जलि कूला। सोह तेन्ह बिच मंगलमूला॥
बहुरि परसपर कह बिधि नाना। जस उपद्रव तहँ कीन्ह महाना॥

वे यमुनातट पर आ जुटे; श्रीकृष्ण उनके मध्य सुशोभित हो रहे थे। उस गोपी के घर सबनें जैसे महान उपद्रव किया था, फिर वे सब आपस में उसकी अनेक प्रकार से चर्चा करने लगे।

दोहा- तेहिं सुनि हरि बिहँसे हृदय प्रगट न कीन्ह बखान।
मनहुँ सुतहिं तोतर सबद सुनि पितु मुदहि महान॥३७८॥

उस चर्चा को सुनकर भगवान श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष में कुछ भी नहीं कहा और मन ही मन हँसनें लगे, जैसे पुत्र की तोतली वाणी सुनकर पिता महान आनन्द प्राप्त करता है।

चौ.- दूसर दिनु सब संग मुकुंदा। सून निरखि गै सदन सुनंदा॥

देखेहुँ तहँ जब माखन छीके। जिअँ ललचान लगे सबही के॥

दूसरे दिन बालकों के साथ बालमुकुन्द सूना देखकर सुनन्दा के घर जा घुसे। वहाँ जब उन्होंने देखा कि माखन का घड़ा छीके पर रखा हुआ है, तब सभी का मन ललचाने लगा।

कवन उपाय न सूझेहुँ जबहीं। दाऊ आनि ओखरि तबहीं॥
जापर चढ़ि कन्हँ दोनि उतारी। वरति लाग दधि बारी बारी॥

इस प्रकार जब उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा, तब बलदाऊ वहाँ पड़ी हुई ओखली उठा लाए, जिस पर चढ़कर कृष्ण ने मटकी उतार ली और बारी-बारी सबको दहीं बाँटनें लगे।

खाएहुँ कछु दधि कछु तनु छावा। लखि झरोख कपि ताहिं चलावा॥
तहँ तें सब दूसर घर गयऊ। आतुर माखन खोजत भयऊ॥

कुछ माखन स्वयं खाया, कुछ अङ्गों में लग गया और कुछ को झरोखे में बैठे बन्दरों की ओर चला दिया। फिर वे वहाँ से दूसरे घर गए और शीघ्रता से माखन खोजनें लगे।

पै नवनीत जब न तहँ पावा। ग्वाल बृन्द हिय परम खिझावा॥
रीते दधि घट बेतन्हि तोरे। सजल रहे कछु तदपि न छोरे॥

किन्तु जब वहाँ माखन न मिला, तो वे मन में अत्यधिक चिढ़ गए और उन्होंने लकड़ियों से दहीं के सारे रिक्त घड़े फोड़ दिये। उनमें कुछ घड़े जल के थे, किन्तु उन्हें भी नहीं छोड़ा।

भाजन गहि गहि महि ररकाए। खोलि बच्छ बाहिज रपटाए॥

बर्तन उठाकर भूमि पर लुड़का दिये और बन्धन खोलकर बछड़ों को बाहर भगा दिया।

दोहा- **सखा गोपि यह लोभिनि दीन्ह एहि दधि बेचि।**
अस कहि छज्ज दुरान सब पट खूँटिन्ह तें खैंचि॥३७९॥

हे सखाओं! ये गोपी बड़ी ही लोभिन है, इसनें दहीं बेच दिया है, ऐसा कहते हुए फिर कन्हैया ने खूँटियों पर टँगे सारे वस्त्र खींच लिये और ले जाकर घर के छज्जे पर छिपा दिये।

चौ.- **तदुप चली मंडलि हरषाई। तीजे गृह पैठी चुप लाई॥**
छीका तहँ अति उन्नत बूझा। हरिहि उपाउ न जब केउ सूझा॥

तदुपरान्त हर्षित हुए ग्वालबालकों की वह टोली चुपचाप तीसरे घर जा घुसी। वहाँ दहीं का छीका बहुत ऊँचाई पर टँगा हुआ जानकर जब कन्हैया को कोई उपाय नहीं सूझा,

बृत्ताकृति तब कछुन्ह उबाई। दीन्ह कछुन्ह उन्ह काँध चढ़ाई॥
चरन जतन करि आपन साधे। कछु पुनि जाइ चढ़े उन्ह काँधे॥

तब कुछ बालकों को वृत्त के आकर में खड़ा करके पुनः कुछ को (उन्होंने) उनके कन्धों पर चढ़ा दिया। फिर यत्नपूर्वक पैर जमाकर कुछ अन्य बालक उनके कन्धों पर जा चढ़े।

एहिबिधि सबन्हँ खंब सम भाँजे। कान्हँ सिखर उन्ह जाइ बिराजे॥
छुएहुँ छीक पुनि घट आराती। खाइ कहन लागे एहिभाँती॥

इस प्रकार सबको खम्भे के आकार में व्यवस्थित करके, कृष्ण उनके ऊपर चढ़ गए। फिर गोपियों के घड़ों के शत्रु श्रीकृष्ण ने घड़े को पकड़ लिया और दहीं खाते हुए बोले-

माखन अहहि मधुर अति भाई। सुनि बालक गै अति ललचाई॥
जे न करिहि अब मम सन ढीठा। तिन्हहिं देहुँ केवल यह मीठा॥

हे भाई! यह माखन तो बड़ा ही मधुर है, यह सुनते ही बालक अत्यधिक ललचा गए। उन्होंने पुनः कहा- मेरे सन्मुख जो ढिठाई नहीं करेगा, मैं उसी को यह स्वादिष्ट माखन दूँगा।

ऐतनेहुँ गृहस्वामिनि आई। देखि उपद्रव परम रिसाई॥
तदपि कहा तेहिं मुख तें कछुहि न। ढारेहुँ पटहि दबाइ धुनि चरन॥

इतनें में ही घर की स्वामिनी आ गई और उनका उपद्रव देख अत्यधिक कुपित हो उठी; तब भी कुछ न कहकर अपनी पदचाप दबाते हुए, उसनें भीतर से द्वार बन्द कर लिया।

पुनि गुपचाप बैंत एक आनी। सहसा लगि ग्वालन्हँ बमकानी॥

फिर चुपचाप एक लकड़ी लाकर, वह अचानक ही उन ग्वालबालों को पीटने लगी।

दोहा- **पाइ ग्वाल सहसाक्रमन हहरत चले पराइ।**
रहे काँध उन्ह जेइ जेइ परे सबनि महि आइ॥३८०॥

इस प्रकार अचानक हुए आक्रमण से घबराकर वे बालक भाग चले। उस समय जो-जो सखा उनके कन्धों पर चढ़े हुए थे, वे सभी भूमि पर आ गिरे।

चौ.- **जब उठि भजे छीक कन्हँ टाँगे। सभय परे परतहि उठि भागे॥**
उभयहि छिन सब मोद नसावा। चकित सबनि केउ बूझ न पावा॥

जब वे उठकर भाग छूटे तो छीके पर लटके कन्हैया भी भयवश गिर पड़े और गिरते ही वे भी उठ भागे। दो ही क्षण में सारा आनन्द नष्ट हो गया। सब चकित थे, कोई भी समझ न सका।

भागे इत उत सुनहिं न बोले। बन्द निरखि पट सब भय डोले॥
ठाढ़ रहसि किन परधन लोभी। घूँसे खात परत कर जो भी॥

वे इधर-उधर भाग चले, न कोई बोलता है, न सुनता है। द्वार को बन्द देख भयवश सभी विचलित हो उठे (कि अब हमारा क्या होगा?)। (गृहस्वामिनी ने कहा-) रे पराये धन पर मन चलानेवालों! खड़े क्यों नहीं रहते? उस समय जो भी उसके हाथ लगता, वही घूँसे खाता है।

तद्यपि चूँ न करइ कोउ ग्वाला। भजे मूष इव जन मुदपाला॥
मुक्क चपेट खाहिं सब कोई। चट चट धमा धम्म रव होई॥

इतने पर भी किसी ने चूँ तक न की। भक्तों के आनन्ददाता श्रीकृष्ण मूषक की भाँति भाग चले। सब मुक्के और थप्पड़ खा रहे हैं, जिससे वहाँ चटाचट और धमाधम की ध्वनि होने लगी।

गोपि संधि निज जिन्हँ जिन्हँ चीन्हें। पीठ कपोल एक उन्हँ कीन्हें॥
ऐहिभाँति सब पूजा पाए। जतपत भाजि जमुन तट आए॥

गोपी ने जिस-जिसको भी अपने निकट पाया, (मार-मारकर) उसकी पीठ और कपोल एक कर दिये। इस प्रकार अपनी पूजा (पिटाई) करवाकर वे सब जैसे-तैसे करके भागकर यमुना के तट पर आए।

दोहा- **मुख बनाइ करि आह उह कह सिदाम कटि टेक।**

मैं बरजेउ अरु ममहि सिरु घूँसे परे अनेक॥३८१॥

(उस समय) भूमि पर कमर टिकाकर मुँह बनाते हुए आह्-उह् करके, श्रीदामा ने कहा- हे भाई! चोरी करने से मैं रोक रहा था और मेरे ही सिर पर बहुत से घूँसे पड़ गए।

चौ.- मैं अदोष तद्यपि गा मारा। हाड़हि लगि दूखइ तनु सारा॥
लउँ प्रतिघात न एकहि छोरौं। गोपिन्हँ घरन्हि पैठि घट फोरौं॥

मैं तो निर्दोष था, फिर भी मुझे पीटा गया। हड्डियों तक मेरा सारा शरीर दुःख रहा है। मैं प्रतिशोध लूँगा, एक को भी नहीं छोड़ूँगा, घरों में घुस-घुसकर गोपियों के घड़े फोड़ूँगा।

सुनि कह एक मरइल तिन्ह जैसा। मूढ़ प्रलाप करत क्यों ऐसा॥
ऐते पर कि उदर नहिं भरेऊँ। भूलि गवा मूसर कस परेऊ॥

यह सुन उसी के समान मार खाया एक बालक बोला- रे मूढ़! ऐसा प्रलाप क्यों करता है? क्या इतनें पर भी तेरा पेट नहीं भरा? भूल गया कि कैसे मूसल की मार पड़ी थी?

एहि प्रकार तजि माखन आसा। निज निज घर गवने हिय त्रासा॥
पुनि दूसर दिनु जमुनहिं तीरा। आइ बैठि गै होइ गभीरा॥

इस प्रकार माखन खाने की आशा छोड़कर वे सब अपने-अपने घरों को चले गए। दूसरे दिन वे सभी पुनः यमुनाजी के तट पर आकर गम्भीर होकर चुपचाप बैठ गए।

रहि पाए कछुकहि छिन मौना। नयन लाग भँवि पुनि दधि दोना॥
तब उठि चले सबहि हरषाई। बिगत बम्पुजा हास उड़ाई॥

किन्तु वे बिना बोले कुछ ही त्तण रह सके और उनके नेत्रों के आगे दहीं से भरे वही दोनें पुनः घूमनें लगे। तदुपरान्त पिछली पिटाई को हँसी में उड़ाकर वे सब चले और

दोहा- चन्द्रप्रभउँ घर पैठेहुँ एक रह्यो पट पास।
लखि बिसाल घट छीकेहुँ बीति चपेटन्हि त्रास॥३८२॥

चन्द्रप्रभा नाम की एक गोपी के घर जा घुसे; रखवाली के लिये एक बालक द्वार पर ही डट गया। जब उन्होंने दहीं से भरा विशाल घट देखा, तो वे चपेटों की मार भूल गए।

चौ.- घट बिसाल अस लखि कह दाऊ। उतरि सकहि सो करिअ उपाऊ॥
जदपि छुअहि जनि सकहिं उतारी। अह बिसाल होइहि अति भारी॥

घड़ा बड़ा देखकर दाऊ ने कहा- यह जैसे भी उतर सके, वही उपाय करो। यद्यपि इस तक पहुँच तो जाऐंगे, किन्तु उतार नहीं पायेंगे। यह बहुत बड़ा है, इसलिये भारी भी होगा।

सुनत कान्हँ एक आनेहुँ दंडा। कीन्ह बिबर परतारत हंडा॥
धार उमगि दधि लखि अतुराई। गहि लग बालक पौस अड़ाई॥

यह सुनते-ही कन्हैया लकड़ी ले आए और मारकर मटके में छेद कर दिया, जिससे दहीं की धारा उमड़ चली। यह देख बालक शीघ्रता से दौड़े व अञ्जुली अड़ाकर दहीं पीनें लगे।

तेहिं सवँ नखसिख लौ दधि छाए। सबनि हंस सम परइ लखाए॥
जब अघान कान्हहिं गुन गाई। किलकत उद्धम लाग मचाई॥

उस समय नख से चोटी तक दहीं में भीगे वे सब हंसों के से प्रतीत होने लगे। जब दहीं पीकर अघा गए, तब कन्हैया के गुण गाते हुए, किलककर सभी उत्पात मचानें लगे।

एहिबिधि नित उपद्रव उपजाई। सब मिलि गोपिन्हँ लाग सताई॥
अखिल गाँउ तब परेउँ ढँडोरा। माखनचोर अहहि नँदछोरा॥

इस प्रकार नित्य उपद्रव खड़ा करके, वे सब मिलकर गोपियों को सतानें लगे। तब सम्पूर्ण नन्दगाँव में यह चर्चा छा गई कि नन्दरायजी का पुत्र माखनचोर है।

दोहा- घालि संग ब्रज बालकन्हँ कान्हँ कीन्हि लघु सेन।
सून लखहि जहँ पैठ सब अलपहि दधि बकसे न॥३८३॥

व्रज के बालकों को साथ लेकर कन्हैया ने एक छोटी-सी सेना बना ली और जहाँ भी सूना देखते वे सब वहीं घुस जाते और उस स्थान पर थोड़ा-सा भी दहीं नहीं रहनें देते।

चौ.- सो दिनु गत अति जतन कराई। धरि लगि गोरस गोपि दुराई॥
कोउ छीक अति ऊपर राखहि। केउ गुपुतचर इव दुरि चाखहि॥

उस दिन के उपरान्त गोपियाँ अनेक यत्न करके, दहीं, मक्खनादि छिपाकर रखनें लगी। कोई गोपी छीकों को बहुत ऊँचा रखती, तो कोई गुप्तचरों के समान छिपकर देखती थी।

कोउ रच्छहि सगरूअ बस्तुन्हँ धरि। लख केउ सगरूअ घट दिसि मुख करि॥
कोउ घनस्यामहि आवत पाई। घटन्हँ अजिर धरि देख दुराई॥

कोई गोपी भारी-भारी वस्तुओं से ढँककर दहीं की रक्षा करती थी, तो कोई गर्वपूर्वक घड़ों की ओर मुख करके, देखती रहती थी और कोई कन्हैया को आते देखकर दहीं के घड़ों को आँगन ही में रखकर स्वयं छिपकर देखती और

पुनि जब दधि गहि लाग कन्हैया। दूरहि तें उन्ह लेइ बलैया॥
जब अघाइ तब चल करि जूहहि। कह काल्हपि घट अजिरहि रहही॥

जब कन्हैया माखन खाने लगते, तब दूर से ही उनकी बलैया लेती थी। जब अघाकर दल सहित वे चलने लगते, तब सामने आकर कहती थी कि कल भी घड़ा आँगन में ही रहेगा।

लखि तेहिं सभय ग्वाल चलि भागहि। बूझ पेमुनिधि तिन्ह अनुरागहि॥
अकसर घर एक सून निहारा। मुदित चोरदल तहँ पइसारा॥

उसे देखते ही ग्वालबाल भयभीत हो भाग चलते थे, किन्तु प्रेमसिन्धु श्रीकृष्ण उसके प्रेम को समझ जाते थे। एक बार एक सूने घर को देख चोरों का दल प्रसन्नतापूर्वक उसमें जा घुसा।

पुनि सब खात रहे दधि जबहीं। द्वार आइ गृह स्वामिनि तबहीं॥
ते अति चतुर प्रभावति नामहि। गुपचुप जाइ धरेहुँ तेहिं स्यामहि॥

फिर जब कन्हैया के साथ सभी माखन खा रहे थे, उसी समय गृहस्वामिनी द्वार पर आ पहुँची। प्रभावती नाम की वह गोपी बड़ी चतुर थी। उसनें चुपचाप कन्हैया को जा पकड़ा।

पुनि कह बिगत बहुत दिनु आजा। गा धराइ चोरन्हँ सिरताजा॥
अवचट कान्हँ निकट तेहिं पाई। कहेहुँ भोरपनु वदनु देखाई॥

उसनें कहा- बहुत दिनों के पश्चात् चोरों का सरदार आज पकड़ा गया। उसे इस प्रकार अचानक ही अपने निकट पाकर कन्हैया ने अपने मुख पर भोलापन दिखाते हुए कहा कि,

बीथि देखि मोहि खेलत माई। तोरेहिं सुत इहँ लीन्ह बोलाई॥
आइ इहाँ पुनि देखेउँ काहा। तव दधि घट परि पिपिलि अगाहा॥

हे मैय्या! मुझे गली में खेलता हुआ देखकर तुम्हारे पुत्र ने ही यहाँ बुला लिया था। यहाँ आकर मैंने क्या देखा कि तुम्हारे दहीं के घड़े में बहुत सी चींटियाँ पड़ गई है।

काढ़ि रहा तातें मैं सोहीं। एतनेहुँ आइ लखेहु तुअ मोहीं॥
पुनि मोहि चोर गनेहु भरमाई। अब मैं अधिक कहौं तहि काई॥

इसलिये मैं उन्हें ही दहीं से अलग कर रहा था कि इतनें में ही तुमनें आकर मुझे देख लिया और भ्रमवश मुझे ही चोर समझ लिया। अब इससे अधिक मैं तुम्हें क्या कहूँ?

सुनत सरल चातुरिजुत बानी। गोपि चकित अति भइ मुसुकानी॥

उनकी ऐसी सरल, किन्तु चतुराई से भरी वाणी सुन अत्यन्त चकित हुई, वह मुस्कुरानें लगी।

दोहा- **पुनि कह तजहुँ न दंड बिनु भलेहि बनावहु बात।**
जसुदहि कर तोहि मेलि अज पुरवउँ पाछिल घात॥३८४॥

फिर उसनें कहा कि कन्हैया तुम भले ही बातें बनाओ, किन्तु आज तुम्हें दण्ड दिये बिना नहीं छोड़ूँगी। तुम्हें यशोदा बहिन के हाथ सौंपकर मैं पिछली बात का बदला लूँगी।

चौ.- **डाटि कहेहु कन्हिआँ तब तेहीं। लखि सुराज अस धौंसहि केहीं॥**
मोहिं चन्द्रावलि बोलि पठावा। तिन्ह घर बूझि इहाँ मैं आवा॥

तब कृष्ण ने डाँटते हुए कहा- अपनी चलती देखकर तुम इस प्रकार किसे धौंस दे रही हो। मुझे तो चन्द्रावली (गोपी) ने बुला भेजा था, अतः उसका घर समझकर मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ।

अब एहि माँझ कवन मम दोषा। जे एहिभाँति करइ तुअ रोषा॥
किन्तु गोपि सुनि एकौ नाहीं। नंदभवन दिसि चलि गहि ताहीं॥

अब इसमें मेरा क्या दोष है, जो इस प्रकार तुम (मुझ पर) कुपित हो रही हो? किन्तु प्रभावती ने उनकी एक न सुनी और उन्हें पकड़कर नन्दभवन की ओर चल पड़ी।

तेहिं सवँ नंद मिले मग माहीं। गोपि कहा उन्ह तें कछु नाहीं॥
अपितु सकुचि मुख अंचलु काढ़ा। एहिबिच कन्हँ प्रभाउ निज बाढ़ा॥

उस समय मार्ग में नन्दरायजी मिले, किन्तु उसने उन्हें कुछ भी नहीं कहा और सकुचाकर मुख को आँचल से ढँक लिया। इसी बीच कन्हैया ने अपनी माया का विस्तार किया और

सोउ गोपिहि सुत बपुष बनाई। चले संग अतिसय गरुआई॥
पदधुनि करि कन्हँ चल अतुराई। जेहिं सुनि गोपि कहा अचराई॥

उसी के पुत्र का शरीर धरकर बड़े ही गर्व से उसके साथ चले। कन्हैया उस समय पैरों से ध्वनि करते हुए बड़ी उतावली से चल रहे थे, जिसे सुन गोपी ने चकित होकर कहा-

हरित घास जिमि बलि पसु चरही। कान्हँ ताहिं सम तू आचरही॥

अरे कान्हा! जैसे बली पशु हरी-हरी घास चरता है, तू भी वैसा ही आचरण कर रहा है।

दोहा- टेरि जसोदहि कहेहुँ पुनि नंदभवन सन जाइ।
दधि चोरत रंजित करन्हँ तव सुत मैं गहि लाइ॥३८५॥

फिर उसने नन्दभवन के सन्मुख जाकर यशोदाजी को पुकार कर कहा कि अरी यशोदा बहिन! दहीं चुराते हुए तुम्हारे पुत्र को मैं आज रँगे हाथों पकड़ लाई हूँ।

चौ.- तब जसुदा घर बाहेर आई। पुनि हँसि परि देखतहि ठठाई॥
की तुअ बावरि भई प्रभावति। जे मम तनयहि दोष लगावति॥

उसकी पुकार सुनकर यशोदाजी द्वार पर आई और देखते-ही ठहाका मारकर हँस पड़ी और बोली अरी प्रभावती! क्या तू बाँवरी हो गई है, जो मेरे पुत्र पर दोष लगा रही है?

प्रथम चोर मुख फिरि लखि लेहूँ। तदुप उराहन कन्हँ कर देहूँ॥
सुनि तेहिं फिरि देखा बालक मुख। बिस्फारित रहि गै तिन्ह दुहुँ चख॥

पहले मुड़कर चोर का मुख तो देख ले, तत्पश्चात् मुझे कन्हैया का उलाहना देना। यह सुनकर उसनें मुड़कर बालक का मुख देखा, तो उसकी दोनों आँखे फटी-की फटी रह गई।

ते त रहा ताकरही ढोटा। मनहि समान न अचरज मोटा॥
नंदरानि इत कन्हहिं पुकारा। निकसे तेपि करत किलकारा॥

वह तो उसी का पुत्र था। तब उसे ऐसा आश्चर्य हुआ, जो उसके मन में समाया ही नहीं। इधर यशोदाजी ने कन्हैया को पुकारा, तो वे भी किलकारी मारते हुए द्वार पर आ गए।

निरखि गोपि चकरानि अगाही। सूझ न होइ रहा यह काही॥
सकुचबस्य तिन्ह ढरेहुँ सीसा। मंद मंद हँसि लग जगदीसा॥

यह देख वह गोपी अत्यन्त चकरा गई। उसे समझ में ही नहीं आ रहा था कि ये सब क्या हो रहा है? सङ्कोचवश उसका सिर झुक गया और जगदीश्वर श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुस्कुरानें लगे।

धरे सीस तब अचरज भारा। चलि जुझारु जोधा जनु हारा॥

तब सिर पर आश्चर्यरूपी भार लिये, वह चली, जैसे कोई जुझारू योद्धा हार गया हो।

दोहा- नरपति जे बल आपने मायपतिहि गहि चाह।
एहि गोपि सम भूलि तेइ उरझहि मोह अगाह॥३८६॥

हे परीक्षित्! जो मनुष्य अपने बल पर मायापति भगवान को प्राप्त करना चाहता है, वह मनुष्य भी इस गोपी के समान ही अगाध भ्रम में उलझ जाता है।

चौ.- एक दिनु जननि दुहुन्हँ अन्हवाए। पेमु सहित निज हाथ जिवाँए॥
तेहिं सवँ नटखट लै रस दोना। किलकि चले मैय्या लख मौना॥

एकदिन मैय्या ने दोनों को स्नान कराकर अपने हाथों से प्रेमपूर्वक भोजन कराया। उस समय नटखट कन्हैया माखन का दोना उठाकर किलकते हुए भाग छूटे, मैय्या चुपचाप देख रही थी।

खान लगे इत द्वारहुँ जाई। हरषि मातु पाछे चलि आई॥
तहँ मनिजटित रहे बहु खम्बा। देखि एक थल कन्हँ निज बिम्बा॥

इधर द्वार पर आकर वे दोनें से माखन खाने लगे। मैय्या भी हर्षित हुई उनके पीछे-पीछे वहीं आ गई। वहाँ मणियों से जड़े बहुत-से खम्भे थे, जिनमें से एक में अपना बिम्ब देख कन्हैया

चकित बिचारि लाग हिय माहीं। यह अलखित बालक को आहीं॥
बिम्बहि कहा सखा रहु ठारे। आनौं माखन खान तुम्हारे॥

चकित होकर विचार करने लगे कि यह अपरिचित बालक कौन है? फिर उन्होंने उस बिम्ब से कहा कि हे सखा! तनिक ठहरो। मैं तुम्हारे लिये भी माखन लेकर आता हूँ।

जननि निकट तेहिं समय दुराई। लखि लगि सुतहि ललित चपलाई॥
जदपि नेहबस होत अधीरा। सुतहिं दुलारन पै धर धीरा॥

उस समय मैय्या निकट ही छिपकर लल्ला की मनोहारिणी और सुन्दर चपलता को देखने लगी। यद्यपि वे स्नेहवश अधीर हो लल्ला को दुलारना चाहती है, किन्तु धैर्य धर लेती है।

सो.- लिए फिरे पुनि द्वार इत माखन कछु हाथ कन्हँ
उन्ह लखि परे अपार खम्बमनिन्हँ महुँ बिम्ब पै॥॥

इधर थोड़ा सा माखन लेकर कन्हैया पुनः द्वार पर आ गए, किन्तु उस समय खम्भों पर जड़ी हुई मणियों में उन्हें अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई पड़े।

चौ.- लखि उन्ह भा अचरज अति भारी। नटखट तब कहि लाग बिचारी॥
मैं जब लौ गयऊ दधि लाने। रे सयान तुअ सखन्हँ बोलाने॥

यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उन नटखट कन्हैया ने विचार कर कहा कि रे सयाने! मैं जब तक माखन लेनें गया, तब तक तुमनें अपने सखाओं को भी बुला लिया।

बूझि गयउ जे तव उर अहई। मिलि तुअ सब मुअँ लूटन चहई॥
अबहि जौ न सब गए पराई। बेंतहि सबन्हौं देब पजाई॥

तुम्हारे मन में जो है, वह मैं समझ गया। तुम सब दुष्ट मुझसे माखन लूटना चाहते हो। किन्तु यदि तुम इसी समय यहाँ से नहीं भागे, तो लकड़ी लेकर सबकी पिटाई कर दूँगा।

अस कहि नटखट गए रिसाई। लगे बिम्ब सन आँखि देखाई॥
अमित आँखि तब लखि परि ताहीं। फिरि तेन्हहिं जे लागि डेराहीं॥

ऐसा कहकर नटखट कन्हैया चिढ़ गए और अपने ही प्रतिबिम्बों को आँखे दिखाने लगे, तब (परिणाम में) उन्हें बहुत सी आँखें दिखाई पड़ी, जो पलटकर उन्हें ही डराने लगी।

सभय चौंकि तब कन्हँ चुप भयऊँ। ललितकेलि जननिहिं मुद दयऊँ॥
साहस करि पुनि घूँसउ ताना। तब उन्ह लखि परि मुठिका नाना॥

तब भयभीत हुए कन्हैया चौंककर चुप हो गए। उनकी मनोहर लीला ने मैय्या को आनन्दित कर दिया। उन्होंने पुनः साहस करके, बिम्बों पर घूँसा ताना, तब उन्हें अनेक घूँसे दिखाई पड़े।

ऐतनेहुँ गरि गा गरुअ बिसाला। अति हँहरान मनहिं नँदलाला॥
मैय्या मैय्या कहि पुनि भागे। आइ तुरत मथारि उर लागे॥

इतनें में ही उनका विशाल गर्व चूर हो गया; नन्द के वे पुत्र मन में अत्यधिक घबरा गए। फिर मैय्या-मैय्या कहते हुए, वहाँ से भाग छूटे और आकर तुरन्त मैय्या के हृदय से लिपट गए।

दोहा- भयबस मुख भा स्वेदमय कछु न कहा तेहिं काल।
भगतन्हँ सुख नृप कीन्ह निज कृत प्राकृत जगपाल॥३९७॥

भय के मारे उनके मुख पर पसीना आ गया, उस समय उन्होंने कुछ नहीं कहा। हे परीक्षित्! भक्तों के सुख के लिये श्रीकृष्ण ने अपने कार्य सामान्य बालकों के-से कर लिये।

चौ.- एहिबिधि दिनु दुइ चारिक बीता। कत न कान्हँ चोरेहुँ नवनीता॥
इहइ बिचारि गोपि अकुलाई। मिलि सँजोगबस एकौ ठाई॥

इस प्रकार दो-चार दिन बीतने के उपरान्त भी कन्हैया ने कहीं माखन नहीं चुराया। इसी बात का विचार करके, व्याकुल हुई गोपियाँ संयोगवश एक स्थान पर आकर एकत्र हो गई।

पुलकित हृदय हेरि दुहुँ भ्राता। सब करि लागि परसपर बाता॥
दिनु बहु गै बल कान्हँ न आवा। दधि सगरौ छीकन्हि बटरावा॥

पुलकित मन से उन दोनों का स्मरण करके, वे आपस में बातें करते हुए कहने लगी- बहुत दिन बीत गए, किन्तु दाऊ व कन्हैया नहीं आए। सारा दहीं छीकों पर ही बटरा गया।

अब त तेन्ह कइ दरसन चाहा। दृग अरु हृदयहि लागिसि दाहा॥
आलि करिअ अब सोइ उपाऊ। मिल नटखटन्ह दरस मनभाऊ॥

अब तो उसके दर्शनों की इच्छा नेत्रों और हृदय दोनों को जलाने लगी है। हे आली! अब वही उपाय किया जाय जिससे दोनों नटखट भाईयों का जी भरकर दर्शन मिल सके।

कोउ कहा हम सब मिलि जैहीं। दुहुँन्ह उराहन जसुदहि देहीं॥
इहि मिस मिलिहि दरस उन्ह केरा। होइ आतमहि मोद घनेरा॥

किसी ने कहा- हम सब मिलकर जाए और यशोदा को दोनों की करतूत का उलाहना दें। इसी बहानें उनका दर्शन हो जायेगा और हमारी आत्मा को महान आनन्द प्राप्त होगा।

ऐहिभाँति हिय किए बिचारा। गोपि आइ जुरि जसुमति द्वारा॥

मन में इस प्रकार विचारकर, वे गोपियाँ यशोदाजी के द्वार पर आकर एकत्र हो गई।

दोहा- नंदरानि तेहिं समय नृप अजिर कूटि रहि धान।
निकटहि किलकत खेलि रहे चपल उभय सुखखान॥३९८॥

हे परीक्षित्! उस समय नन्दरानी भवन के आँगन में धान कूट रही थी और उनके निकट ही सुख की खान वे दोनों चञ्चल बालक किलकारी मारते हुए खेल रहे थे।

चौ.- गोपिन्हँ आवत लखि दुहुँ भाई। भवन माँझ दुरि गए पराई॥
इत जसुदा उन्ह आवत पाई। चकित लागि करि उन्ह अगुआई॥

गोपियों को आती हुई देखकर वे दोनों ही भाई वहाँ से भागे और भवन के भीतर जा छिपे। इधर यशोदाजी उन्हें आती हुई जानकर चकित होकर उनकी अगवानी करने लगी।

पुनि उन्ह कुसल पूछि नंदरानी। मुदित मनहि आँगन लै आनी॥

सखी आज एहिबिधि दल साजी। कवन काज इत आइ बिराजी॥

तत्पश्चात् उनकी कुशल पूछकर नन्दरानी उन सबको प्रसन्नमन से घर के आँगन में ले आई बोली- हे सखियों! इस प्रकार समूह बनाकर आज किस कार्यवश इधर आई हो?

कन्हमथारि जे तुअ न खिझावहिं। तो हम निज आगवन जनावहिं॥
सुनि तब उन्ह कहेउ अचराई। खिझौं न निर्भय देहु जनाई॥

अरी कन्हैया की मैय्या! यदि क्रोध न करो तो हम अपने आने का कारण कहें। यह सुनकर उन्होंने चकित होकर कहा- मैं क्रोध नहीं करूँगी, तुम निडर होकर मन की बात बताओ।

तब कहेहुँ कोउ अति मृदु बानी। कान्हँ सिकाइत लै हम आनी॥
सखी गाँउ यह रम्य महाना। किन्तु भयउँ दुखमय इहँ थाना॥

तब किसी गोपी ने बड़ी ही कोमल वाणी से कहा- हम सब कन्हैया की शिकायत लेकर आई हैं। हे सखि! यह गाँव बड़ा ही रमणीय है, किन्तु यहाँ रहना अब दुःखमय हो गया है।

होत इहाँ नित नव उतपाता। तोरहि तनय अहहि जिन्हँ ताता॥
पुनि बरजै न तही निज छोरा। जेहिं तें निडर फिरहि चहुँ ओरा॥

यहाँ नित्य नये उत्पात होते रहते हैं, जिन्हें तुम्हारा पुत्र कन्हैया ही उत्पन्न करता है। तुम स्वयं भी तो उसे टोकती नहीं, जिसके कारण वह निडर होकर चारों ओर घूमता रहता है।

दोहा- ग्वालबाल सँग घालि निज तें आवहि मम गेह।
बेड़ि छीक दधि काढ़ि सब सखन्हँ लुटात सनेह॥३८९॥

ग्वालबालों को अपने साथ लेकर वह मेरे घर आता है और छीके को तोड़कर उस पर रखा माखन उतारकर प्रेमपूर्वक अपने सखाओं में लुटा देता है।

चौ.- कोउ कह तनय तोर अति टेढ़ा। दीख सरल उपजाव बखेड़ा॥
चपल त अह पुनि चतुर कुचाली। राख बालकन्हँ संगहि घाली॥

किसी ने कहा- बहिन! तुम्हारा पुत्र बड़ा कुटिल है; दिखता सीधा है, किन्तु बखेड़े खड़े करता है। चपल तो है ही, चतुर और कपटी भी है; बालकों को साथ ही लगाए रखता है

पुनि केउ सदन सून कत पावहिं। पैठि सचुप दधि सबहि चुरावहि॥
कोउ जब धरहि करत तेहिं चोरी। गारि देत तें तब चल दौरी॥

और जब कहीं किसी घर को सूना देखता है, तो चुपचाप घुसकर सारा दहीं चुरा लेता है। जब कोई उसे चोरी करते हुए पकड़ लेता है, तो वह गालियाँ देता हुआ भाग छूटता है।

जसुदा कान्हँ अहहि तव जैसा। जग दुरलभ सुपात सुत ऐसा॥
तुअपि तिन्है कछु बरजति नाहीं। तातें हम आइसि तव पाहीं॥

हे यशोदा! तुम्हारा कन्हैया जैसा है, ऐसा सुयोग्य पुत्र तो संसारभर में दुर्लभ है। तुम भी उसे कुछ नहीं कहती, इसीलिये हम तुम्हारे पास आई हैं।

जसुमति सुनि निज सुत लरिकाई। मुदित मनहि मन लगि रस छाई॥
प्रगट नाक भौं कछुक सकोरी। कहा बाल कस करि सक चोरी॥

यशोदाजी अपने पुत्र के लड़कपन को सुनकर मन-ही मन आनन्द व प्रेम में मग्न होने लगी। प्रत्यक्ष में कुछ नाक-भौं सिकोड़कर उन्होंने कहा कि वह बालक चोरी कैसे कर सकता है?

दोहा- भली भाँति मैं बूझऊँ तुम सब इहँ किउँ आइ।
अधिक कोलाहल करु न अब झूठ साँच बबकाइ॥३९०॥

मैं ये तो भली-प्रकार जानती हूँ कि तुम सब यहाँ किस लिये आई हो। इसलिये अब झूठी-सच्ची बकबक करके, अधिक शोर मत मचाओ।

चौ.- सुनि अस बचन जसोदहि केरा। कहेहुँ एक आचम्भ घनेरा॥
इतनिहिं नाहिं रानि यह बाता। तव सुत बहुबिध कर उतपाता॥

यशोदाजी के ऐसे वचन सुनकर एक गोपी ने अत्यन्त चकित होकर कहा- अरी नन्दरानी! बात केवल इतनी-सी नहीं है, तुम्हारा पुत्र अनेक प्रकार से उत्पात करता है।

माँगे तदपि अह न कछु दोषा। चोरि करइ कस उपज न रोषा॥
प्रतिदिन संग सखान्हँ लगाई। सूनेउ भवन पैठ चुप लाई॥

यद्यपि माँगनें में कुछ दोष नहीं, किन्तु वह चोरी करता है, फिर क्रोध कैसे नहीं होगा? प्रतिदिन सखाओं के साथ चुपचाप वह आकर हमारे सूनें घरों में घुस जाता है और

आपु त खातहि जे दधि पावहिं। रहहिं सेष सो कपिन्हँ लुटावहि॥
चलत तोरि छक फोरहि हंडा। नाचि करइ उद्धम उदंडा॥

(दहीं पाकर) स्वयं तो खाता ही है, जो बचता है उसे बन्दरों को लुटा देता है। चलते समय छीके तोड़कर घड़े फोड़ देता है, फिर नाचते हुए वह उद्दण्ड उत्पात मचाता है।

बस्तुन्हँ इहाँ उहाँ बिखरावत। पट भाजन गहि छज्ज दुरावत॥
लिपौ पुतौ जे कत लखि पावई। त्यागि बिकृति तहँ अति मुद छावई॥

वस्तुओं को इधर-उधर बिखेर देता है और वस्त्रों व बर्तनों को घर के छज्जे पर छिपा देता है। जब कहीं लिपा-पुता हुआ देखता है, तो वहाँ मलमूत्र करके, बहुत प्रसन्न होता है।

छन्द- त्यागत बिकृति गृह करि अपावन भाजि चल कर नहिं चढ़ै।
पुनि ग्वालबालन्हँ संग ठहकत हास दूरहि तैं ठढ़ै॥
समुझाव कोउ फिरि कहइ ऐसौहिं करउँ तुअ करि लेबि का।
बरजै न मानत मुख बनावत धीर तोलइ सबनि का॥

मलमूत्र करके, घर को अपवित्र करता हुआ भाग जाता है, पकड़नें पर हाथ नहीं आता और ग्वालबालों के साथ दूर खड़ा ठहाके मारकर हमारी हँसी उड़ाता है। यदि कोई समझाता है, तो वह पलटकर कहता है कि मैं तो ऐसा ही करूँगा। तू मेरा क्या बिगाड़ लेगी? रोकनें पर मानता नहीं और मुख टेढ़ा-मेढ़ा करके, सबके धैर्य की परीक्षा लेता है।

दोहा- बहिन तनय तव परम हठि रोकहि मारग ठाढ़ि।
जल घट फोरि मरोरि कर उपहासहि रद काढ़ि॥३९१॥

हे बहिन! तुम्हारा पुत्र बड़ा ही हठी है, मार्ग में हमें रोक लेता है और जल से भरे घड़े फोड़कर हमारे हाथ मरोड़ते हुए, दाँत दिखा-दिखाकर वह हमारी हँसी उड़ाता है।

चौ.- मैय्या सुनि बच गोपिन्हँ केरे। हँसहि मनहिं मन आनँद प्रेरे॥
दधि अभाउ नहिं मोरे प्यारी। कस मानौं तब बात तुम्हारी॥

गोपियों के ऐसे वचन सुन मैय्या आनन्दित होकर मन ही मन हँसनें लगी। उन्होंने कहा- हे प्रिय सखियों! मेरे यहाँ दहीं की कोई कमी नहीं है, फिर मैं तुम्हारी बात कैसे मानूँ?

प्रातहि उठि मम बालक दोई। दधि माखन हित जब लग रोई॥
तब मैं स्वकर खवावौं ताहीं। उठहि न जब लौ जाइ अघाहीं॥

प्रातः उठकर मेरे दोनों बालक जब दहीं-माखन के लिये रोनें लगते हैं, तब मैं अपने हाथों से उन्हें माखन खिलाती हूँ और वे भी तब तक नहीं उठते जब तक कि अघा नहीं जाते।

तदुप पाछ फिरुँ दिनु भर ताके। उभय कौर भर तदपि न चाखे॥
गौरस पूर भवन यह मोरा। तब कस भा मम सुत दधिचोरा॥

तत्पश्चात् माखन लिये दिन-भर उनके पीछे फिरती हूँ, किन्तु दोनों निवालाभर माखन भी नहीं चखते। मेरा यह भवन नित्य गोरस से भरा रहता है, फिर मेरा पुत्र माखनचोर कैसे हुआ?

दधि बिलोत प्रतिदिन मम दासी। खाइ लेत कछु दधि बिनु भाषी॥
तदपि न तिन्हँ प्रति उर कछु लावउँ। हँसि भलबिधि प्रेमहि बतरावउँ॥

दहीं मथते समय मेरी दासी मुझे बताए बिना नित्य कुछ दहीं खा लेती है। फिर भी मैं मन में कुछ बुरा नहीं मानती और उससे हँसकर प्रेमपूर्वक भली-प्रकार बात करती हूँ।

छन्द- बतराउँ तेहिं तें प्रेम सहित धरौं मयल तनक न मना।
मम अजिर सोभहि गाइ अगनित पय न घट जिन्हँ के थना॥
परितोष हित चलि देखु मम चौके अहहिं दधि घट घने।
अस बचन सुनि सकुचानि ग्वालिन कहि चहहिं कहत न बने॥

मैं उससे प्रेमपूर्वक बात करती हूँ और मन में तनिक भी मैल नहीं रखती। मेरे आँगन में अनगिनत गायें सुशोभित रहती है, जिनके थनों का दूध कभी नहीं घटता है। मेरे चौके में दहीं के बहुत-से घड़े हैं, आत्मशान्ति के लिये स्वयं चलकर उन्हें देख लो। उनके ऐसे वचन सुन गोपियाँ सकुचा गई। वे कुछ कहना चाहती थी, किन्तु उनसे कुछ भी कहते न बना।

दोहा- तब सकोच तजि कहेहुँ एक सत्य कस न यह होइ।
गोपाधिप अह कंत तव जानत यह सब कोइ॥३९२॥

तब एक गोपी ने सङ्कोच त्यागकर कहा कि तुम्हारी बात सत्य कैसे न होगी? सब कोई जानते हैं कि गोपाधिपति नन्दरायजी तुम्हारे पति हैं।

मासपारायण तेरहवाँ बिश्राम

चौ.- जगत ख्यात उन्ह गौधन मोटा। होइ दधिहुँ तुअ कवनेउ टोटा॥
जस बखान तस सुतन्हँ खवाती। अवसि जोरि एतनौ नहिं पाती॥

उनका विशाल गोधन संसारभर में प्रसिद्ध है, फिर तुम्हें दहीं का कौन-सा अभाव होगा? जैसे बखान कर रही हो, वैसे ही पुत्रों को खिलाती, तो निश्चय ही इतना जोड़ नहीं पाती।

किन्तु तुम त निज निधिहि सँभाई। सुतन्हँ दीन्ह परधन छुलुगाई॥
गति हमार सम जे तव होती। उन्ह करतूति अवसि तब रोती॥

किन्तु तुमनें अपना धन तो सहेज लिया और अपने उत्पाती पुत्रों को परायी सम्पत्ति के पीछे लगा दिया। यदि तुम्हारी दशा भी हमारे जैसी होती, तो तुम भी उनकी करतूत पर अवश्य रोती।

चुगल खाहिं हम अस जिअँ जानी। चोख कान्हँ कहँ रहि तुअ मानी॥
किन्तु सुतंत्र आज तेहिं त्यागे। सखी अवसि पछिताउब आगे॥

हम चुगली कर रही हैं, ऐसा जी में जानकर तुम कन्हैया को सीधा समझ रही हो। किन्तु हे सखि! आज उन्हें इस प्रकार स्वतंत्र छोड़कर तुम आगे अवश्य ही पछताओगी।

सुनि अस मैय्या कह मुसुकाई। बिदित मोहि भल तव कुटिलाई॥
प्रथम त तुम तिन्हँ कीन्ह चटोरा। इहाँ आइ अब कह कन्हँ चोरा॥

ऐसा सुनकर मैय्या ने मुस्कुराकर कहा- मैं तुम सबकी चालाकी को भली-प्रकार जानती हूँ। पहले तो तुमने उसे चटोरा कर दिया और अब यहाँ आकर कहती हो कि कन्हैया चोर है।

कान्हँ अगुन बहु बार बखाना। किन्तु स्वदोष जिअँ न केउ आना॥

तुमने कन्हैया के दोष बहुत बार कहे, किन्तु अपने दोष का किसी ने भी स्मरण नहीं किया।

दोहा- कुपित देखि जसुमतिहि कहँ ग्वालिन कछु सकुचानि।
भई सबहि चुप नृपति पुनि मंद मंद मुसुकानि॥३९३॥

हे राजन! यशोदाजी को कुपित देखकर गोपियाँ कुछ सकुचा गई। फिर वे चुप हो गई और धीरे-धीरे मुस्कुरानें लगी।

चौ.- पुनि मैय्या कह अब तुम जैहूँ। निबरहुँ तब मैं दुहुन्हँ सिखैहूँ॥
सुनि तें सोचि लागि मन माहीं। जाइहिं जे मिल दरसन नाहीं॥

फिर मैय्या ने कहा- अब तुम सब जाओं। कार्य से निवृत्त होकर मैं उन दोनों की खबर लूँगी। यह सुन वे सोचनें लगी कि यदि हम चली जाऐंगी तो हमें कृष्ण के दर्शन नहीं होंगे।

तब एक गोपि कहा अकुलाई। तब लौ हम घर जाइ न बाई॥
जब लौ तुअ तेहिं इहाँ बोलाई। देति न हमरे समुख सिखाई॥

तब एक गोपी ने अकुलाकर कहा कि हे बहिन! हम तब तक अपने घर नहीं जाऐंगी, जब तक कि तुम उन्हें यहाँ बुलाकर हमारे सन्मुख दण्ड नहीं दे देती।

हम जो कहा पूछुँ सब ताहीं। होय तोष हमरे जिअँ माहीं॥
न त हम जे अज कीन्हि दुहाई। कहहिं सत्य सब जाय बृथाई॥

हमनें जो कुछ भी कहा है, वह सब उनसे पूछो, ताकि हमारे मन में संतोष उत्पन्न हो। नहीं तो आज हमनें जो कुछ भी दुहाई की है, हम सत्य कहती हैं, सब व्यर्थ चली जायेगी।

कान्हँ दरस उन्ह ब्याकुल जानी। मैय्या मनहि परम हरषानी॥
पठई सुत बोलान पुनि दासी। जनु गोपिन्हँ पाई मुद रासी॥

उन्हें कन्हैया के लिये व्याकुल जानकर मैय्या मन-ही मन अत्यन्त हर्षित हो उठी; फिर उन्होंने कन्हैया को बुलवाने के लिये दासी को भेजा, तब गोपियों ने मानों आनन्द की राशि पा ली।

कछु छिन माँझ तहाँ दुहुँ आए। जननिहि पाछ ठढ़े चुप लाए॥
लै उछंग तब उन्ह महतारी। लगि पालुअरे तन रज झारी॥

कुछ ही त्तण में दोनों भाई वहाँ आ गए और मैय्या के पीछे चुपचाप खड़े हो गए। मैय्या ने उन्हें गोद में बैठा लिया और आँचल से उनके शरीर पर लगी हुई धूल झाड़नें लगी।

पुनि हिय रोष नेह दुहुँ आनी। लगि समुझावन जननि सुजानी॥
सुत क्यों कर अस उपद्रव भारी। जातें ग्वालिन होति दुखारी॥

फिर मन में क्रोध व स्नेह दोनों ही लाकर सुजान मैय्या उन्हें समझानें लगी कि हे पुत्रों! तुम ऐसा महान उत्पात करते ही क्यों हो, जिसके कारण गोपियाँ दुःखी हो जाती है?

नाक सिकोरत भृकुटी प्रेरी। कान्ह कहा तब गोपिन्हँ हेरी॥
काह कहौं मैआँ मैं तोहीं। ए सब नितहि सतावइ मोहीं॥

तब नाक सिकोड़कर और भौंहों को मटकाकर गोपियों की ओर देखते हुए कन्हैया ने कहा- अरी मैय्या! मैं तुम्हें क्या बताऊँ? ये गोपियाँ नित्य ही मुझे सताती रहती है।

इत कइ उत करि लोग लराई। देखति फिर सयानि मुद छाई॥
ऐहि सवँपि उरहनु मिस लाई। आइ इहाँ तुअ मोहि लराई॥

इधर की बात उधर करके, लोगों में झगड़ा कराकर ये सयानी आनन्दपूर्वक उन्हें देखती है। इस समय भी शिकायत करने के बहाने ये मेरा और तुम्हारा झगड़ा कराने आई है।

सूधि तुअ त पुनि ए सब कुटिला। मुख तें केवलु बनि रहि अमला॥
सुत पति तें ए सबनि दुराहीं। बेचहि गोरस मथुरा माहीं॥

हे मैय्या! तुम स्वभाव की सीधी हो और ये गोपियाँ बड़ी ही चालाक है, केवल मुख से ही सीधी बन रही है। ये अपने पति-पुत्रों से छिपाकर सारा दहीं मथुरा जाकर बेच देती है।

तातें तेइ दुरि इन्ह दधि लूटहि। पाछ दोषघट मम सिर फूटही॥

अतः वे ही छिपकर इनका दहीं लूटते हैं और बाद में दोष का घड़ा मेरे सिर फूटता है।

दोहा- घरन्हि चोर जब जतन किए इन्हँ तें धरे न जात।
एहि रिस बाहेर निकसि सब मोर पाछ छुलुगात॥३९४॥

यत्न करने के उपरान्त भी जब घर के चोर इनसे पकड़े नहीं जाते हैं, तो इसी बात से कुपित होकर ये घरों से निकलकर मेरे पीछे पड़ जाती है।

चौ.- सुनि कन्हँ बच बिचारि चतुराई। गोपिन्हँ संग जननि चकराई॥

बृथा कोउँ केहि दोष न देई। अवसि बात कछु पूरब भेई॥

कन्हैया की बात सुनकर व उनकी चतुराई का विचार करके गोपियों समेत मैय्या चकित रह गई। उन्होंने कहा- कान्हा! कोई किसी को व्यर्थ दोष नहीं देता, अवश्य ही पहले कुछ हुआ है।

सुत यह नटखटपनु अब तजहूँ। तोर बिआह बात चलि अजहूँ॥
जे ससुरारि तोर सुन कहई। कान्हँ निपट कपटी ठग अहई॥

हे पुत्र! अब ये लड़कपन त्याग दो। आज ही तुम्हारे विवाह की बात चली थी। अगर तुम्हारी ससुरालवाले सुनेंगे तो कहेंगे कि कन्हैया तो निरा कपटी और चालाक है।

जदपि चहहि तें करन सगाहीं। तउ सुभायँ सुनि जाब पराहीं॥
ब्याह सुनत कन्हँ कहा लजाई। मैआँ तुअहि बात इन्ह आई॥

यद्यपि वे नाता जोड़ना चाहते हैं, किन्तु तुम्हारा स्वभाव सुनते-ही वे भाग जाऐंगे। अपने विवाह की बात सुनकर सकुचाते हुए कृष्ण ने कहा- अरी मैय्या! तुम भी इनकी बातों में आ गई।

घर घर भँवन कुटेवहि मारी। मैय्या अह ए गोपि बेचारी॥
गई अनत कल्ह आजु इहाँ अइ। देइ घराहनु कल्ह पुनि कत जइ॥

अरी मैय्या! ये गोपियाँ तो बेचारी घर-घर घूमनें की बुरी लत की मारी है। ये कल कहीं और गई थी, आज यहाँ आई है और कल किसी और घर जाकर उलाहना देंगी।

इहइ अहहि इन्ह के दिनुचरिआ। तब भरोष इन्ह के कस करिआ॥
मैं पराय घर छाछि न चाखी। सुबल सिदामादिक सख साखी॥

यही इनकी दिनचर्या है, ऐसी स्थिति में इनका विश्वास कैसे किया जाय? मैंने तो (कभी) पराये घर की छाछ तक नहीं चखी; सुबल, श्रीदामा आदि मेरे सखा इसके साक्षी हैं।

छन्द- **साखी सिदामा अरु सुबल बलदाउ सँग हौं नित रहौं।**
परितोष जनि उर पूछि लीजिअ ब्यरथ संसय क्यों सहौं॥
ए करि जतन बहुभाँति मोहि सताति अरु झगरौ करै।
पाछे कचाटिनि आइ तव सन दै उराहनु मनगरै॥

श्रीदामा और सुबल साक्षी हैं, मैं नित्य ही दाऊ भैय्या के साथ रहता हूँ। यदि मेरी बात पर विश्वास न हो, तो उन्हीं से पूछ लो। मैं तुम्हारी व्यर्थ की शङ्का क्यों सहूँ? ये गोपियाँ अनेक प्रकार के यत्न करके, नित्य ही मुझे सताती व मुझसे झगड़ा करती है और बाद में आकर ये झगड़ालू स्वभाव की स्त्रियाँ तुम्हारे पास आकर मनगढ़ंत उलाहनें दिया करती है।

दोहा- **गोपि अहहिं चतुरा सकल नखसिख झूठि महान।**
मैय्या सूध सुभाय मम भली भाँति तुअ जान॥३९५॥ (क)

ये सभी गोपियाँ चालाक और नख से लेकर चोटी तक अत्यधिक झूठी है और मेरा स्वभाव सीधा है, यह तो मैय्या तुम भली-भाँति जानती ही हो।

उत ग्वालिन सब बागपटु महाकपटि इत भाष।
अंगकान्ति कबितायुध जननी परि भ्रम पास॥३९५॥ (ख)

उधर बात करने में प्रवीण गोपियाँ और इधर से महाकपटी कन्हैया बोल रहे हैं। अङ्ग-प्रत्यङ्ग में आत्मविश्वास की प्रभा लिये कृष्ण की वाणी और कवितारूपी आयुध के समान गोपियों के काव्यमय सटीक तर्क सुनकर मैय्या भ्रम में पड़ गई।

चौ.- इन्ह भय मैं फिरुँ इत उत भागा। सेरि इन्हहि भय खेलन त्यागा॥
कौन जान कित तें ए आई। कवन बात कबु लग बँवकाई॥

इनके भय से मैं इधर-उधर भागता फिरता हूँ। इन्हीं के भय से मैंने गाँव गलियों में खेलना छोड़ दिया। कौन जाने कहाँ से आकर किस बात पर, ये कब पीटनें लग जायँ?

घटन्हँ पटकि ए आपुहि पाहन। आइ इहाँ मम देइ उराहन॥
पथहिं मोहि गहि गृह लै जैहीं। दधि खबात हठि चुम्बन लैहीं॥

ये अपने घड़े पत्थर पर पटककर स्वयं फोड़ देती हैं और यहाँ आकर मेरे नाम का उलाहना देती है। मार्ग ही से पकड़कर मुझे घर ले जाती है और दहीं खिलाकर हठपूर्वक चूमती है।

कोउ कच खैंचि चपेटन्हि मारे। छीनि मुरलि कोउ मुकुट उतारे॥
बच्छ भगावइ ये निज हाथा। फोर ठीकरा मोरेहि माथा॥

कोई थप्पड़ मारकर मेरे बाल खींचती है, तो कोई मेरी मुरली छीनकर, मुकुट उतार लेती है। अपनी गायों के बछड़ों को ये स्वयं ही भगा देती है और ठीकरा मेरे सिर पर फोड़ती है।

कबहुँ धरै मोहि मिलि दस पाँचा। आँखि देखात नचावइ नाचा॥
कोउ माखन पिपिलीक कढ़ावहि। मम कर दधि लखि पुनि अस गावहि॥

कभी पाँच-दस मिलकर मुझे पकड़ लेती है और धमकाकर नृत्य करवाती है। कोई मुझसे दहीं में पड़ी चींटियाँ निकलवाती है और जब मेरे हाथों में दहीं लग जाता है, तब कहती है कि,

अब मैं कहौं जसोदा माइहिं। दधि चोरत हौं धरौ कन्हाइहिं॥

अब मैं जाकर मैय्या यशोदा से कह दूँगी कि दहीं चुराते हुए मैंने कन्हैया को पकड़ लिया।

दोहा- आज अवसि पजवाउब मैं तोहिं कहि तव माय।
अस कहि मम मुख मलहि दधि देखि मोहि असहाय॥३९६॥

तुम्हारी मैय्या से कहकर आज मैं अवश्य ही तुम्हारी पिटाई करवाऊँगी। ऐसा कहकर यही गोपियाँ मुझे असहाय समझकर मेरे मुख पर दहीं लगा देती है।

चौ.- कोउ हठि पहिरावइ बनमाला। कोउ खिजात सनमुख दै ताला॥
बोलि निकट कोउ मोहि थपरावै। कहि कहि कारौ मोहि खिजावै॥

कोई गोपी हठपूर्वक मुझे वनमाला पहनाती है, कोई मेरे सन्मुख ताली बजाकर चिढ़ाती है, तो कोई मुझे पास बुलाकर थप्पड़ों से मारती है और काला कह-कहकर चिढ़ाती भी है।

कोउ बोलहि मोहि आपुन गेहा। दधि खबात बैठारि सनेहा॥
कूचि कूचि गालन्ह करि लाला। तदुप कहहिं अैहउ पुनि काला॥

कोई गोपी अपने घर बुलाकर मुझे बैठा लेती और प्रेम से दहीं खिलाती है। इसी बीच मेरे गालों को कुचल-कुचलकर लाल करके, तदुपरान्त कहती है कि कल फिर आना।

कोउ कँदरा मम लेइ उतारी। देय तबहि जब नाचौं भारी॥
भूलि न गा कबहूँ किन्ह गेहा। तदपि मुअँहि सब दूषन दैहाँ॥

कोई मेरी कमर से करधनी उतार लेती है और तभी देती है, जब मैं बहुत नाचकर दिखाता हूँ। मैं भूलकर भी कभी किसी के घर नहीं गया, फिर भी ये सब मुझी को दोष देती है।

तही बिचार करहु अब माई। मैं जे इन्ह गृह दुंद मचाई॥
कवनि भाँति तब केउ अस्थाना। मैं इन्ह के कर कस न धराना॥

हे मैय्या! अब तुम ही विचार करके, देखो। यदि मैंने इनके घर कोई उत्पात किया है, तो मैं इनके हाथों, किसी प्रकार, कहीं पकड़ा कैसे नहीं गया?

दोहा- **जे मैं दधी चुराउतो अवसि धरातो मात।**
ए मोहि देखन आइ इहँ साँची ऐतिहि बात॥३९७॥ (क)

हे मैय्या! यदि मैं दहीं चुराता, तो अवश्य ही पकड़ा जाता। सच्ची बात तो यह हैं कि ये गोपियाँ मुझे देखने के लिये यहाँ आई है।

परिछित लखि बाचालता कान्हँ केरि ब्रजनारि।
चकित ढापि मुख पट मनहि मुदित होइ लगि भारि॥३९७॥ (ख)

हे परीक्षित्! कन्हैया की इस वाचालता को देखकर व्रज की वे स्त्रियाँ चकित हो अपने मुख को आँचल से ढँककर मन-ही मन अत्यधिक आनन्दित होने लगी।

चौ.- **जननि तदुप कान्हहिं उर लाई। लगि गृह काज हरषि पुनि जाई॥**
इहाँ देखि गोपिन्हँ परि फीकी। कान्हँ कुसल पूछी सबहीं की॥

तब मैय्या ने कन्हैया को हृदय से लगा लिया और हर्षित होकर पुनः घर के कामों में व्यस्त हो गई। इधर गोपियों को फीकी पड़ी हुई देखकर कन्हैया ने उन सबकी कुशल पूछी।

पुनि उपहासि कही अस बानी। अति बिदूषि तुअ आपुनु जानी॥
भल गृह नेवतेहुँ जद्यपि आई। किन्तु इहँ न तव दालि गराई॥

फिर उनकी हँसी उड़ाते हुए उन्होंने कहा कि स्वयं को अत्यधिक विदूषी जानकर यद्यपि तुम सबने भले घर आकर न्योता दिया है, किन्तु यहाँ तुम्हारा कार्य सिद्ध नहीं हो सका।

बरु अवसर बड़ दिनु गत पावा। लाहु लेत तद्यपि नहिं आवा॥
बिंग्य बचन सुनि कन्हँ के तीछे। गोपि झेंपि लगि नयन तिरीछे॥

बड़े दिनों के बाद तुम्हें एक उत्तम अवसर मिला, उसका भी लाभ लेते नहीं आया। कन्हैया के व्यंग्य भरे वचनों को सुनकर लज्जित हुई गोपियाँ तिरछी दृष्टि करके, मुस्कुरानें लगी।

पुनि जिअँ हारि मंद मुसुकाई। अस कहि सब निज भवन सिधाई॥
आगे तुअ जब जाब धराई। देखि लेब तब सब चतुराई॥

फिर मन में हार मानकर मुस्कुराते हुए, वे सब यह कहकर अपने-अपने घर चली गई कि अब आगे जब तुम पकड़े जाओगे, तभी तुम्हारी सब चतुराई देखी जाएगी।

दोहा- **नृप जिमि हरि पदपंकज हरिजन जीवन मूल।**

कन्ह उदंडता गोपिन्हँ तिमिहि ब्रह्ममुद तूल॥३९८॥

हे परीक्षित्! जिस प्रकार भगवान श्रीहरि के चरणकमल ही हरिभक्त के जीवन का आधार होते हैं, उसी प्रकार कन्हैया की उद्दण्डता व्रज की गोपियों के लिये ब्रह्मानन्द के तुल्य थी।

चौ.- सम्बत पंच बरिस कन्हँ भयऊ। अकसर कहा जननि सन गयऊँ॥
मैय्या अब तें मैं बन जैहौं। सख अरु बल सँग बच्छ चरैहौं॥

जब कन्हैया पाँच वर्ष के हो गए, तब एक बार उन्होंने मैय्या से जाकर कहा कि हे मैय्या! अब से मैं वन में जाया करूँगा और दाऊ व अन्य ग्वालबालों के साथ बछड़े चराया करूँगा।

जननि कहा तब उन्ह उर लाई। अबहि अलप तुअ बहुत कन्हाई॥
बनपथ दुरगम आर तिरीछे। बगरे रहत सूल पुनि तीछे॥

तब मैय्या ने उन्हें हृदय से लगा लिया और कहा- अरे कान्हा! तू अभी बहुत छोटा है। वन के दुर्गम मार्ग आड़े-तिरछे हुआ करते हैं और उन पर नुकीले काँटें भी बिखरे रहते हैं।

घामु ताव तनु बनु सुत भारी। चलहि निरंतर कठिन बयारी॥
तापर तनु तव कोमल अहहीं। केहि बिधि तुअ बन संकट सहहीं॥

हे पुत्र! वन में धूप शरीर को अत्यधिक पीड़ा पहुँचाती है और निरन्तर वेगयुक्त वायु चलती रहती है। उस पर तेरा शरीर बहुत कोमल है; भला तू वन के क्लेश किस प्रकार सह पायेगा?

अह हमार चाकर बहुतेरे। बछु चराव जे नित्य सबेरे॥
तातें तोहिं अवसिकता नाहीं। खेलत रहहु तुअ त मम पाहीं॥

हमारे घर में बहुत से सेवक हैं, जो नित्य सवेरा होने पर बछड़े चराते ही हैं। इसलिये तुझे वन में जाकर बछड़े चरानें की आवश्यकता नहीं है। तू तो मेरे निकट ही खेलता रह।

सुनि कन्हिआँ अति उधम मचावा। जदपि मातु पितु बहुत बुझावा॥
कवनि भाँति पै जब नहिं माने। नंदराय तब बिप्र बोलाने॥

यह सुनकर कन्हैया ने बहुत अत्यधिक उत्पात मचा दिया, यद्यपि मैय्या बाबा ने उन्हें बहुत समझाया। किन्तु जब वे किसी भी प्रकार नहीं मानें, तब नन्दजी ने ब्राह्मणों को बुलवाया और

सोधि महूरत दइ उन्ह दाना। पुनि प्रमुदित हेरेहुँ भगवाना॥
तदुप बोलि लीन्हें बछुपालक। कहा सौंपि उन्ह कर दुहुँ बालक॥

मुहूर्त निकलवाकर उन्हें दानादि देते हुए उन्होंने प्रसन्न मन से भगवान का स्मरण किया। तदुपरान्त उन्होंने वत्सपालकों को बुलवाया और दोनों भाईयों को उन्हें सौंपते हुए कहा-

दोहा- अब तें इन्ह संघात किए नित बछु चारन जाउ।
हेर राखु पुनि दुहुन्हँ कर अह अति चपल सुभाउ॥३९९॥

अब से तुम लोग इन्हें सदैव साथ लेकर बछड़े चरानें जाया करना और इन दोनों ही का ध्यान भी रखना, क्योंकि स्वभाव से ये दोनों बड़े ही नटखट हैं।

चौ.- **सुनि सब बालक हिय हरषाई। लीन्हें उभयन्ह संग लगाई॥**
बछु समूह पुनि हाँकि अपारा। सरि दिसि चले करत किलकारा॥

यह सुनकर सब बालकों ने हर्षित होकर उन दोनों भाईयों को अपने साथ लगा लिया। फिर बछड़ों के विशाल समूह को हाँककर किलकारी मारते हुए वे सब यमुना की ओर चले।

घासपूर सब रितु अनुकूला। रहे बिसाल परित तेहिं कूला॥
तातें बछरन्हँ तहाँ रेंगाई। खेलत भै सख सँग दुहु भाई॥

उन यमुनाजी के तट पर ऐसे विशाल चरागाह थे, जो समस्त ऋतुओं में हरे-भरे रहते थे। इसलिये बछड़ों को उन चरागाहों में, छोड़कर वे दोनों भाई सखाओं के साथ खेलनें लगे।

बेषु रुचिर चितवत दुहुँ केरा। आकरषन हिय होत घनेरा॥
सूध सिसुहि हिय सम बलरामा। रहे गौरतनु दृग सुखधामा॥

उन दोनों के सुन्दर वेष को देखते-ही हृदय में महान आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। किसी सरल स्वभाववाले बालक के मन जैसे बलराम गोरे और नेत्रों के लिये सुख के धाम हैं।

नील बसन तें भूषन नाना। पहिरे लाग महाछबिखाना॥
तस नटखट सिसु केलि समानहिं। स्याम रंग अह कुँमर कान्हहिं॥

नीले रङ्ग के वस्त्र व अनेक आभूषण धारण किये हुए, वे महान सुन्दरता की खान लग रहे हैं। ठीक वैसे ही कुँमर कन्हैया के शरीर का रङ्ग नटखट बालक की चपलता के समान श्याम है।

पिअर बसन बिद्युत दुतिवंता। धरे काँध आपन भगवंता॥
हाथ लकुटि कटि बाँधि मुरलिया। श्रवन बोर रस पद पैजनिया॥

वे भगवान अपने कन्धों पर विद्युत-सा कान्तियुक्त पीताम्बर धारण किये हैं। उनके हाथों में लकुटी और कमर के दुपट्टे में मुरली बँधी है और पैरों में बजती हुई पैञ्जनी कानों में रस घोल रही है।

मोरपिच्छजुत पुरट सिखंडा। सिर नयनन्ह सुख सृजहि अखंडा॥
उर गजमुकुतन्हि अरु बनहारा। मनहुँ मार निज हाथ सँवारा॥

सिर पर मयूरपङ्खयुक्त स्वर्णमुकुट है, जो नेत्रों के लिये अखण्ड सुख उत्पन्न कर रहा है। छाती पर वन्यपुष्पों व गजमुक्ताओं की मालाएँ हैं, जिन्हें मानों कामदेव ने अपने हाथों से सँवारा है।

एहिबिधि दोउ छबि सिन्धु महाना। सखन्हँ संग क्रीड़ा कर नाना॥
कबहुँ ग्वाल करि कान्हहि संगा। मल्ल खेल कर परम उमंगा॥

इस प्रकार सुन्दरता के समुद्र वे दोनों ही सखाओं के साथ अनेक प्रकार के खेल खेल रहे हैं। कभी कन्हैया को साथ करके, ग्वालबाल बड़े ही उत्साह से कुश्ती का खेल करते हैं।

काँमरि ओढ़ि कबहुँ नंदलाला। हाउ होइ भय करहिं बिसाला॥
दादुर सुक पिक केहरि नागा। बोलि प्रभुहिं देखात अनुरागा॥

कभी नन्दलाल कम्बल ओढ़े हाऊ बन जाते हैं और सबको अत्यधिक भयभीत कर देते हैं। मेंढक, तोते, कोयल, सिंह और हाथी आदि शब्द करके, उन प्रभु के सन्मुख प्रेम प्रकट करते हैं।

तेहिं सवँ उन्ह सम सबद बनाई। बोलइ नटखट गोपालराई॥

उस समय नटखट गोपाल भी उनकी ध्वनि के समान ही ध्वनि प्रकट करके, बोलते हैं।

दोहा- **मृगन्हँ चरत लखि कान्हँ जब धाइ धरे चह ताहिं।**
तब तें भयबस भागि चल लखि तें फिर बल पाहिं॥४००॥ (क)

वन में हिरणों के समूह को चरते देखकर जब कन्हैया दौड़कर उन्हें पकड़ना चाहते हैं, तब वे भयभीत होकर भाग जाते हैं। यह देखकर वे पुनः दाऊ के पास लौट आते हैं।

एहिभाँति त्रिभुवनपति संग किए बछु ग्वाल।
देत अकथ सुख भगतन्हँ करत बन बिबिध ख्याल॥४००॥ (ख)

इस प्रकार तीनों-लोकों के स्वामी भगवान श्रीकृष्ण ग्वालबालों और बछड़ों को साथ करके, वन में अनेक प्रकार के खेल करते हुए भक्तों को अकथनीय सुख प्रदान करते हैं।

चौ.- परीछित कंस खबरि अस पाई। नित नव उत्पातन्हँ भय पाई॥
गोप सकुल गोकुल तजि दीन्हा। बिन्दाबिपिन ठाउँ करि लीन्हा॥

हे परीक्षित्! जब कंस को यह समाचार मिला कि नित्य-नये उत्पातों के भय से त्रस्त होकर गोपों ने कुल सहित गोकुल को त्याग दिया है और वृन्दावन में जा बसे हैं।

तब तेहिं कन्हहि बधन अतुराई। बत्सासुर कहँ दीन्ह पठाई॥
दानव सो अतुल्य बलसाली। माय निपुन अरु परम कुचाली॥

तब उसनें कृष्ण का वध करने के लिये शीघ्र ही वत्सासुर नामक दैत्य को भेजा। वह अतुलनीय बलवान दैत्य माया रचनें में निपुण और बड़ा ही कपटी था।

खल प्रेरित आवा सो तहवाँ। बच्छ चराइ रहे हरि जहवाँ॥
पुनि अवसर लखि बछु तनु लाई। जाइ मिलेहुँ बत्सन्हँ समुदाई॥

दुष्ट कंस की आज्ञा से वह राक्षस वहाँ आया, जहाँ कन्हैया बछड़े चरा रहे थे। फिर मौका देखकर गाय के बछड़े का शरीर धरकर वह अन्य बछड़ों के समूह में जा मिला।

तेहिं सवँ देखि बिकट तनु तासू। भाजि चले सब बछ अति त्रासू॥
ग्वालबाल जब अस लखि पाए। मुखनि परसपर लख अचराए॥

उस समय उसका विकट शरीर देखकर समस्त बछड़े अत्यधिक भयभीत होकर भाग चले। जब गोपकुमारों ने यह देखा, तो वे आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरे का मुख देखने लगे।

कपटिहिं बूझे राजिवनैना। बलहिं कहा पुनि नैनन्हँ सैना॥
एहिबिच असुर कन्हँ निकट जाई। तकि हिय पाछिल लात चलाई॥

कमलनयन कपटी वत्सासुर को पहचान गए और सङ्केत करके, उन्होंने दाऊ को भी बता दिया। इसी बीच कृष्ण के निकट जाकर राक्षस ने उनकी छाती पर पिछले पैरों से आघात किया।

दोहा– तुरत फुरत तब सोउ चरन धरे तेहिं तृन तूल।
कन्ह भँवाइ अति बेग तें पटकि दीन्ह तरु मूल॥४०१॥

तब बड़ी ही फूर्ती से उसका वही पैर पकड़कर किसी तिनके के समान बड़े ही वेग से घुमाते हुए, कन्हैया ने उसे एक वृक्ष की जड़ पर पटक दिया।

चौ.– तब चिकारि सो असुर हताना। तेज तासु हरि बदनु अमाना॥
ग्वाल बत्स लखि भए सुखारी। सुमन बरिषि लग सुर नभ ठारी॥

तब घोर शब्द करके, वह राक्षस मृत्यु को प्राप्त हो गया और उसका तेज श्रीहरि के मुख में समा गया। यह देख सखा व बछड़े सुखी हुए और देवता आकाश में स्थित हो पुष्प बरसानें लगे।

बत्स दलन उत खल जब सुनेउँ। पाछिल भूल सीस अति धुनेउँ॥
सखा कन्हहिं इत काँध चढ़ाई। जमुना तट आए हरषाई॥

उधर जब कंस को वत्सासुर की मृत्यु का समाचार मिला, तो वह पिछली भूल पर बहुत पछताया। इधर कन्हैया को कन्धों पर चढ़ाकर सखा हर्षित होकर यमुनाजी के तट पर आए।

पुनि जल देखि ऊथ एक थाना। बछन्हँ करानेहुं तहँ जलपाना॥
तदुप हाँकि सो बछु समुदाई। सखन्हँ सँघात चले दुहुँ भाई॥

फिर एक स्थान पर उथला जल देखकर उन्होंने वहाँ सभी बछड़ों को जल पिलाया। तदुपरान्त बछड़ों के उस समूह को हाँकते हुए, वे दोनों भाई सखाओं के साथ चले।

बाज बेनु रव माँझ मनोहर। कन्हँ कल्यान राग अति सुन्दर॥
पनघट निकट रहा तहँ एका। जल हित रहि जहँ गोपि अनेका॥

श्रीकृष्ण वंशी की ध्वनि में मन को हरनेंवाला 'कल्याण' नामक अत्यन्त सुन्दर राग बजाते चल रहे हैं। वहाँ निकट ही एक पनघट है, जहाँ जल भरनें के लिये अनेक गोपियाँ आई हुई थी।

कान्हँ मुरलि रव तब तिन्ह काना। परा केउ मृदु भाउ समाना॥
जातें उन्हँ आतम गहनाहीं। ममता उमगि अनूप अगाहीं॥

तभी कन्हैया की मुरली से निकली हुई ध्वनि, किसी कोमल भाव की भाँति उन गोपियों के कानों में पड़ी, जिससे उनकी आत्मा के कण-कण में अनुपम, अगाध ममता उमड़नें लगी।

बरबस नयन तेन्ह चहुँ ओरा। आतुर खोजि लाग दधिचोरा॥
ऐतनेहुँ कान्हहिं आवत देखी। कहा एक अनुरक्त बिसेषी॥

जिससे उनके नेत्र आतुर होकर चारों ओर बरबस ही उन माखनचोर को खोजनें लगे। इतनें में ही कन्हैया को आते हुए देखकर एक गोपी ने विशेषरूप से अनुरक्त होते हुए कहा कि,

दोहा– भलिबिधि मृदु अधरान्हँ तें फूँकि मुरलि बर राग।
अली कान्हँ बछु चारि फिर उपजावत अनुराग॥४०२॥

अपने अधरों से मुरली में भली-भाँति अत्यन्त उत्तम राग फूँककर सब ओर प्रेम की सृष्टि करता हुआ हे सखियों! देखो! कन्हैया (हमारी ही ओर) चला आ रहा है।

चौ.- ऐतनेहुँ निकट होइ कन्हँ निकसे। गोपिन्हँ दृगचकोर लखि बिगसे॥
सो मनहर मूरति हिय राखी। भई सबनि सो छिन सुख साखी॥

इतनें में ही कन्हैया उनके निकट होकर निकले। उन्हें देख गोपियों के नेत्ररूपी कमल खिल गए। उनकी मनोहर मूर्ति को हृदय में बसाकर वे सब उस क्षण के सुख की साक्षी हो गई।

पालत बच्छ सखान्हँ सँघाता। एहिबिधि नित सुख कर दुहुँ भ्राता॥
मंत्रिन्हँ मत राजन एक बारा। बकहि कंस निज सभा हँकारा॥

इस प्रकार सखाओं के साथ बछड़ों का पालन करते हुए, वे दोनों भाई नित्य सुख उत्पन्न करने लगे। हे राजन! एक बार मन्त्रियों के मत से कंस ने बकासुर को सभा में बुलवा लिया।

पुनि निज सत्यहितू तिन्हँ जानी। सकल ररकथा कही बखानी॥
तब तें कंसहिं धीर बँधावा। बृन्दाबिपिन चला गरुआवा॥

फिर उसे अपना सच्चा हितैषी समझकर उसनें अपनी सारी रुदनकथा उससे कह सुनाई। तब कंस को धैर्य बँधाकर वह दैत्य गर्वित होता हुआ वृन्दावन की ओर चला।

सरितट जाइ ठाढ़ सो भेऊ। मनु कपास गिरि उन्नत केऊ॥
अस बिसाल बक लखि भय पाई। बछ बालक सब चले पराई॥

वहाँ जाकर वह दैत्य यमुनाजी के तट पर (ऐसा) खड़ा हो गया, मानों कपास का कोई उन्नत पर्वत हो। ऐसे विशाल बगुले को देखते ही, सभी ग्वालबाल व बछड़े भयभीत होकर भाग छूटे।

बूझि कपट बक कर खलनासा। सखन्हँ पाछ करि गै तेहिं पासा॥
तरल तोंचि तब निजहि भँवाई। कान्हहि निगरि गयउ बक धाई॥

दुष्टनिकन्दन बगुले का कपट ताड़ गए और सखाओं को पीछे करके, वे उसके निकट जा पहुँचे। तब अपनी पैनी चोंच घुमाते हुए, वह बगुला दौड़ा और कन्हैया को निगल गया।

बल बिलोकि अस बिहँसन लागे। ग्वाल बिकल भै धीरज त्यागे॥

प्रभुहि खाइ गा बक अस देखी। डरपेउ बिबुध समाज बिसेषी॥

यह देखकर बलरामजी हँसनें लगे, किन्तु ग्वालबाल धैर्य त्यागकर व्याकुल हो उठे। प्रभु को बगुले ने निगल लिया है, यह देखकर देवतागण विशेषरूप से भयभीत हो उठे।

छन्द- **भय सोक लखि सुर बालकन्ह खल उदर बिहँसे बलनिधी।**
पुनि अगिनिमय तनु कीन्ह निज जरि लाग खल हिय एहिबिधी॥
भा बिकल बक ढनमनेहुँ महि आतुर अरिहि तेहिं ऊगस्यो।
महि नभ भरेउ सुख हँसत माधव रातिचर चितवत डस्यो॥

ग्वालबालों और देवताओं को भयभीत हुआ देख बगुले के उदर में स्थित बलसिन्धु श्रीकृष्ण मुस्कुराए। फिर उन्होंने स्वयं को अग्निमय कर लिया, जिससे उस दुष्ट का हृदय जलनें लगा। तब व्याकुल हुआ बकासुर भूमि पर गिर पड़ा और उसनें शत्रु को शीघ्र ही उगल दिया। पृथ्वी व आकाश सुखी हो गये और कन्हैया मुस्कुराने लगे, यह देखकर निसाचर भयभीत हो उठा।

सो.- **दुहुँ कर तें खग चोंच असुरनिकंदन धाइ धरि।**
हतेहुँ ऐहिबिधि पोच फारेहुँ मुख तिन्ह मध्य ते॥॥ (क)

तदुपरान्त असुरनिकन्दन भगवान ने दौड़कर अपने दोनों हाथों से उस पक्षि की चोंच पकड़ ली और उसके मुख को बीच से चीरकर इस प्रकार उन्होंने उस नीच का वध कर दिया।

सोभित हरि मुख स्वेद नाच हरषि उन्ह निरखि सख।
करि लग अस्तुति वेद पुष्प बरष सुर गगन ते॥॥ (ख)

भगवान के मुख पर पसीनें की बूँदें सुशोभित है। उन्हें सकुशल देखकर सब ग्वालबाल हर्षित होकर नाचनें लगे। देवता आकाश से पुष्पवर्षा कर रहे हैं और वेद उनकी स्तुति करने लगे।

दोहा- **खगहिं दीन गनि बिहगधुज दीन्ह निज चरन थान।**
तासु तेज नृप तेहिं समय जिरेहुँ हरिहि मुस्कान॥४०३॥

गरुड़ध्वज भगवान श्रीकृष्ण ने उस पक्षि को दीन जानकर अपने चरणों में स्थान प्रदान किया। हे परीक्षित्! उस समय उसका तेज भगवान श्रीकृष्ण की मुस्कान में विलीन हो गया।

चौ.- **लखि प्रदोष हँकि बछु दुहुँ भ्राता। फिरे गाउँ सब सखन्हँ सँघाता॥**
तहँ खलारि बल ग्वाल बखाना। गोप भए सुनि चकित महाना॥

संध्या हुई जानकर दोनों भाई बछड़ों को हाँककर सब सखाओं के साथ गाँव में लौट आए। वहाँ बालकों ने दुष्टहन्ता के बल का बखान किया, जिसे सुन सब गोप अत्यन्त चकित हो गए।

जमुनहिं पुन्य पुलिन एक बारा। नरपति हरि करि रहेउ बिहारा॥
सो सवँ अंग धरे छबि भारी। तहँ लखि उन्ह एक गोपकुमारी॥

हे परीक्षित्! एक बार भगवान श्रीकृष्ण यमुना के पुण्यमय तट पर विहार कर रहे थे। उसी समय अङ्गों में महान सुन्दरता धारण किये, एक गोपकन्या को उन्होंने वहाँ देखा।

राध नाउँ अस पावन तेऊँ। बृषभानुजा कीतिसुति जेऊँ॥
चंचल मृगि सम तें तहँ चरहीं। सखिन्हँ सँघात मोद अति करहीं॥

उनका 'राधा' यह पवित्र नाम था और जो वृषभानुजी व कीर्तिजी की कन्या थी। वे किसी चञ्चल हिरणी-सी वहाँ विहार कर रही थी व सखियों के साथ अत्यन्त आनन्द मना रही थी।

कटि प्रजंत कच घन सौं कारे। सिरु बर रजत चंद्रिका धारे॥
बदनु बदनु जनि पूरन चंदू। रति मन हर आपन छबिसिंधू॥

कटिप्रदेश तक जाते उनके केश, मेघ-से काले थे; उनके सिर पर चाँदी की उत्तम चन्द्रिका थी। उनका मुख, मुख नहीं पूर्ण चन्द्र था, जो अपने सौन्दर्यसमुद्र से रति का मन हरनेंवाला था।

नील बसन पहिरे श्री अंगा। प्रगटावहि हुलास पव संगा॥
किंकिनि नूपुर मधुतम नादा। श्रव परि हरि हिय अवचट बाँधा॥

उनके श्रीअङ्गों पर पड़े नीले वस्त्र वायु के साथ उड़कर उत्साह दर्शा रहे थे। उनकी करधनी व नूपुर के मधुरतम शब्द ने श्रीकृष्ण के कानों में पड़कर सहसा उनके मन को बाँध लिया।

तब तें राध समुख चलि गयऊ। देखि चिरप्रिया कहँ थाकयऊँ॥
उभयन्हि नयन मिले पुनि जबहीं। तनु सुधि दुहुन्हँ त्यागि चलि तबहीं॥

तब वे राधाजी के सन्मुख जा पहुँचे और अपनी चिरप्रिया को देखकर थकित से रह गए। जब उन दोनों के नेत्र परस्पर मिले, तब उनके शरीरों की चेतना, उन्हें छोड़ चली।

दोहा- राधहिं सखि समुदाय जब देखि दसा दुहुँ केरि।
आगिल चलि एकान्त करि उर धरि प्रीति घनेरि॥४०४॥

जब राधाजी की सखियों ने उन दोनों की ऐसी दशा देखी, तब अपने हृदय में सघन प्रेम लिये, वे उस स्थान पर एकान्त करके, आगे बढ़ गई।

चौ.- छबि उन्ह अकथ अनूपम देखी। हरिहिं प्रीति भइ गहन बिसेषी॥
अमल पेमु चिरपिय कर जानी। राध प्रकट अतिसय सकुचानी॥

राधाजी की अकथनीय व अनुपम सुन्दरता देखकर कन्हैया का प्रेम अत्यधिक बढ़ गया। अपने चिरप्रियतम का निर्मल प्रेम पहचानकर राधाजी प्रत्यत्त में तो अत्यन्त सकुचा गई,

किन्तु मनहिं मन उन्ह पद माहीं। भा अनुराग अनूप अथाहीं॥
परिचय तदुप परसपर पाई। तटहिं बिचरि लग दुहुँ हरषाई॥

किन्तु उन्हें मन-ही मन उनके चरणों में अनुपम व अगाध प्रेम हो आया। तदुपरान्त एक-दूसरे का परिचय जानकर दोनों हर्षित हो यमुनाजी के तट पर ही विचरण करने लगे।

तेहिं दिनु बिगत कबहुँ घनस्यामहिं। जाइ घरहिं मिल आपन बामहिं॥
कबहुँ तेन्हँ घर राधा आई। दरसन लहँ पिय कर सुखदाई॥

उस दिन के उपरान्त घनश्याम कभी अपनी प्रियतमा से उन्हीं के घर जाकर मिला करते थे और कभी राधाजी उनके घर आकर अपने उन प्रियतम के सुखद दर्शन पा लेती थी।

राजन एक बार सरि तीरा। बच्छ चराइ रहे दुहुँ बीरा॥
बालोचित लीला तहँ नाना। करि सखान्हँ सुख देत महाना॥

हे राजन! एक बार कृष्ण और बलराम दोनों भाई यमुना के तट पर गायें चरा रहे थे। वहाँ वे बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ करके, अपने, सखाओं को महान आनन्द प्रदान कर रहे थे।

द्रुमलिकसुत प्रेरित तेहिं काला। आवा तहँ एक सरप बिसाला॥

उसी समय द्रुमलिकनन्दन कंस का भेजा एक विशाल सर्प उस स्थान पर आ पहुँचा।

दोहा- **बपुष कोसभर भयद तिन्हँ रहा अकथ बिकराल।**
पथहि बाइ मुख जमेहुँ अस मनु जम थित करि गाल॥४०५॥

भय उत्पन्न करनेवाला उसका कोसभर का शरीर अकथनीय विकराल था। मार्ग में मुख फैलाकर वह सर्प इस प्रकार बैठ गया, मानों साक्षात् यम ही मुख फैलाकर बैठा हो।

चौ.- **पंथ समात न मुख अस भारी। ग्वाल चकित कह ताहि निहारी॥**
देखु बिसाल कन्दरा भाई। अति रमनीक जे परइ लखाई॥

उसका मुख ऐसा विशाल था, जो मार्ग में समाता न था। उसे देखते ही चकित हुए बालक परस्पर कहने लगे- भाईयों! इस विशाल कन्दरा को देखो! जो अत्यन्त रमणीक प्रतीत होती है।

बल अरु कान्हँ संग भय नाहीं। चलि देखिअ अह भीतर काहीं॥
भाइ जे न कछु तहँ हम पाइहि। तहहिं आर परि बछुन्हँ चराइहि॥

दाऊ व कन्हैया तो हमारे साथ है ही, इसलिये चलकर देखो इसके भीतर क्या है? हे भाई! जो हमें इसके भीतर कुछ न मिला, तो हम वहीं पर लेटे-लेटे अपने बछड़ों को चराऐंगे।

भाइ बात भलि चलु अतुराई। फाचर न त कन्हँ देइ अराई॥
अस बिचारि करि सब बछु जूहा। अहिमुख दौरि चले करि हूहा॥

हाँ भाई! बात तो बड़ी अच्छी है। अब शीघ्र चलो, अन्यथा कन्हैया कोई बाधा उत्पन्न कर देगा। ऐसा विचारकर बछड़ों को हाँककर हू हू-हा हा करते वे सर्प के मुख की ओर दौड़ चले।

बूझि भेद कन्हँ बरजेहुं ताहीं। मौजि परन्तु सुना कोउ नाहीं॥
एहिभाँति बछु बालक सारे। आतुर चलि फनिमुख पइसारे॥

कन्हैया ने स्थिति समझकर उन्हें रोका, परन्तु वे मौजी थे। किसी ने भी उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार सारे बालक व बछड़े उतावली से चलकर सर्प के मुख में जा घुसे।

सखाबछलहि भए तब संगा। लखि मुख बाँधेहुँ महाभुजंगा॥
तब अवरुद्ध भई तहँ व्हाला। मुरुछि लाग परि बछु अरु ग्वाला॥

तब सखावत्सल कृष्ण भी उनके साथ हो गए, यह देख उस महासर्प ने मुख बन्द कर लिया। तब मुख में वायु का प्रवाह रुक गया, जिससे बालक और बछड़े मूर्छित होकर गिरनें लगे।

बिहँसि धरे लखि तिहुँपुर भारा। कान्हँ लाग करि तनु बिस्तारा॥
तब अवरुद्ध स्वास भइ तासू। छटपटान निज तरकि बिनासू॥

यह देखकर श्रीकृष्ण हँसे और तीनों-लोकों का भार धारण करके, अपना शरीर बढ़ानें लगे। तब सर्प की स्वास रुक गई और अपने विनाश का अनुमान करके, वह छटपटानें लगा।

दोहा- एहिबिच ब्याकुल प्रान तिन्ह गए तासु सिरु फोरि।
मृत अहि तें पुनि दिब्यतनु नर प्रगटेउ कर जोरि॥४०६॥

इसी बीच व्याकुल हो रहे उसके प्राण, उसके मस्तक को फोड़कर निकल गए। फिर उस सर्प के मृत शरीर से हाथ जोड़े हुए दिव्य शरीरधारी एक मनुष्य प्रकट हुआ।

चौ.- करि प्रनाम कहि लाग निज कथा। अहितनु तेहिं लहेहुँ बिधि जथा॥
संखासुरसुत अघ हौं नाथा। रहा तरुन अति मनहर गाता॥

उसनें जिस प्रकार सर्प का शरीर पाया था, वह सब वृत्तान्त वह भगवान को प्रणाम करके, कहने लगा। हे नाथ! मैं शङ्खासुर का पुत्र हूँ। मैं पूर्व में युवा और अत्यन्त मनोहर अङ्गोंवाला था।

मलयाचलहि नाथ एक बारा। मैं एक मुनि कहँ जात निहारा॥
अष्टाबक्र तासु अस नामा। सतरबि तेज वदनु तपधामा॥

हे नाथ! एक बार मैंने मलयाचल की तराई से होकर जाते हुए एक मुनि को देखा। उनका नाम अष्टावक्र था, तप के धाम उन मुनि के मुख पर सौ सूर्यों के जितना तेज विद्यमान था।

रहा आठ जघ तनु उन्ह बाँका। छूटि हासि मम जब मैं ताका॥
पाछ करत मुनि अनुकृति नाथा। मैं बिनोदबस भा उन्ह साथा॥

उनका शरीर आठ स्थानों से टेढ़ा था, जब मैंने उन्हें देखा तो मेरी हँसी छूट गई। उन मुनि के चलनें की शैली का अनुकरण करता हुआ, मैं भी विनोदवश उनके साथ हो लिया।

हँसि परन्तु मोहि बालक जानी। छमत रहे संतत मुनि ज्ञानी॥

किन्तु मुझे बालक समझकर वे ज्ञानी मुनि मुस्कुराते हुए निरन्तर मुझे क्षमा कर रहे थे।

किन्तु मैं त उन्ह पाछहि परेऊ। तब मुनि सान्त क्रोध अस भरेऊ॥
पूरनकाम तत्व जस पाई। प्रेरक क्रिया करहिं अतुराई॥

किन्तु मैं उनके पीछे ही पड़ गया, तब शान्तप्रकृति के वे मुनि ऐसे क्रुद्ध हो उठे; जैसे पूर्णकाम रसायन (तत्व) किसी प्रेरक को पाते ही अधीर होकर (रासायनिक) क्रिया करने लगता है।

सठहुँ सरीर त सुन्दर तेरा। किन्तु मनहि कर टेढ़ घनेरा॥

तब मुनि ने क्रुद्ध हो कहा- रे शठ! तेरा शरीर सुन्दर है, किन्तु मन से तू बड़ा ही टेढ़ा है।

दोहा- **तोहि तनुहि छबि मान अति बचन नाग कुटिलाइ।**
तातें महि अहि होइ तुअ भोगहुँ निज अधमाइ॥४०७॥

तुझे अपने शरीर की सुन्दरता का बड़ा मान हैं और तेरी बातों में भी सर्प की-सी कुटिलता है। इसलिये अब तू पृथ्वी पर सर्प होकर अपनी इस अधमता का फल भोग।

चौ.- **जब मैं बिनवा आरत भारी। प्रभु कर मुनि मम मुकुति उचारी॥**
सुनि करि अभय ताहि भगवाना। दीन्ह परम दुरलभ निरबाना॥

फिर जब मैंने अत्यन्त आर्त्त होकर विनय की, तब उन मुनि ने प्रभु (आप) के हाथों मेरी मुक्ति बताई। उसकी बात सुन भगवान ने उसे अभय करके, परम दुर्लभ निर्वाण प्रदान कर दिया।

चितवनसुधा तदुप बरिषाए। कान्हँ मुरछितन्हि तुरत जगाए॥
कन्दर भेद ग्वाल जब जाना। झेंपि लाग कन्हिआँ समुहाना॥

तदुपरान्त चितवनरूपी सुधा बरसाकर कन्हैया ने मूर्छित सखाओं व बछड़ों को तुरन्त जीवित कर लिया। जब बालकों को कन्दरा का रहस्य विदित हुआ, तब वे कृष्ण के सन्मुख झेंपनें लगे।

खलहिं उबारि सखान्हँ समेता। गै जमुना तट कृपानिकेता॥
बछु पिवाइ तहँ करि असनाना। बैठे कदवँ छाह भगवाना॥

दुष्ट अघासुर का उद्धार करके, कृपानिकेत श्रीकृष्ण सखाओं के साथ यमुनातट पर गए। बछड़ों को जल पिलाकर और स्नान करके, फिर वे वहाँ स्थित कदम्बवृक्ष की छाया में बैठ गए।

पुनि कह देखु सखा सरिकूला। जहँ प्रति बिटप कलपद्रुम तूला॥

फिर बोले- हे सखाओं! यमुना के इस तट को देखो! जहाँ प्रत्येक वृक्ष कल्पवृक्ष के तुल्य है।

सरि तें चलत बेगमय पानी। मृदु बालुका तटन्हि बिखरानी॥
उदरबोध जनु आलस पाई। मधुमय नींद सिसुहि दृग बाई॥

नदी से उमड़कर आते हुए जल ने नदी के तटों पर कोमल बालु बिछा दी है। जैसे आलस्य ने उदरतृप्ति का बोध पाकर किसी शिशु के नेत्रों में मीठी-सी नींद बिछा दी हो।

वाताँचल निज ढारि परागा। करत सुवासित दिसि सब भागा॥
सरद नवाम्बुज सघन कतारा। झूमि रही जनु तटिनिहिं धारा॥

वायु के आँचल में अपना पराग उढ़ेलकर दिशाओं के समस्त भागों को सुगन्धित करती हुई, शरद्-ऋतु के नवीन कमलों की सघन कतारें, मानों नदी की धारा में झूम रही है।

दोहा- **सोउ निधि लूटन भृंगदल भवँ तहँ घनन्हि समान।**
लताछन्न तट तिन्हहिं सँग पुनि लखु खग कलगान॥४०८॥

उनकी परागरूपी उसी निधि को लूटनें के लिये, भौंरे मेघों के समान उन पर मँडरा रहे हैं। लताओं से आच्छादित तट पर, उन भौरों के साथ ही देखों! पक्षि भी मधुर कलरव कर रहे हैं।

मासपारायण चौदहवाँ बिश्राम

चौ.- इहि तें इहाँ सघन सितलाई। गयउ पहर भर दिनु पुनि भाई॥
मृदु महि यह भोजन किए जोगा। आउ करैं भोजन सब लोगा॥

इस कारण यहाँ सघन शीतलता है और हे भाईयों! दिन भी पहरभर बीत चला है। यह भूमि भोजन किये जाने योग्य है, इसलिये आओ! हम सब यहाँ भोजन कर लें।

धेनुबत्स सब गहि सरि नीरा। चरत रहहि इहि थल धरि धीरा॥
सुनि तहँ आपन छीकन्हँ काढ़ी। उमगे सबनि छुधा अति बाढ़ी॥

सब बछड़े भी यमुना का जल पीकर यहीं टिककर चरते रहेंगे। यह सुनकर भूख के बढ़नें से, अपने-अपने छीके निकालकर सभी उस स्थान पर उतावली से एकत्र हो गए।

बिच बैठाइ हरिहि सब ग्वाला। बैठि गए करि घेर बिसाला॥
सखन्हँ मध्य तब प्रभु रुच कैसे। अनत अंग सँग तनु हिय जैसे॥

कन्हैया को बीच में बैठाकर सब सखा एक बड़ा घेरा बनाकर बैठ गए। तब सखाओं से घिरे श्रीकृष्ण की कैसी शोभा होनें लगी, जैसे अन्य अङ्गों के साथ शरीर में हृदय की शोभा होती है।

बहुरि खोलि सब निज निज छीका। जविं लग लखि लखि कन्हँ मुख नीका॥
सो सवँ केउ कलेउ कर पट धरि। केउ पलास पल्लवहि थारि करि॥

फिर अपने छीके खोलकर कन्हैया का सुन्दर मुख देखते हुए सब भोजन करने लगे। उस समय कोई दुपट्टे पर रखकर खाने लगा, तो किसी ने पलाश के पत्तों की ही थाली बना ली।

दोहा- सब मिलि करइ परसपर हँसि ठिठौलि बहुभाँति।
ब्रह्म बूझि रुचि आतमहि करइ जतन तेहिंभाँति॥४०९॥

वे सब सखा मिलकर आपस में बहुत-प्रकार से हास परिहास कर रहे हैं। परमात्मारूपी कन्हैया आत्मारूपी उन सखाओं की रुचि को समझकर तदनुसार प्रयत्न कर रहे हैं।

चौ.- सुबल तेहिं सवँ गहि एक कौरा। दीन्ह हरषि हरि मुख बरजोरा॥
जेहिं खाइ प्रभु तिन्ह रुचिराई। अति सप्रेम सब सनमुख गाई॥

उस समय सुबल ने हर्षित हो एक निवाला लिया और बलपूर्वक कन्हैया के मुख में दे दिया, जिसे खाकर उन्होंने सखाओं के मध्य बड़े ही प्रेम से उसके स्वाद का बखान किया।

तदुप सिदाम कौर एक लीन्हा। कछु कछु सबनि सखन्हँ मुख दीन्हा॥
सुबलहि कौर सरिस भगवाना। सखन्हि मध्य अति ताहिं बखाना॥

तदुपरान्त श्रीदामा ने एक कौर लेकर थोड़ा-थोड़ा करके, सबको दिया। तब सुबल के कौर के समान ही, भगवान श्रीकृष्ण ने उसकी भी सखाओं के मध्य बहुत प्रशंसा की।

एहिभाँति जूठे कर आपन। हरिहि कराइ लाग सब भोजन॥
जग्यभोजि पुनि अति अनुरागे। गोपबालकन्हँ कर जविं लागे॥

इस प्रकार वे सब अपने जूठे हाथों से कन्हैया को भोजन करवानें लगे और यज्ञभोक्ता भगवान श्रीहरि भी बड़े ही प्रेम से उन ग्वालबालों के हाथों भोजन करने लगे।

तेहिं सवँ पेम अमल सब केरा। प्रगटि भाँति भलि भयउँ गहेरा॥
बन सब दिसि उन्ह किलकनि छाई। थकित लाग सुनि सिव पुलकाई॥

उस समय श्रीकृष्ण के प्रति उनका निर्मल प्रेम भली-भाँति प्रकट होकर और गहरा गया। वन में सब ओर उनकी किलकारियाँ छा गईं, जिसे थकित शिवजी पुलकित हो सुनने लगे।

दोहा- **सखाबछल नृप संतत पेमुबस्य गत मान।**
किन्तु देअँ मुनि सिद्धन्हँ लखि भा मोह महान॥४१०॥

हे परीक्षित्! सखावत्सल भगवान निरन्तर प्रेम के वश में रहनेंवाले और मानरहित हैं, किन्तु यह देखकर देवताओं, मुनियों और सिद्धों को अत्यन्त मोह (भ्रम) उत्पन्न हो गया।

चौ.- **अज संकितचित कीन्ह बिचारा। अहहि हरि कि यह गोपकुमारा॥**
मुनिजन अति सँभारि मख करई। तदपि सहज प्रभु ताहिं न गहई॥

ब्रह्माजी ने भी शङ्कितचित्त हो विचार किया कि ये गोपबालक क्या (सचमुच) भगवान ही हैं? मुनि बड़ी ही सावधानी से यज्ञ करते हैं, तो भी श्रीहरि उसे सहजता से स्वीकार नहीं करते।

किन्तु सखन्हि जूठे कर खाई। प्रमुदित ए त रहे गिलकाई॥
पुनि जे प्राकृत गोपकुमारा। अहि बिसाल सहजहि कस मारा॥

किन्तु सखाओं के जूठे हाथों से खाकर ये तो महान आनन्द के मारे गद्‌गद हो रहे हैं और यदि ये सामान्य बालक हैं, तो फिर इन्होंने उस महासर्प को सहज कैसे मार दिया?

एहिबिधि भ्रम भा अजहि महाना। तब उन्ह परिखन निस्चय ठाना॥
पुनि महि उतरि अए अज तहवाँ। बच्छु रहे चरि सरि तट जहवाँ॥

इस प्रकार ब्रह्माजी का भ्रम अधिक बढ़ गया, तब उन्होंने परीक्षा लेनें का निश्चय किया और आकाश से उतरकर वे वहाँ आ गए, जहाँ यमुनाजी के तट पर बछड़े चर रहे थे।

नृप उन्ह मोह बिबस करि माया। तुरत लीन्हँ हरि बछु समुदाया॥
जँवत बालकन्हँ जब तेहिं काला। लखि न परा कत जूह बिसाला॥

हे राजन! मोहवश उन्होंने माया प्रकट की और तुरन्त ही सब बछड़ों को हर लिया। जब भोजन कर रहे गोप-बालकों को बछ्ड़ों का विशाल समूह कहीं पर भी दिखाई न दिया,

तब सचिंत सब कहेउ कन्हाई। गए बच्छ सब बिपिन पराई॥
अब धौं काह होइ नँदलाला। खोजिहि कस बन परम बिसाला॥

तब उन सबने चिन्तित होकर कहा- हे कन्हैया! बछड़े तो सब-के सब वन की ओर भाग गए, अब क्या होगा? यह वन बड़ा ही विशाल है, हम उन्हें किस प्रकार खोजेंगे?

कहा कान्हँ तब चिंत न करहूँ। सबन्हँ बटोरि अबहि मैं फिरहूँ॥
अस कहि बच्छनेहि अतुराई। चले सोध निज लकुटि उठाई॥

तब कन्हैया ने कहा- तुम चिन्ता मत करो। मैं सबको बटोरकर अभी लौटता हूँ। ऐसा कहकर बछड़ों से प्रेम करनेवाले भगवान लकड़ी उठाकर उन्हें खोजने चले।

गै हरि लखि बिमुग्ध तहँ आई। हरि बालकन्हँ गए अतुराई॥
बछु समेत उन्ह माय सुवाने। जाइ एक गिरि खोह दुराने॥

कन्हैया को गया देख मोहग्रस्त ब्रह्माजी वहाँ आए और बालकों को भी उतावली से हर ले गए। फिर माया से बछड़ों सहित उन्हें सुलाकर एक पर्वत की कन्दरा में छिपा दिया।

उहाँ कान्हँ जब बत्स न पाए। फिरे सोउ थल अति अतुराए॥
किन्तु काह देखा जगपालक। अहहि नाहिं तहँ एकौ बालक॥

उधर जब कन्हैया को बछड़े नहीं मिले, तब वे बड़ी ही उतावली से उसी स्थान पर लौट आए। किन्तु उन जगत्पालक भगवान ने क्या देखा कि वहाँ एक भी बालक नहीं है?

तब सरबग्य जगतपति स्यामा। बूझि गए यह अह अज कामा॥
अब ब्रज जैउ कवन मुख लाई। अति दुख लहहि गोपि अरु गाई॥

तब सर्वज्ञ श्रीकृष्ण समझ गए कि यह ब्रह्माजी का काम है। (उन्होंने सोचा) अब मैं व्रज में क्या मुख लेकर जाऊँगा। पुत्रों व बछड़ों के बिना गोपियाँ व गायें अत्यन्त दु:खी होंगी।

दोहा- **नृप पुनि भ्रम दुख उन्ह समन मायापति भगवान।**
अदभुत कौतुक कीन्ह एक अज न सके जेहिं जान॥४११॥

हे परीक्षित्! ब्रह्माजी के मोह और गोपियों व गायों को होनेवाले दु:ख के निवारण के लिये, मायापति श्रीकृष्ण ने एक अद्भुत कौतुक किया, जिसे ब्रह्माजी भी नहीं जान सके।

चौ.- **निज बिस्तार कीन्ह भगवाना। प्रगटाए बछु बालक नाना॥**
तनु सुभाय गुन रूप अचारा। जे सगंध अपहृत अनुहारा॥

भगवान ने अपने विग्रह का विस्तार किया और अनेक बछड़े व बालक प्रकट कर लिये, जो शरीर, स्वभाव, गुण, रूप, चेष्टा और गन्ध में वैसे ही थे, जो हर लिये गये थे।

बैनु बजात सबन्हि सँग स्यामा। प्रमुदित चले तदुप निज धामा॥
गाँउ समीप अए जब सबही। सुनतहि मधुर बैनु धुनि तबही॥

तदुपरान्त मुरली बजाते हुए कृष्ण बछड़ों और सखाओं के साथ हर्षित हो घर की ओर चले। जब वे गाँव के निकट आ पहुँचे, तब कन्हैया की मुरली का मधुर श्वर सुनते-ही,

तामहँ बत्सन्हँ अगवन सैना। पाइ खिले गौ गोपिन्हँ नैना॥
पुनि जब कुच ममता उमगानी। गोपि निकसि लगि गौ हमरानी॥

उसमें बछड़ों व बालकों के लौटनें का सङ्केत पाकर गायों व गोपियों के नेत्र खिल उठे। जब ममता स्तनों में उमड़ आई, तब गोपियाँ द्वार पर आई और गायें गोष्ठों में रम्भानें लगी।

गोपि सबनि निज निज सुत पाई। लगि दुलारि उन्हँ कहँ उर लाई॥
कूदि फाँदि इत बच्छपि धाए। जननिहि निकट अए अतुराए॥

अपने-अपने पुत्रों को पाकर समस्त गोपियाँ उन्हें हृदय से लगाकर दुलारने लगी। इधर गायों के बछड़े भी कूदते-फुदकते हुए शीघ्र ही अपनी-अपनी माँओं के पास आ गए।

मूक नेह तब गाइन्हँ केरा। बच्छोपर झरि लाग घनेरा॥
सहरत चाइ बछुन्हँ मुद भारी। करहीना अति लागि दुलारी॥

तब गायों का वाणीरहित प्रेम बछड़ों पर सघन होकर बरसनें लगा। जिह्वा से चाटकर बछड़ों को सहलाते हुए, हाथ रहित वे गौ-माताएँ बड़े ही आनन्द से उन्हें दुलारनें लगी।

दोहा- **इहिबिधि नृप बछु बालकन्हि बिस्तृत करि निज रूप।**
गोपि गउन्ह मुद देत प्रभु लहँ बात्सल्य अनूप॥४१२॥

हे परीक्षित्! इस प्रकार अपने विग्रह को बछड़ों व बालकों के रूप में विस्तृत करके भगवान श्रीकृष्ण गोपियों व गायों को आनन्द देते हुए उनसे अनुपम वात्सल्य रस प्राप्त करने लगे।

चौ.- **प्रभु निज प्रति ममत्व उन्ह चीन्हा। सादर सबन्हँ मातु पद दीन्हा॥**
गाइ गोपि पै भेद न जाना। निजहि तनय उन्ह हरि कहँ माना॥

प्रभु ने गोपियों की ममता देखकर आदरपूर्वक उन्हें मातृपद प्रदान किया। किन्तु गायें व गोपियाँ इस भेद को नहीं जान पाई, वे सब कन्हैया को अपना ही पुत्र मानती रही।

भा रह यह क्रम बारह मासा। झरत रहेउ रस तहँ सब आसा॥
लखि तेहिं बल भए चकित अगाहा। ब्रज महुँ होइ रहा यह काहा॥

यह क्रम बारह महीनों चलता रहा, जिससे व्रज में निरन्तर वात्सल्य-वर्षा होती रही। उस ममत्व को देख बलरामजी चकित होकर सोचनें लगे कि व्रज में यह क्या हो रहा है?

अस रस पूरब इहँ न लखाया। कृत कि सुरासुर या हरिमाया॥
बहुरि जोगबल देखा जबही। बूझे अह कान्हहि कृत सबही॥

यहाँ ऐसा प्रेम पहले तो नहीं देखा गया; क्या यह देवों या असुरों का काम है अथवा हरिमाया है? जब उन्होंने योगबल से देखा, तब समझ गए कि ये कन्हैया की ही लीला है।

देखा अज भ्रमबस्य बिसेषे। ग्वाल बत्स पुनि हरिमय देखे॥
इहिबिधि हरि प्रभाव हिय जानी। दाउ कहा हरि सन मृदु बानी॥

उन्होंने ब्रह्माजी को भ्रम के विशेष वश देखा और ग्वालबालों व बछड़ों को कृष्णमय देखा। इस प्रकार भगवान का प्रभाव समझकर दाऊ ने उनसे कोमल वाणी में कहा-

दोहा- **कान्हँ ब्रह्म तुम दयानिधि तव माय न केउ पार।**
पंचतत्वमय चर अचर अहहि तवहि बिस्तार॥४१३॥ (क)

हे कन्हैया! आप परब्रह्म और दया के सागर हैं, आपकी माया का कोई पार नहीं। पञ्च-तत्वों से निर्मित यह चर, अचर संसार आप ही के स्वरूप का विस्तार है।

गुह दुराइ बछु बालकन्हँ फिरे द्विजप छिन माहँ।
निरखन ब्रज थिति एहिबिच बीतेहुँ सम्बत ताहँ॥४१३॥ (ख)

ग्वालबालों व बछड़ों को कन्दरा में छिपाकर ब्रह्माजी व्रज की स्थिति का निरीक्षण करने के लिये क्षणभर में ही लौट आए, किन्तु इस बीच व्रज में वर्षभर का समय बीत गया।

चौ.- **आवतहि उन्ह देखेहुँ काहा। ब्रज पूरबवत मोद अगाहा॥**
हरि बछु ग्वाल दुराए जेई। बिद्यमान कन्हिआँ सँग तेई॥

वहाँ आते ही उन्होंने देखा कि व्रज में पहले जैसा ही अगाध आनन्द व्याप्त है और जिन ग्वालबालों व बछड़ों को उन्होंने हरकर छिपाया था, वे सभी कन्हैया के साथ विद्यमान हैं।

अज अस लखि सोचहि चकराए। अहो गार मैं जाहिं दुराए॥
होइ सकहि तेइ कस कन्हँ संगा। पूरब सरिस मुदित सउमंगा॥

यह देख ब्रह्माजी चकराकर सोचनें लगे, अहो! जिन्हें मैंने गुफा में छिपाया था, वही बालक और बछड़े पूर्ववत् आनन्दित व उत्साहित से, कन्हैया के साथ कैसे हो सकते हैं?

अस बिचारि गिरि कंदर आए। निद्रित किन्तु उन्हँहि तहँ पाए॥
चकित परम जब अज ब्रज फिरेऊ। तहहिं खेलरत तेइ लखि परेऊ॥

ऐसा विचारकर वे पर्वत की कन्दरा में आए, किन्तु उन्हीं को वहाँ सोते हुए पाया। जब अत्यन्त चकित होकर ब्रह्माजी व्रज में आए, तो वहाँ भी उन्हें वे ही खेलते हुए दिखाई पड़े।

तब पुनि पुनि उन्ह देखा जाई। दुहुँ दिसि मिलेउ सोउ समुदाई॥
अब चिंता उन्ह कहँ अति ब्यापी। भय लागा संतत चित चापी॥

तब उन्होंने बार-बार जाकर देखा, किन्तु दोनों ही ओर उन्हें बालकों व बछड़ों का वही समूह दिखा। अब उन्हें महान चिन्ता होने लगी और भय उनके चित्त को निरन्तर दबानें लगा।

तेहिं सवँ खेलत बछु बालक महँ। लखि परि लाग उन्ह हरिहि बिग्रह॥
नीरद नवल बरन द्युति भारी। मुख छबिसिंधु सबनि भुज चारी॥

उसी समय उन्हें खेलते हुए बालकों व बछड़ों में हरिविग्रह दिखने लगा। जलयुक्त नवीन मेघ से श्याम व सघन तेजसम्पन्न उनके मुख सुन्दरता के सागर थे और सबकी चार-चार भुजाएँ थी;

जामहँ पदुम चक्र गद संखा। हेम मुकुट सिरु मयूरपंखा॥
तेहिं छिन भूलहि भा उन्ह भाना। जानि गए पुनि कन्हँ भगवाना॥

जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा व पद्म थे। उनके शीश पर मोरपङ्खयुक्त स्वर्णनिर्मित मुकुट थे। उसी क्षण ब्रह्माजी अपनी भूल समझ गए और जान गए कि श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं।

दोहा- **तब चित धरि उन्हँ खोरि निज भयबस मूँदे नैन।**
भयउँ बपुष अति सिथिल पुनि मुख तें उमग न बैन॥४१४॥

तब अपने अपराध को चित्त में धारण करके भयभीत होकर उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। उनका शरीर अत्यन्त शिथिल हो गया और मुख से कोई बात नहीं निकल रही थी।

चौ.- **पुनि पुनि हेरि निजहि करतूती। उन्ह होइ लागि लाज अनुभूती॥**
तब बाहन तजि अज अतुराना। परे प्रभुहि पद दंड समाना॥

बार-बार अपनी करनी का स्मरण करके, उन्हें लज्जा का अनुभव होने लगा। अपने वाहन से उतरकर ब्रह्माजी शीघ्र दौड़े और भगवान के चरणों में दण्ड के समान गिर पड़े।

दृग जल प्रभु पदकंज पखारी। बिधना हरि कइ अस्तुति सारी॥
कहा बहुरि प्रभु अंतरजामी। प्रनतपाल भगतन्ह अनुगामी॥

नेत्रजल से प्रभु के चरणकमल पखारकर ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की। फिर उन्होंने कहा- हे अंतर्यामी प्रभु! हे शरणागतवत्सल! हे भक्तों का अनुशरण करनेवाले भगवन्!

माय तोर बलवति अस अहहीं। सिव अहीस जिन्हँ पार न लहहीं॥
नाथ करहिं रच्छा जिहि केरी। केवलु उन्हँ न माय सक फेरी॥

आपकी माया ऐसी बलवति है कि जिसका पार पाना स्वयं शिवजी व शेषजी के लिये भी असम्भव है। नाथ (आप) स्वयं जिसकी रक्षा करते हैं, केवल उन्हीं को माया भ्रमित नहीं कर सकती।

सोउ माय मोहि दीन्ह भ्रमाहीं। अचरज नाथ तनक अह नाहीं॥
जिमि अजान सिसु कर मुँहजोरी। तदपि छमहि पितु ताकर खोरी॥

उसी माया ने मुझे भी भ्रमित कर दिया, किन्तु हे नाथ! इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं है। जैसे कोई अबोध बालक मुँहजोरी करता है, तो भी पिता उसकी भूल को क्षमा कर देता है।

तिमि बिसारि अब मम अपराधा। करिअ कृपा दयधाम अगाधा॥
हरि उठाइ तब उन्ह उर लावा। मधुर बचन कहि धीर बँधावा॥

हे दयाधाम! वैसे ही अब आप भी मेरा अपराध भुलाकर मुझ पर अगाध कृपा कीजिये। तब भगवान ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया और मधुर वचनों से धैर्य बँधाया।

तेहिं सवँ प्रभुहिं देखि अनुकूला। निकसि गयउ उन्ह मानस सूला॥

उस समय भगवान को अपने अनुकूल हुआ देखकर उनके मन का क्षोभ दूर हो गया।

दोहा- **तदुप हरषि अज गए तहँ जहँ राखे बछु ग्वाल।**
आनि सबन्हँ पुनि जोगबल अरपे दीनदयाल॥४१५॥ (क)

तदुपरान्त ब्रह्माजी हर्षित होकर वहाँ गए जहाँ उन्होंने बछड़ों व ग्वालबालों को छिपा रखा था। फिर अपने योगबल से वापस लाकर उन्होंने उन्हें भगवान को अर्पित कर दिया।

लखि परमेस्वर दीन्ह उन्ह सुखद भगति बरदान।
गए मुदित तब धाम निज अज करि कन्हँ गुनगान॥४१५॥ (ख)

यह देखकर परमेश्वर श्रीकृष्ण ने उन्हें अपनी भक्ति का सुखद वर दिया। तब ब्रह्माजी आनन्दित होकर परमात्मा श्रीकृष्ण का गुणगान करते हुए, अपने लोक को चले गए।

एहिभाँति षट सम्बत बयस कान्हँ जब पाइ।
अकसर गै जनिनिहिं समुख कह पालव उन्ह लाइ॥४१५॥ (ग)

इस प्रकार जब कन्हैया की आयु छः वर्ष की हो गई, तब एक बार वे अपनी मैय्या के सन्मुख गए और उनका आँचल पकड़कर कहने लगे कि,

चौ.- **मैय्या मैं चहुँ गाइ चराई। ताततिहिं कहु मोहि देहिं रजाई॥**
इहिबिच नंद तहाँ चलि आए। सुनि सुत बचन परम हरषाए॥

हे मैय्या! मैं गायें चराना चाहता हूँ, तुम बाबा से कहो कि वे मुझे (गाए चरानें की) आज्ञा दें। इतनें में ही नन्दजी भी वहाँ आए और पुत्र की बात सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए।

तदुप प्रात अति चरन्हि बोलाई। ब्रजपति गाइनि सबनि सजाई॥
पुनि जब ग्वालबाल सब आए। उभय सुतन्हँ उन्ह संग लगाए॥

तदुपरान्त बहुत सवेरे ही सेवकों को बुलवाकर व्रजाधिपति नन्दजी ने गायों को सजवा लिया। जब सब ग्वालबाल आ गए, तब उन्होंने दोनों भाईयों को उनके साथ कर दिया।

सखन्हँ सँघात हरषि सुखकंदा। खोलि लाग गाइन्हँ गलबन्दा॥
पुनि जब सबनि भई एकठाई। उन्ह कचकारि चले दुहुँ भाई॥

तब सुख के कन्द श्रीकृष्ण सखाओं के साथ जाकर गायों के गलबन्ध खोलनें लगे। फिर जब सब गायें एक स्थान पर एकत्र हो गई, तब वे दोनों भाई उन्हें हाँकते हुए चले।

तेहिं सवँ दधिहिं तिलक सिरु दीन्हें। प्रमुदित नंद बिदा सब कीन्हें॥
पंथ चलत कोउ बाजत सिंगी। मुरलि गाव कोउ नाच तरंगी॥

उस समय सबके मस्तक पर दहीं का तिलक लगाकर नन्दजी ने प्रसन्नमन से उन्हें विदा किया। मार्ग में चलते हुए उनमें कोई सींग व मुरली बजा रहा है, तो कोई नाच-गा रहा है।

रहे ग्वाल कछु बड़ कछु मध्यम। पुनि गोपालराइ रहे लघुतम॥
एहिभाँति कानन बिच आई। धेनु परीत सखान्हँ रेंगाई॥

ग्वालों में कुछ बड़े, तो कुछ मँझोले थे और कृष्ण उनमें सबसे छोटे थे। इस प्रकार वन के बीचो-बीच आकर सब सखाओं ने गायों के समूह को एक मैदान में चरनें छोड़ दिया।

दोहा- **बहुरि कान्हँ बल संग सब परितहिं खेलन लाग।**

मनहुँ संग मिलि खेलहिं बहु मूरति अनुराग॥४१६॥ (क)

फिर कन्हैया और बलराम को साथ करके, समस्त सखा उस मैदान पर ही खेलनें लग गए, मानों प्रेम की बहुत-सी जीवन्त मूर्तियाँ मिलकर एक साथ खेल रही हो।

तदुप अरध दिनु गयउ अस जानि किए गौ बृंद।
सर समीप तरु छाँह तर आए आनँदकंद॥४१६॥ (ख)

तदुपरान्त आधा दिन बीत गया है, यह जानकर समस्त गायों को आगे करके, आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्ण एक सरोवर के निकट वृक्ष की छाया में आ गए।

चौ.- सीतल जल तहँ गउन्ह पिबाई। पौढ़ि लाग जब धरनि कन्हाई॥
तबहि सुबल तरु पातन्हि आने। करि साँथरि तेहिं धरनि बिछाने॥

उस सरोवर पर गायों को शीतल जल पिलाकर जब कन्हैया भूमि पर लेटनें लगे, तब सखा सुबल वृक्ष के कुछ पत्ते ले आया और उन्हें भूमि पर बिछाकर कोमल शय्या बना दी।

जानि पेमु हरि तापर पौड़े। अपर सखा अस लखि तहँ दौड़े॥
बरुथप उन्ह सिरु लीन्ह उछंगा। लाग सिदाम चापि उन्ह अंगा॥

उसका प्रेम समझकर भगवान शय्या पर लेट गए। यह देखकर अन्य सखा भी वहाँ दौड़े। वरुथप ने कन्हैया के सिर को अपनी गोद में ले लिया और श्रीदामा उनके चरण दबानें लगा।

उत्तरीय गहि अति अनुरागा। मनसुख उन्ह पर पव करि लागा॥
बल बहुरंग कुसुम गहि आने। माल गही लखि कान्हँ रिझाने॥

मंसुखा दुपट्टा लेकर बड़े ही प्रेम से उन पर पङ्खा झलनें लगा। दाऊ अनेक रङ्गों के पुष्प तोड़ लाए और उनसे एक माला पिरोई, जिसे देखकर कन्हैया अनुरक्त हो गए।

सरस पक्व फल सुदाम आनें। प्रीति सहित लग सखहिं खवानें॥
ऐहिभाँति चम्पाकलि साजी। केउ उन्ह कच सवार निज राजी॥

सुदामा रसयुक्त, पके हुए फल ले आया और प्रेमसहित अपने सखा कृष्ण को खिलाने लगा। इसी प्रकार चम्पा की कलियों से सजाकर अपनी इच्छा से कोई उनके केश सँवारने लगा।

केउ नाचहि करि छदम जुझाई। केउ रहे गुपालहिं रिझाई॥

कोई नाच रहा है, तो कोई युद्ध का अभिनय करके, गोपालराय को रिझा रहा है।

दोहा- **कछु खेलहि तरु छुआ छुइ कछु गावहि मृदु गान।**
हेरहि धेनुन्ह ग्वाल केउ केउ कन्हँ श्रव बतिआन॥४१७॥

कुछ सखा वृक्षों पर चढ़कर छुआ-छुई खेल रहे हैं और कुछ मधुर वाणी से गीत गा रहे हैं। कोई गायों को पुकार रहा है, तो कोई कन्हैया के कान से लगकर बातें कर रहा है।

चौ.- **लखि अहीरपोतन्हँ सौभागा। उन्ह सुर बृन्द सराहन लागा॥**
साँझ काल करि गोधन आगे। चले सकल प्रमुदित ब्रज लागे॥

उन ग्वालों के इस सौभाग्य को देखकर देवता उनकी सराहना करने लगे। तत्पश्चात् संध्या का समय जानकर गायों का समुदाय हाँकते हुए, वे सब अत्यन्त आनन्दपूर्वक व्रज के लिये चले।

धेनुन्हँ खुर तारित रज केरा। उठहिं गुबार गोपि अस हेरा॥
तब तें सकल काज बिसराई। कान्हँ दरस हित आतुर धाई॥

गोपियों ने देखा कि गायों के खुरों से आहत होकर धूल उड़नें लगी है, तब वे सारे कार्यों को छोड़कर कन्हैया का दर्शन पानें के लिये उतावली से दौड़ी।

ऐतनेहुँ गाँउ बीथि रस घोरी। मुरलिहिं रव उमगेहुँ बरजोरी॥
सुनतहिं जेहिं अधीर ब्रजनारी। कान्हँ दरस हित चढ़ी अटारी॥

इतनें में ही नन्दगाँव की गलियों में सुख की सृष्टि करती, मुरलीध्वनि बलपूर्वक उमड़ पड़ी, जिसे सुनते ही गोपियाँ कन्हैया के दर्शन के लिये, भवनों की अटारियों पर चढ़ गई।

एहिंबिच हेरि देत सब गाई। निकसे सखन्हँ समेत कन्हाई॥
चितव पाछ फिरि सिंघ समाना। गरुअ रहित मुख जनु सुखखाना॥

इसी बीच गायों को हाँकते हुए, श्रीकृष्ण सखाओं के साथ उधर आ निकले। वे सिंह के समान पीछे मुड़कर देखते हैं। गर्व से रहित उनका मुखमण्डल, जैसे सुख की खान ही है।

बिचरनि तासु भव्य मतवारी। गजकिसोर जनु उन्मत भारी॥
नयन प्रफुल्लित सरसिज जैसे। कुटिल कचन्हि गोरज कन बैसे॥

उनकी चाल बड़ी ही भव्य और मतवाली थी, जैसे कोई बड़ा ही उन्मत्त युवा हाथी हो। उनके नेत्र कमलों जैसे प्रफुल्लित हैं। उनकी घुँघराली अलकों पर गायों की चरणरज जमी है।

गाँउ मध्य जहँ सँकुचित कुंजा। चलहि मन्दगति तहँ सुखपुंजा॥

गाँव के मध्य, जो गलियाँ सँकरी है, सुख के पुञ्ज श्रीकृष्ण उनमें धीरे-धीरे चल रहे हैं

दोहा- **भई भीर तेहिं समय अति दरस न लहँ जब कोउ।**
अति अधीर दुरबाद करि सिसु सम अचरत सोउ॥४१८॥

उस समय भारी भीड़ हो जाने से जब कोई कन्हैया के दर्शन से वञ्चित रह जाता है, तब वह अत्यन्त अधीर होकर दुर्वचन कहता हुआ बालकों के समान आचरण करता है।

चौ.- **गाइ चरात सखा समुदाई। अकसर कहा दुहुन्हँ पहि जाई॥**
राम स्याम तुम दुहुँ बलवंता। सहज बधे बहु असुर दुरंता॥

गायें चराते हुए एकबार सखासमुदाय ने दोनों से जाकर कहा- हे बलराम-कृष्ण! तुम दोनों बड़े ही बलशाली हो। तुमनें खेल ही खेल में बहुत-से दुर्दान्त असुरों को मार डाला।

अतुलनीय जोधा तुम दोई। नयन देखि बूझे हम जोई॥
बिदित तोहि भल अह निअराई। बिपिन सुरम्य एक सुखदाई॥

तुम दोनों ही अतुलनीय योद्धा हो, यह हम अपने नेत्रों से देखकर समझ चुके हैं। तुम यह तो भली-भाँति जानते हो कि यहाँ निकट ही में एक अत्यन्त रमणीक व सुखदायक वन है।

अगनित ताल बिटप आछन्ना। तातें नाउँ तालबन कन्ना॥
एहि समय तरु फलन्हि लधानें। पाके जे हम गंध लोभानें॥

हे कृष्ण! वह वन अनेक तालवृक्षों से आच्छादित है, इसलिये उसका नाम 'तालवन' है। इस समय वे वृक्ष फलों से लदे हैं, जो पक चुके हैं और उसकी गन्ध पर हमारे मन ललचा रहे हैं।

पै खरतनु एक असुर घनेरा। तहँ बलात संतत कर फेरा॥
सखा तासु धेनुक अस नाऊँ। जे सकुटुम्ब करइ तहँ ठाऊँ॥

किन्तु एक बड़ा भारी राक्षस गदहे का शरीर धरे, निरन्तर बलपूर्वक उस वन में घूमता रहता है। हे सखा! उसका नाम धेनुक है, जो अपने कुटुम्बियों सहित वहाँ निवास करता है।

फल सुस्वादु सख तहँ अह जेई। आपु न खाइ खान नहिं देई॥
अब जे तुम दुहुँ करहि सहाई। हम सो फलन्हि अबहिं चह खाई॥

उस वन में उत्तम स्वादयुक्त जो फल हैं, उन्हें न तो स्वयं खाता है और न किसी अन्य को खाने देता है। अब यदि तुम हमारी सहायता करो, तो हम अभी उन फलों को खाना चाहते हैं।

सुनि अस सखाबछल दुहुँ बीरा। कहा हास धरि बदनु गभीरा॥
सखा चलिअ सब मिलि फल खाइहिं। देखि लेहिं जब दानव आइहिं॥

यह सुन सखावत्सल उन दोनों भाईयों ने मुख पर गम्भीर हास्य धरकर कहा- हे सखाओं! चलो हम सब मिलकर फल खायेंगे और जब वह राक्षस आयेगा, तो उसे भी देख लेंगे।

अस कहि संग किए नंदलालहिं। चले बलधि आगे करि ग्वालहिं॥
देखत बन रम्यता अगाहीं। चले जात सब मारग माहीं॥

ऐसा कहकर नन्दनन्दन को साथ लेकर सखाओं को आगे करके, बल के समुद्र दाऊ चले। मार्ग में वन की अगाध रमणीयता को देखते हुए, वे सब (तालवन की ओर) चले जा रहे हैं।

बन पैठत पुनि खल भय पाई। बलहिं बालकन्हँ कीन्ह अगाई॥
देखि बहोरि फलन्हि जुत ताला। सैन बलहिं देखाइ लग ग्वाला॥

उस वन में प्रवेश करते ही उस दुष्ट के भय से ग्वालों ने दाऊ को आगे कर लिया। फिर फलयुक्त वृक्षों को देखकर वे बालक उनकी ओर सङ्केत करके, उन्हें दाऊ को दिखाने लगे।

तब बल एक बिटप सन जाई। भुज लपेटि तेहिं लाग हराई॥
झरत देखि तब फलन्हि समूहा। किलकि सबनि धाए करि हूहा॥

तब दाऊ एक वृक्ष के निकट गए और अपनी भुजाओं से लपेटकर उसे हिलाने लगे। तब फलों के समूह को गिरते हुए देखकर सब ग्वालबाल हूहू-हाहा करके, किलकारी मारकर दौड़े।

कछु महिगतन्हि लगे गहि खाई। बहुतक लागे झोरि जुड़ाई॥

कुछ भूमि पर गिरे फल उठाकर खाने लगे, तो कई थैलियों में उन्हें इकट्ठा करने लगे।

दोहा- **कछुकहि छटि सोवत रहेहुँ खल तेहिं सवँ भूपाल।**
टूटि नींद सुनतहिं बिटप सबद कोलाहल ग्वाल॥४१९॥

हे परीक्षित्! दुष्ट धेनुकासुर उस समय वहाँ से कुछ ही दूरी पर सोया था। इसलिये वृक्षों के हिलनें से उत्पन्न हुए शब्द और बालकों के कोलाहल को सुनते-ही उसकी नींद टूट गई।

चौ.- **कंससखा सो बलि सोउ ओरा। धावा क्रोधवंत रव घोरा॥**
आवत लखि तिन्हँ अति भय माने। दौरि ग्वाल तरु ओट दुराने॥

जिससे कंस का वह बलवान सखा, अत्यन्त क्रुद्ध हो घोर शब्द करता हुआ उसी ओर दौड़ा। उसे आता हुआ देखकर भयभीत हुए ग्वालबाल दौड़कर वृक्षों की ओट में जा छिपे।

इत खल जातहि बल समुहाई। हति दुलाति उर माँझ रिसाई॥
रेअत तदुप दूर कछु गयऊ। बलहि अचल लखि रिस अति भयऊ॥

इधर उस दुष्ट ने जाते ही क्रोधित होकर दाऊ की छाती पर दुलत्ती मारी। तदुपरान्त रेंकता हुआ वह कुछ दूर चला गया और शत्रु को अचल खड़ा देख अत्यन्त कुपित हुआ।

तब प्रचंड गति सो पुनि धावा। तकि दुलाति पुरजोर चलावा॥
बिज्जु फुरुति बल बाहु पसारा। पद गहि तेहिं तरु सिखर पबारा॥

तब वह बड़े वेग से पुनः दौड़ा और तककर पूरी शक्ति से उसनें दुलत्ती चलाई। किन्तु दाऊ ने विद्युत की-सी फूर्ती से भुजा फैलाकर पैरों से पकड़कर उसे वृक्ष की चोटी पर फेंक दिया।

गोपपोत करलाघव चीन्हा। ओटहि किलकत साहस दीन्हा॥
इत खरभार बिटप सो ढहेहूँ। खल परेहुँ महि बिटपन्ह लहेहूँ॥

उनके हस्तलाघव को देख ग्वालों ने वृक्षों की ओट ही से किलकारकर उनका साहस बढ़ाया। इधर उसके भार से वृक्ष टूट गया और अन्य वृक्षों को साथ लिये वह दैत्य भूमि पर आ गिरा।

उठि खिसान करि जतन अपारा। दाउहि करन चहेहुँ संघारा॥
पै बल तेहिं भुज लीन्ह उठाई। सिंधुर सम भुजबल देखराई॥

फिर उसनें उठकर अनेक यत्न किये और बलरामजी का वध करना चाहा, किन्तु बलरामजी ने हाथी का-सा बल दिखाते हुए उसे अपनी भुजाओं पर उठा लिया।

पुनि देखत सखान्हँ दइ झटका। बल सबेग तेहिं मेदिनि पटका॥

फिर ग्वालों के देखते हुए, उन्होंने झटका देकर उसे बड़े वेग से पृथ्वी पर पटक दिया।

दोहा– **रासभ तब रेअत भयउँ मुरुछित भा बल लोप।**
किए चारि सिंग जब उठेहुँ कछु छिन महुँ करि कोप॥४२०॥

तब वह गदहा रेंकता हुआ मूर्छित हो गया और उसका बल जाता रहा। कुछ क्षण बीतनें पर जब क्रुद्ध होकर वह पुनः उठा, तब उसनें अपने सिर पर चार सींग प्रकट कर लिये।

चौ.- पुनि परचारत धाइ अभागा। बलनिधि सन अति जूझे लागा॥
तदपि लहेहुँ न उन्ह बल पारा। लाज होन लगि ताहिं अपारा॥

फिर ललकारते हुए वह अभागा दौड़ा और पुनः बलरामजी से भयङ्कर युद्ध करने लगा। तब भी वह उनके बल का पार न पा सका, जिससे उसे अत्यधिक लज्जा अनुभव हुई।

तब ग्वालन्हँ दिसि फिरि परचारी। धावा करि बिषान गति भारी॥
लखि बकारि बीचहिं गहि ताहीं। धेनुमीत दिसि दीन्ह चलाईं॥

तब वह बालकों की ओर मुड़ा और सींग तानकर बड़े ही वेग से उनकी ओर दौड़ा। यह देख बकासुर के शत्रु श्रीकृष्ण ने उसे बीच में ही पकड़ लिया और गोवर्धन पर्वत की ओर फेंक दिया।

तब सो आइ परा गिरि ऊपर। होइ लागि बपु पीर भयंकर॥
तदपि न मुएहुँ रेंइ रव घोरा। उठि पुनि चलेउ तालबन ओरा॥

तब वह पर्वत पर आ गिरा, जिससे उसके शरीर में भयङ्कर पीड़ा होने लगी। किन्तु इतनें पर भी वह मरा नहीं, अपितु घोर ध्वनि से रेंकता हुआ, पुनः उठकर तालवन की ओर चला।

आवतहि कान्हहिं बरिआई। तेहिं बिषान निज लीन्ह उठाई॥
तब उन्ह खर सिरु मुठिका मारी। दीन्ह चारिउ बिषान उपारी॥

वहाँ आते ही उसनें कन्हैया को बलपूर्वक अपने सींगों पर उठा लिया। तब उन्होंने उस गदहे के सिर पर घूँसा मारकर उसके चारों सींग उखाड़ दिये।

दोहा- तेहिं बलधाम रिसान गहि पुनि महि दीन्ह पछारि।
जातें मरेउँ अरन्यचर रव कठोर चिक्कारि॥४२१॥

फिर बलरामजी ने क्रुद्ध होकर उसे उठा लिया और पुनः पृथ्वी पर पटक दिया, जिससे तालवन में विचरण करनेवाला वह दैत्य कठोर चीत्कार करके, मृत्यु को प्राप्त हो गया।

चौ.- धुआँ जानि परिजन तेहिं केरे। धाए गर्जत घोर घनेरे॥
दाउ परन्तु सबन्हँ भुज बाँधी। सहजहि दीन्ह कालमुख साँधी॥

उसकी मृत्यु हुई देखकर उसके अन्य बहुत-से परिजन घोर शब्द करते हुए दौड़े, किन्तु दाऊ ने भुजाओं में बाँधकर खेल ही खेल में उन सबको काल के गाल में पहुँचा दिया।

दाउ सकुल जब धेनुक मारा। हरषे अति तब गोपकुमारा॥
तरुन्हँ हलाहिं सबन्हँ फल खाए। कछु घरवारेन्ह देन जुड़ाए॥

जब दाऊ ने कुटुम्ब सहित धेनुक को मार डाला, तब ग्वालबाल अत्यन्त हर्षित हो उठे। फिर वृक्षों को हिला-हिलाकर सबनें ताड़ के फल खाए और कुछ घरवालों को देने के लिये रख लिये।

संध्या समय जानि दुहुँ भाई। तदुप गाँउ दिसि गाइ हँकाई॥
गोपि गाँव बिच जब उन्ह पावा। दरसन करि लगि गोरज न्हावा॥

तदुपरान्त संध्या हुई जानकर दोनों ने गायों को गाँव की ओर हाँक दिया। जब गोपियों ने उन्हें गाँव के मध्य पाया, तब गोरज की गङ्गा में नहाती हुई, वे सब उनका दर्शन करने लगी।

बल बल तहँ बालकन्हँ बखाना। सुनि गोपन अति अचरज माना॥
एक बार केउ कारन पाहीं। भूप दाउ गवने बन नाहीं॥

बालकों ने गाँव में दाऊ के बल का बखान किया, जिसे सुनकर समस्त गोपों को अत्यधिक आश्चर्य हुआ। हे परीक्षित्! एक बार बलरामजी किसी कारणवश गायें चरानें नहीं जा सके।

कान्हँ अकेल सखान्हँ समेता। चले हेरि तब गाइन्हँ देता॥
तेहिं दिन देअँ बस्य कछु गाई। चौंकि अचानक बिपिन पराई॥

तब कन्हैया अकेले ही सखाओं के साथ गायों को हाँक-पुकार कर चले। उस दिन होनहारवश कुछ गायें चौंककर अचानक ही वन की ओर भाग गई।

सबहि सखन्हँ तब राजिवनैना। तेन्ह पाछ पठए करि सैना॥
रही गाइ जे हेरत ताहीं। चले अकेल आपु बन माहीं॥

तब राजीवलोचन भगवान श्रीकृष्ण ने सङ्केत करके, समस्त सखाओं को उनके पीछे भेज दिया और जो गायें रह गई थी, उन्हें हाँकते हुए, वे स्वयं अकेले ही वन की ओर चले।

इहाँ सखा सो गाइन्हँ पाई। लागे सरि तट नीर पिबाई॥
आपु पिएहुँ जल कछु छिन माहीं। गाइ समेत परे मुरुछाहीं॥

इधर सखागण भागी हुई गायों को खोजकर उन्हें यमुनातट पर जल पिलाने लगे। फिर उन्होंने स्वयं भी जल पिया, किन्तु कुछ ही क्षणों में उन गायों सहित वे मूर्छित होकर गिर पड़े।

जब आए हरि सोउ बिभागा। देखि दसा उन्ह अति दुख लागा॥

जब श्रीकृष्ण उस स्थान पर आए, तो उनकी यह दशा देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ।

दोहा- तदुप सुधामय चितवनहि ससिमुख उन्ह पर ढारि।
उठे सखा गाइनि सहित भै जननेहि सुखारि॥४२२॥

तत्पश्चात! चन्द्रमुख श्रीकृष्ण ने उन पर अपना दृष्टिरूपी अमृत बरसाया, जिससे गायों सहित सारे सखा मुर्छा से जाग गए, यह देखकर भक्तवत्सल भगवान सुखी हो गए।

चौ.- भूपति सबन्हि पिएहुँ जल जहवाँ। सरिजल कालिय अहि बस तहवाँ॥
तातें कालीदह अस नाऊँ। भा कुख्यात सरित सो ठाऊँ॥

हे राजन! जिस स्थान पर सबने जल पिया था, वहाँ यमुनाजी के जल में 'कालिय' नामक सर्प रहता था। इसीलिये नदी का वह स्थान कालियदह नाम से कुख्यात हो गया था।

रहा सो फनिहिं गरल गम्भीरा। उफन ताप जिन्हँ संतत नीरा॥
उड़इ बिहग जब तापर होई। बिष प्रभाउँ दह पर जिअँ खोई॥

उस सर्प का विष बड़ा ही कठोर था, जिसके ताप से जल निरन्तर उफनता रहता था। जब कोई पद्मि दह से होकर उड़ता, तो विष के ताप से निष्प्राण होकर वह दह ही में आ गिरता था।

दह जल परसि लिए कन लाघव। बिषमय भए तटन्हि फिर जब पव॥
तब तृन खग मृग तरु सो तीरा। ततछिन बिकल बिसार सरीरा॥

दह के जल को छूकर जल की छोटी-छोटी बूँदें लिये विषैली हो चुकी पवन, जब तटों की ओर लौटती थी, तो उस तट की घास, वृद्म व पशु-पद्मि आदि व्याकुल हो तत्द्मण मर जाते थे।

तातें तहँ न बनस्पति रूखा। सकल बिभाग उरग बिष सूखा॥
जम्म चौकि अस गनि सो ठाहीं। भयबस जाइ तहाँ कोउ नाहीं॥

इस कारण वहाँ कोई भी वृद्म-वनस्पति नहीं थी, वह सम्पूर्ण स्थान ही सर्पविष के कारण सूख चुका था। उस स्थान को यम की चौकी मानकर भय के मारे कोई भी वहाँ नहीं जाता था।

किन्तु बिसाल कदम एक तहहीं। नृप जे सब रितु सुन्दर रहही॥

किन्तु हे राजन! वहीं कदम्ब का एक विशाल वृद्म था, जो सब ऋतुओं में हरा रहता था।

दोहा- सोम पान सो रूख जब बैठि कीन्ह उरगारि।
कछुक सुधाकन परे तब उन्ह मुख तें तरु डारि॥४२३॥

जब एक बार सर्पों के शत्रु गरुड़जी ने उस वृद्म पर बैठकर अमृत-पान किया था, तभी अमृत की कुछ बूँदें, उनके मुख से छिटककर उसकी शाखा पर गिर गई थी।

चौ.- सोउ प्रभाउ सो तरु ततकाला। भा नव पुष्प सुपल्लव जाला॥
चन्दन भा सो अमिय परसाहीं। तातें बिष ब्यापहिं तेहिं नाहीं॥

उसी के प्रभाव से वह तत्काल सुन्दर पत्तों के समूह व नवीन पुष्पों से युक्त हो गया। अमृत के स्पर्श से उसकी प्रकृति चन्दन सी हो गई, अतः उस पर विष का प्रभाव नहीं पड़ता था।

ब्रजपति इत करि लाग बिचारा। अनहित अहि करि रहेहुँ अपारा॥
बिषमय मम प्रेयसि जल कीन्हा। ब्यरथ पीर ब्रज लोअन्हँ दीन्हा॥

इधर व्रजराज श्रीकृष्ण विचार करने लगे कि कालिय सर्प व्रज का अपार अहित कर रहा है। मेरी प्रियतमा यमुना का जल विषैला करके, वह व्रज के लोगों को व्यर्थ-ही में कष्ट दे रहा है।

बेगि जतन करि मैं केउ ताहीं। सरि बाहेर देब उबकाहीं॥

अस बिचारि मनहीं मन हेरा। देऐंरिषिहिं कंसहिं दिसि प्रेरा॥

अब शीघ्र-ही कोई उपाय करते हुए, मैं उसे नदी के जल से बाहर निकाल दूँगा। ऐसा विचारकर, उन्होंने मन-ही मन नारदजी का स्मरण किया और उन्हें कंस के पास भेज दिया।

आवत पाइ तेन्ह बिबुधारी। भरेहुँ मनहिं मन अचरज भारी॥
सीस नाइ मृदु बचन उचारा। सादर तेहिं मुनिहिं बैठारा॥

उन्हें आते हुए देखकर देवताओं का शत्रु कंस मन-ही मन अत्यधिक आश्चर्य से भर गया। फिर उसनें मुनि को सिर नवाकर कोमल वाणी कहते हुए आदरपूर्वक बैठाया।

तदुप पूछि मुनि तिन्हँ कुसलाई। कंस लाग कहि तब अकुलाई॥
मुनि नंदहि सुत अति बलवाना। बधि बीतेहुँ मम अनुचर नाना॥

तदुपरान्त मुनि ने उसकी कुशल पूछी, तब कंस अकुलाकर कहने लगा- हे मुनिराज! नन्द का पुत्र कृष्ण बड़ा ही बलवान है। वह मेरे अनेक सेवकों का वध कर चुका है।

पूरब गगन बचन अनुहारा। तेइ बिष्नु अह नर तनु धारा॥
तातें संतत मनु मम भीता। चिंतहि अरि सो जाइ कस जीता॥

पूर्वकाल में हुई आकाशवाणी के अनुसार वही विष्णु है, जिसनें मनुष्य शरीर धरा है। इसलिये भयभीत हुआ मेरा मन निरन्तर चिन्ता करता रहता है कि उस शत्रु को किस प्रकार जीता जाय।

अहि सम केउ दिनु दस मोहि आई। एहि पूरब चहुँ ताहिं नसाई॥

वह किसी दिन सर्प सा आकर मुझे काट ले, इससे पहले मैं उसे नष्ट कर देना चाहता हूँ।

दोहा- **तब नारद कह पठवहुँ राजन आयसु नंद।**
भेंट तोहिं तें कालिय दह कर बहुदल बृंद॥४२४॥

तब नारदजी ने कहा- हे राजन! आप नन्द को आज्ञा दीजिये कि वह आपको कालियदह के सहस्रदल कमलों के समूह लाकर भेंट करे।

चौ.- **जब प्रसून हित दुहुँ दह जैइहि। कालिय आपु तेन्ह बधि देइहि॥**
घर बैठे रिपु जाइ बधाई। मुनि गै इहिबिधि तिन्हँ उकसाई॥

जब वे दोनों भाई दह पर पुष्प लेनें जाऐंगे, तब कालिय सर्प स्वयं ही उन्हें मार देगा और इस प्रकार घर बैठे ही शत्रु मारे जाऐंगे। कंस को इस प्रकार उकसाकर वे मुनि चले गए।

हरषेहुँ खल सुनतहिं मुनि बैना। ब्रज बसींठ पठवा निज ऐना॥
जातहिं दूत नंद समुहाई। नृप आयसु उन्ह दीन्ह सुनाई॥

वह दुष्ट मुनि की बताई युक्ति सुनकर हर्षित हो उठा। फिर उसनें अपने अधिकार से ब्रज में अपना दूत भेजा। दूत ने नन्दरायजी के सन्मुख जाते ही उन्हें राजा की आज्ञा कह सुनाई।

सुनि जेहिं सोच तेन्ह कस भयऊँ। जग रिनु भार मनहुँ उन्ह दयऊँ॥
पूछा कन्हँ तातहिं लखि खीना। पितु तव मुख केहिं हेतु मलीना॥

जिसे सुनकर उन्हें कैसे चिन्ता होने लगी; मानों संसारभर के ऋण का भार उन पर डाल दिया गया हो। पिता को चिन्तित देख कन्हैया ने पूछा- हे तात! आपका मुख मलीन क्यों है?

सुनि ब्रजराज परम दुख मानी। सकल कथा उन्ह कही बखानी॥
तब हरि तेन्ह धीर बंधाना। सचुप सखन्हँ पहिं कीन्ह पयाना॥

यह सुनकर व्रजाधिपति नन्दरायजी ने अत्यन्त दुःख के साथ, उन्हें सारी बात समझाकर कह दी। तब कन्हैया ने उन्हें धैर्य बँधाया और (वहाँ से) चुपचाप सखाओं के पास चले गए।

तदुप संग उन्ह दह निअराई। कंदुक खेलि लाग तें जाई॥

तदुपरान्त अपने उन सखाओं के साथ जाकर वे कालियदह के निकट-ही गेंद खेलने लगे।

दोहा- **एहिभाँति जब खेलत कंदुक हरि कर आइ।**
तब उन्ह हठि दह माँझ तिन्हँ देखत सबन्हँ चलाइ॥४२५॥

इस प्रकार जब खेलते हुए गेंद, भगवान श्रीकृष्ण के हाथ में आई, तब सब सखाओं के देखते हुए, उन्होंने हठपूर्वक वह गेंद, कालियदह में फेंक दी।

चौ.- **कंदुक सो श्रीदामहि केरी। हरिहि माय जल उतरि घनेरी॥**
देखि सिदाम कुपित अति भयऊँ। कान्हहिं डाँटि डपटि अस कयऊँ॥

वह गेंद श्रीदामा की थी, जो भगवान श्रीकृष्ण की माया से दह के गहरे जल में उतर गई। यह देख श्रीदामा अत्यन्त कुपित हो गया और कन्हैया को डाँट-डपटकर इस प्रकार कहने लगा-

रे कन्हँ अति मनमानि तिहारी। कंदुक किउँ दह माँझ पबारी॥
आनि देहुँ मोहि कंदुक मोरी। नंदहिं जाइ कहौं न त दौरी॥

रे कन्हैया! तुम्हारी बड़ी मनमानी है। तुमनें गेंद दह में क्यों फेंकी? मुझे मेरी गेंद लौटाकर ला दो। नहीं तो मैं दौड़कर नन्दरायजी से कह दूँगा।

तब कन्हँ कहा तेहिं मुसुकाई। देउँ आन कंदुक तोहिं लाई॥
कन्ह बहान मैं सुनउँ न केऊँ। आनि तुअ त सोइ कंदुक देऊँ॥

तब कन्हैया ने उसे मुस्कुराकर कहा कि मैं तुम्हें दूसरी गेंद ला दूँगा। तब श्रीदामा ने कहा कि कन्हैया! मैं कोई बहाना नहीं सुनूँगा, तुम तो मुझे मेरी वही गेंद ला दो।

अबहिं देब अस कहि मुसुकाई। चढ़े कदम्ब साख तें धाई॥
अस अवलोकि भयहिं अकुलाने। बरजेहुँ सख पै कान्हँ न मानें॥

अभी लाकर देता हूँ, तब इस प्रकार कहकर मुस्कुराते हुए, वे दौड़कर कदम्ब-वृक्ष पर जा चढ़े। यह देखकर भय से व्याकुल हुए सखाओं ने उन्हें रोका, किन्तु कन्हैया नहीं मानें और

देखत तेन्ह परम मुद पागे। किलकि तें अहिदह माँझ छराँगे॥

उन सब के देखते हुए, वे बड़े-ही आनन्द से किलकारी मारकर कालियदह में कूद गए।

दोहा- **हँहरि देखि अस सखा सब रुदन लाग करि भारि।**
श्रीदामा डरपेहुँ अतिहिं दइ लग सब तेहिं गारि॥४२६॥

यह देखते-ही सारे सखा घबराकर बड़ा भारी रुदन करने लगे। (कन्हैया के दह में कूदनें पर) श्रीदामा बहुत अधिक डर गया और सारे सखा उसे गालियाँ देने लगे।

चौ.- तेहिं सवँ भा उन्ह सोच अपारा। अब होइहिं कस कन्हँ उद्धारा॥
अहिदह कान्हँ छराँग लगाई। जसहि सुना जसुदा ब्रजराई॥

उस समय उन्हें अपार सोच हुआ कि अब कन्हैया के प्राण किस प्रकार बचेंगे? कन्हैया ने कालियदह में छलाँग लगा दी है, यह समाचार जैसे ही यशोदाजी व नन्दरायजी ने सुना,

तसहिं तेपि करि रोदन भारी। लगे अवनितल सुतहिं पुकारी॥
सेषजननि कहि बचन गभीरा। तेहिं सवँ सघन दीन्ह उन्ह धीरा॥

वैसे ही वे भी अत्यधिक रुदन करते हुए, पुत्र को पुकारकर भूमि पर गिर पड़े। उस समय सर्पों के स्वामी शेषजी की माता रोहिणीजी ने गम्भीर वाणी कहकर उन्हें प्रगाढ़ धैर्य बँधाया।

तदुप ब्यालपति करि उन्ह साथा। कालियदह आए नरनाथा॥
तेहिं सवँ गाँउ सबनि नरनारी। रहे संग उन्ह बिलपत भारी॥

हे राजन! तदुपरान्त शेषावतार बलरामजी उन्हें साथ लेकर कालिय-दह पर आए। उस समय गाँव के समस्त स्त्री-पुरुष अत्यधिक विलाप करते हुए उनके साथ थे।

करि बिलाप दंपति अति त्रासा। पुनि पुनि धावहि दह के आसा॥
उन्ह परन्तु दइ धीरज गाढ़ा। अहिप फिरे प्रति बारहिं आड़ा॥

नन्दरायजी व यशोदाजी अत्यधिक भयभीत होकर विलाप करते हैं और बार-बार दह की ओर दौड़ते हैं। किन्तु बलरामजी ने उन्हें उत्तम धैर्य बँधाकर प्रत्येक बार उनका मार्ग रोक लिया।

इत जमुनापति सरि तल आए। कंदुक खोजि लाग अतुराए॥
एहि प्रकार जब गै अहि पासा। लखि तिन्हँ अधर उमगि उन्ह हासा॥

इधर यमुनापति श्रीकृष्ण नदी के तल पर आए और गेंद को शीघ्रतापूर्वक खोजनें लगे। इस प्रकार जब वे सर्प के पास गए, तो उसे देखकर उनके अधरों पर मुस्कान हो आई।

तेहिं सवँ स्वास उगिलि जल ज्वाला। सोवत रहेहुँ मोरि फन ब्याला॥
हरि छबि मंत्र मुग्ध अहिनारी। अचरज करत भई अति भारी॥

उस समय श्वासों से जल में ज्वालाएँ उगलता हुआ, वह सर्प अपने फणों को मोड़े हुए सो रहा था। उसकी स्त्रियाँ, कन्हैया की सुन्दरता के मन्त्र से मुग्ध हो अत्यन्त आश्चर्य करने लगी कि,

नाथहिं बिष के दारुन ज्वाला। परसि जिअत अह को यह बाला॥
पुनि कह बत्स मनोहर अंगा। यह धय उन्ह जे स्वामि भुजंगा॥

स्वामी के दारुण विष की ज्वाला का स्पर्श करके, भी जीवित रह जानेवाला, यह बालक कौन है? फिर उन्होंने कहा- हे मनोहर अङ्गोंवाले वत्स! यह दह उनका है, जो सर्पाधिपति हैं,

कालिय नाउँ सगर जिन्हँ छाती। अति बिख्यात खगप आराती॥
लखि तहिं इहाँ होत भय मोरे। बरजेहुँ किधौं नाहिं केउ तोरे॥

जिनका नाम कालिय है, जिनकी छाती विष से भरी हुई है और जो पक्षिराज गरुड़ के प्रसिद्ध शत्रु हैं। तुम्हें यहाँ देखकर भय होता है, तुम्हें (यहाँ आने से) किसी ने रोका क्यों नहीं?

भागहुँ बेगि बिषम अहि रोषा। बृथ बधाहिं तुअ सिसु निरदोषा॥

यहाँ से शीघ्र भाग जा, इन सर्प का क्रोध कठिन है, तू निर्दोष बालक व्यर्थ ही मारा जाएगा।

दोहा- अति बिमूढ़ तव मात पितु पछितावसि अवसेइ।
ए अहिपति अह कालिअ जम्महिं दूसर जेइ॥४२७॥

तुम्हारे माता-पिता बड़े मूर्ख हैं, वे अवश्य ही पछतावेंगे, क्योंकि ये सर्पों के स्वामी कालिय हैं, जो मानों दूसरे यम ही हैं।

चौ.- बय किसोर मृदुगात सुहावन। सुषमा अकथ बदनु मनभावन॥
जिति सक तुअ कोटिक कंदर्पा। पै किमि जित इन्ह अहिपति दर्पा॥

किशोर अवस्था, सुहावनें-कोमल अङ्ग और अकथनीय सुन्दरता से युक्त मनभावन मुख। तुम करोड़ों कामदेवों को जीत सकते हो, किन्तु इन सर्पराज के दर्प को किस प्रकार जीत पाओगे।

कंतहिं कठिन गरल फुंकारा। जार जागतहिं बपुष तिहारा॥
हमहिं सोकप्रद सुत तव अंता। प्रान मोह करि चलहुँ तुरंता॥

हमारे पति की विषैली फुँफकार बड़ी ही कठोर है। जागते ही वे तुम्हारे शरीर को भस्म कर देंगे। हे पुत्र! तुम्हारा मरण हमें शोकप्रद होगा, अतः प्राणों का मोह करके, तुरन्त भाग जाओ।

बच बात्सल्यभूत एहिभाँती। उन्ह सुनि कह धुज उरग अराती॥
सतदल जलज लोभ उर लावा। मोहि मथुरापति इहाँ पठावा॥

उन नागपत्नियों के वात्सल्य से उत्पन्न ऐसे वचन सुनकर गरुड़ध्वज भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि सतदल कमलों का लोभ अपने मन में लाकर मथुराधिपति कंस ने मुझे यहाँ भेजा है।

पुनि मम कंदु इहँहि परि आई। जाहिं लेन आवा मैं माई॥
काटिहिं कबु स्वासहि इन्ह दाहक। मृत्यु हँकारत किउँ तुअ नाहक॥

साथ ही मेरी गेंद भी यहीं आ गिरी है, हे मैय्या! जिसे मैं लेनें आया हूँ। (तब उन्होंने कहा-) ये काटेंगे कब? इनका तो श्वास ही दाहक है। तुम व्यर्थ में अपनी मृत्यु क्यों बुलाते हो?

अस खल नृपहिं नास सद होई। निजहि भोग बध बालक जोई॥

ऐसा दुष्ट राजा शीघ्र ही नष्ट हो जाय, जो अपने सुख के लिये एक बालक की बलि देता है।

दोहा- देखि बालबय मोर यह मोहि भयाहुँ जनि माइ।
हौं जस बाल देखाउ तहि पतिहि जगाउब जाइ॥४२८॥

तब कन्हैया ने कहा- हे मैय्या! मेरी इस बाल्यावस्था को देखकर तुम मुझे भयभीत न करो। मैं जैसा बालक हूँ, वह तुम्हें (अभी) दिखाता हूँ, तुम जाकर अपने पति को जगाओ।

चौ.- उगिलि उगिलि सठ बिष सरि माहीं। कीन्ह प्रदूषित जल सगरा हीं॥
सोउ माहुर कर ताप कठोरा। मम प्रेयसिहिं दाह सब ओरा॥

उस मूर्ख ने नदी में विष उगल-उगलकर उसका सारा जल विषैला कर दिया और उसी विष का कठोर ताप, मेरी इन प्रियतमा यमुना को सब ओर से जलाता रहता है।

गाइ मोर प्रिय सखा पिआरे। बिषहि प्रभाउँ गए कल्ह मारे॥
एहि अपराध दंड मैं आजा। आवा देन एहि अहिराजा॥

मेरी गायें और मेरे प्यारे सखा (इसी के) विष के प्रभाव से कल मारे गये थे। इसलिये इस सर्पराज को इसके इसी अपराध का दण्ड देने के लिये, मैं यहाँ आया हूँ।

नाथि इहिहि सिर सतदल मेली। लै जैउब सोउ खल सन ठेली॥
महादोष बध सोवत प्रानी। सो जगाहुँ इहि मातु सुजानी॥

इसे नाथकर मैं इसी के सिर पर कमलपुष्प लादूँगा और ठेलता हुआ उस दुष्ट के पास ले जाऊँगा। सोते हुए प्राणी को मारना महापाप है, अतः हे विदुषी मैय्या! तुम इसे जगाओ।

सुनि उन्ह बच लघुबय पुनि देखी। ममता भइ अहितियन्हि बिसेषी॥
पुनि हँसि कह तें राजिवनैना। लघु मुख तहिं न सोह अस बैना॥

उनके वचन सुनकर और उनकी छोटी अवस्था देख सर्पपत्नियों को विशेष ममता हुई और उन्होंने हँसकर कहा- हे कमलोपम नेत्रोंवाले बालक! तुम्हें छोटे मुँह ऐसी बातें शोभा नहीं देती।

इन्ह तें भिरे खगप श्रम पावहिं। पुनि तुअ इन्ह जगान हठ लावहिं॥
जागतही निज गरल कठोरा। जारिहिं ए कोमल तनु तोरा॥

इनसे युद्ध करते तो स्वयं पक्षिराज गरुड़ को भी कष्ट होता है और तुम इन्हीं को जगानें का हठ कर रहे हो। ये जागते ही अपने कठोर विष से तुम्हारे कोमल शरीर को जला देंगे।

बिहँसे सुनि उन्ह बच एहिभाँती। कटि कसि लाग खलन्हि आराती॥

उनके इन वचनों को सुनकर दुष्टनिकन्दन श्रीकृष्ण हँसते हुए अपनी कमर कसनें लगे।

दोहा- **सेषसायि पुनि भै सहज सतमुख सनमुख दौरि।**
पदहि चाँपि तिहि छँवटि पुनि कर धरि दीन्ह मरोरि॥४२९॥

फिर शेषशैया पर शयन करनेवाले वे भगवान सहज ही में दौड़कर सौ फणोंवाले उस सर्प के निकट जा पहुँचे। फिर उसकी पूँछ को पैर तले दबाकर उन्होंने उसे हाथ से मरोड़ दिया।

चौ.- **बिकल उठा पन्नग तब कोही। कह को भा निज जीवनु द्रोही॥**
जब सन्मुख एक बालक देखा। तेहिं भयउँ आचंभ बिसेषा॥

तब वह क्रोधी सर्प व्याकुल होकर उठा और बोला- कौन है, जो अपने जीवन से द्रोह कर रहा है। फिर जब उसनें अपने सन्मुख एक बालक को खड़े देखा, तो उसे विशेष आश्चर्य हुआ।

ताप न सहि सक मम बिष तापा। सिसु को जिअत ठाढ़ जे दापा॥
अस बिचारि उठि सरप रिसाई। फुँफकेहुँ विष सय फनन्हि चढ़ाई॥

ताप भी मेरे विष का ताप नहीं सह सकता, फिर ये कौन बालक है, जो दर्पपूर्वक जीवित खड़ा है। यह सोचकर कुपित सर्प उठा और सवौं फण चढ़ाकर उसने विषैली फुँफकार छोड़ी।

धाइ कीन्ह पुनि उन्ह अच्छादित। रिसमय फुँफकन्हि भा दह नादित॥
पन्नग क्रुद्ध उन्ह मृदुल गाता। उन्नत फनन्हि लाग करि घाता॥

फिर दौड़कर वह उनके शरीर से जा लिपटा। उसकी क्रोधयुक्त फुँफकारों से सम्पूर्ण दह ध्वनित हो उठा। फिर वह सर्प ऊँचे फणों से उनके कोमल अङ्गों पर आघात करने लगा।

फुरुति परन्तु बिज्जु सौं लाई। बरज अजानुबाहु तिन्ह घाई॥
तेहिं सवँ फनन्हि सोह कन्हँ कैसे। कमल दलन्हि मधुकर चर जैसे॥

किन्तु श्रीकृष्ण बिजली की-सी फूर्ति से उसके प्रत्येक आघात को रोक देते हैं। उस समय सर्प के फणों के मध्य कन्हैया कैसे शोभा पा रहे थे, जैसे कमलदलों के मध्य कोई भौरा घूम रहा हो।

इकौ बार सय फनन्हि लाई। पुनि पुनि तें करि लागेसि घाई॥
एहिंभाँति कन्हँ कहँ फन बाँधा। ब्याल दृस्य सुन्दर अस साधा॥

एक ही बार में अपने सवौं फणों को चढ़ाते हुए, वह बार-बार उन पर आक्रमण करने लगा। इस प्रकार कन्हैया को अपने फणों में बाँधकर उस सर्प ने ऐसा दृश्य उत्पन्न कर दिया,

मिलि बहु नीलाम्बुज निज अंका। बाँधि लीन्ह मनु बैरि मयंका॥
तदुप फनन्हि झटकारि कन्हाई। छूटि चले आतुर चतुराई॥

मानों बहुत से नीलकमलों ने मिलकर अपने बैरी चन्द्रमा को अपने अङ्क में बाँध लिया हो। तत्पश्चात् उसके फणों को झटकारते हुए, कन्हैया उतावली से चतुराईपूर्वक छूट चले।

चलत लूम गहि सोउ भुजंगहिं। घँसिटि लै चले आपन संगहिं॥
फुँकरि तेपि तब पाछे धावा। हरि परन्तु तिन्ह हाथ न आवा॥

चलते समय उन्होंने सर्प की पूँछ पकड़ ली और घसींटते हुए उसे अपने साथ ही ले चले। तब वह सर्प भी फुँफकारता हुआ उनके पीछे-पीछे दौड़ा, किन्तु श्रीकृष्ण उसके हाथ नहीं आए।

पुनि फिरि उन्ह तेहिं भुजन्हि उठाई। सतधनु अंतर दीन्ह चलाई॥

फिर उन्होंने लौटकर सर्प को अपनी भुजाओं पर उठाया और सौ धनुष दूर फेंक दिया।

दोहा- **परम क्रुद्ध सतकन्धर फिरा कठिन फुंकारि।**
पै हरि गहि तेहिं कौतुकहि सरितल दीन्ह पछारि॥४३०॥

तब सतानन कालिय परम क्रुद्ध होकर कठिन फुँफकार करता हुआ लौटा, किन्तु श्रीकृष्ण ने खेल-ही खेल में उसे उठाकर नदी के तल पर पछाड़ दिया।

चौ.- लपलपाहिं रसना तिन्ह कैसे। खोह भुअंगिनि झाँकहिं जैसे॥
पुनि अहि कुपित धरा हरि बाहूँ। मनहुँ मयंकहिं लागेहुँ राहू॥

उस समय उसकी जीभें कैसे लपलपा रही थी; जैसे बिलों से सर्पिणियाँ झाँक रही हों। फिर कुपित हुए सर्प ने मुख से कन्हैया की भुजा पकड़ ली, मानों चन्द्रमा को राहू ने ग्रस लिया हो।

तब उन्ह दूसर बाहु पसारी। चापेउँ समुख तेहिं घन बारी॥
कछु न चलत बल करइ अपारा। जनु दबान अहि बिहगप भारा॥

तब उन्होंने दूसरी भुजा फैलाई और मुखों सहित उसे गहरे जल में दबा दिया। वह अपार बल करता है, किन्तु उसकी कुछ नहीं चलती, जैसे कोई सर्प गरुड़जी के भार से दब गया हो।

गहे छौंटि धनु सत लौ तेहीं। हरि लै गै भइ जरजरि देही॥
पुनि उठि सफन सरिस सो धावा। किन्तु कान्हँ तिन्ह हाथ न आवा॥

कन्हैया उसे पूँछ से पकड़कर सौ धनुष तक घसींटते हुए ले गए, जिससे उसका शरीर जर्जर हो गया। वह पुनः खड़ा हुआ और क्रोधपूर्वक दौड़ा, किन्तु कन्हैया उसके हाथ न आए।

फिरि खलारि तिहिं पूँछ मरोरी। मारि चपेट गए पुनि दौरी॥
तब उन्ह पाछ चलेउँ सो ब्याला। किन्तु धरे न जाइ नंदलाला॥

कन्हैया ने लौटकर पुनः उसकी पूँछ मरोड़ दी, फिर उसे थप्पड़ मारकर वे भाग चले। तब सर्प भी उनके पीछे दौड़ा, किन्तु नन्दलाल उसकी पकड़ में नहीं आते।

बेग प्रचंड हुता दुहुँ केरा। भँवरि झकरि धय लाग घनेरा॥
धाइ कान्हँ कछु अंतर ठाढ़े। लग खिजाइ तिन्हँ रसना काढ़े॥

उन दोनों ही का वेग प्रचण्ड था, जिससे दह के जल में सघन भँवर और झकोरें उठनें लगी। इधर कन्हैया दौड़कर कुछ ही दूर खड़े हो गये और जीभ दिखाकर कालिय को चिढ़ानें लगे।

अस बिलोकि सो भीषन ब्याला। क्रोधवंत भयऊ बिकराला॥
दुतिमय मनि तिन्ह फनन्हि बिराजे। देखिअत गिरिसिरु सिसुरबि राजे॥

यह देख वह भीषण सर्प क्रोध से विकराल हो गया। उसके फणों पर चमकती मणियाँ विद्यमान थी, जो देखने में ऐसी लगती थी, जैसे पर्वत शिखरों पर (अनेक) बालसूर्य स्थित हों।

अरुन नयन सो हरिहिं पचारी। छुटेहुँ काल सौं गति अति भारी॥

क्रोधयुक्त लाल नेत्रोंवाला सर्प कृष्ण को ललकारकर बड़े भारी वेग से यम के समान दौड़ा।

छन्द- रिस भारि करि पुनि लपकि झपटेउ हरिहिं पर अति आतुरै।
ठाढ़हुँ तनक नहिं जान मोहि सठ कठिन बिष मम मुख भरै॥
छाड़हुँ न जीअत आजु तोहिं अस कहत छावा उन्ह तना।
जिव बंध काटनिहार कहँ नृप बाँधि चह जड़मति घना॥

फिर अत्यधिक क्रोध करके, बड़ी ही उतावली से लपककर वह श्रीकृष्ण पर झपटा और बोला- रे शठ! तनिक ठहर! तू मुझे नहीं जानता। मेरे मुख कठोर विष से भरे हैं। आज मैं तुझे जीवित नहीं छोड़ूँगा, यह कहता हुआ वह उनके शरीर से लिपट गया। हे राजन! अत्यन्त जड़बुद्धि वह सर्प उन्हें बाँधना चाहता है, जो स्वयं ही जीवात्मा के बन्धनों को काटनेंवाले हैं।

छन्द- हरि बिहँसि तन बाढ़ेहुँ ब्याकुल भयउँ तेहिं बंधन छरा।
पुनि काटतहि तिन्ह मारि मुठिका कान्हँ पन्नग सरि परा॥
सोनित बमन लग मुखनि उठि पावा न घन मुरुछा भई।
अस निरखि ताकहुँ बिकल खलरिपु ठाढ़ सन्मुख मुसुकई॥

तब कन्हैया ने हँसकर अपना शरीर बढ़ाया, जिससे व्याकुल होकर उसने पकड़ ढीली कर दी। फिर काटते ही कन्हैया ने उसे एक घूँसा मारा, जिससे सर्प नदी के तल पर गिर पड़ा। उसके मुखों से रक्त बहनें लगा, जिससे वह उठ नहीं पाया और सघन मूर्छा को प्राप्त हो गया। उसे इस प्रकार व्याकुल देख दुष्टनिकन्दन श्रीकृष्ण उसके सन्मुख खड़े होकर मुस्कुराने लगे।

छन्द- जब चेत भइ तेहिं धाइ कन्हँ तिन्ह फन चढ़े नृप घन गती।
धरि भार तनु त्रिपुरहि ठुमुकि नाचन लगे पुनि जगपती॥
बाजहि मुरलि रव मधुर हरि नटबेष नर्तहि गति महा।
बरषहि सुमन सुर सिद्ध गावहि सुजस नारद सँग रहा॥

हे परीक्षित्! जब उसे चेतना हुई, तब कन्हैया बड़े ही वेग से दौड़कर उसके फणों पर चढ़ गए और शरीर में त्रिलोक का भार लिये, वे जगत्पति ठुमककर उन पर नृत्य करने लगे। उनकी मुरली मधुर ध्वनि से बजने लगी और वे कन्हैया नटवेष में बड़े ही वेग से नृत्य करने लगे। देवता और सिद्ध पुष्पवर्षा कर रहे हैं और साथ ही देवर्षि नारद प्रभु का सुयश गा रहे हैं

दोहा- कालिय कर आनत फनन्हँ नाँचत रुच अस स्याम।
जस बिगसित सतदलहि दल गुंजहि मधुप ललाम॥४३१॥

कालिय के चढ़े हुए फणों पर नृत्य करते हुए घनश्याम ऐसे शोभा दे रहे हैं, जैसे खिले हुए सतदल कमल की पङ्खुड़ियों पर कोई मनोहर भौंरा गुञ्जन कर रहा हो।

चौ.- ठुमकनि सँग बहुबिधि दै तारी। नर्ति लाग नटनागर भारी॥
घुर्मि घुर्मि एक फन तें दूसर। कूदि नृत्य कर परम मनोहर॥

ठुमकों के साथ, अनेक प्रकार से ताली बजाकर नृत्यनिपुण श्रीकृष्ण सघन नृत्य करने लगे। एक फण से दूसरे फण पर कूदते हुए, घुमड़-घुमड़कर वे बड़ा ही मनोहर नृत्य कर रहे हैं

महाकाय पन्नग सो जेहिं ते। तल लागा फन भै बल रीते॥
पुनि उन्ह तें लगि रुधिर पनारी। ठाढ़त लाग कठिनता भारी॥

जिससे वह महाकाय सर्प नदी के तल से जा लगा। उसके सारे फण दुर्बल हो गए और उनसे रक्त की धाराएँ बह चली, जिससे खड़े रहनें में भी उसे बड़े कष्ट का अनुभव हो रहा था।

तब अहिनारि बिकल कर जोरी। त्राहि त्राहि कहि सनमुख दौरी॥

अहि समेत उन्ह निस्चय भयऊँ। ए जगपति जिन्हँ नरतनु ठयऊँ॥

तब व्याकुल नागपत्नियाँ 'त्राहि' 'त्राहि' पुकारती हुई, दौड़कर कन्हैया के सन्मुख गई। कालिय सहित वे समझ गई कि ये स्वयं जगत्पति नारायण हैं, जिन्होंने मनुष्य देह धारण की है।

प्रभु पदारबिंद नाएहुँ सीसा। तब तें कहि लगि हे जगदीसा॥
हे परमातम पूरन कामा। अखिल ब्रह्माँड एक सुखधामा॥

तब उन प्रभु के चरणों में सिर नवाकर वे कहने लगी- हे जगदीश्वर! हे परमात्मा! हे पूर्णकाम! हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के लिये सुख के एकमात्र धाम!

तुम गोलोकनाथ कमलापति। बूझि सक न हर बिरंचि तव गति॥
अस थिति पिय सनमुख तोहिं पाहीं। खोरि कीन्ह कछु अचरज नाहीं॥

आप गोलोकाधिपति व कमला के स्वामी हैं। शिवजी व ब्रह्माजी भी आपकी गति नहीं जान पाते। ऐसे में यदि हमारे पति ने आपके सन्मुख कुछ भूल की है, तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं।

कंत तोहिं पहिचानेहुँ नाहीं। करि बीते अपराध अथाहीं॥
कृपासिंधु अब करिअ पसाऊ। जिअहिं कंत सो कहिअ उपाऊ॥

हमारे पति ने आपको पहचाना नहीं, जिससे वे महान अपराध कर बैठे। हे कृपा के सागर! अब आप कृपा कीजिये और वह उपाय बतलाईये, जिससे कि हमारे पति जीवित रह सके।

को समर्थ अब आहि त्रिलोका। तव बिरुद्ध जे हर हम सोका॥

अब त्रिलोक में ऐसा कौन समर्थ है, जो आपसे विमुख होकर हमारा शोक दूर कर सके।

दोहा- **प्रभु परातपर हरि प्रगट महि कर चरित ललाम।**
अब अपराध बिसारि हम अभय देहुँ सुखधाम॥४३२॥

प्रभु (आप) साक्षात् परात्पर परब्रह्म हैं और पृथ्वी पर परम मनोहर लीलाएँ कर रहे हैं। हे सुख के धाम! अब हमारे अपराधों को क्षमा करके, आप हमें अभयदान दीजिये।

चौ.- **अहि बिचारि इत अति अकुलाना। मैं मदान्ध प्रभुहिं न पहिचाना॥**
बालबयस उन्ह कहँ फन घातक। ताड़ेउँ मैं भा यह अति पातक॥

इधर कालिय यह सोचकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा कि अहङ्कारवश मैंने प्रभु को पहचाना नहीं। बाल्यावस्थावाले उन प्रभु को मैंने घातक फणों से आहत किया। यह बड़ा ही पाप हुआ है।

अति आरत तब ब्याल उचारा। हौं प्रभु प्रनत करिअ उद्धारा॥
अस कहि परेहुँ पदाम्बुज धाई। अभय कीन्ह हरि ताहिं उठाई॥

तब अत्यन्त आर्त्त हो वह बोला- हे प्रभु! मैं आपकी शरण में हूँ, मेरा उद्धार कीजिये। यह कहकर वह दौड़ा और उनके चरणों पर गिर पड़ा। तब हरि ने उसे उठाकर अभय कर दिया।

अकृत कीन्ह जोइ मैं अग्याना। हृदय न लाइअ तेहिं भगवाना॥
नाना जतन जदपि मुनि करई। तदपि न सहज भवोदधि तरई॥

हे भगवन्! अज्ञानवश मैंने जो अपराध किया हैं, आप उन्हें अपने हृदय में न लाइये। यद्यपि मुनिगण अनेक प्रकार के यत्न करते हैं, फिर भी वे सहज-ही में भव-सागर नहीं तर पाते।

किन्तु भूलि कहि जिव जिन्हँ नाऊँ। कर बैकुंठ अचल निज ठाऊँ॥
तेइ हरि आपु मोर पहि आई। दीन्हि घर बसत मोहि धनाई॥

किन्तु भूल से भी जिनके नाम का उच्चारण करने पर प्राणी वैकुण्ठ में अपना स्थान अटल कर लेता है, उन भगवन् ने स्वयं मेरे सन्मुख आकर घर बैठे-बैठे मुझे बड़ाई प्रदान की और

मैं सठ उन्हहिं चहेउ बिदारी। कौन मंद जग मो सो भारी॥

मुझ मूर्ख ने उन्हीं को विदीर्ण करना चाहा, भला इस संसार में मुझ-सा नीच कौन होगा।

दोहा- अमित पराक्रमि काल कर काल अहहि प्रभु आप।
तातें अब मोहि छमि तुरत हरिअ मोर संताप॥४३३॥

हे प्रभु! आप अमित पराक्रमसम्पन्न और काल के भी काल हैं। इसलिये अब मुझे शीघ्र ही क्षमा करके, मेरे सन्ताप का हरण कीजिये।

चौ.- अभय देत छमि कहा कन्हाई। रमनक द्वीप बसहु अब जाई॥
तव फन मम पदचिन्ह प्रकासा। अब तोहि अहिरिपु देइ न त्रासा॥

तब उसे क्षमा करके, अभयदान देकर कन्हैया ने कहा कि अब तुम रमणकद्वीप जाकर बसो। तुम्हारे फणों पर मेरे चरणचिह्न प्रकाशित है, अतः अब तुम्हें सर्पशत्रु गरुड़ कष्ट नहीं देंगे।

सुनि गतचिंत नारिहिं समेता। अहि पूजे पद कृपानिकेता॥
पुनि धराइ बारिज निज सीसा। हरषि चला तट आस फनीसा॥

यह सुनकर स्त्रियों सहित निश्चिंत हुए कालिय ने कृपानिकेत श्रीकृष्ण के चरण पूजे। फिर अपने फणों पर कमलपुष्प रखवाकर वह सर्पराज हर्षित होकर तट की ओर चला।

निरखि कान्ह कहँ निकसत नीरा। भा नभ दुंदुभि नाद गभीरा॥
सुत मुख लखतहि जसुदा नंदा। भए मगन नृप परमानंदा॥

तत्पश्चात् घनश्याम को जल से निकलते देख आकाश में सघनध्वनि से दुन्दुभियाँ बज उठी। हे परीक्षित्! अपने पुत्र का मुख देखते ही नन्दजी व यशोदाजी महान आनन्द में मग्न हो गए।

ब्रज नर नारि सकल हरषाए। प्रान मृतक तन जनु फिरि आए॥
उतरे तट फन तैं जगदीसा। बिदा होत अहि पाइ असीसा॥

समस्त गोपगोपियाँ हर्षित हो उठे, मानों शव में पुनः प्राण लौट आए हों। तत्पश्चात् जगदीश्वर श्रीकृष्ण, सर्प के फणों से तट पर उतर गए। विदा होते समय सर्प ने उनका आशीष पाया।

हरिहिं माय धय जल ततकाला। भा निरमल बिरहित बिष ज्वाला॥

उसी क्षण हरिमाया से दह का सम्पूर्ण जल निर्मल व विष की ज्वाला से मुक्त हो गया।

दोहा- भूप पूछ कर जोरि सुनि कारन कहिअ मुनीस।
जेहिं तें दुरि जमुनहि सलिल बसि रहेहुँ सो अहीस॥४३४॥

यह सुनकर राजा परीक्षित् ने हाथ जोड़कर शुकदेवजी से पूछा- हे मुनिश्वर! आप मुझे वह बात बताईये, जिसके कारण कालिय-सर्प यमुनाजी के जल में छिप कर निवास करता था।

चौ.- ब्रह्मासुत कस्यप नरराऊ। महातपस्वि अमोघ प्रभाऊ॥

दच्छ सुता बहुतक उन्ह ब्याही। बिनता कद्रू रही जिन्हँ माहीं॥

हे राजन! ब्रह्मापुत्र महर्षि कश्यप महातपस्वी व अमोघ प्रभावसम्पन्न थे। प्रजापति दक्ष ने अपनी कई कन्याएँ उन्हें ब्याही थी, जिनमें विनता व कद्रू नाम की दो पत्नियाँ थी।

अरुन खगेस सुवन बिनता के। अरुन भयै सारथि सबिता के॥
द्विजपहिं हरि निज बाहन कीन्हा। अचल पेमु पदपंकज दीन्हा॥

अरुण व पक्षिराज गरुड़ उन विनता के पुत्र हैं, जिनमें अरुण तो सूर्यदेव के सारथी हुए और गरुड़ को भगवान विष्णु ने अपना वाहन बनाकर अपने चरणों में अचल प्रेम प्रदान कर दिया।

सेष सकालिय कोटि भुजंगा। उपजे सकल कद्रू के अंगा॥
अहि सो अति दारुन बिषधारे। एक मुखनि केउ बहु मुखवारे॥

शेषजी व कालिय सहित जो करोड़ों सर्प हैं, वे सब कद्रू के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। अत्यन्त भीषण विष धारण करनेवाले उन सर्पों में कोई एक मुखवाले तो कोई बहुत-से मुखोंवाले हैं।

रहे जेठ उन्ह महुँ अहिराई। दाउ भये जे जदुकुल आई॥
उन्हहि माँझ जे कालिय भयऊ। हरिहि सैन सो रमनक गयऊ॥

उन सब में शेषजी ज्येष्ठ हैं, जो यदुकुल में बलदाऊ के रूप में प्रकट हुए थे। उन्हीं सर्पों में कालिय नाम का जो सर्प हैं, जो भगवान श्रीकृष्ण के सङ्केत पर रमणकद्वीप चला गया था।

दोहा- **अकसर हरि सन बिनति करि खगप लहेहुँ बरदान।**
रहौं अजित रनु अहिन्हँ सन अहिहि भोजुँ भगवान॥४३५॥

एक बार पक्षिराज गरुड़ ने भगवान श्रीहरि से विनती करके, वरदान लिया कि मैं सर्पों के सन्मुख युद्ध में अजेय रहूँ और सर्पों का ही भोजन किया करूँ।

चौ.- **हरषि दीन्ह हरि यह बरदाना। तब खगाधिपति अति सुख माना॥**
पुनि बिषवंत एक तैं एका। गहि गहि जहँ तहँ ब्याल अनेका॥

तब भगवान ने हर्षित होकर उन्हें यह वरदान दे दिया, तब पक्षिराज गरुड़जी को अत्यन्त ही सुख हुआ। फिर एक-से बढ़कर एक विषैले बहुत से सर्पों को पकड़-पकड़कर जहाँ-तहाँ,

हरिबाहन उन्ह भच्छन लागे। उरग भयातुर इत उत भागे॥
पन्नग अमित नित्य एहिभाँती। लाग निपाति उरग आराती॥

गरुड़जी उन्हें खाने लगे, तब भय से आतुर होकर वे सर्प इधर-उधर भाग चले। इस प्रकार सर्पों के शत्रु गरुड़जी नित्य ही अनेक सर्पों को मारनें लगे।

तब हिय माँझ धरे अति त्रासा। पन्नग गवने खगपति पासा॥
पुनि कह नाथ उचित यह नाहीं। एक खाइअहि अमित बधाहीं॥

तब अपने मन में अत्यन्त भयभीत होकर वे सर्प गरुड़जी के पास गए और उनसे कहने लगे- हे नाथ! यह उचित नहीं है कि खाया तो एक सर्प ही जाय, किन्तु मारे अनेक जाय।

बाहन आपु प्रगट भगवंता। बेग उन्हहिं सम तोर अनंता॥
जे एहिबिधि मर्दसि नित ब्याला। अवसि परिहिं एक दिनु अहि काला॥

आप तो साक्षात् श्रीहरि के वाहन हैं और आपका वेग भी उन्हीं के समान अनन्त है। यदि ऐसे ही आप नित्य सर्पों को मारते रहे, तो अवश्य ही एक दिन सर्पों का अकाल पड़ जायगा।

तातें हरहुँ अहिन्हँ के त्रासा। लहु बलि एक फनिहिं प्रति मासा॥
ताहिं संग रह रुचिकर अन्ना। सुनि खगेस उर भयउँ प्रसन्ना॥

अतः आप हम सर्पों के भय का नाश कीजिये और प्रत्येक माह एक सर्प की बलि लिया कीजिये। उसी के साथ स्वादिष्ट अन्न भी हुआ करेगा। यह सुन गरुड़जी मन में प्रसन्न हो उठे।

दोहा- **राजन सोऊ दिनु बिगत अन्न सहित एक ब्याल।**
पाइ अमावसु मास प्रति भच्छि लाग अहिकाल॥४३६॥

हे परीक्षित्! उसी दिन के उपरान्त सर्पशत्रु गरुड़जी प्रत्येक माह की अमावस्या को अन्न सहित एक सर्प का भक्षण करने लगे।

चौ.- **पै कालिय अवसर जब आवा। हठि तें आपु अन्न उन्ह खावा॥**
सुनतहिं खगपति कुपित प्रचंडा। छूटे तेहिं दिसि जनु गिरिखंडा॥

किन्तु जब कालिय की बारी आई, तो वह स्वयं हठपूर्वक गरुड़जी का भोजन खा गया। यह सुनते ही पक्षिराज प्रचण्ड क्रोध में भरकर किसी पर्वत शिखर के समान उसकी ओर छूटे।

जातहिं निकट कीन्ह नखघाता। बिकल भयउँ अहि लोहित गाता॥
पै सम्भारि बिषमफुंकारा। फिरेहुँ तेन्ह दिसि क्रुद्ध अपारा॥

निकट जाते ही उन्होंने नखों से आघात किया, जिससे रक्तरंजित हुआ सर्प व्याकुल हो उठा। किन्तु कठिन फुँफकारवाला वह सर्प सम्भलकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक उनकी ओर मुड़ा।

पुनि सबेग सत फनन्हि चढ़ाई। दँसेहुँ खगप कहँ आतुर धाई॥
सरपोत्तम पुनि छारै लागा। स्वास बिषैल परम रिस पागा॥

फिर वेगपूर्वक सवौं फण चढ़ाकर उसने बड़ी ही उतावली से दौड़कर पक्षिराज गरुड़ को डँस लिया। तत्पश्चात् सर्पों में उत्तम कालिय अत्यन्त क्रुद्ध होकर विषैली श्वासें छोड़नें लगा।

तब हरिबाहन गहि तेहिं चोंचा। महि पछारि लागे नख रोचा॥
गरलघमंड तमकि पुनि धावा। लखि उन्ह पाख चपेट चलावा॥

तब चोंच में पकड़कर गरुड़जी ने उसे भूमि पर पछाड़ दिया फिर नखों से नोंचनें लगे। विष के घमण्ड में अन्धा सर्प तमककर पुनः दौड़ा, यह देख उन्होंने उस पर पङ्खों से चपेट चलाई।

दोहा- **तब कालिय लपटानेहुँ निबुकि खगेसहिं पंज।**
पुनि प्रबंध कसि लाग उन्ह पै होइ लग बल गंज॥४३७॥

तब पक्षिराज की दृष्टि से बचकर कालिय उनके पञ्जों से लिपट गया और अपने प्रबल बन्ध को कसनें लगा, किन्तु इससे उसका बल क्षीण होने लगा।

चौ.- **लखि बिहगेस चोंच गहि ताहीं। परम क्रुद्ध महि दीन्ह चलाहीं॥**
बिषघमंड तब अहि कर टूटा। तुरत भयातुर उठि भजि छूटा॥

यह देख गरुड़जी ने उसे चोंच से पकड़ लिया और अत्यन्त कुपित हो पृथ्वी पर पटक दिया। अपने विष के प्रति कालिय का घमण्ड टूट गया और वह तुरन्त उठकर भाग छूटा।

पाछ चलेउ खग बेग प्रचंडा। भटकेहुँ ब्याल अखिल ब्रह्मंडा॥
किन्तु सहाय कीन्हि केउ नाहीं। तब तें गयउ ब्यालपति पाहीं॥

तब गरुड़जी भी प्रचण्ड वेग से पीछे दौड़े। कालिय अखिल ब्रह्माण्ड में भटकता फिरा, किन्तु किसी ने भी उसकी सहायता नहीं की। तब वह शेषजी के सन्मुख गया और

करि परिदखिना नाएसि माथा। कहन लाग अस कम्पित गाता॥
रच्छा करहु मोर भगवंता। खगपति न त करिहहिं मम अंता॥

उनकी प्रदक्षिणा करके, सिर नवाकर काँपते हुए शरीर से उन्हें इस प्रकार कहने लगा- हे भगवन्! मेरी रक्षा कीजिये, अन्यथा पक्षिराज गरुड़ मेरा वध कर देंगे।

कालिय है संसय केउ नाहीं। कतहुँ न रच्छा तव जग माहीं॥
एक उपाय उबरि सक प्राना। भय बिसारि सुनु सो धरि ध्याना॥

हे कालिय! इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस संसार में कहीं भी तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। केवल एक ही उपाय से तुम्हारे प्राण बच सकते हैं, अतः भय त्यागकर तुम ध्यानपूर्वक सुनो।

दोहा- **करत रहे तप जमुन जल सौभरि मुनि एक बार।**
देखा तब उन्हँ सपरिकर झष एक करत बिहार॥४३८॥

एक बार यमुनाजी के जल में सौभरि नाम के एक मुनि तपस्या कर रहे थे। तभी उन्होंने नदी के जल में एक मत्स्य को अपने परिवार सहित विहार करते हुए देखा।

चौ.- **तेहिं समय तहँ खगपति आवा। मर्देसि मीनराज कहँ खावा॥**
देखि दुखित तब झष परिवारा। खग प्रति रिस भा मुनिहि अपारा॥

उसी समय वहाँ गरुड़जी आए और उस मत्स्यराज को मारकर खा गए। तब मत्स्य के परिवार को दुःखी हुआ देखकर उन मुनि को गरुड़जी पर बड़ा क्रोध आया।

तब तें कह रे पच्छि अभागा। आपन उदरहिं सीतन आगा॥
इहि निरीह जिव कर परिवारा। छन महुँ तुअ बिनु छोभ उजारा॥

तब उन्होंने कहा- अरे अभागे पक्षि! तूने अपने पेट की आग ठण्डी करने के लिये, बिना किसी क्षोभ के क्षणभर में ही इस निरीह प्राणी का परिवार उजाड़कर रख दिया।

तातें आज बिगत तुअ जोई। इहँ आवा त मीचु तव होई॥
अहिरिपु इहइ साप भय माना। अब नहिं जाइ सरिहिं सो थाना॥

इसलिये आज के उपरान्त यदि पुनः तू इस स्थान पर आया तो तेरी मृत्यु हो जायगी। इसी श्राप का भय मानकर सर्पों के शत्रु गरुड़जी अब यमुनातट स्थित उस स्थान पर नहीं जाते।

तातें तुअ बिसारि सब त्रासा। सुत तिय सहित तहहिं करुँ वासा॥
तब कालिय खग दृष्टि दुराई। जाइ अचिंत बसेउँ सो ठाई॥

इसलिये सम्पूर्ण भय का त्याग करके, अपने स्त्री-पुत्रों सहित तुम वहीं निवास करो। तब गरुड़जी की दृष्टि से बचता हुआ कालिय, निश्चिंत होकर उस स्थान पर जा बसा और

तातें कालिय दह अस नाऊँ। भा कुख्यात सरित सो ठाऊँ॥

इसी कारण यमुनाजी का वह स्थान 'कालियदह' इस नाम से कुख्यात हो गया।

दोहा- **परिछित एहिबिधि नित बिबिध चरित करहि सुखधाम।**
कहत सुनत जिन्हँ मनुज लहँ हृदय परम बिश्राम॥४३९॥

हे राजन! इस प्रकार सुख के धाम भगवान श्रीकृष्ण नित्य अनेक प्रकार के चरित्र किया करते थे, जिन्हें कहने-सुनने पर मनुष्य अपने हृदय में परम शान्ति प्राप्त करता है।

चौ.- **अकसर कंस सुअवसर हेरा। कन्हहिं बधन एक दानव प्रेरा॥**
अति रनधीर अतुल बलधामा। तासु प्रलंबासुर अस नामा॥

एक बार कंस ने सुन्दर अवसर पाकर कन्हैया का वध करने के लिये एक दैत्य को भेजा। अत्यन्त रणधीर और अतुलनीय बल के धाम उस दैत्य का नाम 'प्रलम्बासुर' था।

औतहिं एक ग्वाल तनु पागा। ग्वालन्हि माँझ खेलि सो लागा॥
कपट तासु बूझा केउ नाहीं। पै सरबग्य बूझि गै ताहीं॥

व्रज में आते ही एक बालक का शरीर धरकर वह असुर अन्य बालकों के साथ खेलनें लगा। उसके कपट को कोई भी नहीं जान सका, किन्तु सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण उसे पहचान गये।

कहा बहोरि सैन उन्ह रामहिं। यह बालक न असुर अघधामहिं॥
दाउ एहि तैं मर्देसु तबहीं। असुर सरीर धरिहिं खल जबहीं॥

फिर उन्होंने सङ्केत करके, दाऊ से भी कह दिया कि यह कोई बालक नहीं अपितु पाप का धाम दैत्य है। हे दाऊ! इसे तुम तब मारना, जब यह दुष्ट अपना आसुरी शरीर धारण कर ले।

सबन्हि बोलि पुनि अस कहि लागे। खेलहुँ बंधु कपट सब त्यागे॥
अस कहि असुर सहित कछु बालक। आपनि दिसि कीन्हें ब्रजपालक॥

फिर सब सखाओं को बुलाकर वे कहने लगे- हे भाईयों! सब कोई कपट त्यागकर खेलो। ऐसा कहकर व्रजपालक श्रीकृष्ण ने उस असुर सहित कुछ बालकों को अपनी ओर कर लिया।

सेष सेषदल कान्हँ पठाए। आँधरि खेल सबन्हि सरुआए॥

जो बचे, उन्हें कृष्ण ने दाऊ के दल में भेज दिया। फिर सबनें अन्धे का खेल प्रारम्भ किया।

दोहा- **आँखि बाँधि सुनि तालि लछ नक्खि न जे दल पाव।**
अपर दलहिं लै जाइ सो गिरि लौ पीठि चढ़ाव॥४४०॥

आँखें बाँधे हुए ताली का शब्द सुनकर निश्चित किये गये लक्ष्य को जो दल नहीं पा सकेगा, वह दूसरे दल के बालकों को अपनी पीठ पर बैठाकर गोवर्धन पर्वत के निकट तक ले जायेगा।

मासपारायण पंद्रहवाँ बिश्राम

चौ.- एहि टेक करि सनमुख सैला। खेलि लाग बालक सो खेला॥
पुनि जब खेल पराभव पावा। हरि सिदाम कहँ पीठि चढ़ावा॥

इस बात को निश्चित करके, गिरिराज के सन्मुख सारे ग्वालबाल वही खेल खेलनें लगे। फिर जब कन्हैया खेल में हार गए, तो उन्होंने श्रीदामा को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया।

तैसेहिं बल कहँ काँध चढ़ाई। चलेहुँ असुर सुरगिरि अतुराई॥
पाछ कन्हँहि दल दूसर ग्वाला। चले चढ़ाइ बलहिं दल बाला॥

वैसे ही दाऊ को कन्धों पर चढ़ाकर वह दैत्य उतावली से देवपर्वत की ओर चला। उनके पीछे कन्हैया के दल के दूसरे बालक, दाऊ के दल के बालकों को पीठ पर चढ़ाकर चले।

कपटि सबन्हि तें आगे आवा। लखि एकान्त हिय अति हरषावा॥
बूझि अनन्त कपट तिन्ह घोरा। बिहँसि कुबच कहि कान मरोरा॥

कपटी दैत्य सबसे आगे निकल आया और एकान्त देखकर मन में हर्षित हो उठा। भगवान अनन्त उस दैत्य का कपट भाँप गए और दुर्वचन कहते हुए, उन्होंने उसका कान मरोड़ दिया।

दम्भि देखि अस अतिसय जरेऊ। धरेहुँ असुर तनु छल परिहरेऊ॥
कज्जल गिरि सम जे गम्भीरा। देखि बिकटमुख भागहिं धीरा॥

यह देख वह दम्भी अत्यन्त जल उठा। छल त्यागकर उसने अपना राक्षसी शरीर धर लिया, जो काजल के पहाड़ के समान गम्भीर था, उसके विकट मुख को देखते ही धैर्य छूट जाता था।

दाउ सोह कस किंध कच अंका। जनु घन घन महुँ उदित मयंका॥
उभय श्रवन उन्ह कुंडल लोला। चपल बालहिय जनु पृह कोला॥

उसके कन्धों पर केशों में दाऊ कैसे शोभा पा रहे हैं; जैसे घने मेघों में चन्द्रोदय हुआ हो। उनके दोनों कानों में कुण्डल हिल रहे हैं, जैसे किसी चपल बालक के मन में इच्छाएँ उमड़ती है।

दोहा- अति बिसाल तनु देखि तिन्ह महिधर भार बढ़ान।
अवचट बिपदा पाइ एहि जातुधान अकुलान॥४४१॥

उसके अत्यन्त विशाल शरीर को देखकर बलरामजी ने अपने शरीर का भार बढ़ा दिया, जिससे अचानक आई हुई इस विपत्ति को पाकर वह दैत्य व्याकुल हो उठा।

चौ.- भई तीब्र अति ताकर स्वासा। खर गति हेरि भई हिय त्रासा॥
इतनेहुँ बल करारबिन्द रोपी। मुष्ठि प्रहार हना सिर कोपी॥

उसका श्वास अत्यन्त तीवृ हो गया, वह धेनुक की दुर्दशा का स्मरणकर, मन में भयभीत हो उठा। इतनें में ही दाऊ ने कुपित हो तानकर अपने हाथ से उसके सिर पर एक मुक्का मारा।

सो प्रहार अस रहेहुँ प्रचंडा। भए तमीचर सिर दुइ खंडा॥
खसेहु धरनि गर्जत घननादा। मुएहु मिटेहु लखि सुरन्ह बिषादा॥

मुक्के का वह प्रहार इतना प्रचण्ड था कि जिससे दैत्य के सिर के दो टुकड़े हो गए और मेघ-सा गरजकर वह भूमि पर गिर पड़ा। उसकी मृत्यु हो गई, यह देख देवता विषादमुक्त हो गए।

परतहि तरु तेहिं अमित ढहाए। सुनि रव घोर हँहरि सख धाए॥
दृस्य देखि तहँ बूझि कहानी। बलहिं सिहान सबन्हि मृदु बानी॥

गिरते समय उसने अनेक वृक्ष ढहा दिये। उसका भीषण शब्द सुनते ही घबराकर ग्वाल उसी ओर दौड़े। वहाँ का दृश्य देखकर वे सब समझ गए और मधुरवाणी से दाऊ को सराहनें लगे।

बल बिलोकि उन्ह परम बिसाला। अति हरषान हृदय नंदलाला॥
तेहिं दिनु राजन आवत छाका। भा बिलम्ब सब लागेसि ताका॥

उनका अत्यन्त भारी बल देखकर नन्दलाल हृदय में हर्षित हुए। हे राजन! उस दिन घर से दोपहर का भोजन आने में विलम्ब हो गया, सब बालक उसके आगमन की प्रतीक्षा करने लगे।

देखि छुधातुर उन्ह एहिभाँती। कहन लाग छीकन्हँ आराती॥
दधिहि मथै जस उग नवनीता। तसहि मथिअ जलु होइ सुभीता॥

भूख से उन्हें इस प्रकार व्याकुल देखकर श्रीकृष्ण कहने लगे कि जिस प्रकार दहीं को मथनें से माखन उत्पन्न हो जाता है, ठीक वैसे ही जल को मथा जाय, ताकि कुछ सुविधा हो सके।

दोहा- छुधावंत तब ग्वाल सब कन्हँ सँग मथि लग नीर।
पुनि सफेन जल पिएहुँ पै मिटि न छुधा गम्भीर॥४४२॥

तब भूख से व्याकुल सभी ग्वालबालक कन्हैया के साथ जल को मथनें लगे, फिर फेन सहित उस जल को वे पी गए, किन्तु इतने पर भी उनकी तीवृ भूख नहीं मिटी।

चौ.- तब हरि उर अस कीन्ह बिचारा। दुहिअ धेनु कछु होइ अधारा॥
अस कहि तें चढ़ि सिखर पहारी। लखि लग चहुँ दिसि दृष्टि पसारी॥

तब श्रीकृष्ण ने मन में विचार किया कि गायों को दुहा जाय, ताकि उदर को कुछ आधार मिल सके। ऐसा कहकर वे पर्वत की चोटी पर चढ़ गए और दृष्टि दौड़ाकर चारों ओर देखने लगे।

चरत देखि धेनुन्ह गिरिपादा। करै लाग मृदु बाँसुरि नादा॥
सुनतहिं हँवरि मुदित सब गाइनि। हरि दिसि अति आतुर चलि धाइनि॥

गायों को पर्वत की तराई में चरते देखकर वे मधुर ध्वनि से मुरली बजाने लगे, जिसे सुनते-ही आनन्दित हुई गायें रँभाते हुए, बड़ी ही उतावली से कन्हैया की ओर दौड़ पड़ी।

एतनेहुँ गृह तें जननि पठाई। कान्हँ छाक तहँ आवत पाई॥
तब तें उमगि परम उतसाहू। सैन देखान ताहिं सब काहू॥

इतनें में ही घर से मैय्या के द्वारा भेजी हुई छाक को कन्हैया ने अपनी ओर आते हुए देखा। तब अत्यन्त उत्साह से भरकर उसकी ओर सङ्केत करके, उन्होंने समस्त बालकों को दिखाया।

छाकहिं देखि ग्वाल किलकाने। अति आतुर कन्हँ दिसि उमगानें॥
इहिबिच गोप छाक जेहिं आनी। तेहिं दइ जे जिन्हँ ताकर पानी॥

छाक को देखते-ही सब बालक किलकारी मारते हुए बड़ी-ही उतावली से कन्हैया की ओर उमड़ पड़े। इतनें में ही उस गोप ने जो छाक लाया था, जो छाक जिसकी थी, उसे उसके हाथ में दे दी।

ग्वाल बाल तब परम तरंगी। जँवि लग सँग करि सख दुहुँ जंगी॥
जब अघान सब खेलत खाई। झपटि परसपर लाग डुकाई॥

तब अत्यन्त मौजी व चञ्चल ग्वाल, दोनों जुझारू सखाओं को साथ लेकर भोजन करने लगे। जब सभी अघा गए, तब वे खेलते हुए खाने लगे और झपटकर एक-दूसरे को ललचानें लगे।

दोहा- कछुक चपल चढ़ि तरुन्हँ पर बैठि तहहिं लग खाइ।
बालकेलि हरि संग उन्ह लखि लग बिबुध सिहाइ॥४४३॥

कुछ चञ्चल बालक वृक्षों पर चढ़ गए और वहीं बैठकर खाने लगे। देवता उनकी सराहना करते हुए, श्रीकृष्ण के साथ उनकी इन बालक्रीड़ाओं को देखने लगे।

चौ.- दावानल तेहिं समय घनेरा। प्रगटेहुँ तहाँ कंस कर प्रेरा॥
असुर सो प्रगट कीन्ह सब ओरा। उन्नत लपटन्हि अगिनि प्रघोरा॥

उसी समय कंस के द्वारा भेजा हुआ भीषण दावानल वहाँ आकर प्रकट हुआ। उस दैत्य ने वहाँ चारों ओर ऊँची-ऊँची लपटों से युक्त, बड़ी ही प्रचण्ड अग्नि प्रकट कर दी।

घिरे गाइ सख जिन्हँ बिस्तारा। अति ब्याकुल कर हाहाकारा॥
खग मृग सहित सकल बनचारी। इत उत भजि लग हँहरत भारी॥

जिसके विस्तार में घिरी हुई गायें व ग्वालबालक अत्यन्त व्याकुल होकर हाहाकार करने लगे। पशु-पक्षियों सहित समस्त वन्यप्राणी अत्यधिक घबराकर इधर-उधर भागनें लगे।

हरित हरित वानस अरु रूखा। जरि लग काठ ढेर जिमि सूखा॥
जब जननेहिं दसा असि देखी। सखा गाइ भए बिकल बिसेषी॥

उस अग्नि में हरी-हरी वनस्पतियाँ व वृक्ष इस प्रकार जलनें लगे, जैसे लकड़ी का कोई सूखा ढेर हो। जब भक्तवत्सल ने यह देखा कि मेरे सखागण व गायें अत्यन्त व्याकुल हो रही है,

कृपादृष्टि तब सबन्हि बिलोकी। कहा जरनि भीषन उन्ह रोकी॥
सखा ठाढु चुप पलकन्हि ढारी। सीतहिं आपु अगिनि यह भारी॥

तब उन्होंने सबको कृपादृष्टि से देखकर उनका भीषण दाह रोकते हुए कहा- हे सखाओं! अपने-अपने नेत्र बन्द करके, चुपचाप खड़े हो जाओ, यह भीषण अग्नि स्वतः शान्त हो जायेगी।

सुनि उन्ह बचन नयन निज बाँधी। सखा ठढ़े चुप धीरज साधी॥
सीतसिंधु तब माय पसारी। करि गै पान अनल सो भारी॥

उनके वचन सुनते ही, नेत्र बन्द करके, सारे सखा धैर्यपूर्वक चुपचाप खड़े हो गए। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी माया का विस्तार किया और उस भीषण अग्नि को पी गए।

तदुप बरिषि निज कोप कृषानू। असुरहिं दहेहुँ बृष्निकुल भानू॥
घटेहुँ ताप अस अनुभव पाई। हरषे गाइ सखन्हँ समुदाई॥

तदुपरान्त अपने क्रोध की अग्नि बरषाकर वृष्णिवंश के सूर्य श्रीकृष्ण ने उस राक्षस को भस्म कर दिया। ताप घट गया है, ऐसा अनुभव करके, सखा और गायों के समुदाय हर्षित हो उठे।

हरिहिं सैन पुनि नयन उघारे। सखा कछुक तेहिं समय उचारे॥
सखाबछल कन्हँ तोर समाना। अखिल जगत केउ अहहिं न आना॥

फिर कन्हैया का सङ्केत पाकर उन्होंने अपने नेत्र खोल दिये। उस समय कुछ सखाओं ने कहा कि हे कन्हैया! तुम्हारे समान सखावत्सल सम्पूर्ण जगत में दूसरा कोई नहीं।

दोहा- **जानि प्रदोष तदुप सबन्हँ गवन गाँउ दिसि कीन्ह।**
ब्रजतिय पारि दिवस बिरहु कन्हँ दरसन सुख लीन्ह॥४४॥

फिर संध्या हुई जानकर उन सबनें गाँव की ओर प्रस्थान किया और व्रज की स्त्रियों ने दिनभर के विरह का पार पाकर कन्हैया के दर्शनों का सुख पाया।

चौ.- **अकसर उभय बंधु चख लोभा। बैठि रहे चितवत ब्रज सोभा॥**
तब बल सन हरि लाग उचारी। बंधु अहहिं ब्रज मोहि प्रिय भारी॥

एक बार बलराम व श्रीकृष्ण दोनों भाई बैठे हुए लुब्ध नेत्रों से व्रज की शोभा देख रहे थे। तभी बलरामजी से कन्हैया कहने लगे कि हे भाई! यह व्रजमण्डल मुझे अत्यधिक प्रिय है।

मोहिं मुद जस बृंदावन वासा। तस त्रिलोक जनि कतहुँ निवासा॥
इहँ बस जीव प्रान सम मोही। मम रिस उबर न जे ब्रज द्रोही॥

वृन्दावन में रहने पर मुझे जो आनन्द मिलता है, वह त्रिलोक में कहीं नहीं मिलता। व्रज के जीव मुझे प्राणों के समान प्रिय हैं और इस भूमि से द्रोह करनेवाले मेरे क्रोध से उबर नहीं पाते।

ब्रज कर रूखन्हँ सुरतरु जानू। पुनि ब्रज अह बैकुंठ समानू॥
हरि के मधुर बचन सुनि दाऊ। माँगि लाग बरु अस सतिभाऊ॥

व्रज के वृक्षों को कल्पवृक्ष के तुल्य समझना चाहिये और स्वयं व्रज वैकुण्ठ लोक के समान है। भगवान श्रीकृष्ण के ऐसे वचन सुनकर बलदाऊजी सत्यभाव से उनसे यह वर माँगनें लगे-

प्रभु जब जब जहँ जहँ अवतरेहूँ। एहि किंकरहि संग निज करेहूँ॥
मैं तनु पुनि प्रभु ताकर प्राना। तव बिनु जगत मोर को आना॥

हे प्रभु! आप जब-जब जहाँ-जहाँ अवतरें, इस दास को अपने साथ कर लिया करना। मैं शरीर हूँ और प्रभु (आप) उस शरीर की आत्मा हैं, आपके बिना संसार में मेरा और कौन है।

दोहा- **छत्र छाहिं सिर होइ जब लाग न दारुन घाम।**
छत्र बिगत दुरगति लहहि तिय सिष बपुष ललाम॥४४५॥

जब सिर पर छत्र की छाया होती है, तो भीषण धूप भी नहीं लगती। जबकि पतिरूपी, गुरुरूपी व प्राणरूपी छत्र के चले जाने पर स्त्री, शिष्य व सुन्दर शरीर केवल दुर्गति ही पाते हैं।

चौ.- **तसहिं नाथ पदतल बिलगाहीं। अह बिश्राम मोहि कत नाहीं॥**
सुनि अस बचन कान्हँ मुसुकाए। बोले बहुरि बलहिं उर लाए॥

ठीक उसी प्रकार स्वामी के चरणतलों के अतिरिक्त, मुझे किसी अन्य स्थान पर शान्ति नहीं है। इन वचनों को सुनकर कन्हैया मुस्कुरा दिये और बलदाऊ को अपने हृदय से लगाकर बोले,

बंधु तुअ त मम आतम अहहीं। तव बिनु मनु न मोर कत रहहीं॥
तव बिनु मम सब कृत अवरुद्धा। मैं दीपक तुअ जोत बिसुद्धा॥

हे भाई। तुम तो मेरी आत्मा हो। तुम्हारे बिना मेरा मन कहीं भी नहीं टिकता और तुम्हारे बिना मेरे सारे कार्य अवरुद्ध रहते हैं। मैं दीपक हूँ और तुम मेरी विशुद्ध ज्योति हो।

बंधु सत्य अह बच मम ऐहा। अति प्रिय मोहि बिसद तव नेहा॥
सुनि अस दाउ नयन जल छाए। पेमु उमगि अनुजहिं हिय लाए॥

हे भाई! मेरा यह वचन सत्य है कि तुम्हारा विशद प्रेम मुझे बड़ा प्रिय है। ऐसा सुनकर दाऊ के नेत्रों में जल भर आया और प्रेम में उमड़कर उन्होंने अपने अनुज को हृदय से लगा लिया।

निज अनुकूल बहुरि उन्ह जाना। बल कहि लाग बचन रस साना॥
जासु मधुरतम धुनि सुनि काना। बरबस झूम बिमुग्ध जहाना॥

फिर उन्हें अनुकूल जानकर बलराम प्रेमयुक्त वाणी में उनसे कहने लगे- जिसकी मधुरतम ध्वनि अपने कानों से सुनते-ही, यह सम्पूर्ण संसार विमुग्ध होकर बरबस ही झूम उठता है,

ब्याकुलता उपजावनिहारी। मैं सुनि चहुँ सोइ बैनु तुम्हारी॥
सुनि अस बिहँसत राजिवनैनू। लाग बजाइ सुरव बर बैनू॥

व्याकुलता उत्पन्न कर देनेवाली, तुम्हारी उसी मुरलीध्वनि को मैं सुनना चाहता हूँ। यह सुनकर मुस्कुराते हुए श्रीकृष्ण ने हाथों में उत्तम मुरली ली और मधुर ध्वनि से उसे बजाने लगे।

दोहा- **नलिन सदृस अंगुरि जसहिं कन्हँ बाँसुरि थरकाइ।**
रव श्रवप्रिय अस निकसि लग माधुरि जिहिं न कहाइ॥४४६॥

अपनी कमल-सदृश अँगुलियों को कन्हैया ने जैसे ही मुरली पर चलाना आरम्भ किया, (वैसे ही) उससे ऐसा कर्णप्रिय श्वर निकलनें लगा कि जिसकी माधुरी का वर्णन ही नहीं हो सकता।

चौ.- अचर भए चर चर भए अचरा। मन्मथ छन लौ धीरज न धरा॥
मरुत सोउ रव अंग सिंचाई। ढारि लाग सब दिसि सितलाई॥

(उसे सुनकर) चर जगत अचल रह गया और वृक्षादि अचर झूमनें लगे। कामदेव क्षणभर भी धैर्य न धर सके। ध्वनि में अपने अङ्गों को भिगो वायु सब दिशाओं में शीतलता उढ़ेलने लगी।

पिक बिमुग्ध काकलि बिसरानी। खगगन सुन उर धीरज ठानी॥
तरु पल्लव फड़के रसु छाई। भूले उड़नि मधुप समुदाई॥

अत्यन्त मुग्ध हो जाने के कारण, कोयल कूकना भूल गई और अन्य पक्षिगण भी धैर्यपूर्वक वह ध्वनि सुननें लगे। वृक्षों के पत्ते प्रेम में मग्न होकर फड़क उठे और भौरे उड़ना भूल गए।

अखयजला कर थँवेहुँ प्रबाहा। दिसिन्हँ हृदय अकुलान अगाहा॥
बन मृगबृंद चपलता भूले। सरसिज अमित सरोवर फूले॥

यमुनाजी का प्रवाह अवरुद्ध हो गया और दिशाओं के हृदय में अगाध व्याकुलता हो गई। वन में विचरनेंवाले पशु स्वाभाविक चञ्चलता भूल गए और सरोवरों में अनेक कमल खिल उठे।

चरत गाइ तृन धरि मुख माहीं। भइ अस मगन चबावत नाहीं॥
बच्छ बिसरि घेया चपलाई। थकित लाग सुनि कान चढ़ाई॥

चरती हुई गायें मुखों में तिनके लिये इस प्रकार मग्न हो गई कि उन्हें चबाना ही भूल गई। बछड़े स्तनपान व चपलता भूलकर थकित से, कान उठाकर मुरलीध्वनि सुनने लगे।

दोहा- बिटप लतामंडप सबन्हि धुनिहिं अमिय सरि न्हाइ।
भए नवल पल्लव कुसुम रितु मरजाद बिहाइ॥४४७॥

मुरली की ध्वनि की उस अमृतमय सरिता में नहाकर वृक्षों व लतामण्डपों में ऋतुओं की मर्यादा के विरुद्ध नवीन पत्ते व पुष्प निकल आए।

चौ.- मुरलि बजात सोह कन्हँ कैसे। जतनहिं मार लहै जग जैसे॥
धुनि सुनि सिद्धन्हँ छूटि समाधी। जग नहिं जे न मुरेहुँ मृदु आँधी॥

मुरली बजाते कृष्ण कैसे शोभित हुए; जैसे विश्वविजय हेतु कामदेव यत्न कर रहा हो। ध्वनि से सिद्धों की समाधि छूट गई और संसार में ऐसा कोई नहीं था, जो इस मृदुविप्लव अधीर न हुआ।

ठाढ़ थकित सुन सुर नभ माहीं। देअँरवनि सुधबुध बिसराहीं॥
उड़न्हँ सहित नभगंग सुधाकर। उतरि अएहुँ रव सरित मनोहर॥

देवतागण आकाश में थकित से खड़े वह ध्वनि सुन रहे हैं, तो देवाङ्गनाएँ सुधबुध खो चुकी हैं। नक्षत्रों सहित आकाशगङ्गा में स्थित चन्द्रमा, ध्वनि की उस मनोहर नदी में उतर आया।

तरनि समेत सकल नभवासी। लूटि लाग रव आनँदरासी॥
मृतक रूख नव पत्र सुहाए। ऊसर बिबिध बाटिका छाए॥

सूर्यदेव सहित समस्त आकाशवासी ग्रह भी, ध्वनिरूप आनन्द की उस राशि को लूटनें लगे। सूखे हुए वृक्षों पर नवीन पत्ते निकल आए और ऊँसर भूमि अनेक वाटिकाओं से भर गई।

जड़ पाहन सो धुनि परसाना। फूटि परेहुँ सुन्दर जलगाना॥
भ्रमबस नर्ति लाग सिखि जूथा। बिसरेहुँ कलरव बिहग बरूथा॥

उस ध्वनि का स्पर्श मिलनें के कारण जड़ पत्थरों से भी जलरूपी सुन्दर गान फूट पड़ा। मयूरों के समुदाय वर्षा के भ्रम में नाच उठे और पक्षियों के समूहों का कलरव छूट गया।

झषन्ह सहित जलचर गम्भीरा। पेमु बिकल लागे सरि तीरा॥
पुलक उमगि बिरतन्हँ जड़ गाता। कंटक गहि मग भा सुखदाता॥

मत्स्यों सहित अनेक प्रकार के बड़े-बड़े जलचर प्रेमातुर होकर यमुनाजी के तट पर आ लगे। विरक्तों के जड़ अङ्गों में पुलकन उमड़ पड़ी और काँटों को छिपाकर मार्ग सुखद हो गए।

तजि आयसु सबबिधि घननाहा। बारिद उमगि लाग करि छाहा॥
सोउ धुनि सुनि ब्याकुल ब्रज कुँअरी। धाईं लोक लाज सब बिसरी॥

इन्द्र की आज्ञा का सब प्रकार से उल्लङ्घन करके, मेघ उमड़कर छाया करने लगे। वही मुरलीध्वनि सुनकर व्रज की तरूणियाँ व्याकुल हो उठी और समस्त लोकलज्जा त्यागकर दौड़ी।

तनु पुलकान चपल मन भयऊँ। पेमु उमग लखि दृग पलकयऊ॥

उनके शरीर पुलकित व मन चञ्चल हो उठे, प्रेम उमड़ता देखकर नेत्र पलकों में बन्द हो गए।

दोहा- **ठवनि त्रिभँग कन्हँ के ललित बैनुदंड नत ग्रीव।**
चह कंदर्प अमित प्रनत परि जाकर छबि सींव॥४४८॥

कन्हैया की त्रिभङ्गी मुद्रा मन को हरनेंवाली व सुन्दर है, उनकी गर्दन मुरली पर झुकी हुई है, जिसके सौन्दर्य की सीमा में उलझकर अनगिनत कामदेव शरण पाना चाहते हैं।

चौ.- **इहा कुँअरि कुंजन्हि जुरि आईं। कहइ परसपर पुनि अकुलाईं॥**
काह कहौं अलि मैं गति मोरी। तजि कृत बिबस आइ इत दौरी॥

इधर व्रजयुवतियाँ कुञ्जों में आ जुटी और व्याकुल हो परस्पर कहने लगी- हे सखि! मैं अपनी दशा के विषय में तुमसे क्या कहूँ? सारे कार्य त्यागकर विवश हो इधर दौड़ी चली आई हूँ।

कान्हँ मुरलि मम नाउँ पुकारा। सुनत अधीरज भयउँ अपारा॥
मुरलिनाद सुनि मधुर मनहरहि। आपु छूट सब कारज करही॥

कन्हैया ने मुरली की ध्वनि में मेरा नाम पुकारा, जिसे सुनते ही मुझे अपार अधीरता हुई। उस मनोहर का मधुर मुरलीनाद सुनते ही, हाथों के सारे कार्य अपने-आप छूट जाते हैं।

तब लगि रह सयान चतुराई। जब लगि देत न बैनु सुनाई॥
बैनु होइ चल जब हरि स्वासा। लोकलाज लहँ सपदि बिनासा॥

सयानों की चतुराई भी तभी तक रहती है, जब तक कि मुरली का शब्द न सुनाई पड़ जायँ। कन्हैया का श्वास जब मुरली से होकर चलता है, तब लोकसङ्कोच शीघ्र-ही नष्ट हो जाता है।

तब लौ रह बर कुल अभिमाना। जब लौ रव न मथै मन ध्याना॥

तब लगि रह उर महुँ संकोचा। जब लौ श्रव न परहिं रव पोचा॥

उत्तमकुल का मान तभी तक रहता है, जब तक कि मुरलीध्वनि मन व ध्यान को मथ न दे। मन में सङ्कोच भी तभी तक रहता है, जब तक कि उस पोपली मुरली का शब्द कानों में न पड़े।

दोहा- कहत भाँति एहि गोपि सब सुनि लगि रव राजेस।
तजि बिचार भइ बुद्धि उन्ह जड़ तनु चेत न सेष॥४४९॥

हे राजेश्वर! इस प्रकार कहते हुए वे समस्त गोपियाँ मुरली का वह शब्द सुनने लगी। उन सबकी बुद्धि विचारों का त्याग करके, जड़ हो गई और शरीर में चेतना भी शेष न रही।

चौ.- देखा गोपिन्हँ हनि उन्ह ऐनू। पिय कहँ बाँधि लीन्ह जड़ बेनू॥
तब गोपिन्हँ हिय भयउँ अगाहा। बाँसुरि लागि सौतियाडाहा॥

गोपियों ने देखा कि निष्प्राण मुरली ने हमारे अधिकार का हनन करके, प्रियतम को वश में कर लिया है, तो उनके मन में मुरली के प्रति सौंत-विषयक तीवृ द्वेष उत्पन्न हो गया।

सोउ पीरबस भई अधीरा। कहि लगि तें अस बचन गभीरा॥
देखा त्रिपुर केउ न अस आली। बैनु अहहिं जस पोंच कुचाली॥

उसी पीड़ा के वश अधीर होकर वे इस प्रकार गम्भीर वचन बोली- हे सखि! यह मुरली जैसी नीच और कुचाल चलनेंवाली है, ऐसा तो तीनों-लोकों में कोई नहीं देखा गया है।

जदपि अहहिं तें बिरहित प्राना। तदपि प्रगट कर असर महाना॥
अनुभव करि बाँसुरि मधुराई। को जे धीर न देहिं बिहाई॥

यद्यपि वह निष्प्राण है, फिर भी महान प्रभाव प्रकट करती है। इस मुरली की मधुरता का अनुभव करके, ऐसा कौन है, जो अपना धैर्य न खो दे?

को त्रिलोक जेहिं सक न डगाई। यह कुजाति कइ कुटिल लोगाई॥
गूँजि लाग जब यह सरि तीरा। त्रिपुर होन लग परम अधीरा॥

त्रिलोक में ऐसा कौन है, जिसे यह कुटिल और नीच जातिवाली मुरलीरूपिणी स्त्री विचलित न कर दे। जब यह यमुनातट पर गूँजनें लगती है, तो तीनों ही लोक अत्यन्त अधीर हो उठते हैं।

हरिहिं अधर यह कर नित वासा। हठि हमरे उपजावहि त्रासा॥
अलि एहि उर अह अस अभिमाना। त्रिपुर माँझ को मोहि समाना॥

यह नित्य ही कन्हैया के अधरों पर निवास करके, हठपूर्वक हमें भयभीत किया करती है। हे सखि! इसे यह अभिमान है कि त्रिलोक में ऐसा कौन है, जो मेरे समान हो।

सुनि अस बचन गोपि एक कहेउँ। सत्य त्रिपुर तेहिं सम नहिं अहेउँ॥
हरि मुखकमल राज तेहिं पावा। तातें हृदय तासु गरुआवा॥

ऐसे वचन सुन एक गोपी ने कहा कि सचमुच ही त्रिलोक में उसके समान दूसरा कोई नहीं। उसनें कन्हैया के मुखकमल का राज्य पा लिया है, यही गर्व उसके मन में आ चुका है।

पियहि जुग अधर बर सिंघासन। जामेहुँ पोंच बैनु जहँ आसन॥
कर सारंग चक्र धर जेई। तिन्ह रच्छा कर नित कर तेई॥

प्रिय के दोनों अधर उत्तम सिंहासन है, जिस पर इस नीचजाति ने आसन जमा रखा है। जो हाथ शार्ङ्ग धनुष व चक्र धारण किया करते थे, अब वही हाथ नित्य उसकी रक्षा करते हैं।

दोहा- अलक चँवर सेवहि सतत रदन सभासद जासु।
ललित हास पुनि बिभव जिन्हँ को कह प्रभुता तासु॥४५०॥

प्रियतम के दाँत जिसके सभासद् हैं, उनकी अलकरूपी चाँमर उसी मुरली की सेवा करती है। उनका मधुर, मनोहर हास्य ही जिसका ऐश्वर्य है, ऐसी मुरली की प्रभुता कौन कह सकता है।

चौ.- यह बस नित हमार पिय ध्याना। ऐहि बस्य कन्हँ सबन्हि भुलाना॥
ओछि जाति तनु धरि यह बैनू। करि माया मारेहुँ हम ऐनू॥

यह निरन्तर हमारे प्रिय के ध्यान में बसती है, इसके वश हो कन्हैया हम सबको भूल गए है। नीच जाति में जन्म पाकर भी इस मुरली ने अपनी माया द्वारा हमारा अधिकार हर लिया।

बहुरि खिजाइ हमहिं समुहाना। अधरसुधा कर संतत पाना॥
दिनु लौ राखि एक पद स्यामहि। करन देइ बिश्राम तनक नहिं॥

साथ ही हमें चिढ़ाते हुए, हमारे ही सन्मुख निरन्तर हमारे प्रियतम की अधरसुधा को पीती रहती है। कन्हैया को दिनभर एक पैर पर खड़ा रखती है और तनिक भी विश्राम नहीं करने देती।

चढ़ि मोहन करकंज गुमाना। गर्जन करहिं निसान समाना॥
आपन अछत सुन न केउ बानी। सबन्हि संग करि फिर मनमानी॥

मनमोहन के हाथरूपी कमल पर चढ़कर डंके के समान गर्जन किया करती है। अपने अतिरिक्त और किसी की बात नहीं सुनती और सभी के साथ मनमानी करती फिरती है।

सुनि अस कहा एक मुसुकाई। अलि यह अह न बैनु कुटिलाई॥
देव देखि ब्रज कर सुख भारी। द्वेष बस्य यह जुगुति निकारी॥

ऐसा सुनकर एक अन्य गोपी ने मुस्कुराकर कहा- हे सखि! यह कुटिलता मुरली की नहीं है, अपितु व्रज का महान सुख देखकर स्वयं विधाता ने द्वेष के वशीभूत हो (मुरलीरूपी) यह युक्ति निकाली है।

न त हरि आपु घरौ घर जाई। देत रहे दरसन बरिआई॥
अब जे देव कीन्ह अनिआऊ। समने तिन्हँ सखि बैनु मनाऊ॥

अन्यथा कन्हैया तो स्वयं ही घर-घर जाकर जबरदस्ती दर्शन दिया करते थे। हे सखि! अब जो विधाता ने अन्याय कर ही दिया है, तो उसके निवारण के लिये मुरली को ही मनाया जाय।

दोहा- जेहिं दहेहुँ आपनहि कुल सखि बन वात सहाइ।
अस दुष्टा सन आस सखि अहहिं कोरि जड़ताइ॥४५१॥

तब एक अन्य गोपी ने कहा- हे सखि! जिसनें वन में वायु की सहायता से अपने ही कुल को जलाया है, ऐसी दुष्टा से किसी प्रकार की आशा करना मात्र कोरी मूर्खता है।

चौ.- बिपिनरोग यह ब्रज दिसि आवा। लखु सब दिसि कस लागिसि दावा॥
राखहि हरिहि एक पग ठाढ़े। कर मनमानि गरुअ मन बाढ़े॥

वन का यह रोग अब व्रज की ओर आ चुका है, जिसके कारण देखो! सब ओर अग्नि-ही अग्नि लग गई। यह कन्हैया को एक पैर पर खड़ा रखती है और अभिमानवश मनमानी करती है।

अरथ सधात पिय तें दिनुराता। जातें बाँक भए कटि गाता॥
सोव अधर साँथरि पग तानी। सेवा लहँ उन्ह निज चर जानी॥

यह दिनरात प्रियतम से स्वार्थ सधवाती है, जिससे उनके अङ्ग टेढ़े हो चुके हैं। यह उनकी अधररूपी शैय्या पर पैर फैलाए सोती है और अपना दास जानकर उनसे सेवा करवाती है।

आपन सुरन्हँ सैन प्रगटाई। कन्हहिं भ्रुअ नयन रहति नचाई॥
एहिं आपन रव पिय मनु जीता। कीन्ह तेन्हँ हमरे बिपरीता॥

अपने श्वरों से सङ्केत प्रकट करके, यह मुरली कन्हैया के भ्रुअ व नेत्रों को नचवाती रहती है। इसनें अपने शब्द से प्रियतम का मन जीतकर उन्हें हमारे विपरीत कर दिया है।

एहिं दुष्टा कहँ लेइअ चोरी। दंड देन मिस देइअ तोरी॥
हरि हम प्रति जे प्रीति जुड़ानी। भरि उन्ह कान मुरलि बिनसानी॥

इस दुष्टा को चुरा लिया जाय और दण्ड देने के बहाने इसे तोड़ दिया जाय। कन्हैया ने हमसे जो प्रीति जोड़ रखी थी, इस मुरली ने उन प्रियतम को भड़काकर उसे नष्ट कर दिया।

पिय न तनक बिलगानहिं ऐही। सिरु धर जीव राख जिमि देहीं॥

प्रियतम भी इसे अपने से जरा भी अलग नहीं करते, सिर पर ही चढ़ाएँ रखते हैं, जैसे कोई जीव अपने शरीर की रक्षा करता है।

छन्द- **सिर राख धरि हरि जाहिं तें यह प्रेयसी भइ स्याम की।**
हरि कबहुँ इहि धर अधर कटि धर कबहुँ लावहि टकटकी॥
हम जान जनि एहि कवन मोहिनि स्याम उर कीन्हीं घनी।
जेहिं लागि पिय हित भइ अप्रिय हम मुरलिया सौतिनि बनी॥

इसे अपने सिर पर चढ़ाए रखते हैं, जिससे ये अब उनकी प्रेयसि हो चुकी है। हरि कभी तो इसे अधरों पर रख लेते हैं, कभी कमर में खौंस लेते हैं और कभी टकटकी लगाकर इसकी ओर देखा करते हैं। हम नहीं जानती कि इसनें कन्हैया के मन में कौन सी महान मोहिनी कर दी है, जिससे हम उन प्रियतम को अप्रिय हो चुकी हैं और ये मुरली हमारी सौंत बन गई।

दोहा- **तब कह एक अति कोप करि लेहुँ छीनि कुलनासि।**
बीते बिनु छन लौ समय फैंकु एहि जलरासि॥४५२॥

तब एक गोपी अत्यधिक क्रुद्ध होकर कहने लगी कि इस कुलनाशिनी को छीन लो और क्षणभर का भी विलम्ब किये बिना समुद्र में फेंक दो।

चौ.- **अह प्रपंच बिधि के मनु भारी। हठि करि सौति बैनुहि हमारी॥**
करति आइ जे निज कुल नासा। तेइ आइ ब्रज ढारन त्रासा॥

विधाता के मन में बड़ा भारी प्रपञ्च है, उसनें हठपूर्वक इस मुरली को हमारी सौंत बना दिया है। जो अपने ही कुल का नाश करवाती आई है, वही अब व्रज में दुःख उढ़ेलनें आई है।

प्रेयसि चाह हरिहिं हिय जेई। कुल उत्तम किन तें लखि लेई॥
जे सब भाँति असुभ जड़गाता। तेइहिं प्रति कस उन्ह मनु राता॥

यदि कन्हैया के मन में प्रियतमा की ही चाह है, तो वे कोई उत्तम कुल क्यों नहीं देखते? जो सब प्रकार से अशुभ और निष्प्राण है, उसी के प्रति उनका मन इतना कैसे अनुरक्त हो गया?

बाँसुरि कान्हँ उभय निरमोहीं। पीर पराउ बिदित कस होही॥
रमहिं परसपर दुहुँ दिनुराता। तातें मंदेहुँ हम उन्ह नाता॥

बाँसुरी व कन्हैया दोनों ही निर्मोही हैं, उन्हें पराई पीड़ा का ज्ञान कैसे हो? वे दोनों तो दिनरात एक-दूसरे में ही रमा करते हैं, इसीलिये हमारा और उनका सम्बन्ध मन्द पड़ गया है।

चर अरु अचर ऐहि जग माहीं। मुरलि समान कुटिल को आही॥
मुरलि भागधनि तदपि महाना। नित कर हरि अधरामृत पाना॥

इस चराचर जगत में मुरली के समान कुटिल दूसरा कौन है, किन्तु फिर भी यह मुरली भाग्य की महान धनी है, क्योंकि ये नित्य ही कन्हैया के अधरामृत का पान किया करती है।

दोहा- **एहि कुटिला तनु ग्रंथिमय पुनि थोथा बिनु हाड़।**
जनम नीच कुल रन्ध्र उर तदपि गह अमिअ बाड़॥४५३॥

इस कुटिला का शरीर गठानों से युक्त है, ऊपर से पोपला और अस्थियों से भी रहित है। इसका जन्म भी नीच कुल में हुआ है, किन्तु फिर भी यह अमृत की बाढ़ पाती रहती है।

चौ.- **कन्हँ भै एहि बस अस दिनुराती। तज न चढ़ाइ राख निज छाती॥**
कबि कह कान्हँ मुखहिं ससि नाई। ससि बिरहिनि रिपु बिष पुनि भाई॥

कन्हैया इसके वश में ऐसे हैं कि इसे छोड़ते ही नहीं। दिनरात छाती पर चढ़ाए रखते हैं। कवि कन्हैया के मुख को चन्द्र-सा कहते हैं, जबकि चन्द्र विरहिणियों का शत्रु और विष का भाई है।

एक त वदनकमल यह खोरी। भई सहायक मुरलि बहोरी॥
परी पाछ हमरे कर धोई। बैनु यह त अलि अब का होई॥

एक तो उनके मुखचन्द्र में यह दोष, ऊपर से मुरली उसकी सहायक हो गई है। इस प्रकार यह मुरली हाथ धोकर हमारे पीछे पड़ी है, हे सखि! अब हमारा क्या होगा?

हरिहिं किए बस अति गरुआई। भइ हम सौंति निसान बजाई॥
कुलनासिनि कर देखुँ सुभागा। मन अनुरूप लहेहुँ अनुरागा॥

यह मुरली कन्हैया को वश में करके, अत्यधिक अहङ्कारवश डंके की चोट पर हमारी सौंत हो गई है। इस कुलनाशिनी का सौभाग्य तो देखो! इसनें मन की इच्छा के अनुरूप प्रेम पा लिया।

मोहि हरिहिं निज रव मधुराई। बूझि नयन उन्ह देत मुँदाई॥
जातें हमहिं न लखि सक मोहन। पावत रह तेइ रस उन्ह सघन॥

यह मुरली कन्हैया को अपनी ध्वनि की मधुरता से मोहते हुए, जानबूझकर उनके नेत्र मुँदा देती है। ताकि मनमोहन हमें देख न सके और वह अकेली ही उनका सघन प्रेम पाती रहे।

दोहा- **पिय बिसार जेहिं भाँति एहि बेगि सो करिअ उपाय।**

न त जे सपुन हमार उन्ह अवसि ए बेनु नसाय॥४५४॥

हे सखि! प्रियतम इसे जिस प्रकार भी त्यागें, हमें शीघ्र वही उपाय करना चाहिये, अन्यथा हमारे जो स्वप्न हैं, उन्हें ये अवश्य ही नष्ट कर देगी।

चौ.- सुनि अस बचन धीर धरि भारी। गोपि एक एहि भाँति उचारी॥
करिअ पेम जिन्हँ तें अलि प्यारी। चलु प्रतिछिन उन्ह रुचिन्हँ निहारी॥

यह सब सुनकर बड़े ही धैर्य से, एक गोपी इस प्रकार कहने लगी- हे सखि! जिनसे प्रेम किया जाय, उनकी रुचि को प्रत्येक क्षण देखकर चलना चाहिये।

मूरति जिन्हँ मन मंदिर राखी। होइअ तासु सबन्हि सुख साखी॥
पियहिं सुखन्हँ प्रति हिय जे द्वेषा। जानि होइ उन्ह परम कलेसा॥

मनरूपी मंदिर में जिनकी भी मूर्ति बसा रखी हो, उनके समस्त सुखों के साक्षी होना चाहिये। प्रियतम के सुखों के प्रति जो द्वेष तुम्हारे मन में है, उसे जानकर उन्हें अत्यन्त दुःख होगा।

सनमानिअ सो बस्तुन्हँ मन तें। पिय सुख पावहिं तनकहिं जिन्हँ तें॥
सनमानिअ एहि उन्नत भूधर। अहहिं भाग अपि उन्नत जाकर॥

उन वस्तुओं का हृदय से आदर करना चाहिये, जिनसे प्रियतम थोड़ा-सा सुख पाते हों। इस उन्नत पर्वत का सम्मान करो, जिसके भाग्य भी (इसकी ऊँचाई के समान) बड़े ऊँचे हैं और

जे सबभाँति मीत कन्हँ केरा। पुनि उन्ह नेह पावहिं घनेरा॥
सनमानिअ जमुनहिं सौभागा। पिय बिहरहिं जहँ नित अनुरागा॥

जो सब प्रकार से कन्हैया का मित्र है और उनका अत्यधिक स्नेह प्राप्त करता है। इन यमुना के सौभाग्य का आदर करो, जिसमें प्रियतम नित्य प्रेमपूर्वक विहार किया करते हैं।

सनमानिअ सो लता बिताना। सहृदय पुनि सो बिटप महाना॥
गाइ चरात घाम अति पाई। कुँमर कान्हँ जहँ लहँ सितलाई॥

उन लता-मण्डपों और उन महान वृक्षों का हृदय से आदर करो, गायें चराते हुए अत्यधिक धूप के कारण, जिनकी छाया में विश्राम करके, कुँवर कन्हैया शान्ति पाया करते हैं।

सनमानिअ सो सखन्हँ बरूथा। रहहिं कान्हँ मनु जिन्हँ प्रति गूथा॥
तोहिं परम प्रिय कुँमर कन्हाई। पुनि उन्ह जे बाँसुरि सुखदाई॥

सखाओं के उस समुदाय का आदर करो, जिनके प्रति कन्हैया का मन अनुरक्त रहा करता है। तुम सबको कन्हैया अत्यधिक प्रिय हैं और यदि उन्हें मुरली सुखदायक है,

तब चाहिअ तोहिं परिहरि द्वेषा। धरेहुँ बैनु प्रति पेमु बिसेषा॥

तब तुम्हें चाहिये कि द्वेष का त्यागकर तुम सब मुरली के प्रति भी विशेष प्रेम धारण करो।

दोहा- हृदय बसानेहुँ पेमु जिन्हँ रुचिन्ह तेन्ह सनमानु।
प्रीति साँच एहि लच्छन पियहिं अगुन जनि ध्यानु॥४५५॥

जिसका प्रेम अपने हृदय में बसा रखा है, उनकी रुचियों का भी सम्मान करो। सच्ची प्रीति का तो लक्षण ही यही है कि अपने प्रियतम के अवगुणों पर ध्यान नहीं दिया जाता।

चौ.- सुनि अस बिमल पेमु उपदेसा। डाह बैनु प्रति तुरतहिं बीता॥
थिर भा चित्त बचन सुनि नीके। एहिंबिच परम लच्छ सबही के॥

ऐसा निर्मल प्रेमोपदेश सुनकर, मुरली के प्रति गोपियों की ईर्ष्या शीघ्र ही जाती रही। इन उत्तम वचनों को सुनकर उनका चित्त स्थिर हो गया और इसी बीच उन सबके परमलद्त्यरूप,

सखन्हँ संग सोउ थलहिं गुजारे। लखि भै गोपिन्हँ नयन सुखारे॥
कह सप्रेम पिय ससिमुख पेखे। छिन यह रुचिर थवहि रह देखे॥

श्रीकृष्ण सखाओं के साथ उसी स्थान से निकले। उन्हें देख गोपियों के नेत्र सुखी हो गए। प्रिय का चन्द्रमुख देख उन्होंने कहा- यह सुन्दर द्गण ठहर जाय और हम इन्हें ऐसे ही देखती रहें।

हेरि तेन्ह दिसि हँसि बनवारी। गवने गृह तब सबन्हि सिधारी॥
राजन लागत अगहन मासा। सीत उमगि परि छिति सब आसा॥

श्रीकृष्ण उनकी ओर देखते हुए मुस्कुराकर घर चले गए। तब वे सब भी अपने-अपने घर चली गई। हे परीद्मित्! अगहन का महिना लगते ही पृथ्वी पर सब ओर शीत छा गई।

सोउ रितु गोपि समूह अपारा। आइ जुरेहुँ सरि तट एक बारा॥
तेहिं सवँ कान्हँ चरन अनुरागी। गोपि एक सबिनय कहि लागी॥

उसी ऋतु में एक बार गोपियों का अपार समुदाय यमुनाजी के तट पर आ जुटा। उस समय कन्हैया के चरणों में प्रीति रखनेंवाली एक गोपी विनयपूर्वक सबको इस प्रकार कहने लगी-

दोहा- अलि सुनेउँ मैं मास एहि करि जमुना असनान।
मन इच्छा फुर पुनि मिटहिं पातक आपु महान॥४५६॥

हे सखि! मैंने सुना है कि इस माह में यमुना-स्नान करने पर मनोकामना पूर्ण हो जाती है और महान पाप भी अपने-आप ही मिट जाते हैं।

चौ.- तातें लहन कान्हँ पद पेमू। करिअहिं हम यह सुब्रत सनेमू॥
बचन तासु अस सुनतहिं नीका। चित्तकमल बिगसेहुँ सबही का॥

इसलिये कन्हैया के चरणकमलों में प्रेम पाने के लिये, हम सब इस उत्तम व्रत को नियमपूर्वक करेंगी। उसका यह उत्तम वचन सुनते ही, समस्त गोपियों का चित्तरूपी कमल खिल उठा और

हरषि पूहा करि हिय मनमोहन। करि लगि कात्यायनि ब्रत पावन॥
अरुनत प्राचि छितिज सो कुमारी। न्हाइ लेत नित जमुनहिं बारी॥

मन में मोहन की कामना लिये वे हर्षपूर्वक, कात्यायनीदेवी का पवित्र व्रत करने लगी। पूर्व दिशा के द्मितिज के लाल होते-होते, वे गोपयाँ यमुनाजी के जल में स्नान कर लिया करती थी।

तदुप बालुमय देबिहिं केरा। सारहिं सुबिग्रह होत सवेरा॥
धूप दीप आदिक उपचारा। अरपहिं उन्ह एहिंभाँति उचारा॥

तदुपरान्त सवेरा होने पर, वे नदी के तट की बालू से देवी की सुन्दर मूर्ति बनाती और धूप, दीप आदि उपचार उन्हें अर्पित करते हुए इस प्रकार कहती थी-

हे सिव प्रेयसि गौरि भवानी। भगतबत्सला मधुमय बानी॥

हम गोपिन्हँ निज आतम माहीं। बर मूरति कन्हँ केर बसाहीं॥

हे शिवजी की प्रियतमा! हे गौरी! हे भवानी! हे भक्तवत्सला! हे मधुर वचन बोलनेंवाली! हम गोपियों ने अपनी आत्मा में कन्हैया की सुन्दर मूर्ति बसा रखी है।

मोर मुकुट जेहिं निज सिरु छावा। कान्हँ सो हृदय हमार चुरावा॥

जो शीश पर मयुरपङ्खयुक्त मुकुट धारण करते हैं, उन कन्हैया ने हमारा मन हर लिया है।

छन्द- **चोरेहुँ हिय अरु चित्त हमरेउँ मुरलिधर मनमोहना।**
आतमहिं कन कन बपुष कच कच तेइ धरे बस रस घना॥
जनपालिका हरिवाहिनी जगदंबिका मनकामदा।
बर देहुँ पिय होइ मिलहिं मोहन हमहिं दै निज रस सुधा॥

मन को मोह लेनेवाले उन मुरलीधर ने हमारा चित्त व हृदय चुरा लिया है। हमारी आत्मा के कण-कण में व शरीर के रोम-रोम में अपार प्रीति लिये, एकमात्र वे ही बसते हैं। हे भक्तपालिका! हे सिंहवाहिनी! हे जगत्जननी! हे वाञ्छित कामना को पूर्ण करनेवाली माता! आप हमें वर दीजिये कि श्रीकृष्ण हमें प्रियतम के रूप में प्राप्त हों और हमें प्रेमरूपी अमृत प्रदान करें।

दोहा- **एहिभाँति बरु माँगि सब करहि दिवस उपवास।**
निसि हबि गहि महि सयन कर ब्रतहिं अटल बिस्वास॥४५७॥

इस प्रकार वर माँगकर दिन में वे उपवास रखती थी और व्रत के प्रति अटल विश्वास रखकर रात्रि में हविष्यान्न ग्रहण करके, भूमि पर शयन करती थी।

चौ.- **सोउ अवधि सब गोपकुमारी। ब्रह्म महूरत उठि एक बारी॥**
पियहिं सुमिरि जुरि कज्जलि तीरा। धरे उतारि तटहिं निज चीरा॥

उसी अवधी में सभी गोपकुमारियाँ ब्रह्ममुहूर्त में उठकर एकबार प्रियतम श्रीकृष्ण का स्मरण करके, यमुनाजी के तट पर एकत्र हुई और अपने वस्त्र उतारकर उन्होंने तट पर ही रख दिये।

देखि निबिड़ तम सींवा त्यागी। हरषि पैठि जल न्हावन लागी॥
पेमु पबित्र माँझ उन्ह केरा। कान्हँ दोषमय कृत यह हेरा॥

निविड़ (सघन) अन्धकार देखकर मर्यादा का त्याग करके, हर्षित हुई वे जल में उतरकर स्नान करने लगी। उनके पवित्र प्रेम में कन्हैया ने इस कार्य को दोषयुक्त पाया।

सीख देन तब उन्ह एहि अकृतहिं। अरथ देन पुनि उन्ह बर ब्रतहीं॥
सख दुइ चारिक संग लगाए। नटखट तेहिं सवँ सरि तट आए॥

उनके इस अनुचित कर्म के लिये उन्हें शिक्षा देने और उनके उत्तम व्रत को सार्थकता प्रदान करानें के लिये, दो-चार सखाओं के साथ नटखट कन्हैया उसी समय यमुनातट पर पधारे।

पुनि दुहि तमहिं सखान्ह सहाई। गुपचुप तट तें बसन उठाई॥
ते चढ़ि गै कदम्ब अतुराने। बसन सबनि एक साख झलाने॥

फिर अन्धकार में, सखाओं की सहायता से, तट पर रखे गोपियों के वस्त्र चुपचाप उठाकर वे कृष्ण उतावली से कदम्बवृक्ष पर जा चढ़े और सारे वस्त्र वृक्ष की शाखा पर लटका दिये।

पल्लव सघन तदुप सुखदाता। दुरि बैठे चुप सखन्हँ सँघाता॥
न्हाइ गोपि इत जब तट हेरा। तहँ न बसन भा सोच बड़ेरा॥

तदुपरान्त श्रीकृष्ण सखाओं के साथ चुपचाप (वहीं) छिपकर बैठ गए। इधर स्नान करके, जब गोपियों ने तट की ओर देखा, तब वहाँ वस्त्रों को न पाकर उन्हें बड़ी ही चिन्ता होने लगी।

अहहिं बेग तनक न पवमाना। खग मृग जनि लखेहु केउ आना॥
तब कहँ गै हमार पट भूषन। देखिहि सखि केउ लागिहिं दूषन॥

(वे सोचनें लगी कि) वायु में थोड़ा-सा भी वेग नहीं है। न कोई पशु-पक्षि या अन्य प्राणी देखा गया। फिर वस्त्राभूषण कहाँ चले गए? अगर कोई देखेगा, तो हमें कलङ्क लग जायगा।

तेहिं सवँ मधुर मंद मुसुकाई। कहेहु गोपि एक अस सकुचाई॥

उसी समय एक गोपी ने मधुर व मन्द मुस्कान से सकुचाते हुए इस प्रकार कहा-

दोहा- **नटखटता यह अवसि अह अलि सोउ माखनचोर।**
एहिभाँति उतपात तेइ करत फिरइ चहुँओर॥४५८॥

हे सखि! यह नटखटता तो अवश्य उस माखनचोर कन्हैया की ही है, क्योंकि इस प्रकार के उत्पात तो चारों ओर केवल वही किया करता है।

चौ.- **किन्तु उधमप्रिय सो नंदलाला। काह करि रहेहु इहँ एहिंकाला॥**
लाग सतावन हमहिं कन्हाई। दुरि बैठेहुँ इहँहिं कत आई॥

किन्तु नन्दरायजी का वह उत्पातप्रिय पुत्र, इस समय यहाँ क्या कर रहा है? लगता है, हमें सतानें के लिये वह कन्हैया आकर इसी स्थान पर, कहीं छिपकर बैठ गया है।

अब धौं काह होइ अलि प्यारी। अति उतपाति अहहिं बनवारी॥
एहिंभाँति अतिसय अकुलाई। गोपि कहा सब हाथ उठाई॥

हे प्रिय सखि! अब क्या होगा? वह बनवारी तो अत्यधिक उत्पाती हैं। इस प्रकार अत्यधिक व्याकुल होकर उन सब गोपियों ने हाथ उठाकर कहा कि,

प्राननाथ कन्हँ बाँसुरिधारी। रच्छिअ हम सब सरन तिहारी॥
बेगि देहु पट हम तिय जाती। परिखहु हमहिं न पिय एहिभाँती॥

हे प्राणनाथ! हे मुरलीधर कन्हैया! हमारी रक्षा करो, हम सब तुम्हारी शरण में हैं। हम जाति से स्त्री हैं, इसलिये हमारे वस्त्र शीघ्र ही लौटा दो। हे प्रियतम! इस प्रकार हमारी परीक्षा न लो।

सुनि अस पल्लव ओट कन्हाई। बिहँसि मधुरतम मुरलि बजाई॥
जेहिं सुनि ललिता दृष्टि पसारी। दीखि परे कन्हँ कदम्ब डारी॥

यह सुनकर पत्तों की आड़ से कन्हैया ने मुस्कुराते हुए, अत्यन्त मधुर-ध्वनि से मुरली बजाई। जिसे सुन ललिता ने दृष्टि दौड़ाकर देखा, तो कन्हैया कदम्ब की डाल पर बैठे दिखाई पड़े।

मोर मुकुट सिर साधि सँवारा। कटि पट पीत हृदय मनि हारा॥
चंदन खौर ललाट बिराजी। चारु कपोल कचावलि साजी॥

उन्होंने अपने शीश पर मोरपङ्ख का मुकुट भली प्रकार धारण कर रखा था और उनकी कमर में पीताम्बर और छाती पर मणियों के हार शोभित थे। ललाट पर चन्दन का तिलक और सुन्दर कपोलों पर लटें बिखरी थी।

चितवतही कन्हँ कहँ तरु डारी। ललिता कहि लगि सखिन्ह पुकारी॥
देखु देखु अलि कान्हहिं सोऊँ। बसन हमार दुराने जोऊ॥

कन्हैया को वृक्ष की शाखा पर देखते ही, ललिता अन्य गोपियों को पुकारकर कहने लगी- हे सखियों! देखो! देखो! वह कन्हैया ही है, जिसनें हमारे वस्त्र छिपा लिये हैं।

हम गोपिन्हँ के आँखि दुराई। बसन समेत चढ़ेहुँ तरु जाई॥
पुनि कहेहुँ ललिता मनमोहन। देहुँ बसन तव हित यह उचित न॥

हमारी दृष्टि से बचकर हमारे वस्त्रों को लिये वह वृक्ष पर जा चढ़ा है। फिर ललिता ने कन्हैया से कहा- हे मनमोहन! यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है, इसलिये हमारे वस्त्र लौटा दो।

दोहा- कमलनयन कछुकहिं समउँ होइ जैइहिं लखु भोर।
धेनु चरावन ग्वाल इहँ आइ लगिहिं चहुँओर॥४५९॥

हे कमलनयन! देखो! कुछ-ही समय पश्चात् सवेरा हो जायेगा और गायें चरानें के लिये ग्वाले यहाँ चारों-ओर आ लगेंगे।

चौ.- बसनबिगत हम ठाढ़िसि बारी। सनमुख तुअ सकोच लग भारी॥
हम अनुचरि बिनु मोल तिहारी। द्रवहुँ हरहुँ यह संकट भारी॥

हम सब वस्त्रों के बिना जल में खड़ी हैं और तुम्हारे होते हमें अत्यधिक लज्जा लग रही है। हम तो तुम्हारी बिना मोल की दासियाँ हैं, हम पर दया करो और हमारा महान सङ्कट हर लो।

तब एक कहेहुँ कान्हँ अति सीता। भए जात पुनि तुम बिपरीता॥
सरित बसहिं बहु जन्तु कठोरा। होइ जाइ अनहोनि न घोरा॥

तब एक अन्य ने कहा- हे कान्हा! यहाँ बड़ी ठण्ड है और तुम हमारे प्रतिकूल हुए जा रहे हो। नदी में बहुत-से कठोर जन्तु निवास करते हैं, कहीं कोई भयङ्कर अनहोनी न हो जाय।

कहेहुँ एक कन्हँ मधुर सुभाऊँ। बसनहीन हम करहु पसाऊँ॥
दसा हमार इहइ जे कोई। आवा इहँ अतिसय छति होई॥

एक ने कहा- हे मधुर प्रकृतिवाले कन्हैया! हम वस्त्रहीन हैं, हम पर अनुग्रह करो। हमारे इस दशा में रहते हुए, यदि यहाँ कोई आ गया, तो बड़ी ही हानि हो जायगी।

होइहिं अवसि हमहिं मुख कारा। पितुमातहिं दुख लाग अपारा॥
फिरि कस उन्ह निज वदनु देखावहिं। हम निदोष केहिं भाँति बुझावहिं॥

अवश्य ही हमारा मुँह काला होगा और हमारे माता-पिता को भी अपार दुःख होगा। लौटकर हम उन्हें अपना मुख कैसे दिखलायेंगी और “हम निर्दोष हैं” उन्हें यह बात कैसे समझायेंगी?

तातें बसन देहुँ बिनु बारा। न त अनरथ होइ जाइहिं भारा॥
सुनि कहेहुँ नटखट अस ताहीं। पट कत तोर बिदित मोहि नाहीं॥

इसलिये बिना विलम्ब किये, हमारे वस्त्र हमें लौटा दो, अन्यथा बड़ा अनर्थ हो जायगा। यह सुनकर नटखट कन्हैया ने उन्हें इस प्रकार कहा- तुम्हारे वस्त्र गए, ये मैं नहीं जानता।

भामिनि एहिबिधि उर धरि रोषा। मोहि मृदु बचन देति क्यों दोषा॥

हे भामिनि! इस प्रकार मन में क्रोध लिये, मधुर वचनों से तुम मुझे क्यों दोष दे रही हो?

दोहा- तुम जहँ राखे निज बसन खोजहु सोउ जगाहिं।
हौं त अलपु दधिचोर केउ चीर चुरैया नाहिं॥४६०॥

तुमनें अपने वस्त्रों को जहाँ रखा था, अब उन्हें उसी स्थान पर खोजो, क्योंकि मैं तो दहीं चुरानेंवाला एक तुच्छ चोर हूँ, कोई वस्त्रचोर नहीं।

चौ.- सुनि अस बिनवत उन्ह कर जोरी। कहा सतावहि किउँ बरजोरी॥
ए अम्बर जे साखन्हि छाए। तें कि आपु चढ़ि गै तरु धाए॥

ऐसा सुनकर उन्होंने हाथ जोड़ते हुए कहा कि तुम इस प्रकार जबरदस्ती हमें क्यों सता रहे हो? वृक्ष की शाखाओं पर ये जो वस्त्र लटक रहे हैं, वे क्या स्वयं ही दौड़कर वृक्ष पर चढ़ गए?

भय हमरे हिय होत अथाई। तापर तुम धरि अस निठुराई॥
द्रवउँ कान्हँ पट बेगिहिं देहू। भई बार चलि चह हम गेहू॥

हमें अत्यधिक भय लग रहा है, उस पर भी तुमनें ऐसी निष्ठुरता धर रखी है। हे कन्हैया! दया करो और शीघ्र-ही वस्त्र लौटा दो, विलम्ब हो गया है, अतः अब हम घर लौटना चाहती हैं।

सुनि कह मौजि ग्वाल कछु तेऊँ। रहे तरुहिं कन्हिआँ सँग जेऊँ॥
अलि भ्रम होत तोहिं तम माहीं। तरु ऊपर न बसन तव आही॥

यह सुनकर वे नटखट ग्वालबालक, जो कन्हैया के साथ-ही वृक्ष पर बैठे हुए थे, कहने लगे कि हे आली! तुम्हें अन्धकार के कारण भ्रम हो रहा है, तुम्हारे वस्त्र यहाँ वृक्ष पर नहीं है।

पुष्पगुच्छ जे साखन्हि छाए। सोउहिं पट तोहिं परहिं लखाए॥
जे भरोष न त पूछहुँ कन्हँही। अवसि कहब तें पट कि पुष्पही॥

इस वृक्ष पर पुष्पों के जो समूह छाए हैं, वे ही तुम्हें वस्त्र दिखाई पड़ रहे हैं। यदि विश्वास न हो तो कन्हैया से पूछ लो। वे अवश्य ही तुम्हें बता देंगे कि वे वस्त्र हैं। अथवा पुष्प ही हैं।

सुनि मनु गोपि कुपित भइ भारी। प्रगट कन्हहिं कह बिनवत भारी॥
नाथ गोपिबल्लभ घनस्यामा। हम सब प्रनत तोर सुखधामा॥

यह सुन गोपियाँ मन-ही मन अत्यन्त कुपित हो गई, किन्तु प्रत्यक्ष में अत्यधिक विनय करते हुए कहने लगी- हे नाथ! हे गोपीवल्लभ! हे घनश्याम! हे सुखधाम! हम सब तुम्हारी शरण में हैं।

हठ तजि बसन हमार फिराई। संकट हरि हरि लेहुँ अथाई॥
हृदय हमार परम भय होई। अनरथ होइ उपज रबि जोई॥

हे हरि! हठ का त्याग करके, हमारे वस्त्र लौटाकर हमारा यह महान सङ्कट हर लो। हमारे हृदय में महान भय उत्पन्न हो रहा है, यदि सूर्योदय हो गया, तो अनर्थ हो जायेगा।

जे कोउ लखिहिं होइ अपवादा। तात मात सुनि करिहिं बिषादा॥

बिनु तुम्हार हम हितु जग को है। निज रच्छा हित हम जिन्हँ जोहैं॥

यदि कोई देख लेगा तो अपवाद उत्पन्न होगा, जिससे माता-पिता विषाद करेने लगेंगे। इस संसार में तुम्हारे अतिरिक्त हमारा हितू और कौन है, रक्षा के लिये हम जिसकी प्रतीक्षा करें।

हम त तवहि हित यह ब्रत साधा। चहैं तोर पद पेमु अगाधा॥

हमनें तो यह व्रत तुम्हारे लिये किया था, क्योंकि हम तुम्हारे चरणों में अगाध प्रेम चाहती हैं।

दोहा- द्रवहुँ एहि चेरिन्हँ पर अब हठ परिहरि स्याम।
बसन देहुँ पुनि हमहिं उर बसहुँ आठही जाम॥४६१॥

हे श्याम! अब हठ त्यागकर तुम अपनी इन दासियों पर द्रवित होओ और हमारे वस्त्र लौटाकर आठों याम हमारे हृदय में निवास करो।

चौ.- बिनु तुम्हार हमहिं न कछु भावहिं। मूँदे दृग मनु तव छबि छावहिं॥
पेमु तोर प्रति भयउँ हमारे। मनु न चैन बिनु तोहिं निहारे॥

तुम्हारे बिना हमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता, नेत्र बन्द करनें पर मन में तुम्हारी ही छवि छा जाती है। हमें तुम्हारे प्रति प्रेम हो गया है और तुम्हें देखे बिना मन को शान्ति नहीं मिलती।

तातें देहुँ पदाम्बुज आपन। पेमु अखंड भाँति सब पावन॥
सुनि मनमोहन कह मुसुकाई। बिदित मोहि पृह तव हिय छाई॥

इसलिये तुम हमें अपने चरणों में सब प्रकार से पवित्र और अखण्ड प्रेम प्रदान करो। यह सुनकर मनमोहन ने मुस्कुराकर कहा कि तुम्हारे हृदय में व्याप्त इच्छा मुझे ज्ञात है।

प्रीति अमल सबभाँति तुम्हारी। संतत रहहिं मोर पद भारी॥
प्रेरेहुँ मातु गौरि पुनि मोहीं। देहुँ अवसि निज पद रति तोहीं॥

तुम्हारा प्रेम सब प्रकार से निर्मल है, जो निरन्तर मेरे चरणों में प्रगाढ़ ही बना रहेगा। माता गौरी ने भी मुझे आज्ञा दी है, इसलिये मैं अवश्य ही तुम्हें अपने चरणों में प्रेम प्रदान करूँगा।

अब सुनु मैं जेइ कारन पाई। बसन तोर तरु दीन्ह दुराई॥
करति अपट सरि तुम असनाना। बिदित न तोहिं यह पाप महाना॥

अब उस कारण को सुनों! जिसे पाकर मैंने तुम्हारे वस्त्रों को वृक्ष पर छिपा दिया था। तुम निर्वस्त्र होकर यमुना में स्नान करती हो, किन्तु तुम ये नहीं जानती कि यह महान पाप है।

बसहिं अंबुपति संतत नीरा। यह कृत उन्ह अपमान गभीरा॥
नगन भए न्हाइअ सरि धारा। सुकृत खीन लहँ अघ बिस्तारा॥

जल में निरन्तर वरुणदेव निवास करते हैं, तुम्हारा यह कर्म उनका घोर अपमान है। नदी की धारा में निर्वस्त्र अवस्था में स्नान करने से पुण्य क्षीण हो जाते हैं और पाप में वृद्धि होती है।

तातें भूल बिबस बरजोरी। आगे अब न करेसु यह खोरी॥
सुफल भयउँ ब्रत आजु तुम्हारा। मिलिहिं सोउ जे तुअँ मनु धारा॥

इसलिये भूलवश अथवा जान-बूझकर अब आगे यह अपराध फिर न करना। तुम्हारा व्रत आज सफल हुआ। अब तुम्हें वही प्राप्त होगा, जो तुम्हारे मन को प्रिय है।

अस्विन मास पुनउँ निसि माहीं। रास माँझ मुद देब अथाहीं॥
सुनतहिं अस ब्रति सबनि कुमारी। मानेहुँ मोद अनूपम भारी॥

अश्विन महीनें में पूर्णिमा की रात्रि को, रासनृत्य में मैं तुम सबको अथाह आनन्द प्रदान करूँगा। यह सुनते ही समस्त गोपकुमारियों ने अनुपम व अत्यधिक आनन्द का अनुभव किया।

नयन सजल भए पुलकित गाता। निरखि लागि मुख जगसुखदाता॥

उनके नेत्र सजल और शरीर पुलकित हो गए और वे सब कन्हैया का मुख देखने लगी।

दोहा- **तदुप कान्हँ भूषन बसन सबन्हँ तुरत लौटाइ।**
सखन्हँ समेत तदुप फिरेहुँ आपन गृह हरषाइ॥४६२॥ (क)

तदुपरान्त शीघ्र ही सब गोपियों को उनके वस्त्र व आभूषण लौटाकर भगवान श्रीकृष्ण हर्षपूर्वक अपने सखाओं सहित अपने घर लौट गए।

इहाँ गोपि फिरि गृह ललकि जोहिं लाग निसि सोइ।
मन अस बूड़े पियहिं पद मोह सघन जनु कोइ॥४६२॥(ख)

इधर गोपियाँ भी अपने-अपने घर लौट आई और आतुरता से उस रात्रि की प्रतीक्षा करने लगी। उनके मन प्रिय के चरणों में ऐसे अनुरक्त हो गए, जैसे कोई अत्यन्त मोहवश हो गया हो।

चौ.- **छुधावंत एक दिनु बन माहीं। राजन ग्वाल गये हरि पाही॥**
चलति बार बन हित ब्रजराजा। आतुरिबस न गरे हम आजा॥

हे परीक्षित्! एक दिन वन में भूख लगने से ग्वालबाल श्रीकृष्ण के पास गए और कहने लगे, हे व्रजराज! आज वन के लिये चलते समय शीघ्रता के कारण हम भोजन नहीं कर पाए।

छाक बहोरि न अब लौ आई। दिवस अरध चढ़ि अएहुँ कन्हाई॥
उद्धम ऊँदर उदर मचावा। बपुष लाग जनु प्रान बिहावा॥

फिर छाक भी अब तक नहीं आई हे कन्हैया! आधा दिन बीत चुका है। इस कारण हमारे पेट में चूहों ने उत्पात मचा रखा है और शरीर तो ऐसा लगता है, जैसे प्राणरहित ही हो गया हो।

तहि उपाय कछु करुँ हम लागी। जातें बिपति सबन्हि सक भागी॥
अस सुनि कान्हँ कहा मुसुकाई। सखा चिंत सब देहुँ बिहाई॥

हमारी भूख मिटाने के लिये अब तुम ही कोई उपाय करो, ताकि हम सबकी यह विपत्ति टल सके। यह सुनकर कन्हैया ने मुस्कुराकर कहा कि हे सखाओं! तुम सारी चिन्ता त्याग दो।

जग्य अंगिरस सुरपुर लागे। चतुरबेदि कर कछुकहिं आगे॥
बिप्र सो मथुरा करहिं निवासा। दुरि मख लगे सुरारिहिं त्रासा॥

यहाँ से थोड़ी ही दूर कुछ चतुर्वेदी ब्राह्मण स्वर्ग की प्राप्ति के लिये 'आङ्गिरस' नामक यज्ञ कर रहे हैं। वे ब्राह्मण मथुरा में रहते हैं और कंस के भय से छिपते हुए यज्ञ कर रहे हैं

तातें उन्हहिं पाहिं तुम जैहूँ। बल अरु मोर नाउँ उन्ह कैहूँ॥
पुनि माँगेसु भोजन सिरु नाई। देखिअ देइ कि देइ फिराई॥

इसलिये तुम उन्हीं के पास जाओ और उन्हें मेरा व दाऊ का नाम बताना। फिर सिर नवाकर उनसे कुछ भोजन माँगना। देखते हैं वे देते हैं या बिना दिये ही लौटा देते हैं।

कहि एहिबिधि कन्हिआँ मुसुकाने। सैनहिं सबन्हँ समीप बोलाने॥

इस प्रकार कहकर कन्हैया मुस्कुरा दिये और सङ्केत ही से सबको अपने निकट बुला लिया।

दोहा- चितवहुँ थल भाँडीर बन धूम उठत जहँ भाइ।
तहहिं बिप्र सो जग्य कर दुरि कंसहिं भय पाइ॥४६३॥

फिर उन्होंने उनसे कहा- हे भाईयों! भाण्डीर वन के उस स्थान को देखो! जहाँ से धुँआ उठ रहा है, वहीं पर वे ब्राह्मण कंस के भय से छिपते-छिपाते यज्ञ कर रहे हैं

चौ.- सुनतहिं छुधित सोउ थल धाए। बिप्रन्ह सन मखसाला आए॥
कहा पुकारि बहुरि सिरु नावा। कन्हँ बल हम कहँ इहाँ पठावा॥

यह सुनते ही वे भूखे बालक उसी ओर दौड़े और ब्राह्मणों के सन्मुख यज्ञशाला में आ पहुँचे। फिर ब्राह्मणों को सिर नवाकर पुकारते हुए उन्होंने कहा- कन्हैया व बलराम ने हमें यहाँ भेजा है।

देअँ धेनु चारन बन माहीं। सखन्हँ समेत अए तें आहीं॥
भूख लागि तहँ कछु ग्वालन्हँ जब। जाइ कहा उन्ह कन्हिआँ सन तब॥

हे देव! वे हम सखाओं के साथ वन में गायें चरानें आए हुए हैं। वहाँ जब कुछ ग्वालों को भूख लगी, तो उन्होंने जाकर कन्हैया से यह बात बता दी और

सखन्हँ बिकलता कान्हँ निहारी। पठए हमहिं भगत हितकारी॥
तातें धरनिदेअँ दय कीजिअ। हम तव प्रनत भोज कछु दीजिअ॥

जब सखाओं की यह व्याकुलता कन्हैया ने देखी, तो उन भक्तहितकारी ने हमें यहाँ भेज दिया। इसलिये हे भूदेव! दया कीजिये, हम आपकी शरण में हैं, हमें थोड़ा भोजन दे दीजिये।

दीन्ह परन्तु ध्यान केउ नाहीं। निरत रहे चुप होमहिं माहीं॥
तबहिं बिप्र एक उन्ह सन आई। कहन लाग एहिभाँति बुझाई॥

किन्तु किसी ने भी उन पर ध्यान नहीं दिया और वे चुपचाप यज्ञ करने में ही व्यस्त रहे। तभी एक ब्राह्मण आकर उन ग्वालों से इस प्रकार समझाकर कहने लगा-

मख हित हम इहँ भोज बनावा। जग्यदेअँ अब लौ जनि पावा॥
मखदेअहिं लग भोग न जब लौ। खाहिं न हम पुनि देइ न तब लौ॥

हमनें यहाँ यज्ञ के निमित्त भोजन बनाया है और अब तक यज्ञदेव को भोग नहीं लगा है। जब तक यज्ञदेव को भोग नहीं लगता, तब तक न तो हम स्वयं खायेंगे और न किसी को देंगे।

सुनि निरास फिरि सख समुदाई। द्विजन्हँ बात सब हरिहिं सुनाई॥
तब उन्ह सखहि कहा मुसुकाई। लागहिं बिप्र बेदचर भाई॥

यह सुन निराश हुए सखा लौटे और ब्राह्मणों की बताई बात कन्हैया से कह दी। तब उन्होंने सखाओं से मुस्कुराकर कहा कि- लगता है ब्राह्मण वेदों के अनुसार ही आचरण करते हैं।

जब लौ जग्य होइ नहिं पूरन। कवनि भाँति तें देइ न भोजन॥

अतः जब तक उनका यज्ञ पूर्ण नहीं होगा, वे हमें किसी भी प्रकार भोजन नहीं देंगे।

दोहा- जदपि लहै हित मोहि सब सारेहुँ होम महान।
किन्तु ग्यानमद एहि समय द्विज न सके मोहि जान॥४६४॥

यद्यपि उन सबनें मुझे पानें के लिये ही यह महान यज्ञ आयोजित किया है, किन्तु फिर भी अपने ज्ञान के अहं के कारण इस समय वे मुझे पहचान नहीं पाये हैं।

चौ.- बंधु जैहुँ अब द्विजपतिनिन्हँ सन। अवसि देब तें हम कहँ भोजन॥
मम प्रति पेमु तेन्ह हिय भारी। अवसि करिहि तें तोहि सुखारी॥

हे भाईयों! अब तुम लोग उन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाओ, वे अवश्य ही हमें भोजन देंगी। उनके हृदय में मेरे प्रति अगाध प्रीति है, इसलिये वे अवश्य ही तुम्हें सुख प्राप्त कराऐंगी।

सुनत सखा नव आस जुड़ाई। गवने बिप्रतियन्हँ समुहाई॥
कह सिरु नाइ परम अनुरागा। कृपासिंधु कछु भोजन माँगा॥

ऐसा सुनते-ही नवीन आशा के साथ, वे कृष्णसखा, उन विप्रपत्नियों के पास गए। उन्हें बड़े प्रेम से सिर नवाकर उन्होंने कहा कि कृपा के सागर श्रीकृष्ण ने आपसे कुछ भोजन माँगा है।

सुनतहिं हरषि सबनि द्विजनारी। पुलक सरीर नयन भरे बारी॥
भए उदित अज सुकृत हमारे। जगतपतिहिं चर द्वार पधारे॥

यह सुनते ही समस्त विप्रपत्नियाँ हर्षित हो उठी। उनके शरीरों में पुलकन और नेत्रों में जल भर आया। (कहा-) आज हमारे पुण्य उदित हुए हैं, जो जगदीश्वर के सेवक हमारे द्वार पधारे।

अस कहि मोद जुड़ाइ महाना। कनक थार भरि बिंजन नाना॥
कन्हिअहिं दिसि तें बिप्र लोगाई। ग्वालन्हँ चाँपि चली अतुराई॥

ऐसा कहकर सोने की परातों में अनेक प्रकार के व्यञ्जन लिये, महान आनन्द पाकर वे ब्राह्मणियाँ उतावलीपूर्वक ग्वालबालों का अनुशरण करती हुई, कन्हैया की ओर चली।

आइ बहोरि सबनि नृप तहवाँ। कन्हँ कदम्ब तर बैठे जहवाँ॥

हे परीक्षित्! फिर सब वहाँ आई, जहाँ कदम्ब वृक्ष की छाया में भगवान श्रीकृष्ण बैठे हुए थे।

दोहा- बलहिं काँध उन्ह हाथ एक दूजेहि सोह सरोज।
अधर बिगस मुसुकान मनु हरि चह मन्मथ ओज॥४६५॥

उनका एक हाथ दाऊ के कन्धे पर था, तो दूसरे हाथ में कमलपुष्प सुशोभित हो रहा था। उनके अधरों पर मुस्कान खिल रही थी, जो मानों कामदेव की शोभा को हर लेना चाहती थी।

चौ.- चितवतही तेहिं सवँ द्विजनारी। अंगकान्ति कन्हिआँ के भारी॥
थकित रही अंगुरि रद चापी। उर पबित्र ममता उन्ह ब्यापी॥

उस समय कन्हैया की महान अङ्गकान्ति को देखते-ही, वे ब्राह्मणियाँ दाँतों तले अँगुली दबाकर थकित-सी रह गई और उनके हृदय में पवित्र ममता व्याप्त हो गई।

मूरति सुखद प्रकृति अस साधू। उमगावहि रस हृदय अगाधू॥
मनहर छबि उन्ह नयन बसाई। कहा परसपर बिप्र लोगाई॥

उनकी सुखदायक मूर्ति और ऐसा शिष्टस्वभाव हृदय में अगाध प्रेम उत्पन्न करता था। मन को हरनेंवाली उनकी उस छवि को नेत्रों में बसाकर उन ब्राह्मणियों ने आपस में कहा-

ए सोइ जगतपाल भगवंता। नर तनु धरि जे कर सुख संता॥
बालरूप ये सोइ भगवाना। बसहिं जे संतत बिधि हर ध्याना॥

ये वे ही जगत्पालक भगवान हैं, जो मनुष्यशरीर धरकर, संतो को सुखी करते हैं। बालक का रूप धारण किये, ये वे ही भगवान हैं, जो निरन्तर शिवजी व ब्रह्माजी के ध्यान में बसा करते हैं।

दुरलभ अजहिं सुबिग्रह जोई। इन्हहिं कृपा हम देखेहुँ सोई॥
बड़े भाग हमरे अस जाहीं। सारद सेष बरनि सक नाहीं॥

इनका सुन्दर विग्रह जो ब्रह्मा को भी दुर्लभ है, उसे ही इनकी कृपा से हमने देख लिया। हमारे भाग्य इतनें महान हैं कि जिसका वर्णन स्वयं सरस्वतीजी व शेषजी भी नहीं कर सकते।

दोहा- पति हमार बैदिक द्विज सबबिधि प्रभु कर दास।
तोरिहि जय हित मख करइ दुरि दुरि बन खल त्रास॥४६६॥ (क)

(उन्होंने कन्हैया से कहा-) हमारे पति वैदिकब्राह्मण और सब प्रकार से आपके दास हैं। वे आप ही की विजय के निमित्त, कंस के भय से वन में छिप-छिपकर यज्ञ किया करते हैं।

पाए बिनु तव दरसन तोहिं अरपिअहिं भोग।
तब बनिहिं न तव दरसन केर सुखद संजोग॥४६६॥ (ख)

यदि आपके दर्शन पाये बिना ही आपकों भोग अर्पित कर दिया जायेगा, तब तो (उनके लिये) आपके दर्शन का सुखद संयोग ही नहीं बन पाऐगा।

चौ.- आसंका इहई हिय लाए। पति हमार तव सखन्हँ फिराए॥
तातें कृपा करिअ जदुनाथा। गहिअ अन्न यह सखन्हँ सँघाता॥

मन में इसी आसङ्का से हमारे पतियों ने आपके सखाओं को बिना दिये लौटाया था। इसलिये हे यदुनाथ! हम पर कृपा कीजिये और अपने सखाओं के साथ इस अन्न को ग्रहण कीजिये।

सुनि यह बचन कान्हँ मुसुकावा। कहि निज नाउँ चरन सिरु नावा॥
पुनि कह मोहि नवहुँ जनि माता। दोष मोहि लग तोहिं न ग्याता॥

यह वचन सुन कन्हैया मुस्कुराये और नाम बताकर उन्होंने उनके चरणों में सिर नवाया और कहा कि हे माताओं! आप मुझे नमस्कार न करें, आप नहीं जानती, इससे मुझे दोष लगेगा।

द्विज बड़ेन्हँ जो लेइ प्रनामा। सो अधमहि प्रति मैं नित बामा॥
सुनि अचरानि सकल द्विजनारी। हियहिं उमगि लग आनँदु भारी॥

जो ब्राह्मणों व बड़ों से प्रणाम लेता है, मैं सदैव उस अधम के प्रतिकूल रहता हूँ। यह सुनकर समस्त विप्रपत्नियाँ आश्चर्य करने लगी और उनके हृदयों में महान आनन्द उमड़नें लगा।

सोउ मुद सखन्हँ समेत सचाऊ। उन्ह जिवान कन्हँ कहँ अरु दाऊ॥
एहिबिधि मन इच्छित फलु पाई। हरषि सदन चलि बिप्र लोगाई॥

उसी आनन्द में सखाओं सहित उन्होंने कन्हैया व दाऊ को भोजन कराया। इस प्रकार अपने मन द्वारा इच्छित फल को पाकर वे ब्राह्मणपत्नियाँ हर्षित होकर अपने घर को चली।

तेहिं सवँ उन्ह प्रमोद जे पावा। चामहिं जीहँ जाइ कस गावा॥
किन्तु इहइ अह हृदय भरोषो। हरि बल अवसि बरनि सक मोसो॥

उस समय जो परानन्द उन्होंने पाया, उसे चमड़ी की जीभ से कैसे गाया जाय? किन्तु मेरे मन में यही विश्वास है कि श्रीहरि का बल हो तो, मेरे जैसा व्यक्ति भी उसे कह सकता है।

छन्द- **चहुँ हृदय महुँ संतोष एहि लगि कछु कह्यो जस स्याम को।**
न त सहसमुख जहँ कमु अजान्यो हौं तहाँ केहिं काम को॥
घनस्याम जनम उछाह खल बध सुनि कहहिं जे चित धरै।
ताकें हृदय संतोष उपजहिं ब्रह्ममुद आतम भरे॥

मैं मन में शान्ति प्राप्त करना चाहता हूँ, इसलिये भगवान श्रीकृष्ण का कुछ यश मैंने कहा है। अन्यथा जिस कार्य के लिये हजार मुखोंवाले शेषजी भी तुच्छ हैं, उसी के लिये मैं अज्ञानी-बालक किस काम का। मेघ के समान श्याम कान्तिवाले भगवान श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव व उनके द्वारा किये गए दुष्टों के संहार की कथा को जो लोग कहते-सुनते और चित्त में धरते हैं, उन्हें मन में संतोष प्राप्त होता है और उनकी आत्मा ब्रह्मानन्द से भर जाती है।

दोहा- **बालमुकुन्दहिं सिसुचरित कहिअ सुनिअ सतिभाउ।**
मनुज मात्र हित सान्तिप्रद कलि अह इहइ उपाउ॥४६७॥

बालमुकुन्द भगवान श्रीकृष्ण की बाललीलाओं को सच्चे हृदय से कहा व सुना जाना चाहिये। इस कलियुग में मनुष्यमात्र के लिये शान्ति प्रदान करानेंवाला, यही (सर्वश्रेष्ठ) उपाय है।

मासपारायण सोलहवाँ बिश्राम

श्री गणेशाय नमः

श्रीकृष्णचरितमानस

द्वितीय सोपान

गोवर्धनकाण्ड

चौ.- ब्रज राखन बरषा तें भारी। बालकृष्न भै जस गिरिधारी॥
जलदपतिहि पुनि दम्भ जस मथा। नृप सो सुखप्रद सुनहुँ अब कथा॥

हे परीक्षित! प्रचण्ड वर्षा से ब्रज की रक्षा हेतु, बालकृष्ण जैसे गिरिधर हुए थे और उन्होंने जैसे मेघों के स्वामी इन्द्र का मान मथा था, अब आप वहीं सुखद कथा सुनिये।

नंद एक दिनु सहित समाजा। बैठि सजात रहे मख साजा॥
सादर पितु पद सीस नवाँई। चकित कान्हँ तब पूछा आई॥

एक दिन नन्दरायजी गोपगणों के साथ बैठकर यज्ञ सम्बन्धी सामग्री तैयार कर रहे थे। तभी चकित हुए कन्हैया ने आकर बाबा नन्द के चरणों में बड़े आदर से सिर नवाकर पूछा-

तात उछाह कवन निअरावा। जेहिं हित तैं यह साजु जुड़ावा॥
नंद सुतहि तब गोद उठाई। कहन लाग अस अति हरषाई॥

हे बाबा! इस समय कौन-सा उत्सव आ रहा है, जिसके लिये आपने यह तैयारियाँ की है। तब नन्दरायजी ने अपने पुत्र को गोद में उठाया और अत्यन्त हर्षित होकर कहने लगे कि,

आवत सुरपति जग्य पुरातन। बिभवद किए सहित जे बच मन॥
सक्र करइ बरषा सुखदाई। जातें छिति रह नित निधि छाई॥

अरे लल्ला! इन्द्र के एक पुरातन यज्ञ का समय निकट है, जो मन और वचन से करने पर ऐश्वर्य देता है। इन्द्र ही सुखद वर्षा करते हैं, जिससे पृथ्वी सदैव अन्न और धान्यसम्पन्न रहती है।

जे न करिअ मख सुरपति केरा। तासु हृदयँ रिस होइ घनेरा॥
तात बखानेहुँ जाहिं महाना। सुनासीर सो जनि भगवाना॥

यदि देवराज इन्द्र का यह यज्ञ न किया जाय, तो उनके हृदय में बड़ा क्रोध होगा। तब कन्हैया ने कहा अरे बाबा! आपने जिसे बड़ा कहकर सराहा है वह इन्द्र कोई ईश्वर नहीं।

दोहा- सुकृताश्रय जे इन्द्रपद करनि जासु अति कारि।
ते कि काहु हित करि सकइ दूषन भूषन धारि॥१॥

जो पूर्व में किये गए पुण्यबल से इन्द्र के पद पर बैठा है और जिसकी करनी बहुत खोटी है; ऐसा दुर्गुणों के अलङ्कार धारण करनेवाला वह इन्द्र; क्या किसी का हित कर सकता है?

चौ.- अलपु जाहिं करि सक आक्राँता। तें कि होब केहि कर परित्राता॥
जे बल रहित मदनप्रिय मानी। जे न राखि सक निज रजधानी॥

जिसे कोई क्षुद्र दैत्य भी आतङ्कित कर सकता है, वह किसी की रक्षा क्या करेगा? जो बलहीन, कामी और अहङ्कारी है, जो अपनी राजधानी तक की रक्षा नहीं कर सकता और

जिन्हँ रनु चरित शृगालन्हँ जैसे। तें सक पालि त्रिलोकहुँ कैसे॥

तें त कहात स्वमुख श्री कीरा। काग सरिस रह सतत अधीरा॥

जिसके युद्ध चरित्र कायरतापूर्ण हैं, भला वह त्रिलोक का कैसे पालन कर सकता है? वह अपने ही मुँह मिया मिठ्ठू कहलाता है और कौए के समान निरन्तर भयभीत रहता है।

रीति पुरातन आदरु जोगा। पै उन्ह प्रति अस कह बुध लोगा॥
देस काल परिथिति अनुहारा। सुफल कुफल सब किए बिचारा॥

हे बाबा! पुरातन रीतियाँ आदर के योग्य हैं। किन्तु उसके सम्बन्ध में विज्ञजन ऐसा कहते हैं कि देशकाल और परिस्थिति के अनुसार अच्छे और बुरे फल का सब प्रकार से विचार करके,

तदुप पेमु बाढ़न सब आहा। करिअ रीति सबिबेक निबाहा॥
पितु इन्द्रादिक सुरगन जेते। पूरब सुकृतन्हँ भोगहि तेते॥

तदुपरान्त केवल सब ओर प्रेम बढ़ाने के लिये विवेकपूर्वक उन रीतियों का निर्वाह करना चाहिये। हे बाबा! इन्द्रादि जितने भी देवता है, वे सब पूर्व में किये अपने सत्कर्मों को भोग रहे हैं

बिनसत सुकृत परहि महि जाई। सुख दुख लहहि आन जिव नाई॥
तातें पूजिअ बन भुविभूषन। जे परहितु नासक परदूषन॥

पुण्यक्षय होने पर वे भी मृत्युलोक में जन्मेंगे और अन्य जीवों जैसे-ही सुख-दुःख पायेंगे। अतः आप वनों की पूजा कीजिये, जो पृथ्वी के भूषण, परोपकारी और पराये दोष हरनेवाले हैं।

मलय पुष्प फल जीवन वाता। भेषज दारु तें पाबस दाता॥
पूजिअ पय जे जीवनदाई। सहित छमा सरिता बसुधाई॥

वे वन ही चन्दन, पुष्प, फल, प्राणवायु, औषधियाँ, लकड़ी और वर्षा देनेवाले हैं। क्षमा की सरितारूप भूदेवि सहित उस जल की पूजा कीजिये, जो जीवन देनेवाला है।

पूजिअ गाइनि कृषि कर मूला। माधवि सम सब हित अनुकूला॥
पूजिअ सो सरि अरु गिरि भारे। जे गोधन उतकरषनिहारे॥

हे बाबा! गाय को पूजिये, जो कृषि का आधार है और पृथ्वी-सी सबके अनुकूल रहनेवाली है। फिर उन नदियों और महान पर्वतों की पूजा कीजिये, जो गोधन को बढ़ानेवाले हैं।

तात मात सँग पूजिअ ताहीं। परहित रत जे अदय जग माहीं॥
पूजिअ श्रमिक जे जिअहि अभाऊ। सृजन निरंतर जासु सुभाऊ॥

माता-पिता सहित उस मनुष्य को पूजिये, जो निर्दयी संसार में परोपकाररत हैं। उन श्रमिकों की पूजा कीजिये, जो आभावों में जीते हैं और निरन्तर रचनात्मकता ही जिनका स्वभाव है।

जे नर सबबिधि इन्ह आधारा। भजइ प्रभुहि तिन्ह होइ उबारा॥
अपर उपाय न लहँ उर तोषा। बचन सत्य यह करहु भरोषा॥

जो मनुष्य सब प्रकार से इनके आश्रित हो ईश्वर को भजता है, उनका उद्धार हो जाता है। दूसरे किसी भी उपाय से हृदय को संतोष प्राप्त नहीं होगा। विश्वास करो, यह वचन सत्य है।

करइ ए घन सम परोपकारा। देन लागि इन्हँ लेन अचारा॥
तै त इन्हँहि पद आश्रय लेहूँ। चित्त अनत दिसि तनक न देहूँ॥

ये सभी मेघों से परोपकारी है, इनके लेने का व्यवहार भी केवल देने के लिये होता है। आप तो उन्हीं के चरणों का आश्रय प्राप्त कीजिये और अन्यत्र कहीं पर भी ध्यान न दीजिये।

अस परहितुन्हँ केर सेवकाई। प्रभु पद अमल प्रितितिहुँ नाई॥

ऐसे परोपकारियों की सेवा स्वयं भगवान शिव के चरणों में निर्मल प्रेम के समान है।

दोहा- जे निज सुख इन्हँ सेव बिनु जीवनु देत गँवाइ।
अधौ कुम्भ सम सो मनुज भरहि न पाबसु पाइ॥२॥ (क)

जो अपने सुख के लिये इनकी सेवा किये बिना ही जीवन गवा देता है, वह मनुष्य तो औंधे मुँह रखे हुए उस घड़े के समान है, जो वर्षा का जल पाकर भी नहीं भरता।

हरि हिय तें गिरि उएहुँ जे मुनि पुलस्तिहि प्रताप।
गोवरधन भा सोउ ब्रज भजत हरहि तिहुँ ताप॥२॥ (ख)

नारायण के हृदय से जो पर्वत महर्षि पुलस्त्य के प्रताप से उत्पन्न हुआ था। वही व्रज में गोवर्धन पर्वत नाम से प्रकट हुआ; जो भजन किये जाने पर तीनों तापों को हर लेता है।

चौ.- जग पुनि जनम न दरसे ताहीं। तातें चलिअ आजु उन्ह पाहीं॥
पूजि धेनु द्विज बिबुध समाजा। उन्हहिं समरपहुँ पूजन साजा॥

उनके दर्शन से संसार में पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता है। अतः आज सब उनके सन्मुख चलिये। गायों, देवताओं और ब्राह्मणों का पूजन करके, उन्हीं को यज्ञसामग्री समर्पित कीजिये।

होहि सुहित ब्रज कर एहि माहीं। पितु बच अनृत मोर यह नाहीं॥
जरठ सनंद उमगि तेहिंकाला। बोला साधु साधु नंदलाला॥

इसी में व्रज का उत्तम हित है। हे बाबा! मेरा यह वचन असत्य नहीं है। उस समय वृद्ध सनन्दजी उत्साह से प्रेरित होकर बोले- नन्दलाल! धन्य है, धन्य है।

उचित लाग मत मोहि तिहारा। गिरि गोवरधन ब्रज आधारा॥
गिरिवर पालक गौ ब्रज धारी। पुनि हमार साँचौ हितकारी॥

मुझे तुम्हारा यह मत ठीक लगता है, गोवर्धन व्रज का आधार है। वह पर्वतराज व्रज व हमारे गौधन की पालना करनेवाला है और हमारा सच्चा हितैषी है।

स्याम हमहि जो कहा बुझाई। मोहि त उचित लाग सोइ भाई॥
तब सनंद बच सब अनुमोदा। गिरि पूजन बिधि पूछि प्रमोदा॥

हे भाईयों! घनश्याम ने हमें जो समझाकर कहा है, मुझे तो वहीं उचित लगता है। तब सनन्द की बात का सबने अनुमोदन किया। फिर बड़े आनन्द से उन्होंने उनसे पर्वत की पूजाविधि पूछी।

दोहा- ठीक ठीक कहु कवनि बिधि पूजिअ सो गिरिराज।
तब मघवहि मद दवन प्रभु कहि लागे मख साज॥३॥

हे कन्हैया! ठीक-ठीक बताओ कि गिरिराज की पूजा कैसे की जाय? तब मेघों के स्वामी इन्द्र का मान नष्ट करने के लिये भगवान श्रीकृष्ण यज्ञ सम्बन्धी सामग्री के विषय में बताने लगे।

चौ.- देहेसु थल सो प्रथम लिपाई। जहँ तें गिरिवर जाइ पुजाई॥

गंग जमुन जल पावन आनू। देहेसु तदुप गिरिहि असनानू॥

पहले तो उस स्थान को लिपवा देना, जहाँ से गिरिराज गोवर्धन की पूजा की जाएगी। फिर गङ्गा और यमुना का पवित्र जल लाकर प्रेमपूर्वक पर्वतराज को स्नान करवाना।

पंचामिअ अरु गोपय पावन। ढारि करेसु अभिषेक सुहावन॥
पुनि जमुनहिं जल तैं अन्हवाई। देहेसु अम्बर नवल ओढ़ाई॥

फिर पञ्चामृत और गाय का पवित्र दूध उड़ेलकर पर्वतराज का सुन्दर अभिषेक करना। फिर यमुना के जल से नहलाकर उन्हें नवीन वस्त्र ओढ़ा देना।

धूप सुगन्ध कुसुम बिधि नाना। उपचारेसु जय गिरि भगवाना॥
पाछे भूषन अरु मनिहारा। गिरिहि धराएसु पेमु अपारा॥

तदुपरान्त जय 'गिरि भगवान' यह कहकर धूप, सुगन्ध, पुष्प और अनेक प्रकार के उपचार करना। इसके बाद अपार प्रेम से गिरि देवता को आभूषण और मणियों के हार धारण करवाना।

अंतहुँ सब मिलि भोग लगाई। करेसु प्रदच्छिन सीस नवाँई॥
पंथ मिलहि पुनि जाचक जेऊ। भोजन उत्तम उन्ह कहँ देऊ॥

अंत में सब कोई उन्हें भोग लगाकर फिर सिर नवाकर उनकी प्रदक्षिणा करना और मार्ग में जो कोई भी याचक मिले, उन्हें उत्तम भोजन का दान करना।

दोहा- **हृदय जे बृंदाबिपिन कर अरु बैकुंठ सिखंड।**
सो गिरिवर दय अति गहन हम पर करइ अखंड॥४॥

जो वृन्दावन के हृदय और वैकुण्ठ लोक के मुकुट हैं, वे पर्वतश्रेष्ठ भगवान गोवर्धन हम पर अपनी अत्यन्त गहन और अखण्ड दया बनाये रखें।

चौ.- **कुसुमांजलि अस कहि तिन्ह देहूँ। अगर कपूर थाल पुनि लेहूँ॥**
झाँझ मृदँग अरु कंबु बजाई। अरचहुँ उन्ह सन आरति गाई॥

ऐसा कहकर उन्हें पुष्पाञ्जलि देना; फिर थाली में अगर और कपूर लेकर झाँझ, मृदङ्ग और शङ्ख बजाते हुए उनके सन्मुख आरती गाकर अर्चना करना।

अन्नकूट थापेसु पुनि पासा। जे बिभवद अरु दारिदनासा॥
अछत कठउते चौसठ लाई। पंचावलि धरु पुनि समुहाई॥

फिर पर्वतराज के निकट अन्नकूट की स्थापना करना, जो वैभवदाई और दरिद्रता का नाशक है। नवीन चौसठ कटोरे लाकर फिर उन्हें पाँच कतारों में उनके सन्मुख रखना।

पावन तुलसीदल तिन्ह महुँ धरि। बहुरि जमुन जल देहि सबन्हँ भरि॥
तदुप द्रोनसुत कहँ सिरु नाई। देहेसु उत्तम भोग लगाई॥

उन कटोरों में पवित्र तुलसीदल रखकर फिर उन सबको यमुना के जल से भर देना। तदुपरान्त द्रोणगिरि के पुत्र भगवान गोर्वधन को सिर नवाकर उत्तम भोग लगाना।

थापि अनल करि जग्य बहोरी। पूजिअ गौ द्विज सुर कर जोरी॥
उत्तम द्विज पुनि पाछ जिवाँई। देहुँ अपर कोउ छूट न पाई॥

अग्नि स्थापितकर, यज्ञ करना, फिर हाथ जोड़कर गौ, विप्रों और देवों को पूजना। अंत में उत्तम विप्रों को भोजन कराकर, पीछे सबको भोजन कराना; इस बीच कोई छूटने न पावे।

दोहा- तदुप गोप ग्वालिन निकर गिरि अंचल कर नाच।
गावहि मंगल बिबिध बिधि कर उछाह उर साँच॥५॥

तदुपरान्त ग्वालों और ग्वालिनों के समुह पर्वत के सन्मुख नृत्य करें। अनेक प्रकार के मङ्गल गीत गाएँ और सच्चे हृदय से उत्सव मनायें।

चौ.- अनतवासि निज भवन मुहाना। गोमय गिरि बनाव मनमाना॥
तिन्हँ बहोरि गोवरधन जानी। पूजै बिधि इहई सुख मानी॥

व्रज के बाहर रहनेवाले अपने घर के सन्मुख गाय के गोबर से इच्छित आकार का पर्वत बनावे। फिर उसे ही गोवर्धन जानकर सुख मानकर इसी विधि से उसका पूजन करे।

जे प्रतिबरष पूज गिरिराजा। हरिहि धाम लहँ सहित समाजा॥
अचरज परे नृपति सुनि बानी। मत निज सब तजि बिधि सनमानी॥

जो प्रतिवर्ष गोवर्धनपूजा करता है, वह कुटुम्ब सहित श्रीहरि के धाम को पाता है। हे राजन! श्रीकृष्ण की वाणी सुन सभी चकित हुए। फिर सबने अपनी बात छोड़, विधि का सम्मान किया।

पुनि जसुदा कन्हँ सँग ब्रजराजा। गज चढ़ि चले समुख गिरिराजा॥
उन्ह आगे द्विज बृंद महाना। चला करत श्रवप्रिय श्रुतिगाना॥

फिर यशोदाजी व कन्हैया सहित नन्दजी हाथी पर सवार हो गोवर्धन के सन्मुख चले। उनके आगे-आगे कानों को प्रिय लगनेवाले वेदमन्त्रों का गान करते ब्राह्मणों का विशाल समुदाय चला।

गिरि पूजन समिहा धरि भारी। चले गोपगन सकट सुधारी॥
उन्ह अनुहरत उमगि सुखु भारी। गोरस घट धरि चलि ब्रजनारी॥

बहुत से ग्वाले भी छकड़ों में पर्वतराज की पूजनसामग्री लादकर चले। अपने सिर पर गोरस के घड़े रखकर अनेक ग्वालिनें महान सुख में भरकर उन्हीं का अनुसरण करती हुई चलीं।

दोहा- नंद कान्हँ जसुदा सहित गज चढ़ि रुच सब साथ।
गज चढ़ि सुत तिय सँग जलद बिच चल जस सुरनाथ॥६॥ (क)

उस समय सबके साथ चलते हुए, कन्हैया व यशोदाजी के साथ नन्दजी हाथी पर शोभित थे, जैसे पुत्र जयन्त व पत्नि शचि के साथ इन्द्र ऐरावत पर बैठे जलयुक्त मेघों के मध्य विचर रहे हों।

सकल नंद बृषभानुगन चले सहित सुत नारि।
रहा संग उन्ह धेनुधन सुखद नयन हित भारि॥६॥ (ख)

सभी नन्द और वृषभानुगण अपनी स्त्रियों और पुत्रों सहित चले। उनके साथ बहुत सा गोधन था जो नेत्रों के लिये महान सुख देनेवाला था।

चौ.- सहस बालरबि द्युतिजुत सिबिका। चढ़ि पहिरे भूषन पट नीका॥
सखि समुदाय संग करि राधा। चलि गिरि पूजन पेमु अगाधा॥

सहस्र बालरवियों के समान तेजवाली पालकी पर चढ़कर उत्तम वस्त्र और आभूषण धारण करके, सखियों के समुदाय के साथ श्रीराधाजी भी बड़े प्रेम से पर्वतराज का पूजन करने चली।

जनु सुचि सुषमा सींव मनोहर। निकसि जानि प्रियतम रुचि सुन्दर॥
तेहिं सवँ सो सिबिकहिं सब ओरा। ग्वालिनि करत चलइ मृदु सोरा॥

मानों मन हरनेवाली पवित्र सुन्दरता की सीमा ही प्रियतम की सुन्दर रुचि जानकर निकली हो। हे परीक्षित! पालकी के चारों ओर ग्वालिनें मृदुल ध्वनि से कोलाहल करती चल रही थी।

सिबिका माँझ राधिकहिं साथा। ललितादिक राजहिं नरनाथा॥
जे निज कमलोपम कर लाई। राधहिं सिरु रहि चँवर डुराई॥

हे परीक्षित्! राधाजी के साथ पालकी में ललिता आदि सखियाँ भी विराजमान थी, जो अपने कमलोपम हाथों से राधाजी के शीश पर चँवर डुरा रही थी।

गात चंद्रदुति बर अलँकारा। लखि पर दिनहिं दमंक अपारा॥
बाल किसोर बृद्ध सब धाए। सिरु सिखि चौतनि सुभग सुहाए॥

उनके चन्द्राभ अङ्गों में उत्तम अलङ्कार सुशोभित थे, जो दिन में भी अत्यधिक दमक रहे थे। बच्चे, बूढ़े, युवा सभी दौड़े, उनके सिरों पर मयूरपङ्खयुक्त सुन्दर टोपियाँ सुशोभित थी।

दोहा– तें गर बर मनिहार धरे पहिरे नव परिधान।
नाचत बेनु बजात सब आए गिरि समुहान॥७॥

अपने कण्ठों में मणियों की उत्तम मालाएँ और नवीन वस्त्र धारण किये, वे सब के सब नाचते और मुरली बजाते हुए गिरिराज के सन्मुख आए।

चौ.– सिवहि कहा उछाह हिमवाना। सुनतहिं तें भए मुदित महाना॥
जटा मुकुट हिय मुंडन्हि माला। धरि उपबीत बिभूषन ब्याला॥

इधर हिमाचल ने शिवजी से उत्सव की बात कही, जिसे सुनते ही वे परमानन्दमग्न हो गए। सिर पर जटामुकुट, छाती पर नरमुण्डों की माला और सर्पों के आभूषण व जनेऊ धारण करके,

धौर अंग धरि मरघट छारी। कनक भाँग मद उमगत भारी॥
संग सैलजहि करि चढ़े नंदी। प्रेत सुजसु कह जिमि नृप बन्दी॥

गौरवर्ण के अङ्गों में श्मसान की राख लगाकर, धतूरे व भाँग के मद से अत्योन्मत्त हुए वे पार्वतीजी के साथ नन्दी पर चढ़े; उस समय प्रेत बन्दीजनों के समान उनका सुयश गा रहे थे।

आए ब्रज मनसिज मदभंगा। भूत प्रेत नाचत चल संगा॥
सिद्ध हंस अगनित हिय हरषी। आए मुनिन्ह सहित देवरषी॥

कन्दर्प मदमर्दन शिवजी व्रजभूमि पर पधारे; भूत, प्रेतादि नाचते हुए साथ चल रहे हैं। अनेक सिद्ध और परमहंस हृदय में हर्षित होकर मुनियों और देवर्षि नारद के साथ गोकुल में आए।

आइ जुरै सब गिरिवर पासा। नव कुसुमहि बन जस चौमासा॥
गिरिहि सिला सब भइ रतनारी। पुरट श्रंग कर दुति अति भारी॥

इस प्रकार वे सभी गोवर्धन के सन्मुख आ जुटे, जैसे चौमासे में वन नवीन पुष्पों से युक्त हो जाता है। पर्वत की समस्त शिलाएँ लाल हो गई और उसके स्वर्णशृङ्ग अत्यन्त महान तेज उत्पन्न करने लगे।

दोहा- मत्त मधुप गुंजित गिरिहि सोहत निरझर खोह।
अति बिसाल अरु उच्च अस जस उन्नत करि सोह॥८॥

मधु के लोभ से उन्मत्त भौरों से युक्त पर्वत पर अनेक झरने और कन्दराएँ सुशोभित है। गिरिराज गोवर्धन ऐसा विशाल और ऊँचा है कि जैसे कोई ऊँचा गजराज सुशोभित हो।

चौ.- हिम सुमेरु नर तन तेहिं काला। आए साज धरै कर आला॥
गोवरधन अरपत कर जोरी। हरिज जानि करि बिनय बहोरी॥

उस समय हाथों में यज्ञ की उत्तम सामग्री लिये हिमालय और सुमेरु मनुष्यशरीर धरकर, वहाँ आए। फिर उसे गिरिराज को समर्पितकर, उन्हें श्रीहरि के हृदय से उत्पन्न जानकर विनय की।

गोधन निज कर नँद अन्हवाई। आनेसि सँग बहु भाँति सजाई॥
चपल बच्छ तहँ बिचर उमंगा। सोह बिभूषन नाना अंगा॥

नन्दजी गायों व बैलों को अपने हाथों से नहलाकर, बहुत प्रकार से सजाकर वहाँ ले आए। चञ्चल बछड़े वहाँ बड़ी उमंग से विचर रहे हैं। उनके अङ्गों में बहुत से आभूषण सुशोभित है।

रंजित पूँछ सरीर बिषाना। अंगन्हि करत घंटिका गाना॥
सिखि बिषान सुषमा भइ भारी। मलय कपारु चित्र दिए कारी॥

पूँछ, शरीर और सींग रँगे हुए हैं और उनके अङ्गों में बँधी घण्टियाँ बज रही है। उनके सींगों पर बँधे मोरपङ्खों की महान शोभा हो रही है और उनके कपाल पर चन्दन से चित्र बनाये गये हैं।

द्विज पुजात भै हरि अनुहारी। अरपेउ नंद द्रब्य उन्ह भारी॥
लखि अस झाँझ मृदंग बजाई। नाचन लाग ग्वाल हरषाई॥

इधर ब्राह्मण श्रीकृष्ण के अनुसार गिरिपूजन करवानें लगे। नन्दरायजी ने पर्वतराज को महान द्रव्य अर्पित किया। यह देखते-ही गोपसमूह हर्षित हो झाँझ, मृदङ्गादि बाजे बजाकर नाचनें लगे।

दोहा- अपर नारि नर देखि अस करै दंडवत लाग।
नभ मुनि भै बरषत कुसुम बिबिध जाति सोउ भाग॥९॥

व्रज के अन्य स्त्री-पुरुष यह देखकर पर्वतराज गोवर्धन को दण्डवत प्रणाम करने लगे और मुनिगण आकाश से उस स्थान पर अनेक प्रकार के पुष्प बरसाने लगे।

चौ.- गोपाछन कस लग गिरिराजा। बैठा नृप जनु सहित समाजा॥
गिरिहिं बननि सुषमा अति भारी। द्विगुनित भइ धरि पुष्पन्हि क्यारी॥

गोपों से आच्छादित गोवर्धन कैसा दिखाई पड़ता है, जैसे कोई राजा सपरिवार बैठा हो। पर्वत के वनों की अत्यन्त सघन सुन्दरता, पुष्पों की कतारों को धारण किये, द्विगुणित हो गई।

सरि पंकज को बरनै सोभा। जापर मधुरसिकन्हँ उर लोभा॥
भूधर छबि धन आश्रय पाई। कबि समरथ कइ सींव लघाई॥

फिर यमुना में खिले कमलों की शोभा का वर्णन कौन करे, जिन पर भ्रमरों का मन लुब्ध है। छविरूपी धन के ऐसे आश्रय से गिरिराज कवि की कवित्वसीमा को लाँघ गया है।

नृप इत निज प्रभाउ बिस्तारी। प्रगटे कान्हँ गिरिहि तनु भारी॥
आसिस देत सबन्हँ मन भावन। क्रम क्रम लागेसि भोग लगावन॥

हे परीक्षित! इधर अपना प्रभाव प्रकट करके, श्रीकृष्ण गोवर्धन का शरीर धरे, प्रकट हुए और सभी को मनभावन आशीर्वाद देते हुए क्रमवार अर्पित नैवेद्य का भोग लगाने लगे।

उन्ह कर इंदु बदनु भुजचारी। तेजवंत गुननिधि सुखकारी॥
इत कन्हँ हरषि पितहि बिधि कहही। उत गिरितनु सोउ पूजन गहही॥

उनका मुख चन्द्रमा-सा और चार भुजाएँ थी; वे अपार तेजयुक्त, गुणनिधि और सुखदायक थे। इधर कन्हैया पिता को पूजाविधि कह रहे हैं और उधर पर्वतरूप में उसे ग्रहण कर रहे हैं।

सहज भरोष भा न उर ताही। पुनि पुनि हरि बिहँसत गिरि माहीं॥

पर्वत में प्रकट श्रीकृष्ण बार-बार मुस्कुरा रहे हैं, यह देख गोपों को सहज ही भरोसा न हुआ।

दोहा- **चकित गोप कह जोरि कर हमहि भयउँ भल भान।**
सैलोत्तम गोवरधन प्रगट रूप भगवान॥१०॥

उस समय चकित हुए गोप हाथ जोड़कर कहने लगे कि हमें इस बात का भली-प्रकार ज्ञान हो गया कि ये गोवर्धन सब पर्वतों में उत्तम और साक्षात् ईश्वर ही हैं।

चौ.- **गिरिहरि पुनि उन्ह प्रेरन लागे। भावइ जोइ लेहु सोइ माँगे॥**
गोधन सँग सब ग्वाल समाजा। बढ़े देहुँ बरु अस गिरिराजा॥

फिर गिरिहरि उन्हें प्रेरित करके बोले- तुम्हें जो अच्छा लगे वही माँग लो। तब उन्होंने कहा- हे गिरिराज! गायों के साथ हम गोपों का सम्पूर्ण समुदाय उन्नति करे यही वर दीजिये।

एवमस्तु कहि गिरिभगवाना। तब तहँ तें भै अंतरध्याना॥
मखहि साज तब छकरन्हि मेला। हरषि कीन्हि उन्ह प्रदछिन सैला॥

ऐसा ही हो इस प्रकार कहकर गिरिभगवान क्षणभर में ही अंतर ध्यान हो गए। तब यज्ञ की सारी सामग्री छकड़ों में लादकर सबने हर्षित होकर गिरिराज गोवर्धन की प्रदक्षिणा की।

छिरकिसि गोपि हरदि कसतूरी। चहुँ दिसि वात भई अति रूरी॥
करत प्रदच्छिन मग जे आवत। ब्रजवासी तिन्ह भोज लुटावत॥

गोपियों ने हल्दी और कस्तूरी उड़ाई, जिससे चारों दिशाओं में वायु सुगन्धित हो उठी। प्रदक्षिणा करते हुए जो भी मार्ग में पड़ता है, व्रजवासी उन्हें भोज्य-सामग्री लुटाते हैं।

नृप गौ सिखि कपि खग समुदाई। रहे हरषि सोउ भोजन पाई॥
करइ प्रदच्छिन सब मुद पागे। बिबिध बाजनें बाजन लागे॥

हे परीक्षित! ब्राह्मण, गायें, मोर, वानर और पक्षियों के समूह प्रसन्नता से भोजन ग्रहण कर रहे हैं। समस्त व्रजवासी आनन्दित हो प्रदक्षिणा कर रहे हैं, उस समय बहुत से बाजें बजने लगे।

तदुप नंद करि बिनय बहोरी। द्विजन्ह दीन्ह भोजन कर जोरी॥

पुनि सब गोपन्ह भोज करावा। निरखि बिबुध अतिसय सचु पावा॥

तदुपरान्त नन्दजी ने विनय करते हुए फिर हाथ जोड़कर ब्राह्मणों को भोजन दिया। फिर समस्त ग्वालों को भोजन कराया, यह देखकर देवताओं को महान आनन्द प्राप्त हुआ।

आपु कीन्ह सब पाछे भोजन। एहिबिधि करि पूरन गिरि पूजन॥

सबके उपरान्त फिर नन्दरायजी ने भोजन किया, इस प्रकार गिरिराज का पूजन करके,

दोहा- **नंद हरषि सबन्हौं सँग कीन्ह सुमंगल गान।**
तदुप फिरे निज निज भवन करत उछाह बखान॥११॥

फिर नन्दजी ने प्रसन्नतापूर्वक सबके साथ सुन्दर मङ्गलगान किया, तदुपरान्त उत्सव की सफलता पर चर्चा करते हुए वे सब अपने-अपने घर लौट आए।

चौ.- **तेहिं दिनु बिगत आजु लगि राऊ। गोवरधन पूजत सब काऊँ॥**
गोवरधन पूजहि जे कोई। हरिपद सकुल लहहिं नर सोई॥

हे परीक्षित! उस दिन से आज तक सब कोई गोवर्धनपूजा करते हैं। जो भी मनुष्य गोवर्धनपूजा करता है, वह अपने कुल सहित भगवान के परमपद को प्राप्त करता है।

मिलेहुँ न जब इन्द्रहि निज भागा। सभा सुरन्हँ अस पूछन लागा॥
ऐहिं बरिस केहि कारन पाई। ब्रज तें मम पूजा नहिं आई॥

इधर जब इन्द्र को अपना भाग नहीं मिला तब वह सभा में देवताओं से पूछने लगा कि इस वर्ष ऐसा क्या कारण हुआ कि व्रज से मेरी पूजा नहीं आई?

कहा सुरन्हँ तब सुनहुँ पुरन्दर। ब्रज पूजेहुं तव बिमुख महीधर॥
कृष्न नाउँ एक बालक तहवाँ। गोवरधन अर्चन जेहिं कहवा॥

तब देवताओं ने कहा कि हे पुरन्दर! व्रज ने तुम्हें छोड़कर किसी पर्वत की पूजा की है। वहाँ कृष्ण नाम का एक बालक है, जिसने गोवर्धन की पूजा विधि बताई थी।

कढ़त तोहि पय माखि समाना। तेन्ह तोर मखभाग जुड़ाना॥
सक्र ऐहि गनि निज अपमाना। तड़कि लाग कहि परम रिसाना॥

तुम्हें दूध में पड़ी मक्खी के समान निकाल फेंककर उसी ने तुम्हारा यज्ञभाग भी पा लिया है। श्रीकृष्ण के इस कर्म को अपना अपमान समझकर इन्द्र अत्यन्त क्रुद्ध हो चिल्ला उठा।

मोर कृपा ब्रज रह निधि छाई। तें सठ जान निजउ प्रभुताई॥
अजगत दारिद दारुन पाई। मिटहि हृदय अहमिति जे छाई॥

मेरी ही कृपा से व्रज में सदैव समृद्धि रहती है और वे मूर्ख इसे अपनी महिमा समझते हैं। उनके हृदय में जो अभिमान भरा है, वह आज के उपरान्त भयङ्कर द्ररिद्रता से मिट जायेगा।

दोहा- **मिलत गाँठ लघु हरदि कइ मूषक भा पंसारि।**
मम रिस ब्रज अहि कर तुरत दैइहि मद बिष झारि॥१२॥

हल्दी की छोटी ढेली मिलते ही चूहा भी पंसारी हो गया है, किन्तु अब मेरा क्रोध तुरन्त ही व्रजरूपी सर्प का अभिमानरूपी विष हर लेगा।

चौ.- एहिबिधि दरप करत सुरराई। कहा प्रलय मेघन्हँ पहि जाई॥
साँवरतक तुम बारिदराई। करहु दुरंत बृष्टि ब्रज जाई॥

इस प्रकार दर्प करते हुए देवराज इन्द्र ने प्रलयकालीन मेघों के पास जाकर कहा कि हे साँवर्तक! तुम समस्त मेघों के स्वामी हो, अतः तुम जाकर व्रजमण्डल पर भयङ्कर वृष्टि करो।

भूपति प्रलय बरष जे नीरा। चले ब्रजहुँ सो मेघ गभीरा॥
उमगि धूम सम बारिद चंचल। उपजे ब्रजहि छितिज कर अंचल॥

हे परीक्षित! जो प्रलयकाल में ही वर्षा किया करते थे, वे भयङ्कर मेघ व्रजमण्डल पर बरसने चले। फिर धुएँ के समान उमड़ते हुए, वे चञ्चल मेघ व्रज के छितिज पटल पर प्रकट हो गए।

ग्रसेउँ सबेग गगन ससि धाई। अट्टहास कर तम असिताई॥
मरुत कोप गर्जत बन गाँऊ। सर सर फर फर नादत राऊ॥

उन्होंने बड़े वेग से दौड़कर आकाशरूपी चन्द्रमा को निगल लिया, जिससे घोर अन्धकार छा गया। हे राजन! व्रज के गाँवों और वनों में वायु का कोप सर-सर, फर-फर के शब्द से गरज रहा है।

जमुनहिं नीर चीर प्रति तारा। छपछपात उठि गह घन हारा॥
हियहि द्वंद सम घुर्मित होई। भँवर धीर तरनिहिं लै गोई॥

यमुना के जलरूपी वस्त्र का तरङ्गरूपी प्रत्येक तार छपछपाता हुआ उठकर आकाशस्थ मेघों को छू रहा है। यमुनाजल में पड़नेवाले मन के द्वन्द्वों के से भँवर धैर्यरूपी नौका को डुबो लेते हैं।

उमगि तंरगाघात कठोरा। त्राहि त्राहि कर तट चहुँ ओरा॥
नभ बारिद दारुन उनमादा। उपजावत छिति हृदय बिषादा॥

उमड़ती तरङ्गों का कठोर आघात नदी के तटों पर चारों ओर त्राहि-त्राहि मचा रहा है। आकाश में स्थित, जलयुक्त मेघों का भयानक उन्माद, पृथ्वी के मन में विषाद उत्पन्न कर रहा है।

चक्रवात चर सरित भँवर सा। तृन किसलयहु जासु उर बिलसा॥
पवन भीम गर्जन भुज बाढ़ी। भवन बिटप बहु दीन्ह उखाड़ी॥

नदी की भँवरों के समान चक्रीयगति से प्रचण्ड वायु बह रही है, जिसमें घास और पत्ते भी उड़ रहे हैं। वायु ने भयानक गर्जनरूपी भुजा बढ़ाकर बहुत-से भवनों व वृत्तों को भी ढहा दिया।

जलधर पहिरि सक्र मद चीरा। गर्जत जनु बरतोरहुँ पीरा॥
इहिबिधि घनन्हि लागि जलधारा। जनु झहरहि करि सुंड अपारा॥

इन्द्र के अहं का वस्त्र ओढ़े मेघ ऐसे गरज रहे हैं, मानों बालतोड़ की कठोर पीड़ा गहरा रही हो। इस प्रकार मेघों से जल की धाराएँ बरसनें लगी, मानों अनेक गजसूँड़ें लहरा रही हों।

नभ ते महि लौ होत उजारा। उमगति कबहुँ सघन तम धारा॥
भूधर सिखर सरिस अति भारी। उपल खंड बरषत ब्रज धारी॥

(कभी) आकाश से पृथ्वी तक सघन प्रकाश होता है और कभी अन्धकार की सघन धारा उमड़ पड़ती है। व्रजभूमि पर पर्वत शिखरों के समान बड़े भारी उपलखण्ड बरस रहे हैं।

छन्द- ब्रज धारि प्रस्तर बरष कोटिक बारि धारा गिरि दले।
धावत प्रचंड अखंड मारुत निरखि दिग्गज कलमले॥
पादप ढहहिं जहँ तहँ सदन सँग तड़ित मेघ दमंकही।
नरभूप कुलिसाघात रव करि प्रलय बरषत ब्रज मही॥

व्रज की भूमि पर करोड़ों ओले गिर रहे हैं और जल की मोटी-मोटी धाराओं ने पर्वतों को पीड़ित कर दिया। प्रचण्ड वेग से निरन्तर बहती हुई वायु से दिशाओं के हाथी व्याकुल हो गए। भवनों के साथ जहाँ-तहाँ वृक्ष गिर रहे हैं और बादलों में बिजली बार-बार चमक रही है। हे परीक्षित! इस प्रकार वज्रपात की भीषण ध्वनि के साथ व्रज पर साक्षात् प्रलय बरसने लगा।

दोहा- कम्पित भा तिहुँलोक नृप लखि तांडव घन घोर।
ब्रज मघवहि एहिबिधि परेउँ टूटि कोप चहुँ ओर॥१३॥

हे परीक्षित! मेघों का ऐसा भयङ्कर ताण्डव देखकर तीनों लोक काँप उठे। इस प्रकार सम्पूर्ण व्रजमण्डल पर चारों ओर मेघराज इन्द्र का कोप टूट पड़ा।

चौ.- कबहुँ बरष घन मूसर धारा। जनु चह बसुधहि हृदय बिदारा॥
बरष कबहुँ लघु मुकुतन्हि कोषा। हृदय राखि अति दारुन रोषा॥

वे बादल कभी मूसल के समान मोटी-मोटी धाराएँ बरसाते थे, मानों पृथ्वी की छाती ही चीर देना चाहते हों और कभी हृदय में भयानक क्रोध करके, जल की छोटी-छोटी बूँदें बरसाते थे।

सोइ मुकुतन्हँ कबहूँ पवमाना। निज प्रभाउँ प्रगटात महाना॥
प्रबल बेग तें गहि महि पारा। कबहुँ उड़ावत आपन मारा॥

उन्हीं बूँदों को अपना प्रभाव दिखाते हुए वायु उड़ाकर कभी बड़े वेग से भूमि पर पटकता और कभी अपनी चोट से दूर उड़ा देता था।

कबहुँ बरष घन महि निअराई। बरष कबहु अनंत चढ़ि धाई॥
बेग पवन अरु बरषहि केरा। पद उखारि दुख देत घनेरा॥

वे बादल कभी पृथ्वी के अत्यन्त निकट आकर बरसते, तो कभी दौड़कर आकाश पर चढ़कर वहाँ से वर्षा करते हैं। पवन और वर्षा का प्रचण्ड वेग पैर उखाड़कर महान दुःख देता है।

नर अरु तिय गरबरहि जहँ तहाँ। खग मृग जगत न जान कित रहा॥
कह हरि दारुन बिपलव पाई। लखु बल सुनसीर जड़ताई॥

स्त्रीपुरुष जहाँ-तहाँ लुढ़क रहे हैं। पक्षियों और पशुओं के समूह कहाँ थे; यह किसी को ज्ञात नहीं। इस भयङ्कर विप्लव पर श्रीकृष्ण ने दाऊ से कहा- हे भाई! इन्द्र की मूर्खता तो देखो।

तेहिं न अज निज पूजन पावा। सठ खिसाइ ब्रज पर चढ़ि आवा॥
अब कहु का यह लच्छन सोई। बिबुध पुजात सुआश्रय जोई॥

आज जब उसे उसकी पूजा नहीं मिली, तो खिसियाकर वह मूर्ख व्रज पर चढ़ आया है। अब तुम्हीं बताओ, क्या ये वे ही लक्षण हैं, जिनके उत्तम आश्रय पर स्थित देवता पूजे जाते हैं?

दम्भिन्ह कर लच्छन अस भाई। मदतम देत बिबेक बिहाई॥

पद कर दम्भ तासु हिय बसा। जेहिं तें सठ सुर धरम तें खसा॥

हे भाई! दम्भियों की तो पहचान ही है कि वे अहङ्काररूपी अन्धकार में विवेकरूपी नेत्र खो देते हैं। उसके मन में पद का अभिमान बस गया है, जिससे वह मूर्ख देवत्व से गिर चुका है।

नृप हित बेद धरम अस कहा। प्रजहि केर सुख आवहि जहाँ॥
तहँ तजि पद मत ममता माना। प्रजहि समरपिअ जीवनु प्राना॥

राजा के लिये वेदों ने यह धर्म कहा है कि जहाँ प्रजा के सुख की बात आए, वहाँ राजा अपने पद, मत, मोह और अभिमान को त्यागकर प्रजा को जीवन और प्राण अर्पित कर दे।

राजधरम एहि बुधन्हँ बखाना। ऐसेहि नृप पूजिअहि जहाना॥
जदपि सक्र प्रिय अनुचर मोरा। मेटब तदपि तासु मद घोरा॥

प्रबुद्धजनों ने इसे ही राजधर्म कहा है और इसका पालन करनेवाले राजा ही संसार में पूजे जाते हैं। यद्यपि इन्द्र मेरा प्रिय सेवक है, फिर भी मैं उसके भयङ्कर अभिमान को हर लूँगा।

नाच पिसाच निरखि इत भारी। भए गोप सब हृदय दुखारी॥
तब सभीत सब गोप प्रधाना। आए नंद सदन समुहाना॥

इधर मेघों का महान पैशाचिक नृत्य देखकर समस्त गोपसमुदाय अपने हृदय में दुःखी हो गया। तब भयभीत हुए समस्त गोप-मुखिया नन्दरायजी के भवन के सन्मुख आए।

संग तासु ब्रज कर नर नारी। हाहाकार करत अति भारी॥
लखि उन्ह बल हरि बाहेर आए। तब सब मिलि अस कह अकुलाए॥

हाहाकार करते हुए व्रज के स्त्रीपुरुष उनके साथ ही थे। उन्हें आया हुआ देखकर श्रीकृष्ण और बलदाऊ बाहर आ गए, तब व्याकुल हुए उन सबने मिलकर उनसे इस प्रकार कहा-

दोहा- **सुनासीर रिस स्याम अस बाढ़ेउँ तजि मरजाद।**
सोउ अब ब्रजहि मिटावन करत गगन घननाद॥१४॥

हे घनश्याम! इन्द्र का क्रोध इस प्रकार बढ़ गया है कि उसने अपनी सीमा त्याग दी है और व्रज को मिटा देने के लिये अब वही आकाश में भयङ्कर गर्जन कर रहा है।

चौ.- **हम तुम्हार मत तेहिं मख त्यागा। तासुहि अस दारुन फल जागा॥**
मघवहि कर रिस घोर अपारा। कहु किमि ब्रज कर होई उबारा॥

हमने तुम्हारे ही कहने से उसका यज्ञ त्याग दिया, जिसका यह भयङ्कर परिणाम उत्पन्न हुआ है। इन्द्र का क्रोध बड़ा भयानक और अंतहीन है। कहो! अब इससे व्रज का उद्धार कैसे होगा?

जब गौ सँग सब ग्वाल समाजा। देखेउँ दारुन दुखि ब्रजराजा॥
बिहँसि कहत जग संकट मोचन। सुनु यह बिषय अधिक जनि सोचन॥

गायों के साथ समस्त गोपों को श्रीकृष्ण ने जब अत्यधिक व्याकुल देखा, तब संसारभर के सङ्कट हरनेंवाले भगवान ने हँसकर कहा- हे भाइयों! यह समस्या इतनी अधिक सोचनीय नहीं है।

जनि डरपहुँ हिय राखहुँ आसा। चलहुँ बेगि सब गिरिवर पासा॥
तेइ उबारिहि जेहिं गहि पूजा। उत्तम होइ उपाय न दूजा॥

तुम भयभीत न होओ, मन में आशा रखो और सब शीघ्र गिरिराज के पास चलो। जिन्होंने हमारी पूजा ग्रहण की है, अब वे ही हमारा उद्धार करेंगे, कोई दूसरा उपाय उत्तम न होगा।

अवसि करिहि तें ब्रज कर त्राना। सोइ छराव सुरपति अभिमाना॥
अस सुनि सकल ग्वाल अति धाए। गौ समूह सँग गिरि सन आए॥

वे व्रज की रक्षा अवश्य करेंगे और वे ही देवराज का अभिमान भी छुड़ायेंगे। ऐसा सुनकर समस्त ग्वाले अपनी गायों सहित दौड़कर बड़ी शीघ्रता से गोवर्धन पर्वत के सन्मुख आ गए।

नभ बारिद बहुँ जतन जगावत। जिन्हँ लखि जगपालक मुसुकावत॥

इधर आकाश में मेघ बहुत-से प्रयत्न करते हैं, जिन्हें देखकर जगत्पालक प्रभु मुस्कुराते हैं।

छन्द– मुसुकात ब्रजपति लखेहुँ मेघन्हँ ढीठपनु भय ब्रज नरा।
भूधर उपारि सहज दछिन भुज छिगनि अँगुरिहि नख धरा॥
कौतुक निरखि सब ग्वाल चकित हरष भरे गुन गावही।
भए दंग सुरपति गति निरखि उन्ह सम्भु बिधि मुसुकावही॥

श्रीकृष्ण मुस्कुराते हुए मेघों की ढिठाई और व्रजवासियों का भय देख रहे हैं। फिर उन्होंने गिरिराज को ही उखाड़ लिया और बड़ी सहजता से बाएँ हाथ की सबसे छोटी अँगुली के नख पर धर लिया। यह कौतुक देख समस्त ग्वालसमूह हर्षित हो उठा और उनका यश गाने लगा। कौतुक पर इन्द्र दंग रह गए, उनकी यह दशा देख शिवजी और ब्रह्माजी मुस्कुराने लगे।

सो.– जस गज जलज उपारि जिमि सिसु अम्बर छत्र धरे।
कर धरि गिरि अति भारि सोइ सोभा लहँ मुरलिधर॥१॥

जैसे कोई बालक वस्त्रनिर्मित छाता धारण करता है, जैसे कोई हाथी कमलपुष्प उखाड़ लेता, वैसे ही महाभारयुक्त गोवर्धन को हाथ पर उठाकर मुरलीधर श्रीकृष्ण शोभा को प्राप्त हुए।

चौ.– गिरि अरु धेनुन्हँ कृपउँ खेत यह। इहँ न चलिहि केउ सुरप दुराग्रह॥
कहत सबन्हि अति धीर बँधाई। गिरिधर गिरि तर लीन्ह बोलाई॥

यह क्षेत्र गोवर्धन और गौ माता की कृपा का क्षेत्र है, यहाँ किसी इन्द्र का दुराग्रह नहीं चलेगा; ऐसा कहकर, दृढ़ धैर्य बँधाकर उन गिरिधर ने सबको पर्वत की छाया में बुला लिया।

सुनत ग्वाल गोधन निज हाकी। तुरत सरन भूधर कइ ताकी॥
नर अरु नारि सहित ब्रजनाहा। तदुप हरषि आए गिरि छाहा॥

यह सुनते-ही ग्वालों ने अपना गौधन हाँककर शीघ्र-ही गिरिराज गोवर्धन की शरण प्राप्त की। तदुपरान्त व्रज के समस्त स्त्रीपुरुषों सहित प्रसन्न हो नन्दजी भी छाया में आ गए।

खग मृग सहित जीव जे आना। भयगत भए तहाँ लहि थाना॥
प्रान उबारि सबन्हि अघघाती। ठाढ़ मुदित घन दरप निपाती॥

पशु-पक्षियों सहित जो अन्य जीव थे, वे भी स्थान पाकर भयमुक्त हो गए। इस प्रकार सङ्कट से सबके प्राण उबारकर अघनाशक श्रीकृष्ण मेघों का गर्व चूर्ण करके, आनन्दपूर्वक खड़े हैं।

निरखि कान्हँ कृत रोहिनि जसुदा। लेत भई बलाय हिय प्रमुदा॥
कह बिनोदि कछु छिन गिरि धारी। सखा लाग अह गिरि अति भारी॥

कन्हैया के कौतुक पर मैय्या यशोदा और रोहिणी मन में आनन्दित हो बलैया ले रही हैं। कुछ क्षण पर्वत को धरकर नटखट ने कहा- हे सखाओं! लगता है, पर्वत अत्यन्त भारी है।

निज निज बेंत लगावहुँ भाई। बटहि कछुक गिरि कइ गरुआई॥
सुनत लकुट सब सखा निकारी। अरएहुँ गिरितल कहि बल भारी॥

अतः हे भाई! तुम अपनी लकड़ियाँ पर्वत से लगा दो, ताकि भार कुछ बँट जाय। यह सुन सबने अपनी-अपनी लकड़ियाँ निकालकर अपना महान बल कहते हुए पर्वत के नीचे अड़ा दी।

पुनि कह हहरहुँ नैकु कन्हाई। कहहु कष्ट हम होइ सहाई॥
जौ छारहि हम लकुट हमारी। परिहि देखतहि परबत भारी॥

फिर कहने लगे- तुम तनिक भी घबराओ मत और अपना कष्ट हमें कहो, हम सहायता करेंगे। यदि हम लकड़ियाँ हटा लें तो देखते-ही देखते यह भारी पर्वत गिर पड़ेगा।

सुनि अस बच कोउ कहा बुझाई। भूलि न करु सख अस जड़ताई॥
एहि अकेल बहि सक न कन्हाई। जथासक्ति सब करहु सहाई॥

यह सुनकर किसी ने समझाकर कहा- हे सखा! भूलकर भी ऐसी मूर्खता न करना। कन्हैया अकेले इस पर्वत को नहीं उठा सकता। अतः शक्ति के अनुसार सब उसकी सहायता करो।

सो.- **संतत हँस हरि राम सुनि अस रोकत हास निज।**
निज सिसु चरित ललाम मनहुँ तात लखि मोद लहँ॥१५॥

उनके ऐसे वचन सुनकर अपनी हँसी रोकते हुए बलदाऊ और श्रीकृष्ण निरन्तर हँस रहे हैं। मानों पिता अपने पुत्र की सुन्दर बाललीलाएँ देखकर आनन्द पा रहा हो।

चौ.- **गिरि तर आवत लखि जलधारा। ग्वालन्हँ मन भा सोच अपारा॥**
तब हरि सैन चक्र बिकराला। सोषि लाग सो जल निज ज्वाला॥

उस समय पर्वत के नीचे आती जलधाराओं को देखकर गोपो को अत्यधिक चिन्ता होने लगी। तब श्रीहरि के सङ्केत पर विकराल सुदर्शन चक्र अपने तेज से उस जल को जलाने लगा।

प्रगटे सेष तहाँ तिन्ह संगा। ढापेहु गिरि बिसाल निज अंगा॥
गिरि छाए जल रोकत कैसे। तट महि रोकत उदधिहि जैसे॥

उसके साथ ही शेषजी वहाँ प्रकट हुए और उन्होंने पर्वत को अपने विशाल फणों से ढँक लिया। पर्वत पर छाकर वे जल को कैसे रोकने लगे; जैसे तट की भूमि समुद्र को रोके रखती है।

परिछित हरि समरथ सब काजा। किन्तु देइ जसु भगत समाजा॥
बरसत गरजि गरजि घन नीरा। दहत सुदर्सन ज्वाल गभीरा॥

हे राजन! श्रीहरि सर्वसमर्थ हैं, किन्तु वे भक्तों के समुदाय को ही यश प्रदान करते हैं। बादल गरज-गरज कर जल बरसा रहे हैं, किन्तु सुदर्शन अपनी भयङ्कर ज्वाला से उसे जला देता है।

चक्र सोह कस सोषत धारा। घटज पिबहि जस जलधि अपारा॥
जतन सघन घन कर गिरि पासा। मुदित गोप जनु कर उपहासा॥

जल सुखाता हुआ चक्र कैसे शोभा दे रहा है; जैसे महर्षि अगस्त्य अपार समुद्र को पी रहे हों। पर्वत के निकट हो मेघ अत्यन्त बरस रहे हैं और आनन्दित गोप जैसे उपहास कर रहे हैं।

दोहा- **गोप परसपर कहइ तब लखु सुरपतिहि ढिठाइ।**
जेहिं सिरजा तेहिं ताहिहि मूढ़प चहत नसाइ॥१६॥

तब समस्त ग्वाले कहने लगे कि देवराज इन्द्र की ढीठता तो देखो! जिन परमात्मा ने उसकी रचना की है, वह मूर्खाधिपति उसे ही नष्ट करना चाहता है।

चौ.- **पै सस करइ कि सिंघ बिगारा। मसक लहहि का जलनिधि पारा॥**
की कपि निज मुख मयन लजावहि। कनक कि सरसिज समता पावहिं॥

किन्तु क्या शशक सिंह का कुछ बिगाड़ सकता है? क्या मच्छर समुद्र पार कर सकता है? क्या बन्दर अपने मुख से कामदेव को लजा सकता है और क्या धतूरा कमल की समता पा सकता है?

नाथ गनै न चरहि अधमाई। एहि तैं हरि सह तिन्ह जड़ताई॥
सेवक भ्रमहि सदा मद माहीं। प्रभु उबार तिन्ह जतन जुड़ाही॥

स्वामी सेवक की नीचता पर ध्यान नहीं देते हैं, इसी कारण श्रीकृष्ण इन्द्र की मूर्खता को सह रहे हैं। भ्रमवश सेवक सदैव भटकता रहता है और भगवान प्रयत्न करके, उसे उबार लेते हैं।

तत्वोत्कृष्ट लहँ न क्रिय जैसे। ठाढ़े सचुप देखु हरि तैसे॥
ऐतनेहुँ एक कर बाँसुरि काढ़ी। लगे बजावन तिरभँग ठाढ़ी॥

जैसे उत्कृष्ट तत्व क्रिया नहीं करते, देखो कन्हैया भी वैसे ही शान्तचित्त खड़े हैं। इतने में ही श्रीहरि ने एक हाथ से मुरली निकाल ली और त्रिभङ्गी मुद्रा में खड़े होकर उसे बजाने लगे।

हरिहि अपर भुज गिरि रुच कैसे। मनसिज ठाढ़ मेरु धरि जैसे॥
बरषहि घन सैलोपर घोरा। बैठे गोप स्याम चहुँ ओरा॥

कन्हैया की दूसरी भुजा पर पर्वत कैसे शोभित है; जैसे सुमेरू को उठाए स्वयं कामदेव खड़े हैं। मेघ गिरिराज पर प्रचण्ड वर्षा कर रहे हैं और सब गोप कन्हैया को घेरे चारों ओर बैठे हैं।

दोहा- **गिरि तर बैठे होत सब हरि मुख निरखि सुखारि।**
नर्तहि ग्वालिनि मुरलि धुन भय अरु चिंत बिसारि॥१७॥

पर्वत के नीचे बैठे समस्त गोप-गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण का मुख देख-देखकर परम सुखी हो रहे हैं। समस्त चिन्ता और भय को त्यागकर गोपियाँ मुरली की धुन पर नृत्य कर रही हैं।

चौ.- **छबि सुबास मुख बिगसित कंजा। गिरि उठाइ सुरपति मद गंजा॥**
बेनुनाद सुनि तिहुँपुर मोहा। छज्ज सरिस गिरि भुज पर सोहा॥

छविरूपी सुगन्ध से पूर्ण उनका मुख खिले हुए कमल के समान है। पर्वत को उठाकर उन्होंने देवराज का मान भङ्ग कर दिया। उनकी मुरली की ध्वनि सुनकर तीनों लोक मुग्ध हो उठे हैं और गिरिराज उनकी भुजा पर किसी छत्र के समान शोभा पा रहा है।

नव घन सम तन सुन्दर स्यामा। जहाँ पीत दामिनि ललामा॥
सिखि सिखंड जनु सुरपति धनुआ। हरहि कंठ कौस्तुभ जन मनुआ॥

नवीन मेघ के समान सुन्दर श्याम शरीर है, जिस पर बिजली की सी कान्तियुक्त पीताम्बर सुशोभित है। शीश पर धारण किया गया मयूरपङ्खयुक्त मुकुट जैसे देवराज इन्द्र का धनुष हो। उनके कण्ठ में धारण की हुई कौस्तुभ मणि भक्तों के मन को हर रही थी।

उर द्विजचरन सोह बनमाला। गोरोचन कर तिलक सुभाला॥
गात बिचित्रित चंदन सोहा। मन्द हास चह कबिमन मोहा॥

छाती पर ब्राह्मणश्रेष्ठ भृगुजी के चरणचिह्न और वनमाला सुशोभित है। ललाट पर गोरोचन का तिलक लगा है। अङ्गों पर पत्रावली के रूप में प्रयोग किया गया चन्दन सुशोभित है और उनकी मधुर मुस्कान कवियों के मन को हर लेना चाहती है।

चारु चपल चख चरचित काजल। दुहुँ कपोल जनु अमिअ सर अमल॥
श्रवन सुचपल झलक कस कुंडल। जनु कर मकर समर सर मंडल॥

उनके सुन्दर व चञ्चल नेत्रों में काजल लगा है और कपोलों पर पड़नेवाले भँवर तो मानों अमृत के निर्मल सरोवर ही हैं। उनके कानों में अत्यधिक चञ्चल कुण्डल किस प्रकार हिल रहे हैं, मानों सरोवर में दो मगरमच्छ युद्ध कर रहे हों।

दोहा- **जमुना तीर कदम्ब तर करइ जे सख सँग खेल।**
निज चर जड़पनु लखि उन्हहिं कर उठान गुर सैल॥१८॥

यमुना के तट पर कदम्बवृक्ष की छाया में जो अपने सखाओं के साथ खेला करते थे, उन्हीं भगवान ने अपने दास इन्द्र की जड़ता देखकर हाथों में विशाल पर्वत उठा लिया।

चौ.- **बेनु बजावत हरि मृदु ताना। धेनु गोप सुनि अति सुखमाना॥**
जननि तरकि कन्हँ भुज मृदुताई। कहा कंत सन अति अकुलाई॥

श्रीकृष्ण मधुरध्वनि से मुरली बजा रहे हैं, जिसे सुनकर गाएँ व गोप अत्यन्त सुखी हो रहे हैं। कान्हा की भुजाओं की कोमलता अनुमानकर, अत्यन्त व्याकुल हुई मैय्या ने नन्दजी से कहा-

हम सिसु बच जे कीन्ह भरोसा। इन्द्र कीन्ह एहि कारन रोषा॥
अब सुत ब्रज हित गिरि भुज धारा। किन्तु सहहि कबु लौ तिन्ह भारा॥

हमने एक बालक की बात का भरोषा कर लिया, इसीलिये इन्द्र क्रुद्ध हुए है। अब मेरे पुत्र ने व्रज की रक्षा के लिये पर्वत को भुजा पर उठा लिया है, किन्तु वह कब तक उसका भार सहेगा?

अस कहि सुमिरि सैलसुति माता। जाचहि जननि सुतहि कुसलाता॥
सुरपति देखेसि घनन्हि हतासा। मद प्रेरित आवा गिरि पासा॥

ऐसा कहकर शैलपुत्री का स्मरण करके, मैय्या उनसे पुत्र की कुशल माँगने लगी। जब इन्द्र ने बादलों को निराश हुआ देखा, तब वह स्वयं अभिमानवश गिरिराज के समीप आया।

कहा बहुरि बारिदन्हँ रिसाई। सक्ति प्रजंत करहु बरषाई॥
सुनि घन भरि घमंड नभ छाए। गरजि प्रचंड लाग बरिषाए॥

फिर उसने मेघों से क्रुद्ध हो कहा कि तुम सम्पूर्ण शक्ति लगाकर वर्षा करो। यह सुनकर मेघ घमण्ड में भरकर आकाश में छा गए और भयङ्कर गर्जना करके पुनः अपार जल बरसाने लगे।

दस दिसि दामिनि दमकहि भारी। दिनु निसि तैं भा अति अँधकारी॥
गरजत मेह जूझ बहुभाँती। पै न सके हरि पृहा निपाती॥

दसों दिशाओं में भयङ्कर बिजली चमक रही है, जिससे दिन रात्रि से भी अधिक अन्धकारमय हो गया। गरजते मेघ अनेक प्रकार सङ्घर्ष कर रहे हैं, किन्तु वे श्रीकृष्ण की इच्छा न बदल सके।

प्रलय देखि डरपहि तिहुँलोका। हरि रच्छित सब ग्वाल असोका॥

प्रचण्ड वर्षा देख त्रिलोक भयभीत हो उठा, किन्तु श्रीकृष्णरक्षित समस्त गोप शोक रहित हैं।

दोहा- **उपलपात दारुन सहित बरस घात करि बूँद।**
बह पवमान प्रचंड घन बरषत जल करि सूँद॥१९॥

भीषण ओले गिर रहे हैं, साथ ही आघात करती हुई जल की मोटी-मोटी बूँदें गिर रही है, प्रचण्ड मारुत चल रहा है और मेघसमूह हाथी की सूँड़ के समान मोटी जलधाराएँ बरसा रहे हैं।

चौ.- मरुत बेग घन धाव प्रचंडा। कड़कति दामिनि दमक अखंडा॥
एहिबिधि सप्त दिवस अरु राता। भइ ब्रज प्रलय तूल बरिसाता॥

वे बादल पवन के समान प्रचण्ड गति से दौड़ रहे हैं और कड़कड़ाती हुई बिजली निरन्तर चमक रही है। इस प्रकार व्रजमण्डल पर सात दिनों और सात रातों तक प्रलयतुल्य वर्षा हुई।

बेद पुरान सहित द्विज भाषा। एहिबिच सबनि सुना इतिहासा॥
जूझि सतत जब भै जल रीते। मेह समूह आस तजि सीते॥

इसी अवधि में सब स्त्रीपुरुषों ने विप्रों द्वारा वेद, पुराण और इतिहास के आख्यान सुने। इधर निरन्तर वर्षा करते-करते जब मेघों का कोष रिक्त हो गया, तब निराश हो वे शिथिल हो गए।

तेहिं सवँ सबन्हि देखि जयहीना। बोला सक्र प्रमत्त मलीना॥
सीखि माय लघु ग्वालपोत यह। समता मुअ सुरपतिहि किए चह॥

उस समय सबको पराजित हुआ देखकर मलीनमन, मदोन्मत्त इन्द्र बोला! कहीं से थोड़ी-सी माया सीखकर ग्वाले का यह बच्चा मुझ देवताओं के स्वामी की बराबरी करना चाहता है।

किन्तु बिदित नहिं एहि बिमूढ़हि। रिपुता करि मुअ तें कोउ जिअँ नहिं॥
अज निज कुलिस प्रभाउ देखावौं। अखिल ब्रजहि जमलोक पठावौं॥

किन्तु यह मन्दबुद्धि नहीं जानता कि मुझसे शत्रुता करके, कोई भी जीवित नहीं बच सकता। इसलिये आज मैं अपने वज्र का प्रभाव दिखाऊँगा और सम्पूर्ण व्रज ही को यमलोक भेज दूँगा।

दोहा- अस कहि सुरपति दरप करि काढ़ि कुलिस कर लीन्ह।
बिहँसि स्याम भुज तासु सोइ असतम्भित करि दीन्ह॥२०॥

ऐसा कहकर इन्द्र ने अहङ्कार में भरकर अपने हाथ में वज्र उठा लिया, यह देखकर मुस्कुराकर भगवान श्रीकृष्ण ने उसकी वह भुजा ही स्तम्भित कर दी।

चौ.- लखि तेहिं चिंत त्रास भइ भारी। लज्जित ठाढ़ न सकेउँ पुकारी॥
पुनि गज भज जिमि हरि भय पाई। घनन्हि संग तिमि चला पराई॥

यह देखकर इन्द्र को बड़ा भय और चिन्ता हुई। वह चुपचाप खड़ा रहा, पुकार भी न मचा सका। फिर जैसे सिंह के भय से हाथी भाग छूटता है, ठीक वैसे ही वह मेघों के साथ भाग छूटा।

छारि रहित नभ सोभेउ कैसे। तनु जीवातम सास्वत जैसे॥
जल अथाह मंदानेउँ ऐसे। नर स्वारथ घट कानन जैसे॥

उस समय मेघरहित आकाश कैसे शोभा देने लगा; जैसे शरीर में शाश्वत जीवात्मा। अथाह जल धीरे-धीरे इस प्रकार घटनें लगा, जैसे मनुष्य के स्वार्थ के कारण जंगल घटते हैं।

महि देखाइ लग कछुकहिं काला। जथा संघरष कर फलु आला॥
नवजीवन उन्मेष जुड़ाई। रबि छावा महि मरिचि सहाई॥

फिर कुछ-ही समय में भूमि दिखाई पड़ने लगी, जैसे किया गया सङ्घर्ष, अद्भुत परिणाम प्रकट करता है। नवीन जीवन का अङ्कुर लिये, सूर्य किरणों की सहायता से भूमि पर छा गया।

बीतेहुँ पवन बेग अति भारी। मद ढर जिमि नर दुरगति सारी॥
कछुक पंकमय महि बिमलाई। बुधहिं रहहि जस कछु गरुआई॥

प्रचण्ड वायु मन्द पड़ गई, जैसे मनुष्य की दुर्गति कराकर मद स्वयं ही उतर जाता है। कुछ कीचड़युक्त होने पर भी पृथ्वी निर्मल हो गई, जैसे बुद्धिमान पुरुष को भी कुछ अभिमान होता है।

कानन चैनु बेनु बजि लागी। प्रमुदित भै बनचर भय त्यागी॥
नभ भा इहाँ बारिदन्हि रीता। ब्रजबासिन्हँ सब संकट बीता॥

वन में चैन की वंशी बजनें लगी और पशु-पक्षि भय भुलाकर परम आनन्दित हो गए। इधर जैसे ही आकाश बादलों से रहित हो गया, व्रजवासियों का सारा सङ्कट दूर हो गया।

गिरिधर सैन गोप तब पाई। गिरि तर तें सब धेनु रेंगाई॥
भुज बखानि हरि कइ हरषानें। पाछ नारि नर सब बहिराने॥

तब गिरिधर का सङ्केत पाकर ग्वालों ने समस्त गायों को बाहर की ओर हाँक दिया। तत्पश्चात् कन्हैया की भुजाओं के बल का बखान करते हुए, समस्त गोपगोपियाँ भी बाहर आ गए।

तदुप सखन्हँ कहि लाग कन्हाई। क्रम क्रम तुअपि चलहुँ अब भाई॥

तदुपरान्त कन्हैया सखाओं से कहने लगे- हे भाईयों! अब एक-एक करके, तुम भी निकलो।

दोहा- **हम सब गिरि धरि राखिहिं निकसहुँ तुमही स्याम।**
सुनतहि उन्ह के डींग अस बिहँसि लाग सुखधाम॥२१॥

तब ग्वालबालकों ने कहा कि हे कन्हैया! हम सब मिलकर पर्वत को उठा रखेंगे, इसलिये तुम ही निकल जाओ। उनकी इस डींग को सुनते-ही सुख के धाम श्रीकृष्ण हँसनें लगे।

चौ.- **पुनि अत्यल्प भार उन्ह ऊपर। धरेहुँ परे ब्याकुल सब महि पर॥**
लखि बिनोदि हरि सबन्हिं उठाए। हेरि वदनु उन्ह सखा झपाए॥

फिर उन्होंने उन पर पर्वत का अत्यल्प भार डाला, जिससे वे सब व्याकुल हो भूमि पर गिर पड़े। यह देखकर कन्हैया ने सबको उठाया। उनके मुख की ओर देखकर समस्त सखा झेंपनें लगे।

तदुप जतन करि पूरब भाँती। थापि दीन्ह गिरिवर बकघाती॥
गोप प्रधान देखि हरषाई। बल साहस उन्ह लाग सिहाई॥

तदुपरान्त श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को यत्नपूर्वक पहले-सा उसी स्थान पर स्थापित कर दिया। प्रमुख-प्रमुख गोप यह देख हर्षित हो उठे और उनके बल व साहस की सराहना करने लगे।

पुनि श्रमवंत जानि उन्ह ताता। लीन्ह उछंग चाँपि लग गाता॥
रोहिनि सहित धरनिधर पाछे। मिले धरनिधरधर तें आछे॥

फिर थका हुआ जानकर नन्दरायजी ने उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया और उनके अङ्गों को दबानें लगे। तत्पश्चात् माता रोहिणीजी सहित दाऊ उन गिरिधारी से भली-प्रकार मिले।

हेरेहुँ जननि कान्हँ गिरि धरेऊँ। लीन्ह बलाय चिंत निज हरेऊँ॥

तेहिं सवँ कान्हँ सुजसु सब गाई। नर्ति लाग प्रमुदित किलकाई॥

कान्हा ने पर्वत उठाया था, यह सोचकर मैय्या ने उनकी बलैया लेकर अपनी चिन्ता दूर की। उस समय कन्हैया का सुयश गाकर समस्त व्रजवासी परमानन्दित हो किलककर नृत्य करने लगे।

इहाँ गरुअ जब सक्रहिं गरेहूँ। हृदय तेन्ह इहि चिंतहिं भरेहूँ॥
हरि बिनु को समरथ एहिंभाँती। जे दलि मूँग सकहि मम छाती॥

इधर जब इन्द्र का अहङ्कार नष्ट हो गया, तब उसका हृदय इसी चिन्ता से भर गया कि श्रीहरि के अतिरिक्त ऐसा कौन समर्थ है, जो इस प्रकार मेरी छाती पर मूँग दल सके।

दोहा- **को जग गुरतर सैल अस मोरत रिस मम भारि।**
सात दिवस निसि संतत सक आपन भुज धारि॥२२॥

इस संसार में ऐसा कौन है, जो ऐसे विशालतम पर्वत को मेरे प्रचण्ड क्रोध का दमन करते हुए, सात दिनों व सात रातों तक निरन्तर अपनी भुजा पर धारण करके, रख सके।

चौ.- **लाग तें अहहिं सोउ भगवाना। धरा धरेहुँ जेहिं नर परिधाना॥**
अहो दम्भबस मैं मतिमंदा। करि बीतेहुँ अपराध मुकुंदा॥

लगता है वे वही परमेश्वर हैं, जिन्होंने पृथ्वी पर मनुष्य का शरीर धारण किया है। अहो! अहङ्कार के वश होकर मैं मन्दबुद्धि, उन मुकुन्द के प्रति अपराध कर बैठा हूँ।

अस बिचारि सुरपति कर बाँधे। त्राहि त्राहि अस रव मुख साधे॥
धरि गलानि मन माहिं अगाधा। छमा लैन गै निज अपराधा॥

यह विचारकर देवराज ने दोनों हाथ बाँध लिये। फिर 'त्राहिं'-'त्राहिं' इस प्रकार कहते हुए, अपने मन में अगाध ग्लानि लिये,वे अपने अपराध के लिये भगवान के सन्मुख क्षमा माँगनें गए।

तेहिं सवँ उन्ह देखेहुं सुखधामा। ठाढ़े चुप मुख हास ललामा॥
दलि मद प्रिय अनुचर जे कोही। मनहुँ रहे तिन्ह मारग जोही॥

उस समय उन्होंने देखा- सुखधाम श्रीकृष्ण चुपचाप खड़े हैं, उनके मुख पर मनोहारी हास्य व्याप्त है। क्रोधी किन्तु अपने प्रिय सेवक का अहं नष्ट करके, वे मानों उसकी प्रतीक्षा कर रहे हों।

लखि अनुकूल प्रभुहिं हिय हरषी। लागेहुँ पदपंकज उन्ह परसी॥
परत दंड सम चितवत ताहीं। प्रभु उठान तेहिं बाहु बढ़ाहीं॥

भगवान को अनुकूल जानकर मन में हर्षित हो वे उनके चरणकमलों का स्पर्श करने लगे। उसे दण्ड के समान गिरता हुआ देखकर उन्हें उठानें के लिये भगवान ने अपनी भुजा बढ़ाई।

सजल नयन पुनि देखेहुं तेहीं। उर लाएहुं हरि पुलकित देहीं॥
तब कर जोरि वदनु उन्ह हेरी। सक्र कीन्हि अस्तुति प्रभु केरी॥

उनके नेत्रों में जल देखकर भगवान ने पुलकित शरीर से उन्हें उठाया और हृदय से लगा लिया। तब भगवान का मुख निहारते हुए हाथ जोड़कर इन्द्र ने उनकी स्तुति की।

दोहा- **नाथ सुराधिप प्रकृतिपर परमातम सुखखान।**
पूरनकाम परातपर तवहि वास हर ध्यान॥२३॥

हे नाथ! आप देवताओं के स्वामी, प्रकृति से परे और परम सुख की खान हैं। आप पूर्णकाम परात्पर ब्रह्म हैं और आपही शिवजी के ध्यान में बसा करते हैं।

चौ.- जोगि मुनिन्हँ उर मानस हंसा। सहसानन कर तोर प्रसंसा॥
नित तन धर धरनिहिं लखि त्रासा। करिअ पसाउ चरन्हँ मद नासा॥

आप योगियों मुनियों के मनरूपी सरोवर के हंश हैं, शेषजी आपकी प्रशंसा किया करते हैं। आप पृथ्वी का दुःख देख सदैव अवतार लेते हैं। हे दासों के मदहर्ता! मुझ पर कृपा कीजिये।

जय करुनानिधि जसुमति नंदन। भेषज सौं भव रोग निकंदन॥

हे करुणानिधि! हे यशोदानन्दन! आपकी जय हो। भवरोग के नाश के लिये आप औषध हैं।

छन्द- श्रुति धेनु धरम द्विज हितकारी। परिपूरन ब्रह्म बिपदहारी॥
मर्दे तुम निज जन त्रास हरन। मधु कैटभ रावनु कुम्भकरन॥

हे वेदों, गौ, धर्म और विप्रों का हित करनेवाले! हे विपत्तिहर्ता परिपूर्णतम् ब्रह्म! आपनें अपने भक्तों का दुःख हरनें के लिये मधुकैटभ और रावण-कुम्भकर्ण का वध किया था।

उपजे पुनि सोउ कृपालु हरि। भए धेनुक कंस बकादि अरि॥
तव माय बिमोहित जे प्रतिछन। सो दास तोर मैं श्रीभगवन॥

वे कृपालु ही पुनः प्रकट होकर धेनुक, कंस और बकासुर आदि दैत्यों के शत्रु हुए हैं। जो प्रतिक्षण आप-ही की माया से विमोहित रहता है, हे भगवन्! मैं आपका वही दास इन्द्र हूँ।

जय बालबपुष गोवरधनधर। बन्दौं पद कंज धरे अंतर॥
ब्रह्मंड अखिल प्रभु पंकजमय। भुजदंड पराक्रम अखय अजय॥

बालरूप से गिरि धारण करनेवाले प्रभु आपकी जय हो। आपके चरणकमल हृदय में धरकर मैं उनकी वन्दना करता हूँ। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आपके चरणों से व्याप्त है; आपकी भुजाओं का पराक्रम अक्षय और अजेय हैं।

मन्मथ मन मथन परम छबिधर। कल्यान करिअ पदतल यह चर॥
अपराधि न आन जगत मोसौं। अब तारिअ नाथ कि रिस सोषौं॥

कामदेव के मन को मथनें के लिये आप महान शोभा धारण करनेवाले हैं, यह सेवक आपके चरणतलों पर है, इसका कल्याण कीजिये। इस संसार में मुझ जैसा अपराधी अन्य नहीं होगा, अतः हे नाथ! अब आप मुझ पर कृपा कीजिये या अपने क्रोध से जला दीजिये।

अति कीन्हि ढिठाइ तुम्हार बिमुख। अपराधबोध टर मिल हिय सुख॥
नाथहिं प्रति कीन्हि ढिठाइ जेई। बारिदपति मैं मतिमंद तेई॥

"मैंने आपके विमुख अत्यधिक ढीठता की है" यह अपराधबोध मेरे मन से मिट जाय, तो सुख प्राप्त हो। आप स्वामी के प्रति जिसनें ढीठता की है, मैं वही मेघों का राजा जड़बुद्धि इन्द्र हूँ।

पितु बत्सहिं खोरि न जिमि चितए। अघ मोर तिमि न प्रभु हिय धरिए॥

जैसे पिता पुत्र के दोष नहीं देखता, वैसे ही आप भी मेरे अपराध को अपने मन में न धरिये।

दोहा- खलन्हँ बिभंजन मान घन जे नरहरि बिकराल।

बन्दउँ उन्ह कर पदकमल मोपर द्रवहि कृपाल॥२४॥

दुष्टों के अहङ्कार का नाश करने के लिये जो विकराल शरीरवाले नृसिंह भगवान हैं, मैं उन भगवान के चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, वे कृपालु मुझ पर दया करे।

चौ.- **एहिबिधि अस्तुति कीन्ह सुरेसा। दीन भाउ तें परिहरि द्वेषा॥**
क्षीरज सुरभि तदुप तहँ आई। निज पय प्रभुहि दीन्ह अन्वाई॥

इस प्रकार इन्द्र ने दीनभाव से द्वेष त्यागकर, भगवान की स्तुति की। तदुपरान्त क्षीरसागर से प्रकट हुई 'कामधेनू' नामक गाय ने आकर अपने दूध से प्रभु को स्नान कराया।

तेहिं सवँ कुंजर रव गम्भीरा। आनेहुँ भुजभरि सुरसरि नीरा॥
सक्र सैन प्रभु पद सिरु टेका। करि लग गोबिन्दहिं अभिषेका॥

उसी समय गम्भीर शब्द करनेवाला ऐरावत हाथी, सूँड़ में भरकर गङ्गाजल ले आया और इन्द्र का सङ्केत पाकर भगवान के चरणों पर सिर नवाकर श्रीगोविन्द का अभिषेक करने लगा।

हरषि हृदय तब सक्र समेता। दीन्ह सुआसिस कृपानिकेता॥
हरषे देखि बिबुध गन्धर्वा। अस्तुति करन लाग तब सर्वा॥

तब कृपानिकेत भगवान ने अपने हृदय में हर्षित होकर इन्द्र सहित उसे उत्तम आशीर्वाद दिया। यह देखकर देवता व गन्धर्व हर्षित हो उठे, फिर वे सब उनकी स्तुति करने लगे।

झाँझ मृदंग बाजि उठि बीना। नर्तहि सुरतिय नृत्य प्रबीना॥
प्रभुहि तिलक जेहिं सवँ होइ रहेउँ। परमानंद सरित तहँ बहेउँ॥

तब झाँझ, मृदङ्ग व वीणाएँ बज उठी और नृत्य में प्रवीण देवाङ्गनाएँ नृत्य करने लगी। जिस समय भगवान का तिलक हो रहा था, वहाँ परम आनन्द की नदी बह निकली।

जेइ थल हरि सो सैल उठावा। तीरथ भा सो जन मन भावा॥
गिरि धरि राखेहुँ पुनि जहँ ठाढ़े। परे तहाँ पदचिन्ह उन्ह गाढ़े॥

फिर भगवान ने जिस स्थान से पर्वत को उठाया था, वह स्थान भक्तों का परमप्रिय तीर्थ हो गया और पर्वत को उठाकर वे जहाँ खड़े रहे थे, वहाँ उनके पदचिह्न गहरे उभर आए।

तासुहिं निकट सुरभि पद चिन्हा। जननेही जेहिं तीरथ कीन्हा॥

उसी स्थान के निकट कामधेनू के भी पदचिह्न थे, श्रीहरि ने जिसे तीर्थ घोषित कर दिया।

दोहा- **प्रभुहि तिलक करि परेहुँ जहँ गगनगंग कर नीर।**
मानसि गंगा नाउँ धरि भइ तहँ सरि गम्भीर॥२५॥

प्रभु का अभिषेक करके, आकाशगङ्गा का जल, जिस स्थान पर गिरा था, वहाँ मानसीगङ्गा के नाम से एक विशाल नदी प्रकट हो गई।

चौ.- **हरि न्हाए जेइ पय सो थावाँ। भा गोबिन्दकुंड मनु भावा॥**
न्हाए देइ दाव सौं जारी। कलिप्रसूत पातक जे भारी॥

फिर जिस जल से प्रभु ने स्नान किया था, वह 'गोविन्दकुण्ड' के नाम से विख्यात हो गया, जो स्नान करने पर कलि के प्रभाव से उत्पन्न हुए पापों को दावाग्नि के समान जला देता है।

गोपय सम जिन्हँ जल रुचिराई। गहे हरहिं मनमानस काई॥
गिरिधर चरन पूजि एहिंभाँती। गा निज लोक बृत्त आराती॥

जिसके जल का स्वाद गाय के दूध जैसा है और पीनें पर जो मनरूपी सरोवर का मैल हर लेता है। इस प्रकार गिरिधर के चरणों का पूजनकर, वृत्तहन्ता इन्द्र अपने लोक को चले गए।

सुत लघु बयस हेरि इत माई। कहन लागि अति अचरज पाई॥
दिवस सात अरु राति निरंतर। सुत कस धरेहुँ सैल तुअ गुरुतर॥

इधर पुत्र की अल्पावस्था का स्मरणकर, मैय्या आश्चर्यचकित होकर कहने लगी- हे पुत्र! तूने इस विशालतम पर्वत को सात दिनों व सात रातों तक किस प्रकार उठाए रखा।

सुनि उन्ह वदनु हेरि मुसुकाई। कहा कान्हँ जनि मम प्रभुताई॥
गोप सबन्हि निज लकुटि अराई। राखेहुँ मैय्या गिरिहिं उठाई॥

यह सुन उनके मुख की ओर देखते हुए मुस्कुराकर कन्हैया ने कहा- इसमें मेरी कोई प्रभुता नहीं है। हे मैय्या! सभी गोपों ने मिलकर लकड़ियों से पर्वत को उठाए रखा था।

न त भूधर अस कहँ सम्भारी। कस लघु भुजहिं राखतो धारी॥

अन्यथा ऐसे विशाल पर्वत को मैं अपनी छोटी-सी भुजा पर कैसे सँभाले रख पाता?

दोहा- **नृपति सुस्वामिहिं लच्छन नेहिंन्ह देत बढ़ाइ।**
पितु प्रसंस जिमि सुतहिं नित सकल खोरि बिसराइ॥२६॥

हे परीक्षित्! श्रेष्ठ स्वामी का लक्षण ही यह होता है कि वे अपने स्नेहीजनों को बड़ाई देते हैं। जैसे एक पिता सदैव ही अपने पुत्र के दोषों को भुलाकर उसकी प्रशंसा किया करता है।

चौ.- **तादिनु गत पुरुषारथु भारी। कन्हिआँ कर निज हृदय बिचारी॥**
चरचा गोप सबन्हि अस करहीं। कन्हँ सौं सिसु कस भूधर धरहीं॥

उस दिन के उपरान्त कन्हैया के महान पुरषार्थ का मन में विचार करते हुए, सभी गोप आपस में यह चर्चा करने लगे कि कन्हैया जैसा बालक पर्वत कैसे उठा सकता है?

अस पुरुषारथ गोपन्हि माहीं। पूरब सुनेहुँ लखेहुँ कत नाहीं॥
पुनि कन्हिआँ बय बहुतहिं छोटा। सारेहुँ कस कृत दुष्कर मोटा॥

पहले गोपों में ऐसा पराक्रम, न तो कहीं सुना गया है और न ही देखा गया है। फिर कन्हैया तो अवस्था में बहुत-ही छोटा है, उसनें इस दुष्कर और महान कार्य को कैसे सम्पन्न किया?

एहिं दुबिधा अकसर कछु ग्वाला। नंद समुख गवनें नरपाला॥
पूछा चरन बंदि पुनि सादर। नंद कान्हँ अह बालक किन्ह कर॥

हे परीक्षित्! इसी दुविधा में पड़े कुछ गोप एक बार नन्दरायजी के पास गए। फिर उनके चरणों में सादर सिर नवाकर उन्होंने पूछा- हे नन्दरायजी! कन्हैया किसका पुत्र है।

अमित असुर बधि पन्नग नाथा। आज त गिरिहिं धरेहुँ तेहिं हाथा॥
अकथ पराक्रम अस गोपन्हँ महँ। होत नाहिं जस कन्हिअहि भुज अह॥

अनेक असुरों को मारकर, कालिय को नाथा और आज तो उसनें अपनी भुजा पर पर्वत ही उठा लिया। ऐसा अकथनीय पराक्रम गोपों में तो नहीं होता, जैसा कन्हैया की भुजाओं में है।

भेद उघारुँ सबनि सतिभाऊँ। न त हमार बिच होइ दुराऊ॥
तातें कछु दुराव बिनु लाए। किन्ह सुत कान्हँ कहिअ सतिभाए॥

आप सारा रहस्य सत्यभाव से उजागर कर दें, अन्यथा आपके और हमारे बीच अलगाव होगा। इसलिये बिना किसी दुराव के, सत्यभाव से कह दीजिये कि कन्हैया किसका पुत्र है।

दोहा- **बिहँसि नंद तब कहेउ उन्ह कन्हँ मोरहि सुत भाइ।**
भेद गुपुत यह सुनत जेहिं तोर संक बिनसाइ॥२७॥

तब नन्दरायजी ने हँसते हुए उनसे कहा- हे भाईयों! कन्हैया मेरा ही पुत्र है। यह भेद गुप्त है, जिसे सुनकर तुम्हारा संशय मिट जायगा।

चौ.- **गरग नाउँ दुहुँ कर जब सारा। तेहिं सवँ उन्ह यह भेद उघारा॥**
कृष्नहिं समुझु न निज तन जाया। यह जग जाकर बिरचित माया॥

जब महर्षि गर्ग ने दोनों बालकों का नामकरण किया था, उस समय उन्होंने ही यह भेद बताया था। (उन्होंने कहा-) कन्हैया को तुम अपना पुत्र न समझना, यह संसार जिसकी माया है,

सो परब्रह्म हरन महि भारा। प्रगटे तव गृह नर तनु धारा॥
होइ धरनि जब जब खल नाना। तब तब बपुष धरहिं भगवाना॥

वे परब्रह्म ही पृथ्वी का भार हरनें के लिये, मनुष्य का शरीर लेकर तुम्हारे घर प्रकट हुए हैं। जब-जब पृथ्वी पर अनेक दुष्ट उत्पन्न हो जाते हैं, तब-तब वे भगवान शरीर धारण करते हैं।

ऐ गोलोकाधिप घनस्यामा। बृषभानुहि तनुजा जिन्हँ बामा॥
चरित करत ब्रज बहु सुखकारी। सेष सहित बिचरिहि असुरारी॥

ये गोलोक के स्वामी श्रीघनश्याम हैं, वृषभानुजी की पुत्री राधाजी जिनकी प्रिया हैं। असुरों के शत्रु वे भगवान व्रज में अनेक सुखदायक चरित्र करते हुए, शेषजी सहित विचरण करेंगे और

बंधु दाउ अह अहिपति सोऊ। आपन सीस धरनि धर जोऊ॥
तरहि सो भवनिधि सहज अपारा। जे निज उर इन्ह प्रेम पसारा॥

हे भाईयों! दाऊ वे शेषजी ही हैं, जो पृथ्वी को अपने शीश पर धारण करते हैं। वह प्राणी सहज-ही में अपार भवसागर को तर जायगा, जो अपने हृदय में इनके प्रति प्रीति बढ़ाएगा।

तातें इन्ह लीला लखि भाई। संसय जनि हिय करेसु बृथाई॥
सुनि अस बचन सकल हरषाने। लागे नंदहिं भाग सिहाने॥

इसलिये हे भाईयों! इनकी लीलाएँ देखकर तुम हृदय में व्यर्थ का संशय न किया करो। ऐसे वचन सुनकर समस्त गोप हर्षित हो गए और नन्दरायजी के भाग्य की सराहना करने लगे।

कन्ह बल प्रति जे संसय रहेहूँ। भयउँ तिरोहित हिय मुद लहेहूँ॥

कन्हैया के प्रति उन्हें जो संशय था, वह जाता रहा और उनके हृदय आनन्दित हो उठे।

दोहा- **तदुप नाइ सिरु नंद पद गवनेहुँ ग्वालन्हँ बृंद।**

अब सुनु नृप सो चरित जस बरुन लोक गै नंद॥२८॥

तदुपरान्त नन्दरायजी के चरणों में सिर नवाकर गोपों का वह समूह चला गया। हे परीक्षित्! जिस प्रकार नन्दजी वरुणलोक जा पहुँचे थे, अब आप वह कथा सुनिये।

चौ.- कातिक मास सुदिहिं एक बारा। नंद सुब्रत एकादसि सारा॥
हृदय राखि छबि छयल कन्हाई। दिवस कीन्ह पूजन चित लाई॥

एक बार कार्तिक माह के शुक्ल-पक्ष में नन्दरायजी ने एकादशी का उत्तम व्रत किया। फिर अपने नेत्रों में छैल-छबीले कन्हैया को बसाकर उन्होंने दिनभर चित्तपूर्वक पूजन किया।

द्वादसि माँझ जाइ ब्रत पारा। हुति घरि भर पै तें सोउ बारा॥
तातें राति पहर भर रहि जब। चले जमुन तट उठि ब्रजपति तब॥

द्वादशी को व्रतपारण किया जाता है, किन्तु उसबार द्वादशी केवल घड़ी भर की ही थी। इसी कारण, जब पहरभर रात शेष रह गई, तभी व्रजराज नन्दजी उठकर यमुनातट की ओर चले।

आइ निसिहि तें लाग नहाने। लखि जलजामिक परम रिसाने॥
दंड देन उन्ह एहि अपराधा। मूढ़न्हँ नागपास उन्ह बाँधा॥

वे आकर रात्रि में ही यमुना में स्नान करने लगे, यह देख वहाँ उपस्थित जलरक्षक अत्यन्त कुपित हुए। इस अपराध का दण्ड देने के लिये उन मूर्खों ने उन्हें नागपाश में बाँध लिया।

तदुप लै चले उन्ह अतुराई। बरुनलोक कटुबाद सुनाई॥
नंद हहरि करि लाग पुकारा। पै कोउँ सुना न नींदहि मारा॥

तदुपरान्त दुर्वचन कहते हुए, वे उन्हें बड़ी ही उतावली से वरुणलोक ले चले। तब नन्दजी घबराकर पुकार करने लगे, किन्तु निद्रा की अधिकता से किसी ने उनकी पुकार न सुनी।

भलिबिधि उन्ह अपराध उचारा। जामिक जातहिं पति पद डारा॥
देखि अंबुपति उन्ह पहिचाना। भेद किन्तु जनि प्रकट बखाना॥

जलरक्षकों ने जाते ही भली-प्रकार अपराध समझाते हुए, नन्दरायजी को स्वामी के चरणों पर डाल दिया। वरुणदेव ने उन्हें देखते-ही पहचान लिया, किन्तु प्रकट में उन्होंने कुछ न कहा।

दोहा- जगतपतिहिं पितु गोपपति ए त नंद गुनधाम।
अब इन्ह अवसि छरावन इहँ आवहि सुखधाम॥२९॥ (क)

(उन्होंने सोचा) भगवान के पिता, गोपों के स्वामी और गुणों के धाम ये तो स्वयं नन्दरायजी हैं। अब इन्हें छुड़ानें के लिये अवश्य ही सुख के धाम भगवान श्रीकृष्ण यहाँ आऐंगे।

अहा मिलिहिं घर बसत मोहि दरसन प्रभुहिं अनूप।
मिलिहिं अकथ मुद मोहि अब मनइच्छा अनुरूप॥२९॥ (ख)

अहा! मुझे घर बैठे स्वतः ही उन प्रभु के अनुपम दर्शन मिल जायेंगे। अब मुझे अपने मन की इच्छा के अनुरूप अकथनीय आनन्द प्राप्त होगा।

चौ.- इहइ बिचारि तेन्ह सनमानी। लै आनेहुँ निज गृह सुखमानी॥
उनतासन तहँ उन्ह बैठारी। सादर पूजे चरन पखारी॥

यह विचारकर उनका सम्मान करते हुए, सुख मानकर वरुणदेव उन्हें अपने घर ले आए। वहाँ उन्हें ऊँचे आसन पर बैठाया और उनके चरण पखारकर सादर उनका पूजन किया।

तदुप बिलोचन पंथ जुड़ाना। प्रभुहिं जोहि लग अति अतुराना॥
इहाँ फिरे न नंद जब न्हाई। चर पठए जसुदा अकुलाई॥

तदुपरान्त मार्ग पर नेत्र लगाकर वे बड़ी ही उतावली से उन प्रभु की प्रतीक्षा करने लगे। इधर जब नन्दरायजी नहाकर नहीं लौटे, तब यशोदाजी ने अकुलाकर कुछ सेवकों को भेजा।

खोजे पर न मिले पै जबहीं। कन्हहिं कहेउ जाइ उन्ह तबही॥
मातुहि लखि बिलपत करुनानिधि। धीर देत बोले बच इहिंबिधि॥

किन्तु जब खोजनें पर भी वे नहीं मिले, तब उन्होंने जाकर कन्हैया से यह बात कह दी। मैय्या को विलाप करते देख करुणानिधि श्रीकृष्ण ने धैर्य बँधाकर उनसे इस प्रकार कहा कि,

मातु बृथा उर अति अकुलाई। अबहिं खोजि आनौं उन्ह जाई॥
अस कहि चले कान्हँ जललोका। हरन मातु कर दारुन सोका॥

हे मैय्या! तुम व्यर्थ ही में इस प्रकार अकुला रही हो, मैं अभी जाकर उन्हें खोज लाता हूँ। ऐसा कहकर मैय्या का दारुण शोक हरनें के लिये कन्हैया वरुणलोक को चले।

तेजवंत तन उर मनिहारा। मंद दमक जिमि दीप कतारा॥
मकर उरग झष जलचर नाना। प्रभुहि देखि लहँ पेमु महाना॥

उनका शरीर तेजस्वी और छाती पर मणियों के हार, दीपमालाओं से झिलमिला रहे थे। उन भगवान को देखकर मकर सर्प, मत्स्य व अन्य जलचर जीव, प्रेम का अनुभव करने लगे।

बरुन हृदय उन्ह आवत जानी। निकसे समुख करन अगवानी॥
पुनि जातहिं सनमुख सौभागा। आपन हरषि सिहावन लागा॥

अपने मन में उन्हें जाता हुआ जानकर वरुणदेवता, उनकी अगवानी करने के लिये सन्मुख निकले। फिर प्रभु के सामनें जाते ही हर्षित होकर वे अपने भाग्य की सराहना करने लगे।

तदुप प्रभुहिं पद आपन चीरा। तेहिं बिछान भए पेमु गभीरा॥
फुरे आजु मम सतकृत भारे। कमलापति मम सदन पधारे॥

तदुपरान्त प्रेम की अधिकता से, उन्होंने भगवान के चरणों में अपना वस्त्र बिछा दिया और कहा कि आज मेरे महान पुण्य सफल हो गए, जो स्वयं कमलापति भगवान मेरे घर पधारे।

एहिंभाँति बच नीक सुनावा। सादर उन्ह निज गृह लै आवा॥

इस प्रकार का उत्तम वचन सुनाकर वे आदरपूर्वक उन्हें अपने घर ले आए।

दोहा- प्रभु कइ दरसन लालसा मोरे हिय गहराइ।
तातें राखेहुँ दास गृह नाथहि तात दुराइ॥३०॥

प्रभु (आप) के दर्शनों की कामना मेरे मन में अत्यधिक बढ़ गई थी, इसलिये इस दास ने स्वामी (आप) के पिता को अपने घर में छिपा रखा है।

चौ.- अघ यह मम अनुचरन्हँ अगाधा। जगतपितहि पितु कहँ जे बाँधा॥
जदपि दोष उन्ह ताड़न जोगा। पै उन्ह अकृतहिं अस संजोगा॥

मेरे सेवकों का यह महान अपराध है कि उन्होंने जगत्पिता के पिता को बाँध लिया। यद्यपि उनका अपराध दण्डनीय ही है, किन्तु उनके इस कर्म से ही यह संयोग भी बन पड़ा है कि,

मम सम अति लघु अनुचर द्वारे। आजु जगतपति आपु पधारे॥
अब बिसारि मम अनुचर भूला। करिअ पसाउ होइ अनुकूला॥

मुझ-से अत्यन्त तुच्छ सेवक के द्वार पर आज जगत्पति स्वयं पधारे। अब मेरे अनुचरों की भूल भुलाकर आप मेरे अनुकूल होईये और मुझ पर अनुग्रह कीजिये।

बहुरि सतिय तेहिं कीन्ह प्रनामा। पाएहुँ देखि नंद बिश्रामा॥
तदुप सौंपि नंदहिं उन्ह हाथा। अति बिश्राम लहेहुँ जलनाथा॥

फिर अपनी स्त्री सहित वरुणदेव ने उन्हें प्रणाम किया। यह देख नन्दरायजी को परम शान्ति प्राप्त हुई। तदुपरान्त नन्दरायजी को उनके हाथों सौंपकर वरुणदेव ने परम शान्ति प्राप्त की।

हरषि पितहिं तब करि निज संगा। चले सदन कन्हँ परम उमंगा॥
रबितनया तट पुनि जब आए। देखि ग्वाल जसुदा सचु पाए॥

तब हर्षित हो पिता के साथ, अत्यन्त उत्साह के साथ कन्हैया अपने घर चल पड़े और जब यमुनातट पर आए, तब उन्हें देखकर गोपसमुदाय व यशोदाजी अत्यन्त आनन्दित हो उठे।

परिछित स्याम चरित सुखधामा। बिषहि अमिअ कर दाहिन बामा॥

हे परीक्षित्! श्यामघन की लीलाएँ सुख की धाम हैं, जो विष को अमृत और विपरीत को अनुकूल कर देती हैं।

छन्द- **बामहुँ करहिं दाहिन हरहि अजलेख कठिन कपाल के।**
बिधि सम्भु नारद सेष सारद हंस जिन्हँ रति ताल के॥
जे गोपिबल्लभ राधिकहि पिय प्रीति जिन्हँ निरमल घनी।
ब्रज उदित भए कर चरित अतिसय ललित तेइ त्रिभुअन धनी॥

वे प्रतिकूल को अनुकूल करके, विधाता के लिखे भाग्य के कठोर लेख को हर लेती है। ब्रह्माजी, शिवजी, नारदजी, शेषजी व सरस्वतीजी जिनके प्रेमरूपी सरोवर के हंस हैं। जो गोपियों के वल्लभ व राधाजी के प्रियतम हैं और जिनका प्रेम निर्मल व गहरा है, व्रज में अवतरित होकर वे ही त्रिभुवन के स्वामी, अत्यन्त सुन्दर व मनोहारी लीलाएँ करते हैं।

दोहा- **हरिहिं गिरिधरन चरित यह जे गावहि उर लाइ।**
तरहि सो भवबारिधि सकुल जे जनि सहज तराइ॥३१॥

भगवान श्रीकृष्ण के द्वारा गोवर्धनपर्वत उठाए जाने का यह चरित्र, जो भी मन से गाता है, वह मनुष्य कुल सहित भवरूपी सागर तर जाता है, जिसे सहज-ही में नहीं तरा जा सकता।

मासपारायण सत्रहवाँ बिश्राम

श्रीगणेशाय नमः

श्रीकृष्णचरितमानस

तृतीय सोपान
माधुर्यकाण्ड

दोहा- जग कन कन तें जुग जुग झरिहहि जासु प्रकास।
सुनु सो अमल हरि रसु चरित राउ बिसरि भव त्रास॥

संसार के कण-कण से युगों-युगों तक जिसका प्रकाश झरता रहेगा, हे परीक्षित! अब आप भव का भय त्यागकर, श्रीकृष्ण का गोपियों के प्रति प्रेम सम्बन्धी वह निर्मल चरित्र सुनिए।

बिसालाखि ललिता उभय राधहि अली प्रधान।
अकसर गवनी उन्हँ समुख हिय धरि मोहन ध्यान॥

विशालाक्षी और ललिता नामक दोनों गोपियाँ राधाजी की प्रधान सखियाँ थीं। वे एक बार अपने हृदय में मनमोहन का ध्यान करती हुई, राधाजी के सन्मुख गई।

चौ.- राधेहि भवन सूनपनु भारी। पहिरि तासु दुतिमय छबि सारी॥
हिय सकोच धरि नव बधु जैसा। मुदित प्रसान्त अचल गति बैसा॥

राधाजी के भवन का सघन सूनापन उनके सौन्दर्य की आभायुक्त साड़ी पहने हृदय में सङ्कोच धरकर, किसी नववधू-सा आनन्दित, परम शान्त और निश्चेष्ट हो भवन में बैठा था।

भवन गहन तम माँझ सुहाई। राधहि अंगकांति बलु पाई॥
सो भूषन उन्ह कइ थिति कहही। जे न आपु तम महुँ लखि परही॥

भवन के घने अन्धकार में सुशोभित राधाजी की अङ्गकान्ति का बल पाकर उनके वे आभूषण उनकी स्थिति व्यक्त कर रहे हैं, जो स्वयं भी अन्धकार में दिखाई नहीं पड़ते।

झीन बसन बिलसित उन्ह आनन। भ्रम कर इंदुहि केर बिरल घन॥
दुहुँ दृग गहि कलपनहिं सहाई। पिय छबि गढ़त रहे समुहाई॥

झीने वस्त्र से ढँका उनका मुख, जैसे विरल मेघों के मध्य चन्द्रमा के होने का भ्रम उत्पन्न कर रहा है। उनके दोनों नेत्र कल्पना की सहायता से उनके सन्मुख प्रियतम का चित्र बना रहे हैं।

तेहिं छिनु मंद मंद पद चापा। पैठि तासु श्रुति करि हिय दापा॥
सपुन बिसरि मानस तब जागा। चकित द्वार दिसि चितवन लागा॥

उस समय सखियों के पैरों की मन्द-मन्द पदचाप मन में गर्व करती हुई, उनके कानों में पड़ी। तब स्वप्न त्यागकर, राधाजी का मन जाग उठा और चकित हो द्वार की ओर देखने लगा।

दोहा- किंतु पियहि छबि पुनि तुरत उन्ह अंतर पट छाइ।
श्रवहिं निदरि पुनि पिय सपुन मन बूड़ेउँ अकुलाइ॥१॥

किन्तु प्रियतम का वहीं चित्र तुरन्त ही उनके हृदय-पटल पर पुनः उभर आया। तब कानों का निरादर करके, उनका मन व्याकुल होकर पुनः प्रियतम के स्वप्नों में डूब गया।

चौ.- जुग सखि एतनेहुँ तिन्ह समुहाई। पियमुगधा तदपि न लखि पाई॥

तब सखि किए बिनोद जगानी। पुनि कर गहि बोली मृदु बानी॥

इतने में ही वे दोनों सखियाँ उनके सन्मुख आ पहुँची किन्तु प्रियतम के प्रेम और स्मृतियों में भूली हुई राधाजी फिर भी उन्हें देख न पाई। तब सखि ने विनोदपूर्वक उन्हें जगाया और उनका हाथ पकड़कर कोमलवाणी में बोली।

सत्य सत्य कहु सखी प्रबीना। केन्ह सपुन तउँ नयन बिलीना॥
किन्ह हित ससि सौं वदनु तुम्हारा। मोचहिं अजहुँ पिअर दुति धारा॥

तब दोनों ने कहा- हे चतुर सखि! सब सच-सच कहो। तुम्हारे नेत्र किनके स्वप्न में डूबे हुए है। चन्द्र के समान श्वेत वर्णवाला तुम्हारा मुख, आज किनके लिये लज्जा से पीला हो रहा है।

सुनि सखि बच तें कछु सकुचानी। छुइमुइ मनहुँ हाथ परसानी॥
पढ़त तबहिं उन्ह आनन भाऊ। ललिता कह अस गिरा सचाऊ॥

सखि के ये वचन सुन राधाजी कुछ लजा गई, मानों छुईमुई (के पत्तों) को हाथ से छू लिया गया हो। तभी उनके मुख पर उभरे हुए भावों को पढ़कर ललिता ने चाव से यह वाणी कही।

सखि तव हृदयँ पाइ जिन्हँ ध्याना। बिगसइ सरद सरोज समाना॥
सो रस उदधि संग करि ग्वाला। तोर बीथि नित करि चर ख्याला॥

हे सखि! तुम्हारा हृदय जिनके ध्यान से शरत्कालीन कमल के समान खिल उठता है। प्रेम के सागर वे मनमोहन ग्वालबालों को साथ करके, नित्य ही तुम्हारी गली में खेलते रहते हैं।

गो चारन बन जात बिहाना। निरखि लेहुँ तब सो सुखखाना॥
प्रिय सखि चित्र प्रथम तिन्ह आनू। तब देखउँ जनि संसय मानू॥

वे गायें चराने सवेरे वन जाते हैं, तुम तभी उन सुखखान को देख लेना। तब राधाजी बोली- हे प्रिय सखि! तुम पहले उनका चित्र ला दो, तब मैं उनका दर्शन करूँगी, इसमें संशय न मानों।

सुनि सखि कला तूलिका पाई। मूरतिमंत भई हरषाई॥
पियहिं चित्र ललितउँ कर काढ़ा। निरखि राधिका उर रसु बाढ़ा॥

यह सुन ललिता की कला तूलिका पाकर कृष्ण के चित्र के रूप में हर्षित होकर साकार हो उठी। ललिताकृत प्रियतम का चित्र देखकर राधाजी के मन में उनके प्रति प्रेम बढ़ गया।

लगे नयन उन्हँ सपनेहुँ देखा। आपन प्रति पिय पेमु बिसेषा॥
कज्जलि केर निकट मधु कानन। सोइ सोम छबिजुत बिधु आनन॥

जब उनकी आँख लगी, तो उन्होंने स्वप्न में स्वयं के प्रति श्रीकृष्ण के हृदय में विशेष प्रेम देखा। श्यामवर्णी यमुना के निकट मधुवन में छविरूपी अमृतयुक्त, चन्द्र के समान मुखवाले उनको

दोहा- **रुचिर पीत पट पहिरि पुनि पद नूपुर झनकाइ।**
निज सँग निरखे राधिका नाचत कुमर कन्हाइ॥२॥

सुन्दर पीताम्बर पहने और पैरों में नूपुर झनकाते हुए, राधिकाजी ने (उस स्वप्न में) अपने साथ आनन्दपूर्वक नृत्य करते देखा।

चौ.- **नींद नयन परिहरि तेहिंकाला। भई बिलीन बिरहु घन गाला॥**

हृदयोदधि तें बारहि बारा। पीर लहर लगि उमगि अपारा॥

उस समय नींद उनके नेत्रों का त्याग करके, विरह के विशाल मुख में समा गई। तब उनके हृदयरूपी सागर से पीड़ा की अपार लहरें उमड़ने लगी।

तासु कठिनपनु चेतन तीरा। भा जब ताड़न परम गभीरा॥
तब राधा अतिसय अकुलानी। गइ गवाख सन अति अतुरानी॥

फिर राधाजी के चेतनारूपी तट पर उन लहरों की कठिनता का आघात जब अत्यधिक बढ़ गया। तब वे अत्यधिक व्याकुल हो उठी और बड़ी उतावली अपने कक्ष की खिड़की के पास गई।

निकसेउँ रस दृग पौर बिहाई। धरे मिलन कइ सुचि गहनाई॥
तदुप नयन धरि धीरज भारी। लगे पंथ निज सींव पसारी॥

तब श्रीकृष्ण के प्रति उनका प्रेम मिलन की पवित्र तीव्रता लिये उनके नेत्रों के किनारों से आ निकला। तदुपरान्त नेत्र महान धीरज धरकर मार्ग पर अपनी सीमा का विस्तार करके, जा लगे।

एतनेहुँ हरि सोइ दिसि तें दौरी। ठुमकत चलि आए उन्ह खोरी॥
तब भ्रुअ प्रेरि कीन्ह सखि सैना। देखराए उन्ह राजिवनैना॥

इतने में कन्हैया ठुमककर उसी ओर से दौड़ते हुए उस गली में चले आए। तब ललिता ने भृकुटि से सङ्केत किया और उन्हें कमलनयन श्रीकृष्णजी का दर्शन कराया।

चितवतही छबि सिंधु अगाधा। भइ अचेत अवचट तब राधा॥
अकथित सुषमाधर मुख ताकौ। चितवन कान्हँ झरोखन्हि झाकौ॥

तब प्रियतमरूपी सुन्दरता के अगाध सिन्धु को देखकर राधाजी सहसा अचेत हो गई। उनका अकथनीय सौन्दर्ययुक्त मुख देखने के लिये तब कन्हैया उनकी खिड़की में झांके।

राधहि बदनु बिचित्र प्रकासा। जब उन्ह दृगतल कीन्ह बिलासा॥
तब उन्ह हृदयँ केर मृदु डारी। प्रीति प्रभार पृहातल पारी॥

राधाजी के मुख का विचित्र प्रकाश जब श्रीकृष्ण के नेत्रपटल पर पड़ा, तब उनकी हृदयरूपी कोमल लता प्रेम के भार से दबकर कामनाओं की भूमि पर झुक गई।

पुनि उर धरि सुचि छबि उन्ह केरी। फिरे भवन लखि बार घनेरी॥
बिकल निरखि इत आलिहि जबहीं। ललिता कहन लागि अस तबहीं॥

फिर राधाजी की पवित्र सुन्दरता अपने हृदय में रखकर विलम्ब हुआ जानकर कन्हैया घर लौट आए। इधर जब राधाजी को व्याकुल देखा, तब ललिता उनसे इस प्रकार कहने लगी।

दोहा– **बिरहसिंधु आरत अधिक सखि अस केहि हित होत।**
जे हिय पिय तें मिलन चह चढ़हु रसहि सुचि पोत॥३॥

हे सखि! विरह के सागर में तुम इस प्रकार अत्यधिक व्याकुल किस लिये होती हो। यदि तुम्हारा हृदय प्रियतम से मिलना चाहता है तो तुम पवित्र प्रेम के पोत का आश्रय लो।

चौ.– **हरि त्रिलोकनायकु भगवाना। सब समरथ गुननिधि सुखखाना॥**
तेइ सबबिधि सज्जन प्रतिपाला। अधरम सलभ दहन हित ज्वाला॥

श्रीकृष्ण त्रिलोकनायक भगवान हैं। वे सर्वसमर्थ, गुणों के सागर और सुखों की खान हैं और वे ही साधुपुरुषों के सब प्रकार से रक्षक और अधर्मरूपी पतिंगे को जलाने के लिये अग्निरूप हैं।

कोटि मयन सुषमा श्रमु पाई। लहहि सान्ति उन्ह गात अमाई॥
सुनि अलि कर बच नयन उघारी। परम बिकल कह कीतिकुमारी॥

करोड़ों कामदेवों की सुन्दरता थककर उनके अङ्गों की शरण में शान्ति पाती है। सखि के ऐसे वचन सुनकर राधाजी ने अपने नेत्र खोले और अत्यन्त व्याकुल होकर बोली-

मनुज होहि तें अथवा ईसा। पै सखि सोइ मोर प्रानेसा॥
त्रिपुर एक तेइ पेमे जोगा। एहि तें पेमु करइ उन्ह लोगा॥

चाहे वे मनुष्य हो अथवा ईश्वर। किन्तु हे सखि! मेरे तो वे ही प्राणाधार हैं। तीनों-लोकों में केवल वे ही प्रेम किये जाने योग्य हैं। इसी कारण तो सब लोग उनसे प्रेम करते हैं।

हरि पद अंबुज तरनी सुन्दर। जे न मोहि मिलि बिरहु समुन्दर॥
तब सखि करउँ अवसि तनु त्यागा। जिअनि बृथा बिनु हरि अनुरागा॥

हे सखि! जो यदि विरह के इस सागर में मुझे कन्हैया के चरणकमलों की सुन्दर नौका नहीं मिली, तब मैं अवश्य शरीर त्याग दूँगी। क्योंकि श्रीकृष्ण के प्रेम के बिना तो जीवन ही व्यर्थ है।

ललिता अस बच सुनि उन्हँ केरे। सपदि कान्हँ पहि गइ भय प्रेरे॥
तेहिं समय हरि कज्जलि तीरा। बैठे नयन दिए सरि नीरा॥

राधाजी के ऐसे वचन सुनकर ललिता भयभीत हो उठी और शीघ्र ही कन्हैया के पास गई। उस समय श्रीकृष्ण यमुना के जल में दृष्टि गड़ाए हुए नदी के तट पर बैठे थे।

निकट चारु तरु लता बिताना। बूड़े त्रिबिध समीर महाना॥
नाना चपल बिहग सरि तीरा। ठढ़े चितव निज बिम्ब सुनीरा॥

निकट ही सुन्दर वृक्ष और लतामण्डप थे जो शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु में डूबे थे। अनेक प्रकार के चञ्चल पक्षि यमुनातट पर खड़े होकर स्वच्छ जल में अपनी परछाई देख रहे थे।

दोहा- मधुकर बहु मधु लालसा बिचरहि सरित प्रसून।
झष झाँकहि जल तें उझकि बक पावहिं मुद दून॥४॥

जल में खिले हुए पुष्पों पर मधुलालसा लिये बहुत से भौंरे गु.ार कर रहे थे। मछलियाँ उछल-उछलकर जल से बाहर झाँक रही थी, जिन्हें देख बगुले द्विगुणित आनन्द पा रहे थे।

चौ.- निरजन लखि मुख धरि नव हासा। हरषि गई ललिता हरि पासा॥
कहिअ स्याम किन्ह सुरति ललाई। तोर जुगल दृग तें झलकाई॥

एकान्त देखकर मुख पर सुन्दर मुस्कान लिये ललिता हर्षित होकर श्रीकृष्णजी के पास गई और बोली हे कन्हैया कहिये किनकी स्मृतिरूपी लालिमा तुम्हारे दोनों नेत्रों से झलक रही है।

पुनि सुरभित करि सरि तट सूना। करि रहि तोर हृदयँ रस दूना॥
सरितरंग मृदु कलकल माहीं। किन्ह कइ मंजुल प्रीति समाहीं॥

फिर वही लालिमा नदीतट पर फैले एकान्त को सुगन्धित कर, तुम्हारे मन के प्रेम को दुगुना कर रही है। नदी के रङ्ग और तरङ्गों की मधुर कलकल में किसका निर्मल प्रेम समाया है।

किए हेतु सब भाँति समरपन। किन्ह नयनन्ह बिचित्र आकरषन॥
रूखबद्ध अंतर कहँ तट कर। खींचहि बल सम्मोहन मंतर॥

सब प्रकार से सर्वस्व समर्पण करने के निमित्त, किसके नेत्रों का विचित्र आकर्षण, वृक्षों से बँधे हुए दो तटों के बीच के अंतर को, सम्मोहन मन्त्र के बल पर, अपनी ओर खींच रहा है।

गूढ़ बचनमय ताकर सैना। बेगि जानि गै राजिवनैना॥
पुनि कहेहु कन्हँ तिन्हँ मुसुकाई। ललिता कहु आपन कुसलाई॥

ललिता के द्वारा कहे गये गूढ़ वचनरूपी सङ्केत को कमलनयन श्रीकृष्ण शीघ्र ही समझ गए। फिर कन्हैया ने उसे मुस्कुराकर कहा कि हे ललिता! तुम अपनी कुशल कहो।

इहाँ कवन कारन तुम आई। भेद कहहु मोहि सकल बुझाई॥
हरि तुम्हार सुषमा लखि जब ते। भई राधिका बावरि तब ते॥

तुम यहाँ किस कारण से आई हो, मुझे सब बात समझाकर कहो। हे कन्हैया! राधा ने जब से तुम्हारी सुन्दरता देखी है, तब से वह बावरी हो गई है।

बैठि एकान्त सुमिरि पुनि तोही। हरष बिरहु भरि ब्याकुल होही॥
दारुनारि इव जड़पनु ठानी। कछु न कहति जनु परिहरि बानी॥

एकान्त में बैठी वह तुम्हें स्मरण करके, हर्ष और विरह से व्याकुल हुआ करती है। वह किसी कठपुतली सी जड़ता धरे रहती है और मुख से कुछ नहीं कहती, जैसे वाणी त्याग दी हो।

बिनु तुम्हार तेहिं भूषन दूषन। गनि परिहरे हृदयँ परितूष न॥
गनति कुबास सुबास बिधाना। अमित बिभव गृह जान मसाना॥

उसके हृदय में संतोष नहीं है और तुम्हारे न होनें से उसने अपने आभूषणों को कलङ्क के समान जानकर त्याग दिया है। वह सुगन्धविधानों को दुर्गन्धित और अपार वैभवयुक्त महल को श्मसान समझती है।

ससि तेहिं जानि परइ बिषकंदा। गनति बिनोदहि तें रवफंदा॥
अब धौं काह होइ घनस्यामा। करु कछु सद्य तुमहि सुखधामा॥

चन्द्रमा उसे विषयुक्त फल के समान जान पड़ता है और हास्य-विनोद को वह वाणी की बाधा समझती है। हे घनश्याम! अब क्या होगा? हे सुखधाम! अब तुम्हीं शीघ्र कोई उपाय करो।

दोहा- **सुनि अस सीतल स्वास गहि पुनि सुधारि कर बैनु।**
बोले त्रिभुवन मोहन किए तिरीछे नैनु॥५॥

यह सुनकर ठण्डी श्वास लेते हुए, हाथ में मुरली सुधारकर तीनों-लोकों को मोहित करनेवाले श्रीकृष्णजी तिरछी चितवन करके, बोले-

चौ.- **मोर परम सरूप दुरबोधा। साधे जेहिं नाना अवरोधा॥**
नर जीवन पुनि परिथिति नाना। सम्भव जहँ न निगुन कर ध्याना॥

मेरा परब्रह्म स्वरूप बड़ा दुर्लभ है, जिसकी साधना में अनेक अवरोध है। फिर मनुष्य जीवन में अनेक प्रकार की परिस्थितियाँ है, जिनके बीच मेरे निर्गुण स्वरूप का ध्यान सम्भव नहीं।

सो राखिअ मम प्रति घन प्रीती। इहइ भाँति सब उत्तम नीती॥
पेमुहि सुलभ मोर सब रूपा। जे निरबानद मुदद अनूपा॥

इसलिये मेरे प्रति अगाध प्रेम धारण किये रहो, यही सब प्रकार से उत्तम नीति है। मेरे समस्त स्वरूप एकमात्र प्रेम को ही सुलभ हैं, जो प्राणी को निर्वाण और अनुपम आनन्द प्रदान करते हैं।

मम प्रति प्रीति जहाँ जेहिं भाँती। तें मम कर तिहिं भाँति सराती॥
साधन महि न पेमु सम कोई। जे मोहि सुलभ करावन होई॥

मेरे प्रति जहाँ जैसा प्रेम है, वह मेरे हाथों उसी प्रकार पूर्णता प्राप्त करता है। पृथ्वी पर प्रेम के समान कोई दूसरा साधन नहीं है, जो (प्राणी को) मेरी सहज प्राप्ति करवा सके।

राधा मम प्रति सोइ रति राखी। जेहिं मैं पुरवउँ संकर साखी॥
तेहिं हित मम हिय ब्याकुल होई। अति दुख लहइ सकल मुद खोई॥

राधा ने भी मेरे प्रति वही प्रीति धारण की है, जिसे मैं सार्थक करूँगा। शिवजी इसके साक्षी हैं। उसके बिना मेरा मन व्याकुल होकर सारे आनन्द को खोकर अत्यन्त दुःखी हो जाता है।

दोहा– जस तरंग अरु अंबुनिधि हिय अरु भाउँ अपार।
अबिलग तस बृषभानुजा अरु मैं एकाकार॥६॥

जैसे तरङ्गें और समुद्र, हृदय और उसमें स्थित अपार भावनाएँ एक-दूसरे से अभिन्न हैं, वैसे ही मैं और राधा भी एकाकार हैं।

चौ.– श्रवन सुखद पिय बचन सगूढ़ा। सुनि ललितहि हिय आनँदु बूड़ा॥
सो मुद लहर बिसरि हिय कूला। चलि सुरसरि तरंग समतूला॥

प्रियतम के रहस्ययुक्त एवं कर्णसुखद ऐसे वचन सुन ललिता का हृदय आनन्द में डूब गया। फिर हृदय के किनारों से निकलकर आनन्द की वह लहर गङ्गा की लहरों के समान चल पड़ी।

लोकलाज तट तरुन्ह उपारी। आइ जहाँ रसनिधि सुखकारी॥
पियरस बिकल बैठि तब राधे। स्रवत तरल दृग धीरज बाँधे॥

लोकलाजरूपी तटवृक्ष उखाड़कर वह वहाँ आई, जहाँ प्रेम की सुखदायिनी सरितारूप राधाजी थी। वे नेत्रों से बहते जल को धैर्यपूर्वक पलकों में बाँधे प्रिय के प्रेम में व्याकुल बैठी थी।

पलक जानि चख पूतरि माहीं। बिहँसत ललिता कइ परिछाई॥
तब आतुरि बस भइ कछु चंचल। धीरज खसेउँ कपोलन्ह अंचल॥

जब उनकी पलकों ने नेत्रतारकों में मुस्कुराती हुई ललिता की परछाई देखी, तब वे उतावली होकर कुछ चञ्चल हो उठी और धैर्यपूर्वक रोका गया नेत्रजल उनके कपोलों पर आ गिरा।

तब राधिका बिसरि जड़ताई। लखि ललिता उन्ह लाग सुनाई॥
जस बिमोहि तैं उन्ह मृदु हासी। तैसेइ तेपि तोर अभिलाषी॥

तब राधाजी ने जड़ता त्याग दी यह देख ललिता उन्हें सुनाकर बोली। हे सखि! जैसे तुम कन्हैया की कोमल मुस्कान पर विमुग्ध हो गई, वैसे ही उन्हें भी तुम्हारी ही अभिलाषा है।

ते कह मैं अरु सुससिकुमारी। एक जथा अंबुधि अरु बारी॥
एक जे नित्य तेहिं अग्याना। बृथहि जगत दुइ करि अनुमाना॥

वे कहते हैं कि मैं और सुचन्द्र (वृषभानु) गोप की कन्या राधा समुद्र और जल की भाँती अभिन्न है। जो नित्य ही एक है, उन्हें अपने अज्ञान के कारण इस संसार ने अलग-अलग मान रखा है।

तोर हेतुगत रस हरि चरना। अवसि तुम्हार होब दुखहरना॥
राधा अस सुनि अति सुख माना। धाइ अधरदल उन्ह मुसुकाना॥

हे सखि! श्रीकृष्ण के चरणों में तुम्हारी अहेतुक प्रीति अवश्य ही तुम्हारे दुःखों को हरनेवाली होगी। यह सुनकर राधाजी ने अत्यन्त सुख माना और उनके अधरदलों पर मुस्कान दौड़ गई।

अब साधन सो कहहुँ बिचारी। जाते सपदि मिलहि बनवारी॥
सखि बरूथ एतनहुँ तहँ आवा। ललिता जिन्हँ सब मरमु बुझावा॥

उन्होंने कहा- हे सखि! अब सोचकर वह उपाय कहो, जिससे शीघ्र ही कन्हैया की प्राप्ति हो। इतने में ही सखियों का समूह वहाँ आया, जिसे ललिता ने राधाकृष्ण का सारा भेद बता दिया।

दोहा- **अलि उत्तम चंद्रानना कह करि हृदयँ बिचार।**
परमसुभाग प्रदायक तुलसिहि ब्रत अबिकार॥७॥

उस समय राधाजी की सखियों में उत्तम चन्द्रानना नाम की गोपी ने अपने हृदय में विचार करके, कहा कि निर्विकार रूप से किया गया तुलसी-व्रत परम सौभाग्य देनेवाला होता है।

चौ.- **तुलसि परस सुमिरन अरु ध्याना। स्तवनारोपन गुन गाना॥**
पूजन पुनि तुलसिहि दल केरा। परम फलद हर दोष घनेरा॥

तुलसी का स्पर्श, स्मरण, स्तवन, रोपण, ध्यान, गुणगान और तुलसीदल का पूजन उत्तम फलदायक और महान पापों को हरनेवाला होता है।

नवधा भगति सुआश्रय पाई। भजहि तेहिं जे जन चित लाई॥
ते कलि सहज परम गति पावहिं। अघ कारिख घन सहज नसावहिं॥

नवधा-भक्ति का आश्रय पाकर जो मनुष्य चित्त लगाकर देवि तुलसी का भजन करता है, वह पापरूपी सघन कालिमा से छूट जाता है और कलियुग में भी सहज ही परमगति पा लेता है।

कीच न ब्यापइ पदुम दल जथा। चिंता पन्नगि ग्रस न तिन्हँ तथा॥
जोइ भवन पर तुलसिहि छाया। त्रासहि तहँ न कठिन कलि माया॥

जैसे कमलदल को कीचड़ नहीं लगता, वैसे ही तुलसी-उपासक को चिन्तासर्पिणी नहीं खाती। जिस भवन पर तुलसी की छाया पड़ती है, वहाँ कलि की कठिन माया कभी नहीं सताती।

सरित सकल तीरथ भवनासा। करइ तुलसिदल माँझ निवासा॥
मंजरि जेहिं सिरु निकसत प्राना। परसहि जम न सोउ अघखाना॥

समस्त पवित्र नदियाँ और भव का नाश करनेवाले तीर्थ तुलसीदल में निवास करते हैं। मरते समय जिसके सिर के निकट तुलसीम.री होती है, उस महापापी को भी यम स्पर्श नहीं कर पाते।

तुलसि काठ जे चंदन करही। करम बंध बारिधि सो तरही॥

जो तुलसी की लकड़ी से तिलक करता है, वह मनुष्य कर्मबन्धनरूपी समुद्र तर जाता है।

दोहा- **पितर श्राध तहँ करिअ जहँ सुभदा तुलसिहि छाह।**
किए दान तहँ अखय फल भव तर पितर अथाह॥८॥

पितृों का श्राद्ध भी वहीं करना चाहिये जहाँ शुभदायिनी तुलसी की छाया हो। उसकी छाया में दान करने का फल अक्षय होता है और श्राद्धकर्ता के पितृ भी अथाह भवसिन्धु से तर जाते हैं।

चौ.- **तुलसिहि जनम जगत हित हेतू। सो पिय पावन करु उन्हँ सेतू॥**
तियधरमारिहि बाँधन प्रीती। तुलसि पदाम्बुज करिअ सुप्रीती॥

तुलसी का तो जन्म ही संसार के हित के लिये हुआ है। अतः प्रिय को पाने के लिये उन्हें साधन बना लो। उन श्रीहरि को प्रेम में बाँधने के लिये तुम तुलसी के चरण से उत्तम प्रीति करो।

सखिमुख तुलसि प्रताप अपारा। सुनि हरुआन राध दुख भारा॥
करन रमेसहिं पुनि अनुकूला। करै लागि ब्रत मंगल मूला॥

सखि के मुख से तुलसी की अपार महिमा सुनते ही राधाजी के दुःख का भार हल्का हो गया और श्रीहरि को अपने अनुकूल करने के निमित्त, वे मङ्गलों के मूल उस व्रत को करने लगी।

केतकि बन करि बिमल बिभागा। कीन्हेंसि तुलसि भवन अनुरागा॥
उत्तम बीथि प्रदच्छिन लागी। जासु धरनि चिंतामनि पागी॥

केतकीवन में उत्तम स्थान देखकर राधाजी ने प्रेम सहित तुलसी का मंदिर बनवाया। प्रदक्षिणा के लिये मंदिर के चारों ओर एक सुन्दर गली थी, जिसकी भूमि चिन्तामणी से जड़ी थी।

अस नागरि पद नूपुर जैसा। लता बल्लिमय उपबन बैसा॥
तासु निकट पुनि एक तड़ागा। उमगहिं जिन्हँ तट खग अनुरागा॥

उस स्थानरूपी नागरी के निचले भाग में नूपुर के समान लतावल्लरियों से युक्त एक उपवन था। उसके निकट ही एक तालाब था, जिसके तटों पर पक्षियों का प्रेम उमड़ता रहता था।

दोहा- **अनख करत गृह अपरहि ते सो गृह अस निरखात।**
बैजयन्ति धुज सहित जस सुरपति सदन सुहात॥९॥ (क)

(वहाँ स्थित) अन्य भवनों से प्रतिस्पर्धा करता हुआ वह तुलसी मंदिर ऐसा दिखाई पड़ता था, जैसे वैजयन्ति मालाओं से बने हुए ध्वज से युक्त देवराज इन्द्र का महल सुशोभित होता है।

तुलसि गोड़ तहँ रोपि पुनि करि नाना बिधि नेम।
गरग सम्मतिहि तें सुब्रत करै लागि अति पेम॥९॥ (ख)

फिर वहाँ पर तुलसी के पौधे का आरोपण करके, अनेक प्रकार के नियम लेकर महर्षि गर्ग की सम्मति के अनुसार राधाजी बड़े प्रेम से तुलसी व्रत करने लगी।

चौ.- **पृथक पृथक रस गहि प्रतिमासा। तरु सींचेहुँ पुरवन निज आसा॥**

ब्रत एहिबिधि उन्ह पूरन कीन्हा। मुनि तें उद्यापन दिनु लीन्हा॥

अपनी इच्छापूर्ति के लिये प्रत्येक माह में उन्होंने अलग-अलग रसों से उस पौधे को सींचा। इस प्रकार उन्होंने व्रत पूर्ण किया और गर्गाचार्य से उद्यापन का दिन निश्चित करवाया।

बदि परुआ बैसाखहि माहा। ब्रत उजवेहुँ करि भब्य उछाहा॥
बाँस घसे जस उपजइ ज्वाला। तस भइ प्रगट तुलसि तेहिंकाला॥

वैशाख माह के कृष्णपक्ष की एकादशी को राधाजी ने एक भव्य उत्सव द्वारा व्रतोद्यापन किया। उस समय तुलसीजी वैसे-ही प्रकट हुई, जैसे बाँस को घिसने से अग्नि उत्पन्न होती है।

वदनु प्रफुल्लित उर बनमाला। पुरट तखत आसीन बिसाला॥
अरध इन्दु सम भाल मनोहर। केसर बैंदि नखत जनु सुन्दर॥

उनके मुख पर हास्य और छाती पर वनमाला शोभित थी और वे विशाल स्वर्णसिंहासन पर बैठी थी। उनका अर्द्धचन्द्र-सा ललाट मनोहर था, जहाँ नक्षत्र जैसी केसर की सुन्दर बिन्दी थी।

रति मनहरनानन छबिरासी। जेहिं तट सदगुन बिहग प्रबासी॥
आतप महुँ दय घन भुज चारी। अंगकांति दामिनि सम भारी॥

कामपत्नि का मन हरनेवाला उनका मुखए सौन्दर्य का सागर था, सद्‌गुण जिसके तट के प्रवासी पक्षि थे। उनकी चारों भुजाएँ दुःख में दया जैसी और अङ्गकान्ति विद्युत जैसी सघन थी।

दृग नव कंजन्ह छबि के झाईं। कुंडल प्रभा मृगन्ह चपलाई॥
सिरु मंडित बर रजत सिखंडा। मानहुँ सान्ति प्रतीक अखंडा॥

उनके नेत्रों में नवीन कमलों के सौन्दर्य की छाया और कुण्डलों की आभा में हिरणों की चञ्चलता थी। उनके शीश पर चाँदी का उत्तम मुकुट था, जो मानों शान्ति का अखण्ड प्रतीक था।

दोहा- बय किसोरि कज्जलि बरन तपमय अम्बर पीत।
सिरु कुटिला सम बेनि बर कुसुमावलिजुत फीत॥१०॥

वे किशोरावस्थावाली, श्यामवर्णा, तप के तेज से युक्त और पीले वस्त्र धारण किये थी। उनके सिर पर सर्पिणी के समान उत्तम वेणी थी, जो चौड़ी और पुष्पमालाओं से अलंकृत थी।

चौ.- हरिहि सभीत करइ जिन्हँ क्रोधा। ज्योहिं तेन्ह भगतिनि दुख सोधा॥
त्योहिं बिसरि तप तें चलि आई। भगति प्रताप इहइ महिराई॥

जिनका क्रोध श्रीहरि को भय देनेवाला था, उन तुलसीजी ने जैसे ही भक्तिनि का दुःख देखा, वैसे ही वे तपस्या त्यागकर उसके पास चली आई। हे परीक्षित! भक्ति की यही महिमा है।

राधउ दृग उन्ह चरन पखारी। भै बिलीन उन्ह मुख छबि भारी॥
जब रस ससि कहँ पूरन पाई। तपसिनि हिय भा नीरधि नाई॥

उस समय राधाजी के नेत्र देवी तुलसी के चरण पखारकर उनके मुख की महाशोभा में विलीन हो गए। जब उनके प्रेमरूपी चन्द्रमा को पूर्ण पाकर तुलसीजी का हृदय समुद्र-सा हो गया।

कर तरंग उठि तब भरि अंका। रस कहँ सबबिधि कीन्ह असंका॥
कलावती बृषभानुकुमारी। दीन्ह मोहि रस तैं अति भारी॥

तब उनकी हाथरूपी तरङ्गें उठी और राधाजी को अङ्क में भरकर अभय कर दिया। उस समय उन देवी ने कहा- हे कलावती व वृषभानु की पुत्री राधा! तुमने मुझे महान प्रेम दिया है,

तातें मैं तुम्हार अनुकूला। काढ़बि बेगि बिरहु कर सूला॥
पूरनकाम तदपि जग लागी। तुम भइ मोर चरन अनुरागी॥

इसलिये मैं तुम पर प्रसन्न हूँ और शीघ्र ही तुम्हारे हृदय में गड़ा वियोगरूपी शूल निकाल दूँगी। तुम पूर्णकाम हो, तथापि संसार के हित के लिये तुम मेरे चरणों की अनुरागिनी हुई हो।

हिय कर बिकल मनोरथ तोरे। लहहि प्रतोष अनुग्रह मोरे॥
पिय नित रहब तोर अनुकूला। ब्यापिहि कबहुँ न उन्ह रिस सूला॥

तुम्हारे हृदय के व्याकुल मनोरथों को मेरे अनुग्रह से परमशान्ति प्राप्त होगी। तुम्हारे प्रियतम सदैव तुम्हारे अनुकूल बने रहेंगे और उनके क्रोध का शूल कभी भी तुम्हें नहीं व्यापेगा।

सुरसरि सम पिय रस सुचि धारा। लहत रहब तव हित बिस्तारा॥

गङ्गा के समान प्रिय के प्रेम की पवित्र धारा तुम्हारे लिये नित्य विस्तार प्राप्त करती रहेगी।

दोहा- **तुलसि बचन भरि अंक निज अति हरषे उन्ह कान।**
पै अपलक दृग सकुचबस झुके चरन अति जान॥११॥

तुलसी के ऐसे वचनों को अपने आँचल में भरकर राधाजी के कान अत्यन्त हर्षित हो उठे। किन्तु अपलक हुए उनके नेत्र अपलकता पर लजाकर देवी तुलसी के चरणों में जा लगे।

चौ.- **उन्ह बिरहातप बच निसि सीता। मनहुँ कोहि केउ भयउँ बिनीता॥**
सघन निसा नभलहरन्हि माहीं। पुंढरिकावलि जनु उमगाहीं॥

उनका विरहताप देवी तुलसी की वचनरूपी रात्री की शीतलता में विलीन हो गया, मानों कोई क्रोधी पुरूष नम्र हो गया। जैसे निबिड़ रात्रि में आकाश की लहरों में नक्षत्ररूपी कमल खिलते हैं,

जथा प्रथम पावस जलु पावा। महि अंचल मधु गंध सिंचावा॥
तस बिछोह पतझर के झाई। बचन बसंत तुलसि कर पाई॥

जैसे वर्षा ऋतु का प्रथम जल पाकर पृथ्वी का आँचल मधुर सुगन्ध से भर जाता है, ठीक वैसे ही वियोगरूपी पतझड़ की छाया में देवी तुलसी के वचनरूपी बसन्त को पाकर;

राधउ हिय बन उपजी निर्मल। मिलनि कलपना कइ नव कोपल॥
श्रद्धानत सिरु पुनि पग लागा। पुनि पुनि राधा यह बरु माँगा॥

राधाजी के हृदयरूपी वन में मिलन की निर्मल कल्पनारूपी कोपलें उत्पन्न हो गई। उनका श्रद्धानत सिर देवी के चरणतलों पर जा लगा और राधाजी ने बार-बार यह वर माँगा कि,

मन मधुकर रितु कुरितु बिसारी। पियहि पदाम्बुज रत रह भारी॥
नभ सुषमित जस रबि ससि पाई। बाम रुचहि तिमि तुअ तें कन्हाई॥

मेरा मनरूपी भौंरा ऋतु-कुऋतु भुलाकर प्रिय ही के चरणकमलों में घनानुरक्त रहे। तब तुलसी ने कहा- जैसे सूर्य-चन्द्र से आकाश शोभित होता है, वैसे-ही श्रीकृष्ण का वामाङ्ग तुमसे रुचे।

स्याम सदा रुचि राखहि तोरी। तदपि बिनय तैं कीन्हिसि मोरी॥

अस बिचारि प्रमुदित मनु मोरा। अनुभव करइ गरुअ सब ओरा॥

यद्यपि श्रीकृष्ण सदैव तुम्हारी रुचि का ध्यान रखते हैं, फिर भी तुमनें मुझसे महान विनय की है। ऐसा विचारकर परम आनन्दित हुआ मेरा मन सब ओर गर्व का अनुभव कर रहा है।

एहि प्रकार अति प्रेम बढ़ाई। तुलसि बार निज लोक सिधाई॥
इहँ राधेहि ब्रत सुमिरि महाना। परिछा लेन ठानि भगवाना॥

इस प्रकार राधाजी से अत्यधिक प्रेम बढ़ाकर तुलसी अपने लोक को चली गई। इधर राधाजी के महान व्रत का स्मरण करके, भगवान श्रीकृष्ण ने उनकी परीक्षा लेने का निश्चय किया।

पुनि नटखट आए बरसाना। धरि तिय बेषु छदम छबिखाना॥
नूपुर हिय भरि मोद पुनीता। चरन माँझ गावइ रसु गीता॥

फिर वे नटखट कपट से स्त्री का अत्यन्त सुन्दर वेष बनाकर राधाजी के गाँव बरसाना आ गए। उस समय नुपूर हृदय में पवित्र आनन्द भरकर उनके चरणों में प्रेम के गीत गा रहे हैं

कटि करधनि लघु घुंघचिन्ह वारी। पृहापुष्पजुत जनु हिय डारी॥
अँगुरि पहिरि मुद्रिका मनोहर। जासु मध्य राधहि छबि सुन्दर॥

उनकी कमर में छोटी-छोटी घण्टियोंयुक्त करधनी है, जैसे इच्छापुष्पों से लदी हृदयलता हो। उन्होंने अँगुली में मनोहर मुद्रिका पहन रखी है, जिसके मध्य राधाजी का सुन्दर चित्र था।

मनिकंचन भुजबन्द सुबाँहा। सनमुख पथ दुतिमय जिन्हँ छाहा॥
पुरटकंठिका मनिमय माला। मार उरझि सक जाकर जाला॥

उनकी सुन्दर भुजाओं पर मणियुक्त स्वर्णभुजबन्ध थे, जिसकी छाया से मार्ग प्रकाशित हो रहा था। उनके कण्ठ में स्वर्णकण्ठी व मणिमाला थी, जिसके जाल में कामदेव भी उलझ सकते थे।

सिरुप्रसून छबि को लहँ पारा। जनु घन मध्य तरनि उजिआरा॥
अरधचंद उदभाषित काना। कंपहि जनु अबूझ भय माना॥

उनके शीशफूल की सुन्दरता का पार कौन पा सकता है, जैसे मेघों के बीच सूर्य का प्रकाश हो। उनके कानों में उद्भाषित अर्द्धचन्द्राकार कुण्डल मानों अज्ञात भय से आतुर हो काँप रहे हैं।

सिरु कुटिला इव केस बिलासा। जहँ कौतुक मनि करइ प्रकासा॥
रतिमद दवन दिब्य तनु आभा। एहिबिधि सँवरे सरसिजनाभा॥

उनके सिर पर सर्पिणी-सा केशविन्यास था, जिस पर कौतुकरूपी मणि प्रकाशित हो रही थी। उनकी दिव्य अङ्गकान्ति रति का गर्व हरनेवाली थी। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने शृङ्गार किया।

दोहा- **अंचल भरि अस छबि उदधि स्यामा अति इठलाइ।**
रहा जहाँ बिरहिनि भवन अति आतुरि तहँ आइ॥१२॥

सौन्दर्य का ऐसा सागर अपने आँचल में समेटकर वह श्यामा इठलाती हुई बड़ी उतावली से वहाँ आई, जहाँ श्रीकृष्ण-वियोगिनी राधाजी का भवन था।

चौ.- **कनक कोटमय मंदिर न्यारा। बज्र केर जिन्हँ चारि दुआरा॥**
राजभवन बर कर अजिराँचल। स्यामकरन हय सोहत चंचल॥

उस विचित्र भवन के चारों ओर सोने के परकोटे थे। उसमें वज्रनिर्मित चार दरवाजे थे। उस उत्तम राजभवन के आँगन के भाग में बँधे हुए चञ्चल श्यामकर्ण अश्व सुशोभित थे।

धेनु सबत्स बृषभ समुदाई। बिबिध बिभूषनजुत निअराई॥
लकुट धरे अगनित गोपाला। मुरलिनाद मृदु करइ रसाला॥

उनके निकट ही अनेक आभूषणों से सजाई हुई सवत्सा गायों और बैलों के समुदाय थे। साथ ही हाथों में लट्ठ लिये हुए अनेक ग्वालें मधुर और कोमल मुरली ध्वनि कर रहे थे।

तेहिं सँव उत्तम अवसर जानी। मोहिनि प्रबिसि भवन अतुरानी॥
पुरट खंब रुच मनिन्ह कतारा। भवन गगन उड़ मनहुँ अपारा॥

उस समय सुअवसर जानकर मोहिनी उतावली से भवन में प्रवेश कर गई। भवन के भीतर स्वर्णस्तम्भों पर मणियों की मनभावन कतारें थी, मानों भवनरूपी आकाश में अनेक तारे हों।

बहुरि अजिर मनि बज्र खचाए। निकट ताल नव पंकज छाए॥
कछुक कुँअरि तहँ बिचरहि संगा। मनु छबि बिचरहि परम उमंगा॥

भवन के आँगन में एक सरोवर था, जिसके किनारे मणियों और हीरों से जड़े थे। उसके जल में नवीन कमल खिले थे। कुछ युवतियाँ वहाँ साथ विचर रही थी, जैसे

ताल मृदंग बजावत बीना। सुनहिं गाव कछु नर्तन लीना॥

तालियाँ, मृदङ्ग व वीणा बजाते और सुनते कुछ गोपियाँ गा रही थी और कुछ नृत्यलीन थी।

दोहा- भवन माँझ मन बपुष श्रम हरनिहार एक बाग।
सम सुषमित जे सब रितुहि सोहहि सहित तड़ाग॥१३॥

उस भवन में मन और शरीर की थकावट हरनेवाला एक उपवन स्थित था, जो छहों ऋतुओं में समान रूप से पुष्पित, पल्लवित और सरोवर सहित सुशोभित रहता था।

चौ.- निंब कुंद मंदार अनारा। सो बन छबिहि प्रबल आधारा॥
केतकि माधवि लतिकन्ह माला। हिय धरि मिलनि मनोरथ आला॥

नीम, कुन्द, मन्दार और अनार के वृक्ष उस उपवन की सुन्दरता के अत्यन्त दृढ़ आधार थे। केतकी और माधवी लताओं की मालाएँ अपने हृदय में मिलन का विचित्र मनोरथ धरे,

बिटपन्ह भुज गहि उमगि उमंगा। झूमति रह गहि पवन प्रसंगा॥
नवल मुकुल कोपल त्रयवातहि। बिगसावत रह आपन गातहि॥

वृक्षों की शाखारूपी भुजाएँ पकड़कर, उत्साह से वायु के झोकों के साथ झूमती रहती थी। वृक्षों पर स्थित नवीन कलियाँ और कोपलें शीतल मन्द और सुगन्धित वायु में बढ़ती रहती थी।

जथा जुबति कइ मृदु अभिलाषा। पाइ तरुनपनु करइ बिकासा॥
त्रयसमीर सो पुनि पुनि धाई। सहसदलन्हि सौरभ बरिआई॥

जैसे यौवन पाकर किसी युवती की मधुर अभिलाषाएँ विकसित हो जाती है। फिर वही त्रिविध वायु बार-बार दौड़कर हठपूर्वक सहस्रदल कमलों की सुगन्ध

गहि निज अंचल ढारहि तहवाँ। कन कन रितुपति बैठेउँ जहवाँ॥

भृंग निरखि अस तजि मधुपाना। अति सरोष मन कर अनुमाना॥

अपने आँचल में समेटकर वहाँ उढ़ेल देती है, जहाँ कण-कण पर ऋतुराज वसन्त बैठा हुआ है। यह देखकर भौरे मधु पीना त्यागकर बड़ा क्रोध करके, मन में सोच रहे हैं। कि

अनिल भयउँ हमार निधि चोरा। बेगि ताहि बाँधिअ बरजोरा॥
अस बिचारि सब पाख पसारी। लागे पवन पाछ रिस भारी॥

यह वायु हमारे धन को चुरानेवाला हो गया है, इसलिये इसे बलपूर्वक बाँध लेना चाहिये। ऐसा विचार करके, अपने पङ्ख फैलाकर वे अत्यन्त क्रोधपूर्वक वायु के पीछे जा लगे।

पै पव देखि पंकरुह सौरभ। तापर डारि कीन्ह तिन्हँ हतप्रभ॥
अस दयनीय दसा लखि तासू। गगनप्रजा करि लगि उपहासू॥

किन्तु वायु ने उन्हें आता देख उन पर कमलों की सुगन्ध डाल दी और उन्हें हतप्रभ कर दिया। उनकी दयनीय दशा देख वहाँ उपस्थित पक्षि चहचहाकर उनका उपहास करने लगे।

प्रतिसाखन्हि उन्ह कलरव करेहूँ। अलिन्ह खिजाइ प्रमुद हिय भरेहूँ॥
द्रुमगन आपन पात पुराने। हरितिमाइ केहि भाँति दुराने॥

वृक्षों की प्रत्येक शाखा पर बैठे पक्षियों ने चहचहाते हुए भौरों को चिढ़ाकर हृदय में अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया। वहाँ के वृक्षों ने अपने पुराने पत्तों को हरियाली में किस प्रकार छिपा लिया,

अश्रुन्ह जेहिं बिधि सेव प्रबीना। अनुकृत हँसि महुँ करहि बिलीना॥
बिपिन बीच बह बिमल पनारा। बक पकरइ झख जाकर धारा॥

जैसे सेवा में निपुण सेवक अपने अश्रुओं को झूठी हँसी में छिपा लेता है। उस उपवन के मध्य स्वच्छ जलयुक्त एक पनाला बह रहा था, जिसकी धारा में बगुले मछलियाँ पकड़ रहे थे।

जनु प्रेयसि मन पिय के सपुना। खोजत फिरइ थान बर अपना॥
अस सुषमित थल मंदिर नाना। कौसल जासु न जाइ बखाना॥

जैसे प्रेयसि का मन प्रिय के द्वारा देखे गए स्वप्नों में अपना उत्तम स्थान खोजता रहता है। ऐसे सुन्दर स्थान में अनेक भवन बने थे, जिसकी स्थापत्यकला का वर्णन नहीं हो सकता।

दोहा- **भवन एक तहँ रुचिर अति गहि राधहि पद रेनु।**
सुषमानिधि पर बिबिध बिधि दरसावहि निज ऐनु॥१४॥

वहाँ स्थित एक अत्यन्त सुन्दर भवन राधाजी के चरण कमलों की रज पाकर सौन्दर्यसमुद्र पर अनेक प्रकार से अपना अधिकार व्यक्त कर रहा था।

चौ.- **गिरि सन बिस्तृत बन सुकुमारू। गहि मृदुता सुबास उपहारू॥**
भेंटन तेहिं मंदिर कहँ ठारा। बोरत सबनि दिसिन्हँ रस धारा॥

गोवर्धन पर्वत के सन्मुख फैला सुकुमार वन, कोमलता व सुगन्ध का उपहार लेकर उसे उस भवन को भेंट करने के लिये, समस्त दिशाओं को प्रेम की धारा में भिगोता हुआ खड़ा है।

स्यामा अस छबि निरखि रिझानी। चली जात पुनि पुनि मुसुकानी॥
तेहिं पद कंज सुभगता पाई। सर गिरि महि सुषमा प्रलुभाई॥

श्यामा ऐसी सुन्दरता देखकर रीझ गई और बार-बार मुस्कुराकर उस ओर ही चली जा रही है। उसके चरणों की सुन्दरता देख वहाँ के सरोवर, पर्वत व भूमि की छवि भी विमुग्ध हो उठी।

चितवन दीन्हि सकुचि कर जोरी। स्वागत करइ दरप निज छोरी॥
मालति मद रंजित पद कंजा। जेहिं तें भवन भयउँ सुख पुंजा॥

उनकी दृष्टियों ने सकुचाकर हाथ जोड़ लिये और गर्व भुलाकर वे श्यामा का स्वागत करने लगे। उनके चरणों में मालतीपुष्पों का मकरंद लगा है, जिससे भवन सुगन्धित हो रहा है।

ललिता थाँकि तहाँ तेहिं देखी। करइ बिचार अचंभ बिसेषी॥
यह को जापर अंतर डारी। बरबस झुकइ होत मतवारी॥

उसे वहाँ घूमते देखकर ललिता थकित-सी सोचनें लगी कि यह स्त्री कौन है, जिस पर मनरूपी लता मतवाली होकर बलपूर्वक झुकी जा रही है।

बदनोपर ससि केर प्रकासा। पुष्पित द्रुम दुतिजुत परिहासा॥
एहिबिधि तरकत चख मुगधाए। थिर भै मृग सुभाउँ बिसराए॥

इसके मुख पर चन्द्र का तेज है और इसकी मुस्कान पुष्पित वृक्ष की-सी कान्तियुक्त है। इस प्रकार तर्क करते हुए ललिता के नेत्र मुग्ध हो चञ्चलता का त्यागकर, स्थिर हो गए।

ऐतनेहुँ मंदिर करत प्रकासा। राधा चलि आई सखि पासा॥

इतने में ही उस भवन में आभा बिखेरती हुई राधाजी अपनी सखि के पास चली आई

दोहा- सखिहि दृष्टि सरि संतत कान्हहि पदनिधि जाइ।
रही लहत बिश्राम बर लखि राधा अचराइ॥१५॥

ललिता की दृष्टिरूपी नदी निरन्तर कन्हैया के चरणरूपी समुद्र की ओर जाकर वहाँ उत्तम शान्ति प्राप्त करने लगे। यह देखकर राधाजी विस्मित हो गई।

चौ.- अपर सुमुखि निज भवन निहारी। अचरज उठेउँ नयन निज फारी॥
पुनि छबि गरुअ बिगत तेहिं जानी। राधा कीन्ह हरषि अगवानी॥

अपरिचित सुन्दरी को भवन में देख उनका आश्चर्य आँखे फाड़कर उठ खड़ा हुआ। फिर स्यामारूपी सुन्दरी को सौन्दर्य के अहं से रहित जानकर राधाजी ने उसका स्वागत किया।

सखि गन लखि थकि तिन्हँ छबि नीकी। जनु ससि उए उड़ावलि फीकी॥
कहि मृदु बचकर गहि सनमानी। राधा तेहिं एकान्त लै आनी॥

उसका उत्तम सौन्दर्य देख सखियाँ थकित रह गई, मानों चन्द्रोदय होने से तारे फीके पड़ गए हों। राधाजी ने कोमल वचनो से उसका स्वागत किया और हाथ पकड़कर एकान्त में ले आई।

आसनु दीन्ह हृदयँ सुखमाना। निज परिचय राधिका बखाना॥
सखि तैं आपु इहाँ चलि आई। यह सुभाग मम तोर बड़ाई॥

वहाँ उन्होंने हृदय में सुख मानकर उसे आसन देते हुए; अपना परिचय दिया। राधाजी ने कहा- हे सखि! तुम यहाँ स्वयं आ गई हो, यह मेरा सौभाग्य और तुम्हारा बड़प्पन है।

तउँ परिचय सुनिबे मम काना। बिकल कहहुँ केहि कारन आना॥

अस छबि दरस कतहुँ जनि धरनी। अतिसय मुदद हरनि हिय जरनी॥

तुम्हारा परिचय सुनने के लिये मेरे कान आतुर हैं। कहो! तुम यहाँ किस कारण आई हो। तुम्हारे जैसी छवि भूतल पर कहीं नही, जो अत्यन्त आनन्ददायक व जी की जलन हरनेवाली है।

मोर जोग जे काजु तुम्हारा। कहु तजि सकुच केर यह भारा॥
चितवन चपल तोर मृदु भाषा। बिचरनि बदनुकांति अरु हासा॥

यदि मेरे योग्य तुम्हारा कोई कार्य हो, तो तुम सङ्कोच का भार त्यागकर मुझसे कहो। तुम्हारी चितवन की चपलता, मधुर वाणी, चलने की ऐड़, मुख की प्रभा और मुस्कान आदि

दोहा- जानि परइ मोहि सबनि बिधि तुअ पिय सरिस ललाम।
सुभे मिलन मोहि प्रतिदिवस आवत रहु मम धाम॥१६॥

सब प्रकार से मुझे अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के समान अत्यन्त मधुर जान पड़ती है। हे शुभे! तुम मुझे नित्य ही मेरे भवन में मिलने आती रहना।

चौ.- जे इहँ आवत लग तोहि त्रासा। तो मोहि आपन कहहुँ निवासा॥
इंदु बदनु मोहि रुचहि तुम्हारा। मानहुँ पिय तिय बेषु सवारा॥

यदि यहाँ आने में तुम्हें भय लगता हो, तो तुम मुझे अपना निवास बता दो। मुझे तुम्हारा चन्द्रमा का-सा मुख बड़ा ही प्रिय लगता है, मानों प्रियतम ने ही स्त्री का वेष धर लिया हो।

सुनि मोहिनि करि कह परिहासा। इहँ तें उत्तर मोर निवासा॥
गोपदेबि अस नाउँ हमारा। तहाँ मोर छबि सुजसु प्रसारा॥

यह सुन श्रीकृष्णरूपा मोहिनी ने ठिठोली करते हुए कहा कि मेरा घर यहाँ से उत्तर दिशा में है। मेरा नाम गोपदेवी है। मैं जहाँ रहती हूँ, वहाँ मेरी सुन्दरता की कीर्ति छाई हुई है।

तेन्हहि ध्यात बैठी एक बारा। चितवत रहि कज्जलि कइ धारा॥
तब त्रिलोक जय करि श्रमु छाई। तउँ लावन्य कथा तहँ आई॥

(अपनी) उसी (कीर्ति) का ध्यान करती हुए मैं एक बार यमुना के तट पर बैठी उसकी धारा को निहार रही थी। उसी समय तीनों-लोकों को जीतकर तुम्हारी सुन्दरता की कथा थक कर वहाँ आई,

जेहिं जीते बरबस मम काना। पुनि निज सचिव कीन्ह मम ध्याना॥
अनुभव तासु आतमहुँ पाई। जिग्यासा मम मनु अधिकाई॥

जिसने बलपूर्वक मेरे कानों को जीत लिया और मेरे चित्त को अपना मन्त्री बना लिया। फिर अपनी आत्मा में उस लावण्यकथा का अनुभव पाकर मेरे मन की जिज्ञासा बढ़ गई।

दोहा- पर हमार अचरज सकल बृथा गयउ तोहि देखि।
जे सुषमामूरति प्रगट तेहिं हित यह न बिसेषि॥१७॥

किन्तु मेरा सारा कौतुहल तुम्हें देखकर व्यर्थ ही गया। क्योंकि जो स्वयं साक्षात् सुन्दरता की मूर्ति ही हो, उसके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है।

चौ.- एहिबिधि करत परसपर बैना। उपबन गई जुगल मृगनयना॥

कुसुम आनि कंदुक गढ़ि राधा। खेलि लागि दुहुँ हरष अगाधा॥

इस प्रकार आपस में बातें करते हुए मृग के-से चञ्चल नेत्रोंवाली वे दोनों वाटिका में गई। वहाँ राधाजी ने पुष्प लेकर एक गेंद बनाई और उससे दोनों अत्यन्त हर्षित होकर खेलनें लगी।

बहुरि श्रमित भइ जब दुहुँ आली। बैठि निरखि चम्पा कइ डारी॥
लखि लतिकापि सुअगवन तासू। झुकि झुकि नमन करइ उल्लासू॥

फिर जब दोनों थक गई, तब चंपा की एक लता को देख, वे उसके निकट बैठ गई। उस समय लता उनका शुभागमन जानकर झुक-झुककर बड़े उल्लास से उन्हें प्रणाम करने लगी।

पिय सुधि हित बर अवसर जाना। मुखससि राध बसनघन आना॥
सुदृढ़ हास गरि भयउँ सँकोचा। नयनन्हँ श्रवन गयउ उर सोचा॥

प्रिय की सुधि के लिये सुन्दर अवसर जानकर राधाजी ने अपने मुखरूपी चन्द्रमा को दीर्घ घूँघटरूपी मेघों में छिपा लिया। उनका गहरा हास्य प्रिय स्मरण से लज्जा में परिणत हो गया और उनके नेत्रों, कानों तथा मन की चिन्ता मिट गई।

अरुन बिलोचन ढारि किवारा। भए सहज जनु बरजहि मारा॥
सकुचे गात सविंटि निज जोती। हिय मुद तड़ित दमक अति होती॥

उनके लज्जा से लाल हुए नेत्र पलके बन्दकर सहज हो गए, जैसे काम का विरोध कर रहे हो। आभा समेटे उनके अङ्ग सकुचा गए और मन में आनन्दरूपी सघन बिजली दमकने लगी।

प्रगट जे लखि पर तिन्हँ भ्रम जानी। कंपहि तन अघटित भय मानी॥
जानि न परइ बिषम भ्रुअ भाषा। भयउँ कपारु तरंग बिलासा॥

जो प्रत्यक्ष था उसे भ्रम जानकर अघटित भय से उनका शरीर काँपने लगा। भौहों की जटिल भाषा समझी नहीं जा सकती थी, साथ-ही ललाट पर विचारों की रेखाएँ उभर आई थी।

चख सकोच उठि चेत सँभारा। तुरत बाँकि चितवनि पइसारा॥
कम्पित अधरन्हँ केर ललाई। बिहँसनि गंध मधुर चलि आई॥

नेत्रों के सङ्कोच ने उठकर उनके चित्त को सँभाला और तुरन्त ही बाकी चितवन में प्रविष्ट हो गया। उनके काँपते हुए अधरों की लालिमा पर मुस्कान की मधुर सुगन्ध छा गई।

तब रहि सकी न मौन लालसा। बरजि हियहि चढ़ि जीहहुँ सहसा॥
पुनि सबदन्ह धरि मृदुल सरीरा। अधरन्ह तें कस फूटि अधीरा॥

जिससे उनकी इच्छा चुप न रह सकी और हृदय का विरोध करते हुए, सहसा उनकी जिह्वा पर चढ़ आई। फिर शब्दों का कोमल शरीर धरे वह अधीर हो कैसे उनके अधरों से फूट पड़ी;

फूकहुँ पर जस अँगुरि बिलासा। मधुर सबद फूटहि जड़ बाँसा॥

जैसे फूँक और अँगुलियों की आवृत्ति के चलने से निष्प्राण बाँस से मधुर शब्द फूट पड़ते हैं।

दोहा- **जाहिं जगे प्रथमहि कुसुम बिगसहि स्वागत हेतु।**
की तैं कबहुँक निकट तें निरखे सो खगकेतु॥१८॥ (क)

जिनके जागने से पूर्व ही पुष्प वृन्द जिनके स्वागत के लिये खिल उठते हैं, उन पद्मि के चिह्नयुक्त ध्वजावाले श्रीकृष्ण को क्या कभी तुमने निकट से देखा है?

सुर तनुजन्हि चख बिमोहित करहि जासु चख ओज।
कि तुम निरखे सो कुँअर जिन्हँ कर सोह सरोज॥१८॥ (ख)

जिनके नेत्रों का तेज देवताओं की कन्याओं के नत्रों को भी अत्यधिक आकर्षित कर लेता है और जिनके हाथ में कमल का पुष्प शोभा देता है, क्या तुमनें उन कुमार को देखा है?

चौ.- तब मोहिनि परिखन उन्ह प्रीती। कहि लगि हिय धरि निंदउ नीती॥
सखि तुम बहुत प्रसंसेहुँ जाहीं। भली भाँति मैं जानउँ ताहीं॥

तब राधाजी के प्रेम को परखने के लिये हृदय में निन्दारूपी नीति को धरे मोहिनी कहने लगी कि हे सखि! तुमने जिसकी बहुत प्रकार से प्रशंसा की है, मैं उन्हें भली-भाँति जानती हूँ।

सुनु सखि एक तासु करतूती। परिहरि चहुँ मैं जिन्हँ अनुभूती॥
एक बार मैं माखन जोरी। बेचे हित निकसी ब्रज खोरी॥

हे सखि ! तुम मुझसे उसकी एक करतूत सुनो, मैं जिसकी अनुभुति को भूलना चाहती हूँ। एक बार मैं माखन लेकर उसे बेचने के लिये व्रज की गलियों में निकली।

सहज चलत रहि मैं मटकाई। तब मोहि अवचट मिलेउँ कन्हाई॥
बीथि सकीरनि पुनि तहँ सूना। सो भा तासु दुसाहस दूना॥

जब मैं (स्त्रीसुलभ) सहजभाव से मटककर चल रही थी, तभी अचानक मुझे कन्हैया मिल गए। वह गली सँकरी थी, ऊपर से वहाँ एकान्त भी था; इसीलिये कन्हैया का दुःसाहस भी दुगुना हो गया।

भुज पसारि मम मारग रोधा। बहुरि खिजाएहुँ किए बिरोधा॥
गहेउ हाथ मम सकुच बिहाई। लखि एकान्त पुनि कह मुसुकाई॥

उसने भुजाएँ फैलाकर मेरा मार्ग रोक लिया और विरोध करने पर मुझे चिढ़ाने लगे। फिर सङ्कोच त्यागकर उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया और एकान्त जानकर मुस्कुराते हुए, मुझसे बोले।

दोहा- गजगामिनि मृगलोचना मैं अहिरन जुबराज।
देहुँ राजकर रूप दधि न त अज बिगरहि काज॥१९॥

हे गजगामिनी! हे मृगलोचना! मैं अहीरों का युवराज हूँ। इसलिये तुम राजकर के रूप में मुझे दहीं दो। अन्यथा आज काम बिगड़ा ही समझो।

चौ.- मैं कहेउ कछु भृकुटि मरोरी। समुझु न मोहि सो ग्वालिन भोरी॥
जे तव अनुचित हठ सनमानी। हरषि चलावहि दधिहुँ मथानी॥

तब मैंने कुछ भौहें तानकर कहा कि तुम मुझे उन गँवार ग्वालिनों के समान मत समझो, जो तुम्हारे अनुचित हठ का सम्मान करके, प्रसन्नतापूर्वक दहीं में मथनी चलाया करती हैं।

निकरहु तुरत तकहुँ निज गेहू। नृप कहि निजहि चहहि दधि लेहूँ॥
दधि लम्पट तुम सरिस न आना। देउँ निपट जनि सुनत रिसाना॥

तुरन्त निकलो व घर का मार्ग तको। स्वयं को राजा बता दहीं पाना चाहते हो। दहीलोलुप तुमसा कोई न होगा। मैं किसी भी स्थिति में नहीं दूँगी यह सुनते ही वह रूष्ट हो गया।

मम दधिघट तेहिं लीन्ह उतारी। महि पटकत पुनि बिहँसेउँ भारी॥
खात कछुक गोरस बरिआई। भरि मोहि भुज पुनि गयउ पराई॥

उसने मेरे सिर से दहीं का घड़ा उतार लिया और उसे पृथ्वी पर पटककर जोर से हँसा। फिर बलपूर्वक कुछ दहीं खाकर मुझे भुजाओं में भर लिया और फिर भाग गया।

तातें जर अब लौ मम गाता। भए अपावन तिन्हँ परसाता॥
ओछि जाति तनु अकथित कारा। धन बल सील न मुख छबिवारा॥

इसलिये उसके स्पर्श से अपवित्र हुए मेरे अङ्ग अब तक जल रहे हैं। नीच जाति के उस अकथ्य काले ग्वाले के पास न धन है, न बल है, न शील है और न ही उसका मुख सुन्दर है।

अस नर तें तुम कीन्हेंसि प्रीती। जानि परइ मोहि तुम मति रीती॥
सीख एक मानेहुँ तुअ मोरी। जातें कुसल रहहि सखि तोरी॥

ऐसे मनुष्य से तुमने प्रेम किया, मुझे तो तुम नितान्त बुद्धिरहित जान पड़ती हो। अब मेरी एक सीख सुनो। जिससे हे सखि! आगे चलकर तुम सकुशल रह सको।

स्याम स्याम मन कर गुनहीना। अंधकारि छलकला प्रबीना॥
जे जन भयउँ तासु अनुरागी। गति लहँ सो बावरपनु पागी॥

श्याम मन का काला और गुणहीन है। वह अन्याय में तत्पर और कपट करने में प्रवीण है। जो मनुष्य उसके प्रेम में पड़ता है। उसकी दशा पागलों के समान हो जाती है।

दोहा- **द्वेषजनित अति अटपटे सुनि तिन्ह बचन कठोर।**
कछु न कहेहुँ बृषभानुसुता हिय भा अचरज घोर॥२०॥

श्रीकृष्ण के विरुद्ध द्वेष से उत्पन्न हुए गोपदेवी के अत्यन्त अटपटे और कठोर वचन सुनकर राधाजी ने कुछ नहीं कहा, किन्तु उनके हृदय में महान आश्चर्य हुआ।

चौ.- **चख भै अरुन बिसरि अरुनाई। अधर हास पुनि गयउ सुखाई॥**
भ्रुअ बलखात किए अति रोषा। जनु चितएहुँ सबपुष तेहिं दोषा॥

प्रियनिन्दा पर उनके नेत्र लज्जा से मुक्त हो क्रोध से लाल हो उठे। अधरों की हँसी सूख गई और क्रोध की अधिकता से भौंहों में बल पड़ने लगा, मानों उन्होंने सजीव दोष ही देख लिया।

मुखससि रिसमय अस जब जाना। प्रमुद सोम तेहिं बिसरि पराना॥
सोउ रिसहि रसना जब डोली। गिरा सुमिरि राधा तब बोली॥

उनका मुखचन्द्र क्रुद्ध है, यह जानकर आनन्दरूपी अमृत उसे छोड़कर चला गया। उसी क्रोध से जब उनकी जीभ फड़क उठी तब माता सरस्वती का स्मरण करके, राधाजी इस प्रकार बोली-

जिन्हँ पद रति लहिबे दिनुराता। अज हर रत रह सुरन्हँ सँघाता॥
सुक अंगिरा कपिल सनकादी। नारद सब परमारथवादी॥

ब्रह्माजी और शिवजी जिनके चरणों में प्रेम प्राप्त करने के लिये देवताओं के साथ दिन-रात तत्पर रहते हैं। शुकदेव, अंगिरा, कपिल, सनकादि, नारद आदि ये सभी परमार्थ तत्व के ज्ञाता;

हिय धरि जिन्हँ प्रति सुचि अनुरागा। परसत चरन सरोज परागा॥
जे पर काम अकल अबिनासी। गुनातीत जग कन कन बासी॥

मन में जिनके प्रति पवित्र प्रेम धरकर, जिनके चरणकमलों की रज का स्पर्श किया करते हैं। जो कामनारहित, कलाओं से परे, अविनाशी, गुणरहित और संसार के कण-कण में विद्यमान हैं।

जासु कृपहि रबि केर प्रकासा। मनुज कमल बन करहि बिकासा॥
सोइ भगवंत सुजन प्रतिपाला। भै भुवि एहि समउ नंदलाला॥

जिनकी कृपा से ही सूर्य का प्रकाश मनुष्यरूपी कमलवन को विकसित कर पाता है, सत्पुरुषों के पालनकर्ता वे श्रीभगवान ही इस समय पृथ्वी पर नन्द के पुत्र हो अवतीर्ण हुए हैं।

जे अस अकथित महिमाधारी। तुम ताहिहि कहि रहि तमकारी॥

जो ऐसी अकथ्य महिमा धरे हैं हे सखि ! तुम उन्हें ही अन्धकार करनेवाला कह रही हो।

दोहा- **सिरजक संघारक जगहि निज हिय जिन्हँ पद दीन्ह।**
उन्ह परमेस्वर स्याम कइ निंदा तुम कस कीन्ह॥२१॥

संसार का सृजन करनेवाले ब्रह्माजी और संहार करनेवाले शिवजी ने अपने हृदय को जिनके चरणों में लगा रखा है, उन परमेश्वर श्रीकृष्ण की तुमने निन्दा कैसे कर दी?

चौ.- **जानि परत मोहि तुम अति ढीठी। मंद बुद्धि भ्रम केर बसींठी॥**
बसहि बिबुधगन जासु सरीरा। जिन्हँ गोरज हर रुज गम्भीरा॥

तुम मुझे अत्यन्त ढीठ, मन्दबुद्धि और भ्रम की दूती जान पड़ती हो। जिनके शरीर में देवताओं का निवास है और जिनका रस (दूध-दहीं आदि) समस्त गम्भीर रोगों को हरनेवाला है।

जिन्हँ गोमयऊ लच्छि निवासा। जिन्हँ मातिर महुँ गंग बिलासा॥
अस धेनुन्ह सँग जे नित रहही। उन्हहि नीच कहि तुअ कस निदरहि॥

जिनके गोमय (गोबर) में लक्ष्मी और गौमुत्र में गङ्गाजी बसती है, ऐसी गायों के संग जो नित्य निवास करते हैं, नीच कहकर तुम उन्हीं गोपाल का निरादर कैसे कर रही हो।?

मोरे समुझ न भाग महाना। आन जाति जग ग्वाल समाना॥
जासु जिवन प्रति साँझ सवेरा। हिय धरि नित अनुराग घनेरा॥

मेरी समझ में तो जैसा महासौभाग्य गोपजाति का है, वैसा किसी अन्य जाति का नहीं। क्योंकि उनके जीवन का प्रत्येक सवेरा और साँझ अपने हृदय में नित्य महान प्रेम धरे,

गोरज सुरसरि न्हावत आई। पुनि पुनि कर निज भाग बड़ाई॥
अस लखि ईस जरहि जिन्हँ भागा। उन्ह निंदक सखि अवसि अभागा॥

आकर गोरजरूपी गङ्गा में नहाता है और बार-बार अपने भाग्य की बड़ाई करता है और यह देख ईश्वर भी जिनके भाग्य से जलता है, उन ग्वालों का निन्दक अवश्य कोई अभागा ही होगा।

बिबुध जच्छ नर किंनर राजा। अहि गंधरब समीर समाजा॥

देवता, यक्ष, मनुष्य, किन्नर, राजागण, सर्प, गन्धर्व और मरुद्‌गणादि

दोहा- जासु कर कलपलता तर फूरहि फरहि निसंक।
महालच्छि कर अस पतिहि तुम कस कहेउ रंक॥२२॥

जिनके हाथरूपी कल्पलता की छाया में निडर होकर फलते-फूलते हैं, महालक्ष्मी के ऐसे स्वामी को तुमने रङ्क किस प्रकार कह दिया।

चौ.- जोइ स्याम दुतिजुत बिधुआनन। लखि अनुरक्त रहहि पंचानन॥
तिय जुबतिन्ह हिय जिन्हँ मुख पाई। उमगहि अति अनुराग जुड़ाई॥

श्यामकान्तियुक्त जिस चन्द्रमुख को देख पञ्चमुखी शिवजी सदैव अनुरक्त रहते हैं। स्त्रियों और युवतियों के हृदय जिनके मुख को अपने सन्मुख पाकर महान प्रेम के वश उमड़ पड़ते हैं।

जोइ ससिमुखहुँ मयूर प्रकासा। कर सुरतनुजन्हि चक्क बिकासा॥
अस लावन्य जासु प्रति अंगा। कहइ कजल इव तेहिं न बंगा॥

जिस चन्द्रमुख की मयूरपङ्खी आभा देवाङ्गनारूपी चकोरों को खिलाया करती है और ऐसा ही लावण्य जिनके प्रत्येक अङ्ग पर बसता है, उन्हें तो पागल भी काजल-सा काला नहीं कहते।

पै तुम कहि ताही छबिहीना। उन्ह बंगन्ह तें भइ बड़ खीना॥
दितिसुत मधु कैटभ गम्भीरा। दसमुख कुम्भकरन रनधीरा॥

किन्तु तुम उन्हें ही सुन्दरता से रहित कहकर उन पागलों से अधिक तुच्छ हो गई हो। दितिपुत्रों, बलवान मधु-कैटभ,रावण और कुम्भकर्ण जैसे रणधीर योद्धाओं का

जेहिं बिभंजि छिनु महुँ इन्ह दापा। मेटेहुँ जग कर दारुन तापा॥
एहि जनम पुनि उन्ह संघारी। बंधुन्ह सहित पूतना भारी॥

जिन्होंने क्षणभर में ही मान भङ्ग करके, संसार का दारूण ताप हर लिया और इस जन्म में भी उन्होंने भाईयों सहित पूतना नामक महान भयावनी राक्षसी का संहार कर दिया,

दोहा- अस बलनिधि असुरारि कहँ सखि तुम कह बलहीन।
पै कि कान्हँ कहँ ए कोउँ सुजसु देइ सक भीन॥२३॥

बल के ऐसे सागर और असुरों के शत्रु श्रीकृष्ण को हे सखि! तुम बलहीन कहती हो, किन्तु कहो इनमें से कोई भी क्या कन्हैया को उत्तम यश दे सकता है?

चौ.- रामरूप जे पितु बच लागी। बिसरि राज भै हरषि बिरागी॥
गीध भालु कपि भील निषादा। निज सम सनमाने रसु नादा॥

रामरूप से जो पिता के वचन के लिये हर्षपूर्वक राज्य त्यागकर, वैरागी हो गए थे और प्रेमोन्माद में गिद्ध, भालू, वानर, भील और निषादों को जिन्होंने अपने ही तुल्य आदर दिया था।

जेहिं उन्ह तिय हरि रावनु सोई। समर समुख भा जब रिपु होई॥
ऐसे खलहिं जानि गुर ग्यानी। कीन्ह प्रनाम जेहिं जुग प्रानी॥

जिसने उनकी स्त्री सीता को हर लिया था, वह रावण भी जब शत्रु होकर उनके सन्मुख आया, तो ऐसे दुष्ट को भी बड़ा और ज्ञानी समझकर, जिन्होंने दोनों हाथ जोड़कर नमन किया,

उन्ह हरि कहँ तुअ कहा असिष्टा। लाग तुम्हार बुद्धि भइ भ्रष्टा॥

उन्हीं श्रीहरि को तुमने अशिष्ट कह दिया; मुझे तो लगता है, तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है।

रिपु प्रति अस ब्यवहार सहर्षा। कहु की यह न सील उतकर्षा॥
अंधकारि जे उन्हँ अंधकारी। कहति अभागिनि जीहँ तुम्हारी॥

अरे! शत्रु के प्रति भी सहर्ष किया गया उनका ऐसा व्यवहार, कहो! क्या शील का उत्कर्ष नहीं है? जो अन्धकार के शत्रु है, तुम्हारी अभागी जीभ उन्हें ही अन्धकारकर्ता कहती है!

रमा उन्हहि स्यामलता पाई। सुषमहिं संतत रहइ रिझाई॥
भगतन्ह पाछ फिरहि जे धाई। माँगु माँगु कहि रहहि मनाई॥

उन्हीं की श्यामकान्ति पाकर महालक्ष्मी साक्षात् सुन्दरता को भी रिझाती रहती है। जो भक्तों के पीछे भागते फिरते हैं और माँगो-माँगो इस प्रकार कहकर उन्हें मनाया करते हैं।

तेन्हहिं हिय कर कह तुअ कारा। होइ असत्य कि एहि तें भारा॥
जे अकसर भै जन पटपाला। उन्ह सुभाय तोहि लाग कुचाला॥

उन्हीं को तुम कुटिलमन कहती हो, किन्तु क्या इससे बड़ा असत्य भी कोई हो सकता है? एक बार जो अपने सेवक बलि के द्वारपाल हो गए थे, उन्हीं का स्वभाव तुम्हें कपटी लगता है।

गुन अवगुनजुत यह संसारा। नित संचलइ जेन्ह आधारा॥
सो निरगुन हरि क्यों गुनहीना। तासु दास कस बावर दीना॥

गुण-अवगुणों से युक्त यह संसार नित्य ही जिनका आधार पाकर सञ्चालित होता है, वे निर्गुण श्रीहरि गुणहीन क्यों हुए और उनके दास बाँवरे व दीन कैसे हो गये?

दोहा- **मुनि तिय तरि उन्हँ परसतहि भै असुद्ध तव गात।**
पुनि तें अब लगि धधकहि अहो रुचिर कस बात॥२४॥

जिस पवित्र स्पर्श को पाकर मुनिपत्नि अहिल्या तर गई, उसी स्पर्श को पाकर तुम्हारे अङ्ग अशुद्ध हो गए और वे अब तक जल भी रहे हैं। अहो! यह कैसी रुचिकर बात है।

चौ.- **तुम जे कहा रसिक उन्ह केरा। अकुसल रह दुख लहहि घनेरा॥**
तब तुम अवसि उलुक अँधकारी। कह जे दिनहिं बिभावरि कारी॥

तुमने कहा था कि उनका प्रेमी सदैव असुरक्षित रहकर महान दुःख प्राप्त करता है। तब तो तुम निश्चय ही अन्धकार के प्रतीक उल्लू के समान हो, जो दिन को भी काली रात्री कहता है।

गोपदेबि तब कह मुसुकाई। तोर बचन सुनि गिरा लजाई॥
जे अस समरथ तव घनस्यामा। भगतबछल अरु पूरनकामा॥

यह सुनकर गोपदेवी ने मुस्कुराकर कहा कि तुम्हारी वाणी को सुनकर तो स्वयं सरस्वतीजी भी लजा गई। यदि तुम्हारा घनश्याम इतना ही समर्थ, भक्तवत्सल और पूर्णकाम है,

तब तुम तेहिं इहँ तुरत बोलाई। देहु प्रमान जे बात सुनाई॥
अस सुनि राधा निज सुखधामहि। बोलि लागि सुचि सुमिरत नामहि॥

तब तुम तुरन्त उसे ही यहाँ बुलाकर तुमने जो बात कही है, उसका प्रमाण दो। यह सुनकर राधाजी अपने सुखधाम प्रियतम श्रीकृष्ण के पवित्र नाम का स्मरण करके, उन्हें पुकारने लगी।

चपल नयन निमेष पट छाए। निरखहि हिय महुँ पिय हरषाए॥
प्रेम बिकल स्वेदित उन्ह गाता। फरकत अधर न उगरहि बाता॥

पलकों के किंवाड़ लगाकर, चञ्चल नेत्र हर्षपूर्वक मन में प्रिय को देखने लगे। प्रेमाधिक्यप्रसूत विकलता से उनके अगों पर श्रमकण हो आए और फड़कते हुए अधर कुछ कह नहीं पा रहे हैं।

हरि देखा बृषभानुकुमारी। मम दरसन हित आकुल भारी॥
स्यामा दुरि तब स्याम सरीरा। प्रगट भए मेटन उन्ह पीरा॥

जब श्रीकृष्ण ने देखा कि राधा मेरे दर्शनों के लिये अत्यन्त विकल है, तब छद्मरूप उनके श्याम शरीर में खो गया और उनकी पीड़ा हरने के लिये वे अपने वास्तविकरूप में प्रकट हो गए।

जनु रस सरि रस उदधि निहारी। उमगि मिलन हित धीर बिसारी॥
तरुन्ह ओट तें बेनु बजाई। तेहिं दिसि बढ़न लाग अतुराई॥

प्रेम के सिन्धु को देखकर मानों प्रेम की नदी मिलन के लिये अधीर होकर उमड़ी हो। वृक्षों की आड़ से मुरली बजाते हुए श्रीकृष्ण बड़ी ही शीघ्रता से राधाजी की ओर बढ़ने लगी।

दोहा- **बेनुनाद मधुमय सुनत लोले राधहि कान।**
अति आतुर दृग खोजइ आपन लाहु महान॥२५॥

वंसी की मधुर ध्वनि को सुनते-ही राधाजी के कान चञ्चल हो उठे और उनके नेत्र बड़ी ही आतुरता से अपनी सार्थकता को खोजने लगे।

चौ.- **दृग जब अवचट प्रियतम पाए। दुरे डारि पट अति सकुचाए॥**
बिरहु बिलीन भयउँ हिय माहीं। बुंद मिटइ जस महितल पाहीं॥

नेत्रों ने जब सहसा प्रिय को देखा तो वे अत्यन्त लजाकर पलकों के किवाड़ बन्द किये छिप गए। विरह उनके हृदय ही में खो गया जैसे भूमि के स्पर्श से जल की बूंद नष्ट हो जाती है।

तेन्ह कपोल रहे जे आँसू। नखत भए सो हृदयँ अकासू॥
उघरे चख जब सकुच बिहाई। पिय सरूप निरिछन लग धाई॥

उनके कपोलों पर जो अश्रु थे, वे हृदयरूपी आकाश में नक्षत्र हो गए। (कुछ क्षण पश्चात्) जब राधाजी के नेत्र सङ्कोच त्यागकर खुले, तब दौड़कर वे प्रिय के स्वरूप का निरीक्षण करने लगे।

सीस गगन सिंघासनु ऊपर। रबि कइ कनकलसित दुति सुन्दर॥
बदनु अमियसर तेहिं बिगसाए। मम हित कंज सुबास जुड़ाए॥

उनके शीशरूपी आकाश के सिंहासन पर सूर्यरूपी मुकुट की सुन्दर स्वर्णिम आभा विद्यमान थी। जिसने मुखरूपी अमृत के सरोवर में नेत्ररूपी सुगन्धित कमलों को खिलाया था।

यह का उभय कपोलन्ह ऊपर। कुंतल भ्रमर कि उमगहि बिषधर॥
अधरन्ह फूँक पैठि जड़ बैनू। हठि मम हिय पर बाढ़हि ऐनू॥

यह क्या? इनके दोनों कपोलों पर केश हैं, भौंरे हैं या सर्प उमड़ रहे हैं। इनके अधरों से निकली हुई फूँक निष्प्राण मुरली में उतरकर बलपूर्वक मेरे हृदय पर अधिकार बढ़ा रही है।

पुनि उरझेउँ हिय तिन्हँ हिय हारा। अब धौं गति इन्ह करिहि कि मारा॥
निपट जे हरि सँग इहँ मोहि पावहिं। सखि सब हँसि हँसि अवसि खिजावहि॥

फिर मेरा हृदय इनके हृदय पर पड़ी मालाओं में उलझ पड़ा है, अब कामदेव इसकी क्या दशा करेगा? श्रीकृष्ण के साथ यहाँ पाकर सखियाँ अवश्य ही मुझे हँस-हँस कर चिढ़ायेंगी।

चरन चापमय नूपुर केरी। मधु झंकृति जस भई घनेरी॥
तस राधा कइ हिय गति बाढ़ी। पिअर अरुन मुख कम्पहि ठाढ़ी॥

नूपुर की मधुर झंकार से युक्त श्रीकृष्ण की पदचाप जैसे ही अधिक स्पष्ट गई, वैसे ही राधा के हृदय की गति भी बढ़ गई। उनका मुख लज्जा से लाल हो गया और वे काँपते हुए खड़ी रही।

एतनेहुँ पिय आए अति पासा। राधा सकुचि अधर छुटि हासा॥
अरध इन्दु घनमाला छाई। अंतरथिति जे लागिसि गाई॥

इतने में ही प्रियतम अत्यन्त निकट आ गए, जिससे राधाजी सकुचा गई और उनके अधरों पर मुस्कान दौड़ गई। उनके ललाट पर बल पड़ गए, जो उनके मन की दशा बता रहे थे।

कलप लता उठि जुग रसु छाई। धीर देत भइ अभयहुँ झाई॥

इतने में ही श्रीकृष्ण की दोनों भुजाएँ प्रेमवश उन्हें धैर्य बँधाकर अभय की छाया करने लगी।

दोहा– राधहि उर मुद लहर उठि नयन माँझ कस छाइ।
सरित लहर उठि भींज जस तट तरु कुसुमन्ह धाइ॥२६॥

तब राधाजी के हृदय से आनन्द की लहर उठकर उनके नेत्रों में कैसे छा गई; जैसे नदी की तरङ्ग दौड़कर अपने तट पर स्थित वृक्षों के पुष्पों को भिगोती है।

चौ.– सुचि साधना मोर रसु केरी। मम गोलोक धाम कइ पैरी॥
मम हिय सून्य मृदुल मधु सुरती। सुजनन्ह हित मम ममतहि मूरति॥

तब श्रीकृष्ण ने कहा कि मेरे प्रेम की हे पवित्र साधना! मेरे गोलोकधाम की हे सीढ़ीस्वरूपा! मेरे हृदयरूपी आकाश की हे मधुर व कोमल स्मृति! सत्पुरुषों के लिये मेरे ममत्व की हे मूर्ति!

उठि इन्ह मृग दृग अमिय बढ़ाई। धन्य करहु मोहि सोक बिहाई॥
पुनि हरि तिन्ह गहि बाँह उठाई। राधा छुइमुइ इव सकुचाई॥

हे राधे! उठो और इन चञ्चल नेत्रों में प्रेम बढ़ाकर शोक का त्याग करके, मुझे धन्य कर दो। फिर श्रीकृष्ण ने भुजाओं से पकड़कर उन्हें उठा लिया, जिससे राधाजी छुइमुई जैसी सकुचा गई।

मनहुँ रूख निज साख बढ़ाई। पुरटलता कहँ लीन्ह उठाई॥
ताप त्रस्त तरुभुज जुग बाढ़ा। मलयलता कहँ बाँधेहुँ गाढ़ा॥

मानों वृक्ष ने अपनी शाखाएँ बढ़ाकर स्वर्णलता को उठा लिया हो। जैसे अत्यधिक ताप के कारण वृक्ष ने अपनी शाखाएँ बढ़ाकर मलयलता को प्रगाढ़ बन्धन में बाँध लिया हो।

जब सधीर उन्ह नयन उठाए। तब गोपेस कहेउ मुसुकाए॥

बिधुबदना तैं कहि मृदुबानी। भजेहु मोहि आपन सँग जानी॥

जब राधाजी ने धैर्यपूर्वक दृष्टि उठाई। तब गोपेश्वर श्रीकृष्ण ने मुस्कुराकर कहा। हे चन्द्रानना! तुमने मुझे अपने संग जानकर कोमल वाणी से मेरा भजन किया है।

सो मैं बन्दे तव सुचि प्रीती। फल होइ आएउँ तोर प्रतीती॥
सुनि पिय बचन परम रसु पागा। उन्ह हिय माँझ उएहु अनुरागा॥

इसलिये मैं तुम्हारे पवित्र प्रेम की वन्दना करने के लिये तुम्हारे विश्वास का फल होकर तुम्हारे सन्मुख आया हूँ। प्रिय के ऐसे प्रेमयुक्त वचन सुनकर राधाजी के हृदय में भी प्रेम उत्पन्न हो गया।

हिय महुँ कह राधा धरि धीरा। री जिअँ दाहक पीर गभीरा॥
री आतम कइ चिर आरातिन। जुबतिन्ह नींद सपुन कइ घातिन॥

तब वे धैर्य धारण करके, मन-ही मन कहने लगी कि अरी हृदय को जलानेवाली गम्भीर पीड़ा! अरी आत्मा की चिर शत्रु! अरी युवतियों की निद्रा और स्वप्नों का नाश करनेवाली!

री पिय पीठि कुअनुचरि कारी। धरनिकंप इव पद धुनिवारी॥
तै मोहि ताप दीन्ह अति भारी। अज प्रतीति मम तोहि बिडारी॥

अरी प्रियतम की अनुपस्थिति का अनुशरण करनेवाली और भूकम्प के समान पदचापवाली! तूने मुझे बड़ा भारी दुःख दिया है, किन्तु मेरे विश्वास ने आज तुझे नष्ट कर दिया।

देखु बसहि पिय हृदयँ हमारे। अब जनि चलिहहि दाव तिहारे॥
अब न भूलि पग मम हिय धरेहूँ। अपर तियन्ह दिसि निज मुख करेहूँ॥

देखो अब तो स्वयं प्रियतम ही मेरे हृदय में निवास कर रहे हैं। अब तुम्हारी कुचाल नहीं चलेगी। अतः तुम दूसरी स्त्रियों की ओर मुख करो, मेरे मन में भूलकर भी पैर न रखना।

बहुरि सोक भय तेहिं बिसराना। अधरदलन्हँ धरि मृदु मुसुकाना॥

फिर उन्होंने भय और शोक का त्याग करके, अपने अधर दलों पर मधुर मुस्कान धरकर

दोहा- **पियहि हाथ गहि राधिका चलि परि रुचिर बितान।**
सुचि रस बंध बिमोहित चला जोग बंधान॥२७॥

प्रियतम का हाथ पकड़कर वे सुन्दर मण्डप की ओर चल पड़ी। पवित्र प्रेम से परमाकर्षित होकर साक्षात् योग स्वयं को बँधाने उनके साथ चल पड़ा।

चौ.- कनक सिंहासन सोह बिताना। तहँासीन भइ दुहुँ छबिखाना॥
हरि तब तेहिं मुख बसन उघारा। बहुरि महारसु बचन उचारा॥

उस मण्डप में स्वर्णनिर्मित सिंहासन शोभित था, जिस पर सुन्दरता की खान वे दोनों विराजमान हो गए। तब श्रीकृष्ण ने उनके मुख पर पड़ा आँचल हटाया और महान प्रेमयुक्त यह वचन कहा-

प्रिये मोर हिय कंज समाना। जासु मृदुलतउ तोरहि ध्याना॥
सौरभ सरिस करइ बिश्रामा। तातें मोहि जग कह सुखधामा॥

हे प्रिये! मेरा हृदय कमल के समान है, जिसकी कोमलता में तुम्हारा ही ध्यान सुगन्ध के समान विश्राम करता है और इसी कारण संसार मुझे सुखधाम कहता है।

यह तुम्हार रसपूरित चितवनि। मोरे कमल हेतु संजीबनि॥
मम मुख तोर प्रभा कर सारा। तुम मम दच्छिन छबि आधारा॥

तुम्हारी यह प्रेमपूरित दृष्टि मेरे हृदय के लिये प्राणदायिनी स.ीवनी के समान है। मेरा मुख तुम्हारे ही तेज का सार है। तुम ही मेरे वाम भाग की सुन्दरता का आधार हो।

तुम अनुपम रसमय जग माहीं। कीचउँ अंस तोर हिय नाहीं॥
प्रिये बिभूषन तुम मम प्रानहि। तुमहि मोर महिमा जग जानहिं॥

तुम इस संसार में ऐसा प्रेम लिये हो, जिसकी कोई उपमा नहीं और तुम्हारे मन में अंशमात्र भी विकार नहीं। हे प्रिये! तुम मेरे प्राणों की भूषण और तुम्ही मेरी जगद्विदित महिमा हो।

यह तुम्हार सुचि रस निपुनाई। जेहिं जगमोहन लीन्ह रिझाई॥
प्रगहन रस कर संबल तोरा। पाइ सदा सुखि रह हिय मोरा॥

यह तुम्हारे ही पवित्र प्रेम की निपुणता है कि जिसने मुझ जगमोहन को भी मोह लिया। तुम्हारे ही महान प्रेम का आश्रय पाकर मेरा हृदय सदैव सुखी रहता है।

तुअँपि रिझावउँ संबल सोई। पुनि तुम रीझति निजता खोई॥

उसी महान प्रेम से मैं तुम्हें रिझाता हूँ और तुम भी स्वत्व भुलाकर मुझ पर रीझती हो।

क.- प्रभुता बिसारि आपु बंधन बँधाइ मम दीन्हेउ सुजसु उपकार बड़ौ तेरौ हैं।
न त मैं भिखारी तोर सनमुख बराननना, तुम सो बिसारि दीन्ह हृदयँ बसेरौ हैं॥
खारौ जलनिधि मैं तू प्रीति सरिता मधुर, तोर महिमा ते समपद तेरौ मेरौ हैं।
तुम संग दावानल हिम मोहि बिष सोम, तोहि बिनु मोहि जग सगरै अंधेरौ है॥

अपनी महिमा को भूलकर स्वयं ही मेरे बन्धन में बँधकर तुमने मुझे सुयश प्रदान किया है। यह तुम्हारा मुझ पर बड़ा ही उपकार है। हे वरानना! मैं तुम्हारे सन्मुख रङ्क हूँ, इस बात को भूलकर भी तुमने मुझे मन में स्थान दिया है। मैं खारा समुद्र और तुम प्रेम की मधुरसरिता हो। तुम्हारी ही महिमा से तुम्हारा और मेरा स्थान एक है। तुम्हारे साथ मुझे दावाग्नि भी हिम समान और विष अमृत के समान है। तुम्हारे बिना मेरे लिये सम्पूर्ण संसार नितान्त अन्धकारयुक्त है।

दोहा- तव मुख बिगसित सरद कर मधुमय कंज समान।
जिन्हँ छबि मधु गहि मधुप इव धरउँ मैं आपन प्रान॥२८॥

तुम्हारा मुख शरत्काल के खिले हुए परागयुक्त कमल के समान है। भौंरे के समान जिसका सुन्दरतारूपी पराग ग्रहण करके, मैं अपने प्राणों को धारण करता हूँ।

चौ.- पियहि बचन सुनि तें सकुचाई। उन्ह प्रतिबिनय अधर उमगाई॥
पिय मैं अति लघु किंकिरि तोरी। तोहि बिनु कछु न कलपना मोरी॥

प्रिय के ऐसे वचन सुन राधाजी सकुचा गई और उनके मन की कृतज्ञता अधरों से उमड़ पड़ी। हे प्रिय! मैं तुम्हारी अत्यन्त तुच्छ दासी हूँ। तुम्हारे बिना मेरे होने की कुछ भी कल्पना नहीं।

रसनिधि देहुँ मोहि निज प्रीती। अथवा मम प्रति करहु अनीती॥
तदपि न दोष तोर उर धरऊँ। नित तुम्हार रुचि मैं अनुसरऊँ॥

हे प्रेमसागर ! चाहे तुम मुझे अपना प्रेम दो अथवा मेरे प्रति अन्याय करो। फिर भी मैं तुम्हारे दोष को नहीं देखूँगी और सदैव तुम्हारे रुचि का ही अनुसरण करूँगी।

अनत सुख न तव सुख सुख मोरा। मम दुख जे अतिसय सुख तोरा॥
तब अस दुख कहँ मैं हरषाई। करऊँ निज सुभाय परिछाई॥

तुम्हें छोड़कर मुझे अन्य सुख नहीं, तुम्हारा सुख ही मेरा सुख है और यदि मेरा दुःखी होना तुम्हारे लिये सुखद है तो मैं ऐसे दुःख को भी हर्षपूर्वक अपने स्वभाव की छाया बना लूँगी।

तवहि प्रमुद मैं धरेउँ मुख हासा। मोरे अपर सुखहि जनि आसा॥
प्रमुदित लखि चहुँ तोहि दिनु राता। आन मनोरथ मोहि न सुहाता॥

तुम्हारे परमानन्द के लिये ही मैं अपने मुख पर मुस्कान धरती हूँ। मुझे किसी अन्य सुख की कोई चाह नहीं है। मैं तुम्हें दिनरात प्रसन्न देखना चाहती हूँ, अन्य कोई मनोरथ मुझे प्रिय नहीं है।

स.- पिय के रंजन को धरि ध्यान मैं आठहुँ जाम महामुद छाऊँ।

मोहिं बिलोकि समोद मनोहर तातें बिभूषन मैं तन लाऊँ॥
तोर पदाम्बुज आपुन अर्पि मैं तोर महारस सागर न्हाऊँ।
स्वामिनि स्वामिनि नाथ कहे मोहि लाग सकोच हिये गरि जाऊँ॥

प्रियतम के आनन्द को ध्यान में रखकर ही मैं आठों याम महान आनन्द में मग्न रहती हूँ। मुझे देखकर वे मनोहर आनन्दित हुआ करते हैं, इसी कारण मैं अपने शरीर पर आभूषण धारण किया करती हूँ। हे मनमोहन! तुम्हारे चरणकमलों पर स्वयं को समर्पित करके, मैं तुम्हारे प्रेमरूपी महासागर में नहाया करती हूँ और मेरे स्वामी होकर भी तुम मुझे 'स्वामिनी, स्वामिनी' इस प्रकार पुकारते हो, तो मुझे सङ्कोच होता है, जिससे मैं मन-ही मन गड़ी जाती हूँ।

दोहा- **प्रानेस्वरि हियस्वामिनि मोहि कहि पिय सुख पात।**
तातें अस सम्बोधनन्हि मैं धारे हरषात॥२९॥

मुझे प्राणों की ईश्वरी, हृदय की स्वामिनी आदि कहकर आप सुखी होते हैं। इसलिये मैंने भी प्रसन्नतापूर्वक ये सम्बोधन धारण कर रखे हैं।

चौ.- **मिलइ दरस ससिवदना तोरा। एहि तें ब्रज निवास नित मोरा॥**
पाइ तोर ससिमुख उजिआरा। होत प्रकासित हृदयँ हमारा॥

हे चन्द्रानना! तुम्हारा दर्शन मिलता रहे इसलिये ही मैं नित्य व्रज में निवास करता हूँ। तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमा की कौमुदी पाकर मेरा हृदय प्रकाशित हो जाता है।

जाने हित रस तत्व तिहारा। परसउँ मधुर मधुप गुंजारा॥
एहि कारन कुसुमन्ह मृदुताई। परिखहुँ कानन इत उत धाई॥

तुम्हारे प्रेम के तत्व को जानने के लिये मैं भौंरों के मधुर गु.न का स्पर्श करता हूँ और इसीलिये पुष्पों की कोमलता परखते हुए मैं वन में यहाँ-वहाँ दौड़ता फिरता हूँ।

एहि तें जमुन करत असनाना। लहरि भँवर दै राखउँ काना॥
मम जीहनि दृग तोरहि जापक। जथा स्वाति जल जोहहि चातक॥

इसीलिये मैं यमुनास्नान करते हुए उसकी लहरों और भँवरों की ओर कान लगाये रहता हूँ। मेरी जिह्वा व नेत्र तुम्हारे ही जप में संलग्न हैं, जैसे चातक स्वाति नक्षत्र का जल ताकता रहता है।

तोहि बिनु मोर गिरा मृदुताई। जगहि जतन करि सक न रिझाई॥
तुम बिनु मोद महोदधि केरी। रुचिर तरंगिनि निरस घनेरी॥

तुम्हारे बिना मेरी वाणी की कोमलता यत्न करके, भी संसार को रिझा नहीं सकती। तुम्हारे बिना आनन्दरूपी महासागर की रुचिकर तरङ्गें भी मुझे अत्यधिक नीरस जान पड़ती है।

तव मुसुकान मोर मुद प्राना। तुम्ह कारन जग कर मम ध्याना॥
सुनत तुम्हार स्वास संगीता। मम हिय उपजइ पेमु पुनीता॥

तुम्हारी मुस्कान मेरे आनन्द का प्राण है। तुम्हारे ही कारण यह संसार मेरा ध्यान करता है। तुम्हारे श्वासों के संगीत को सुनकर मेरे हृदय में पवित्र प्रेम उत्पन्न होता है।

क.- मोहि जग कतहुँ न तोहि सम प्रीतिवारी, प्रेयसि निकाम भावधारी निरखात हैं।
मैं तो निज मोद रत नित इच्छा तृप्ति पर, चंचल मैं होउँ जब तुअ मुसुकात हैं॥
दीन्हि मोहि कामना सुमधुर अतृप्त करि, तोर मुख बिनु मोहि कछु न सुहात हैं।
तातें नित तोर प्रेम गीत गाइ गाइ राधे, तेरौ पिय बिरहा की पावक बुझात हैं॥

मुझे संसारभर में तुम जैसी निष्काम प्रेयसि दिखाई नहीं पड़ती। मैं आत्मानन्दमग्न, इच्छा, तृप्ति आदि द्वन्द्वों से नित्य परे हूँ, किन्तु जब तुम मुस्कुराती हो, तो मैं भी चञ्चल हो उठता हूँ। तुमने मुझे अतृप्तकर, सुन्दर व मधुर कामना दी है। अब तुम्हारे मुख के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं सुहाता। इसलिये हे राधे! तेरा यह प्रेमी नित्य तेरे प्रेमगीत गा-गाकर विरह की अग्नि बुझाता है।

दोहा- बाम मोर तुम नित बसत पेखउँ मुख दिनु राति।
तदपि चपल चख तृषित रह ज्यों तिषना न अघाति॥३०॥

तुम नित्य ही मेरे वाम भाग में विराजमान रहती हो और मैं दिन-रात तुम्हारे मुख को देखता रहता हूँ। किन्तु फिर भी मेरे नेत्र तृप्त नहीं हो पाते, जैसे तृष्णा का पेट नहीं भरता।

चौ.- मैं नहिं जानउँ रस केहि कहई। तिन्ह सरूप कस तें कत रहई॥
तातें सुनु मम नय धरि ध्याना। ब्याकुल रसिकन्ह कर सुखखाना॥

राधाजी ने कहा- मैं नहीं जानती, प्रेम किसे कहते हैं, उसका स्वरूप क्या है और वह कहाँ रहता है? इसलिये हे व्याकुल प्रेमियों के सुख की खान! तुम मेरी यह विनय चित्त लगाकर सुनो।

होइ तोर जहँ जहँ अवतारा। तहँ तहँ होउ तोर पद छारा॥
होहु जे पिय तुम मृगमद पावनि। हरिनि होउँ तोहि हृदयँ बसावनि॥

संसार में जहाँ-जहाँ तुम्हारा अवतार हो, वहाँ-वहाँ मैं तुम्हारे चरणों की रज होऊँ। हे प्रियतम! यदि तुम पवित्र कस्तूरी होओ, तो मैं तुम्हें अपने हृदय में धारण करनेवाली हरिणी बनूँ।

जो मैं कबित होउँ ब्रजनाथा। आतम भए रहहु तुम साथा॥
मुकुल पुष्प महुँ रितुपति प्रेरा। तुम जे होवहुँ बिभव घनेरा॥

हे व्रजनाथ! जो यदि मैं कविता होऊ, तो तुम मुझ कविता की रसरूपी आत्मा बनकर मेरे साथ रहना और यदि तुम पुष्पों और कलियों में वसन्त के द्वारा बिखेरे गए महान वैभव होओ,

तब तिहि मृदुता गावनिहारी। होउँ मैं नव किसलयजुत डारी॥
मथेउँ मैं जगतीतल प्रति तारा। सहित अनंत नयन बिस्तारा॥

तब मैं उस वैभव की कोमलता का गान करनेवाली नवीन पत्रयुक्त लता होऊँ। मैंने पृथ्वी तल के साथ-साथ नक्षत्रयुक्त विस्तृत आकाश के प्रत्येक भाग को खोजकर देख लिया।

पै तिन्ह कठिन सुकोमलताइहि। तुम बिनु आन न परत लखाइहि॥
सो तुम तें करि प्रीति घनेरी। भइ अनन्य मैं तुम्हार चेरी॥

किन्तु उसकी कठिन सुकुमारता में तुम्हारे बिना मुझे कोई अन्य दिखाई नहीं पड़ता। इसलिये मैं तुमसे अत्यधिक प्रेम करके, तुम्हारी अनन्य दासी हो गई हूँ।

तव मृदु बिहँसनि सुषमित कैसे। गगन थाल मुकुतन्हि दुति जैसे॥

बस एहि छबि मम नयन भुलाए। तोरि सकल छबि निरखि न पाए॥

तुम्हारा मधुर हास्य कैसे शोभित है, जैसे आकाशरूपी थाल में नक्षत्ररूपी मोतियों की आभा। इसी छवि में मेरे नेत्र सब भूल जाते हैं, इसलिये वे तुम्हारी सम्पूर्ण सुन्दरता देख ही नहीं पाए।

अब पिय कहिअ कि यह तेहिं केरा। बर भाग कि दुरभाग घनेरा॥

हे प्रियतम! अब तुम ही कहो क्या यह नेत्रों का सौभाग्य है अथवा दुर्भाग्य?

**क.- अरुन अरुन पद पंकजन्ह गुन गाई, छबि छकि जिअहि जरनि हरुआई हैं।
बदनु तुम्हार मोर दृग पुतरीन्हँ बस, स्याम प्रभा तोर मम आतम समाई हैं॥
रूप सील गुन तें बिहीन मैं गवारिनि हूँ, तदपि अगुन भूलि मोहि अपनाई हैं।
तातें तेरौ बड़ौ रिनु मोपै मोरे प्रियतम, बिधि की दया को सिंधु जात न तराई हैं॥**

हे मनमोहन! तुम्हारे लाल-लाल चरणकमलों के गुण गा-गाकर, उनकी सुन्दरता का रसपान करके, मेरे हृदय की पीड़ा हल्की हुई है। तुम्हारा मुख मेरे नेत्रतारकों में बसता है और तुम्हारी श्यामकान्ति मेरी आत्मा में समाई हुई है। मैं सुन्दरता, शील और गुण से रहित गँवार ग्वालिन हूँ। फिर भी मेरे इन अवगुणों को भूलकर तुमने मुझे अपनाया है। इसलिये हे प्रियतम! तुम्हारा मुझ पर बड़ा ही उपकार है। मेरे लिये विधाता की दया के सागर का कोई पार नहीं है।

**दोहा- मैं तव पद पंकजन्ह रज भलेहि प्रतारहुँ मोहि।
नीच धूरि सम तदपि पिय होउँ हृदय आरोहि॥३१॥**

मैं तुम्हारे चरण कमलों की रज हूँ। तुम भले ही मुझे दण्ड दो। किन्तु फिर भी मैं नीच धूल के समान तुम्हारे हृदय पर ही पड़नेवाली होऊँगी।

**चौ.- प्रिये प्रेयसि न पद कइ छारी। रसदा सहधरमिनि सुखकारी॥
जे मैं नर त सरूप तुम्हारा। तिय तन मम हित एहि प्रकारा॥**

श्रीकृष्ण बोल- हे प्रिये! प्रेयसि पैरों की धूल नहीं, अपितु प्रेम प्रदान करनेवाली, सहधर्मिणी और सुख करनेवाली होती है। यदि मैं पुरुष हूँ तो मेरे लिये स्त्री रूप में तुम्हारा स्वरूप यह है-

नारि सुफलता प्रति नर केरा। अमिट अचल बिस्वास घनेरा॥
तिय नर जीवन चित्रहुँ ब्यापा। बरन समरपन हर हिय तापा॥

नारी, सफलता के प्रति पुरुष का अमिट, अचल और महान विश्वास है। नारी, पुरुष के जीवनरूपी चित्र में व्याप्त समर्पण का रङ्ग है, जो मन के ताप को हरनेवाला होता है।

करम सिंधु रत नर हित नारी। कृत निकाम तें उमगनिहारी॥
लहर मालिकन्ह तें तट बिहरा। मुकुति केर बर बिभव सुनहरा॥

कर्मरूपी सागर में निमग्न पुरुष के लिये नारी, कर्म की निष्कामता से उमड़नेवाली तरङ्गमालाओं के कारण तट पर बिखरा हुआ मुक्ति का श्रेष्ठ और सुनहरा वैभव है।

तिय नर हिय तें फूटनिहारी। आकुल करुना कइ सो फुहारी॥
जे त्रिलोक रस हृदयँ जुड़ावत। दीनन्ह दिसि अति आतुर धावत॥

नारी पुरुष के हृदय से फूटनेवाली व्याकुल करुणा की वह फुहार है, जो तीनों लोकों के प्रेम को अपने आँचल में समेटकर दीन-दुःखियों की ओर आतुर होकर दौड़ पड़ती है।

पुनि सेवा मूरति होइ नाना। करहि सदा उन्ह कर कल्याना॥
तिय हिय मृदुता कइ प्रतिछाहीं। बिनय रूप बस नर हिय माहीं॥

फिर सेवा के अनेक स्वरूप धारण करके, सदैव इन दीन-दुःखियों का कल्याण किया करती है। नारी हृदय की कोमलता का प्रतिबिम्ब ही विनम्रता होकर पुरुष के हृदय में बसता है।

तियहि समरपन पावन सोई। प्रभु प्रति उमग भगत दृग जोई॥
नारिहि सो महिमामय त्यागा। जेहिं तें नर लहँ परन्ह परागा॥

वह नारी का पवित्र समर्पण ही है, जो ईश्वर के प्रति भक्त के नेत्रों से उमड़ता है। नारी का वह गम्भीर महात्म्ययुक्त त्याग ही है, जिससे (बल पाकर) पुरुष संसार में दूसरों से प्रशंसा प्राप्त करता है।

नारि प्रेरना नर कइ सोई। जेहिं प्रभाउँ दुष्कर कृत होई॥
जुग जुग तें जग सूनेहि माहीं। धरे मौन कइ मृदु परिछाहीं॥

स्त्री पुरुष के लिये वह प्रेरणा है, जिसके प्रभाव से पुरुष के दुष्कर कार्य भी सम्पन्न हो जाते हैं। युगों-युगों से संसार के निर्जन में मौन की कोमल छाया धारण किये हुए,

तड़पनि सुनि पर जोइ संगीतहि। निजता मिटि चह जासु पुनीतहि॥
झँझरहि जे हिय बीनहिं तारा। कहिअत रस सो अनुभव न्यारा॥

जिस संगीत की व्यथा सुनाई पड़ती है, जिसकी पवित्रता में स्वत्व मिटना चाहता है और जो हृदयरूपी वीणा के तारों को झिंझोड़कर रख देता है, उसी विचित्र अनुभव को प्रेम कहते हैं।

अस रस धरहि नारि हिय सुन्दर। जेइ करहि मृदु पाहन अंतर॥
जे तिय रूप तुम्हार बखाना। तउहिं प्रसाद ताहिं मैं जाना॥

नारी का हृदय ऐसा उत्तम प्रेम लिये रहता है, जो कठोर हृदय को भी कोमल बना देता है। मैंने जो तुम्हारे नारीस्वरूप का वर्णन किया है, उसे मैंने तुम्हारी ही कृपा से समझा है।

तव जाचक मैं जनि भगवाना। प्रीति तत्व कर मोहि न ग्याना॥
तुम रस सरितन्ह जलधि गभीरा। मैं गवारु ब्रज केर अहीरा॥

मैं तुम्हारा याचक मात्र हूँ, कोई ईश्वर नहीं और प्रेम के तत्व का भी मुझे (कोई) ज्ञान नहीं। तुम प्रेमरूपी नदियों से युक्त महासागर हो और मैं व्रज का अनपढ़ अहीर हूँ।

प्रिये तुअहि रस छितिज माँझा। नादित मृदु रागिनिमय साँझा॥
मैं महि नत अरधहि दिनु केरा। सुष्क तापजुत गरुअ घनेरा॥

हे प्रिये! तुम प्रेमरूपी क्षितिज में ध्वनित होती मधुर रागिनियुक्त संध्या हो और मैं पृथ्वी पर झुका हुआ अर्द्धदिवस का शुष्क और तापयुक्त सघन अहङ्कार हूँ।

तउँ अरु मम समता नहिं कैसे। कंज कनक समता नहिं जैसे॥
तउँ मुख ससिहि रुचिर अरु कारी। अलक मेघमालिका निहारी॥

तुम्हारी और मेरी समता किस प्रकार नहीं हो सकती, जैसे कमल और धतूरे में समता नहीं होती। तुम्हारे चन्द्रमुख पर पड़ी हुई सुन्दर और काली केशरूपी मेघमालाओं को देखकर

अति उजार बन रितुपति जागा। हरित कीन्ह जेहिं चारि बिभागा॥
तिन्ह आगवन बिलोकत पावन। नव अंकुर माधवि लगि छावन॥

मेरे निराश हृदय में सुन्दर भावों का सञ्चार हो गया, जिसने सब ओर मधुर व पवित्र आसक्ति फैला दी और उसका पवित्र आगमन देख हृदय की गहराई नवीन इच्छाओं से भर गई।

स.- मैं तोर प्रीति को जाचक राधिके देत रहुँ मोहि प्रेमु उदारा।
सेवक होउँ जे तोर प्रिये तदपि न घटे रिनु तोर बिचारा॥

मैं रबि तेज तू स्यामता स्याम की नीरधि मैं तुम मोर प्रसारा।
तोहि बिना जग जानि परै मोहि प्रेत निवास तही मम सारा॥

हे राधा! मैं तुम्हारे प्रेम का याचक हूँ; इसलिये तुम मुझे अपना उदार प्रेम देती रहो। हे प्रिये! मैंने विचारकर देख लिया है- यदि मैं तुम्हारा दास हो जाऊँ, तब भी मैं तुमसे उऋण नहीं हो सकूँगा। मैं सूर्य हूँ, तुम मेरा तेज हो, मैं कृष्ण हूँ तो तुम मेरी श्यामता हो और यदि मैं समुद्र हूँ तो तुम मेरा विस्तार हो। तुम ही मेरा सार हो, तुम्हारे बिना मुझे यह संसार श्मसान जान पड़ता है।

दोहा- **मैं चकोर तुम ससि सरद तुमहि अमल मम कीति।**
तुम मोहि कीन्ह कृतारथ आपुनि देत सुप्रीति॥३२॥

मैं चकोर हूँ तो तुम शरद कालीन चन्द्रमा हो। तुम ही मेरी निर्मल कीर्ति हो और तुमने मुझे अपना उत्तम प्रेम देकर कृतार्थ कर दिया।

चौ.- **मनमोहन मुनिगन दुख भंजन। नयनन्हि मान हरन झष खंजन॥**
तव सोइ छबि जाकर बिस्तारा। भूले जग दृग खोज किनारा॥

तब राधाजी ने कहा- हे मनमोहन! हे मुनियों के दुःखहर्ता! अपने नेत्रों की सुन्दरता से मछलियों व पक्षियों का मान भङ्ग करनेवाले हे सुलोचन! तुम्हारा स्वरूप जिसके विस्तार में भूले संसार के नेत्र किनारा खोजते रहते हैं,

बसहि सदा मम अंतर माहीं। आन कछक मोरे प्रिय नाहीं॥
बिरहु तुम्हार एक दिनु केरा। दुसह मोर हित कान्हँ घनेरा॥

वही सदैव मेरे अंतरमन में बसता है। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ और प्रिय नहीं है। हे कन्हैया! तुम्हारा एक दिन का विरह भी मेरे लिये अत्यधिक असहनीय है।

लोक सकुच कुल मद कइ झारी। हिय उपबन तें चहउँ उखारी॥
जातें मिलन सुमृदुल प्रसूना। बिगसहि निसि चौगुन दिनु दूना॥

मैं अपने हृदयरूपी उपवन से लोकलाज और कुल के गौरव की झाड़ी उखाड़ फेंकना चाहती हूँ, ताकि मिलन के सुन्दर और कोमल पुष्प दिन दूना और रात चौगुना उत्कर्ष प्राप्त करे।

मैं केहि बिधि सुखि करि सकु तोरे। छबि कर एक न लच्छन मोरे॥
मैं उत्तम न बिचार सुहावन। बदनु दुति न जे तव मनभावन॥

हे कृष्ण! मैं तुम्हें किस प्रकार सुख दे सकती हूँ, मुझमें सौन्दर्य का एक भी लक्षण नहीं है। न मैं उत्तम हूँ, न मेरे विचार सुन्दर है और न ही मेरे मुख पर वह द्युति है जो तुम्हारे मन को भाए।

हृदयँ कठोर न रस रुचिराई। परस रमा सम जनि मृदुताई॥
मम सुभाय गुन सुलछन हीना। निपट गवार मैं अहिरिनि दीना॥

मेरे कठोर हृदय में प्रेम की तनिक भी पहचान नहीं और न ही मेरे स्पर्श में लक्ष्मी-सी कोमलता है। गुण व उत्तम लक्षणों से रहित प्रकृतिवाली, मैं केवल अनपढ़ और दीन ग्वालिन हूँ।

पै मैं सुनेउँ सुभाय तुम्हारा। अहहि सदा अरि प्रतिहि उदारा॥

इहि कारन हिय प्रीति बढ़ाई। मैं निसंक तव सनमुख आई॥

किन्तु मैंने सुना है कि तुम्हारा स्वभाव सदैव शत्रुओं के प्रति भी उदार ही है। इस कारण अपने हृदय में प्रेम बढ़ाकर मैं निडर होकर तुम्हारे सन्मुख आई हूँ।

क.- प्रीतिहुँ मरम गूढ़ ग्वालिन मैं अनपढ़, सुषमाबिहीन औ बाचालि अति दीन हूँ।
अखिल जीवन महुँ एक न सुकृत बनौ, तदपि तुम्हार दय तुम्ह ते अभीन हूँ॥
दीन्हौ मोहि रसदान जाँकी मैं भिखारिनिहु, कबहुँ न खोजि आन पूर तीन लोकहूँ।
तातें बरु माँगु ए महान पिय देहुँ मोहिं, नित बसे तोर छबि मोर पुतरीनहूँ॥

प्रेमतत्व का मर्म अत्यन्त गूढ़ है और मैं अनपढ़, सौन्दर्यरहित, बहुत बोलनेवाली, अत्यन्त दीन ग्वालिन हूँ। सम्पूर्ण जीवन में मुझसे एक भी सत्कर्म नहीं बन पड़ा है; फिर भी मैं तुम्हारी महान दया के कारण तुमसे अविलग हूँ। मैं जिस प्रेम की याचिका हूँ, तुमने मुझे उसी प्रेम का दान दिया है। तीनों लोक भरे पड़े हैं। किन्तु तुमने कभी भी किसी अन्य राधा को नहीं खोजा। इसलिये हे प्रियतम! मैं यह महान वर माँगती हूँ तुम मुझे दो कि तुम्हारा स्वरूप नित्य मेरे नेत्र-तारकों में बसे।

दोहा- प्रियतम तोर निवास तें सत्ता मम हिय केरि।
सो तुम जेहिं छिनु तजौ तिन्हँ बिसरहि तन यह चेरि॥३३॥

हे प्रियतम! तुम्हारे निवास के कारण ही मेरे हृदय का अस्तित्व है, इसलिये जिस क्षण तुम उसका त्याग कर दो, तुम्हारी यह दासी भी अपना शरीर छोड़ दे।

चौ.- प्रिये तुमहि मम सक्ति अधारा। मम अनंतता कर तुम सारा॥
तुमही अखय बिभव मम भारी। जीवन बट सींचन तुम बारी॥

श्रीकृष्ण ने कहा- हे प्रिये! तुम्ही मेरी शक्ति का आधार हो, तुम्ही मेरी अनन्तता का सार हो। तुम्ही मेरा महान और अक्षय ऐश्वर्य हो और तुम्ही मेरे जीवनवट को सींचने के लिये जल हो।

तव छबि कइ अनुपमता ऐसे। धरनिहिं छमासीलता जैसे॥
तोर बानि मृदुता अकथित कस। श्रवनरुचिरता मम बैनुहि जस॥

तुम्हारी सुन्दरता की अनुपमेयता ऐसी है जैसे पृथ्वी की क्षमाशीलता। तुम्हारी वाणी की कोमलता किस प्रकार अकथनीय है जिस प्रकार मेरी मुरली की कर्णप्रियता।

तोरे नयन गहनतउँ माहीं। सींपिहुँ मुकुतन्हि दुति झलकाही॥
सिसुन्ह भोरपनुजुत नव हासा। बैनन्ह खग कलरव उल्लासा॥

तुम्हारे नेत्रों की गहराई में सींप के मोतियों की आभा झलकती है, तुम्हारे नवीन हास्य में बालकों की-सी निष्कपटता है और तुम्हारी वाणी में पक्षियों के कलरव का-सा उत्साह है।

परसनि अमर चेत दुखनासा। रस सकुचनि तव चितवनि भाषा॥
तव भ्रुअ बल महुँ अति मृदु क्रोधा। सकुच सरिस हिय धरे बिरोधा॥

तुम्हारा अमर स्पर्श दुःख का नाश करनेवाला है, तुम्हारे चितवन की भाषा में प्रेमयुक्त सङ्कोच है और तुम्हारी भौंहों के बल में सङ्कोच के समान विरोध धारण किये हुए अत्यन्त मधुर क्रोध है।

तोर समरपनुजुत सुबिचारा। धरे जमुन अमलतहि उजारा॥
तव हिय कंज बिपिन मृदुताई। गुनन्ह माँझ सास्वत सुजनाई॥

तुम्हारे समर्पणयुक्त श्रेष्ठ विचार यमुना के जल के समान निर्मलता का प्रकाश धारण किये हुए हैं, तुम्हारे हृदय में कमलवन की कोमलता और गुणों में शाश्वत शालीनता है।

तव गँवारपनु महुँ सुखखाना। बेद रिचन्हि कर मधुमय गाना॥
तव दृग तरल त्रिपुर कइ पीरा। जे करि सकहि निगुनहिं अधीरा॥

तुम्हारे गँवारपन में सुख की खान वेदऋचाओं का मधुर गान है, तुम्हारे नेत्रों में त्रिलोक की तरल पीड़ा है, जो निर्गुण को भी अधीर कर सकती है।

तव हिय केरि बिकलतइ माहीं। क्रौंची कइ बिषदित तनुहाही॥
सुचि भाउन्ह कंजन्ह तरुनाई। निरनय महुँ हिमगिरि अचलाई॥

तुम्हारे हृदय की व्याकुलता में क्रोच पक्षि की विषाद युक्त एकान्तिकता है। तुम्हारी पवित्र भावनाओं में कमलिनियों का तारुण्य और निर्णय में हिमालय के समान अचलता है।

महिहि सुगंध सो तव रसु छाई। उमग जे प्रथम फुहारहुँ पाई॥
प्रिये तोर अस छबि बिस्तारा। गगन नीलपनु सरिस अपारा॥

पृथ्वी की वह सोंधी सुगन्ध जो वर्षा का प्रथम जल पाकर उठती है, तुम्हारे ही प्रेम से युक्त है। हे प्रिये! तुम्हारे स्वरूप का यह विस्तार, आकाश के नीले रङ्ग के समान असीम है।

मैं जुग जुग तें जतनु जुड़ावा। अब लौ तदपि पार नहिं पावा॥
सुनि तुम्हार रसमय मृदु बोला। निजानंद तजि मम हिय डोला॥

मैं युगों-युगों से प्रयत्न करता आ रहा हूँ, किन्तु अब तक मैं तुम्हारे इस स्वरूप का पार नहीं पा सका। तुम्हारी प्रेमयुक्त वाणी सुनकर आत्मानन्द को त्यागकर मेरा हृदय डोल गया है।

मिलन सपुन मुदधर दृग तोरे। प्रानहिं सम अतिसय प्रिय मोरे॥
निरखि तुम्हार रीति रस दाना। तेहिं उदारतउँ स्याम बिकाना॥

मिलन के स्वप्नों का आनन्द धारण करनेवाले तुम्हारे ये नेत्र मुझे अपने प्राणों के समान अत्यधिक प्रिय है। तुम्हारी प्रेमदान की रीति देखकर उसकी उदारता में यह कृष्ण बिक गया।

मम मुरलिहि सब रागन्हँ माँझा। तवहि रुचिर नाउँन्ह कइ साँझा॥
स्वातिहि जलु जप चातक जैसे। तोहि जपउँ मैं संतत तैसे॥

मेरी मुरली के समस्त रागों में तुम्हारा ही सुन्दर नामों की संध्या है। चातक जैसे स्वाति के जल को ताकता रहता है, वैसे ही मैं निरन्तर तुम्हारा स्मरण किया करता हूँ।

तो तुम निज कहँ कह कस दीना। छबि गुन बिभवहि निपट बिहीना॥

तो फिर तुम स्वयं को दीन और गुण व सुन्दरता के ऐश्वर्य से नितान्त रिक्त कैसे कहती हो?

क.- तृप्त मैं तो नित्य प्रिये कामनाबिहीन रिस, प्रेम घृना मोर बिरचित सब माया हैं।
जग सुख दुख लहँ इन्हहि तें प्रतिछिन, पुनि मोहि भजि निज बंधन नसाया हैं॥
गनिति का जोगि जति तापस गृहीहि केरि, अज हर मोर पद हृदयँ जुड़ाया हैं।

अस निरबेद ब्रह्म केर हिय ग्यानसिंधु, प्रीतिउ पाहन मारि तैने तरंगाया हैं॥

हे प्रिये! मैं नित्य ही तृप्त, इच्छारहित हूँ। क्रोध, प्रेम, घृणा आदि सब विकार मेरे ही द्वारा रचित मेरी माया है। यह संसार प्रतिक्षण इनसे सुख एवं दुःख प्राप्त किया करता है और मेरा भजन करके, अपने बन्धन नष्ट किया करता है। योगी, यति, तपस्वी और गृहस्थों की तो गिनती ही क्या, स्वयं शिव और ब्रह्मा ने भी मेरे चरणों में अपने हृदय लगा रखे हैं। ऐसे निर्वेद ब्रह्म के हृदय में स्थित ज्ञानरूपी सागर को प्रेमरूपी पत्थर मारकर तुमने तरङ्गित कर दिया है।

दोहा- **अब दृग भै तव छबि रसिक मैं सबबिधि तव दास।**
अनत सुख न मोहि राधिके हृदयँ एक तव आस॥३४॥

अब मेरे नेत्र तुम्हारे स्वरूप के रसिक और मैं स्वयं सब प्रकार से तुम्हारा दास हो गया हूँ। हे राधे! मेरे लिये अन्यत्र कहीं पर भी सुख नहीं है और हृदय में केवल तुम्हारी ही आशा है।

चौ.- **हे ब्रजनाथ प्रान आधारा। तोहि देन कछु करउँ बिचारा॥**
पर हिय उमग सोच यह भारी। तुमहि त सबबिधि सुनिधि हमारी॥

तब राधाजी ने कहा- हे व्रजेश! हे प्राणाधार! मैं तुम्हें कुछ अर्पित करने के विषय में सोचती हूँ। किन्तु मेरे मन में यह सोच उमड़ आता है कि तुम ही तो मेरा सब प्रकार का श्रेष्ठ धन हो।

मैं तुम्हारि रसनिधि मम तोरी। देइ सकहुँ का मैं तोहि भोरी॥
गहि तोरेहि रसु पुनि तोहि देऊँ। करउँ गुमान बहुरि मैं ऐऊँ॥

मैं तुम्हारी और मेरा प्रेमरूपी धन भी तुम्हारा, ऐसी परिस्थिति में मैं सीधी-सादी ग्वालिन तुम्हें क्या दे सकती हूँ? तुमसे प्रेम पाकर वही प्रेम पुनः तुम्हें देती हूँ और इस बात पर गर्व करती हूँ।

मम सुख दुख तव पद रज बोरा। ताकहि नित प्रमुदित रुख तोरा॥
मोरे हिय कइ रागिनि माहीं। गान रूप तव सुरति समाहीं॥

मेरे सुख और दुःख दोनों ही तुम्हारे चरणों की रज में डूबे हुए सानन्द तुम्हारा ही रुख देखते रहते हैं। मेरे हृदय की रागिनियों में तुम्हारी स्मृतियों का ही गीत समाया हुआ है।

मुकुति भोग रुचि तन धन केरी। सदा सूलप्रद रही घनेरी॥
किन्तु बिनसि तें तव आधारा। अब कल्यानद संग तुम्हारा॥

मुझे मुक्ति और शरीर व धन सम्बन्धी भोगों की रुचि सदैव अत्यधिक कष्टदायक ही रही है। किन्तु वह तुम्हारे आश्रय से नष्ट हो चुकी है और अब तुम्हारा साथ मेरे लिये सब प्रकार से कल्याणप्रद है।

पाए बिनु तव बदनु प्रकासा। मम दृग कंज न लहहि बिकासा॥
मुरलिनाद सुनि परइ न जब लौ। मोरे श्रवन बधिर रह तब लौ॥

तुम्हारे मुखरूपी सूर्य का प्रकाश पाये बिना मेरे नेत्ररूपी कमल खिल नहीं पाते। जब तक तुम्हारी मुरली का शब्द सुनाई नहीं पड़ता तब तक मेरे कान बहरे ही रहते हैं।

तोहि परसे बिनु हाथ मोर यह। झूलहि जनु मृत तनु सरितउँ बह॥

तुम्हे स्पर्श किये बिना मेरे हाथ ऐसे झूलते रहते हैं, जैसे नदी में कोई मृत शरीर बहता है।

क.- **प्रान प्रियतम तुम धन परिवार मम, धरमहि मूल सुख जीवन अधार हो।**

तुम मोर स्वासाबृत्ति हृदयँ कंपन बसे, तुमहि सुइष्ट सुचि रसउ आगार हो॥
आराधिबे जोग तुम सुचि मूरति नयहि, जीवनहि तत्व अरु अरथ प्रसार हो।
स्याम मोर भाउँ यह बानिहिं बिलास जनि, तुम मोर तृप्ति अरु पृह केरि धार हो॥

हे प्राणप्रियतम! तुम ही मेरे धन हो, तुम ही मेरे परिवार, धर्म के मूल, सुख और मेरे जीवन के आधार हो। तुम ही मेरे श्वासों की अवृत्ति और मेरे हृदय के कम्पन में बसे हुए मेरे श्रेष्ठ ईष्टदेव और पवित्र प्रेम के धाम हो। तुम ही आराधना किये जाने योग्य सुन्दर और विनयरूपी मूर्ति हो। तुम ही मेरे जीवन के तत्व और अर्थ का विस्तार हो। हे घनश्याम! मेरे ये शब्द मेरी वाणी का विलास मात्र नहीं है। तुम ही मेरी तृप्ति और मेरी कामनाओं की धारा हो।

दोहा- **तुम न अगोचर मम चखन्ह तव छबि मम हिय माहिं।**
भव कानन भटकत अजउँ भई अभय तोहि पाइ॥३५॥

तुम मेरे नेत्रों के लिये अगोचर नहीं हो, तुम्हारी ही छवि मेरे हृदय में बसती है। मैं भवरूपी वन में भटकते हुए आज तुम्हें पाकर निर्भय हो गई हूँ।

चौ.- **प्रिये सुरति सुचि तव मम स्वासा। तव बिनु मोहि त्रासद चौमासा॥**
रोम रोम मम रह पुलकाई। अनुपम रुचिर तोर छबि पाई॥

हे प्रिये! तुम्हारी पवित्र स्मृतियाँ ही मेरा श्वास है; तुम्हारे बिना मेरे लिये चौमासा भी अत्यन्त कष्टदाई है। तुम्हारी अनुपम और अत्यन्त मनभावन छवि से मेरे रोम में पुलक छाई रहती है।

तव रस केर अकथ रुचिराई। जुग जुग तें मोहि रहि हरषाई॥
तुमहि मोर चितरंजनि आली। तुमहि तें मैं अतुलित बलसाली॥

तुम्हारे प्रेम की अकथनीय मनभावनता युगों-युगों से मुझे प्रसन्न करती आ रही है। तुम ही मेरे चित्त को आनन्दित करनेवाली मेरी सखि हो और तुमसे ही मैं अतुलनीय बलसम्पन्न हूँ।

मम चेतनतउँ आतम तुमही। रहहि तोर बिनु हिय अति बिरही॥
जे मैं बरुतम कबि संसारू। तुअ मम हिय बसि कबिता चारू॥

तुम ही मेरी चेतना की आत्मा हो। तुम्हारे बिना मेरा हृदय अत्यन्त विरही रहता है। जो यदि मैं संसार का सर्वश्रेष्ठ कवि हूँ तो तुम मेरी हृदय में बसी हुई सुन्दर कविता हो।

तवहि जिअनि तें जीअनि मोरी। अद्बितिय प्रीति मोर प्रति तोरी॥
तुम मम बैनुहि मधुमय गीता। गहन अरथजुत भाउँ पुनीता॥

तुम्हारे जीने से ही मेरा यह जीना है और मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम भी अद्वितीय है। तुम ही मेरी मुरली का मधुर गीत और गहन अर्थयुक्त पवित्र भावना हो,

तुम मम जीवन लच्छ महाना। हिय कर तुमही धरम महाना॥
मोहन मोहन मैं तउँही बल। जिवन जटिलतउँ तुमहि निपट हल॥

तुम्ही मेरे जीवन का महालक्ष्य और मेरे हृदय का महान धर्म हो। सबको मोह लेनेवाले को भी मैं तुम्हारे ही बल से मोह लेता हूँ। मेरे जीवन की जटिलताओं का एकमात्र हल तुम्हीं हो।

क.- **प्रिये मोर बिलोचन छितिज पटी सो जापे, कढ़ि तोरि सुरति रुचिर चित्र रूप है।**

मोर दुतिमय चारु बदनु सो महिखंड, तोर प्रभा जहाँ पे प्रथम रबि धूप है॥
जदपि मैं ब्रह्म जग केर भव हारी मोहिं, तदपि तुम्हार बिनु जग भवकूप है।
जस कंज संग पंक छबि लहँ अनुपम, तस तुमहि सो यह अहीर अनूप है॥

हे प्रिये! मेरे नेत्र क्षितिजपटल है, जिस पर तुम्हारी स्मृतियाँ सुन्दर चित्र हो अङ्कित है, मेरा तेजयुक्त, सुन्दर मुख भूमि का वह टुकड़ा है, तुम्हारी आभा जिस पर सूर्य की पहली धूप है। यद्यपि मैं भवरूपी भय का हर्ता परब्रह्म हूँ, किन्तु फिर भी तुम्हारे बिना यह संसार मेरे लिये भव का कूपमात्र है। जैसे कमल के साथ कीचड़ भी अनुपम शोभा पाता है, वैसे ही यह अहीर तुम्हारे आश्रित होकर अनुपम है।

दोहा- नित मम अंतर बिपिन महुँ तुम रितुराज समान।
मोर बैनु मधुतउँ निपट केवल तउँ गुनगान॥३६॥

हे प्रिये! मेरे हृदयरूपी वन में तुम नित्य ही ऋतुराज बसन्त के समान निवास करती हो। मेरी मुरली की मधुरिमा में केवल तुम्हारे ही गुणों का गान होता है।

चौ.- पिय तुम सो रबिमरिचि प्रकासा। मनहिं मुकुल जेहिं परसि बिकासा॥
सुचि संकलप तुमहि पिय मोरे। समुद जाहिं हिय राखेउँ जोरे॥

हे प्रियतम! तुम सूर्य के प्रकाश की वह किरण हो जिसके स्पर्श से मेरा मनरूपी कमल खिल उठा है। हे प्रियतम! तुम्ही मेरा पवित्र सङ्कल्प हो जिसे मेंने आनन्दपूर्वक हृदय बसा रखा है।

रस तुम तुमहि रसिक रसु पोषक। तुम रसजानँद बिरहु बिसोषक॥
तुमहि लहत पिय मम हिय आई। बिरहु सँजोग केर रुचिराई॥

हे प्रिय! तुम प्रेम हो, तुम्ही प्रेमी हो और तुम्ही प्रेमपोषक हो। प्रेमप्रसूत आनन्द तुम्हीं हो और तुम्ही मेरा विरह हरनेवाले हो। मेरे मन में आकर तुम्ही विरह और मिलन का रस प्राप्त करते हो।

पिय तुम रुचि मन केरि महाना। तव कर लतिका मम सुखखाना॥
हिय अग्यान मिटेउ तोहि पाई। जथा मिटहि आतप बरषाई॥

हे प्रिय! तुम ही मेरे मन की महान रुचि हो, तुम्हारी हाथरूपी लता सुख की खान है। तुम्हें पाकर मेरे हृदय का अज्ञान मिट गया है। जैसे वर्षा के आने के कारण ताप नष्ट हो जाता है।

तुम्ह ते मिल मोहि प्रीति अपारा। अब लौ जाहिं न भार उतारा॥
तद्यपि मोकहँ बारहि बारा। स्वामिनि कहि कहि नाथ पुकारा॥

तुमसे मुझे अपार प्रेम प्राप्त होता है; किन्तु अब तक मैंने उसका ऋण नहीं उतारा है। फिर भी स्वामी मुझे बार-बार स्वामिनी-स्वामिनी कहकर पुकारते हैं।

निगुन होत तैं गुननिधि भारी। मैं अनुचरि सबभाँति तुम्हारी॥

तुम निर्गुण होते हुए भी गुण के महासागर हो और मैं सब प्रकार से तुम्हारी अनुचरी हूँ।

क.- तोरेउँ उत्तम दिब्य सुगुनी हृदयँ केर, सागर सरिस दस दिसि बिस्तार हैं।
रसिक तुमहि रसरूप अनुपम तुम, तासु स्वाद तुमहि जे अनंत अपार हैं॥
अकल बहोरि तुम अगम अगोचर हो, तोहि पृह केउ यह बात निराधार हैं।

एहि बिपरीत मैं अरूप गुनहीन नित, गवारिन मोर सब अधम अचार हैं॥

तुम्हारा उत्तम और सद्गुणों से भरा हुआ हृदय सागर-सा दशों दिशाओं में विस्तृत है। तुम्ही प्रेमी हो, तुम्ही अनुपम प्रेमस्वरूप हो और उसकी अनुभूति भी तुम्ही हो, जो अनन्त और अपार है। तुम कलारहित, अगम और अगोचर हो और तुम्हें कोई कामना है, यह बात व्यर्थ है। इसके विपरीत मैं सौन्दर्य और गुणों से नित्य रहित गँवार गोपी हूँ और मेरे सारे कर्म भी धर्मरहित हैं।

दोहा- **कछु न मोर करतल अस जे पिय कहुँ मुददाइ।**
तदपि हृदयँ मम मोह अस मैं उन्ह लीन्ह रिझाइ॥३७॥

आज मेरे हाथों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो प्रियतम को आनन्द प्रदान कर सकें। फिर भी मेरे हृदय में यह भ्रम है कि मैंने स्वामी को रिझा लिया है।

मासपारायण अठारहवाँ बिश्राम

चौ.- **तुम सम तुमहि राधिके प्यारी। पेमु निछल बरसावनिहारी॥**
जग तिय अस को तोर समाना। जिन्हँ रसनिधि जनि जाइ लँघाना॥

तब श्रीकृष्ण ने कहा- हे प्रिय राधिके! निष्कपट प्रेम की वर्षा करने में तुम्हारे समान तुम ही हो। संसार में ऐसी कौन सी स्त्री है जिसके प्रेमरूपी सागर का पार नहीं पाया जा सकता।

प्रेम सिंधु तव गहन अनंता। पार न मोहि होत भगवंता॥
तउँ प्रसाद मैं रसधि तट पाई। तासु रुचिरतउँ रहेउ जुड़ाई॥

किन्तु तुम्हारा प्रेमरूपी सागर अत्यन्त गहरा व विस्तृत है और ईश्वर होकर भी मेरे लिये उसका पार नहीं। तुम्हारी ही कृपा से प्रेमसमुद्र का तट पाकर मैं उसकी रुचिरता को पा रहा हूँ।

सुनि पर चहुँदिसि तव छबि केरा। अमल अनूपम सुजसु घनेरा॥
कृपा बरषि तैं मम सिरु भारी। कीन्ह मुकुलमय ऊसर डारी॥

चारों ओर तुम्हारे ही निर्मल व अनुपम स्वरूप का सुयश सुनाई पड़ता है। तुमने मुझपर कृपा बरसाकर, मेरे निर्भाव मन की लता को सुन्दर कामनारूपी कलिकाओं से युक्त कर दिया है।

अमित दृगन्हँ तें मम गुन देखी। तैं सिहात रहि मोहि बिसेषी॥
जातें मैं अति भयउँ सुखारी। निज गुन दम्भ किए अति भारी॥

अनेक नेत्रों से मेरे गुणों को देखकर तुम मेरी विशेष सराहना करती रही हो, जिससे मैं तुम्हारे द्वारा प्रशंसित अपने गुणों पर अत्यधिक मान करता हुआ अत्यन्त सुखी हुआ हूँ।

सहत अकेल पीर दिनुराती। बिरह माँझ हहि रहि मुसुकाती॥
तदपि न मैं तुम्हार दुख जाना। रहा निपट प्रिय मोहि भरमाना॥

जबकि दिनरात पीड़ा सहते हुए तुम मेरे विरह में भी निरन्तर मुस्कुराती ही रही हो। इतने पर भी मैनें तुम्हारे दुःख को नहीं समझा और तुम्हारे विषय में केवल भ्रमित रहना ही मुझे प्रिय रहा।

सो एक मैंहि तोर दुख हेतू। भजेहुँ तदपि तुम मोहि अहेतू॥

इसलिये मैं ही तुम्हारे दुःख का एकमात्र कारण हूँ, तथापि तुमनें मेरा निष्काम भजन किया है।

क.- ऐसी तोर अनुपम अमल सुप्रीति पाइ, नित तोर रिनी यह जग भगवान हैं।
तिहुँपुर निधिपति जच्छ अनुचर मोर, सुर मोहि देत निसिदिनु धन दान हैं॥
ऐतनेहुँ दरप करत न बिचारुँ अस, प्रीति धन मोते तू अधिक धनवान हैं।
तैं न मोहि सम प्रिये निठुर छमहुँ मोहिं, तोर अपराधी ठाढ़ौ तोर समुहान हैं॥

उपमा और मलरहित तुम्हारा ऐसा उत्कृष्ट प्रेम मुझे मिला है, इसलिये यह जगदीश्वर तुम्हारा नित्यऋणी रहेगा। त्रिलोक की सम्पदा के अधिपति यत्तराज कुबेर मेरे सेवक हैं और देवतागण मुझे दिन-रात धन का दान देते हैं। इतनें पर ही मैं गर्वयुक्त हो जाता हूँ और इतना भी विचार नहीं करता कि प्रेमरूपी सम्पदा में तुम मुझसे बढ़कर हो। हे प्रिये! तुम मेरे समान कठोर नहीं हो। तुम्हारा अपराधी मैं तुम्हारे सन्मुख खड़ा हूँ, मुझे त्तमा कर दो।

दोहा- हिय बिसालतउँ हेरि निज मम अपराध बिसारि।
देहुँ मोहि निज रस अमल जातें होउँ सुखारि॥३८॥

अपने हृदय की विशालता का स्मरण करके, तुम मेरा अपराध भुला दो और मुझे अपना निर्मल प्रेम प्रदान करो, जिससे कि मैं सुखी हो जाऊँ।

चौ.- सब प्रकार तजि निज गरुआई। भगतपाल मोहि देइ बड़ाई॥
बस्तु न एकउँ अस मम पासा। छिनु भरि तहि जे देहि बिलासा॥

तब राधाजी ने कहा- सब प्रकार से अपनी प्रभुता भुलाकर भक्तवत्सल प्रभु मुझे बड़ाई दे रहे हैं; किन्तु मेरे पास ऐसी एक भी वस्तु नहीं, जो तुम्हें त्तणभर भी अलौकिक आनन्द दे सके।

प्रभुता तजि बिसारि संकोचा। मम सन गनि आपुहि अति ओछा॥
भेंटे पिय ग्वालिनि तें कैसे। मिलन अधीर जुगहुँ जुग जैसे॥

सङ्कोचरहित हो अपनी प्रभुता त्यागकर मेरे सन्मुख स्वयं को अत्यन्त हीन बताकर प्रिय (आप) मुझ ग्वालिन से कैसे मिले; जैसे मुझसे मिलनें के लिये आप युगों-युगों से अधीर हो।

पुनि निज ब्रह्मसरूप बिसारी। नयन कमल तें मोचत बारी॥
मम सन तजि धीरज प्रभुताई। बिनवत प्राकृत नर के नाई॥

फिर अपने ब्रह्मत्व, प्रभुता और धैर्य का त्याग करके, अपने कमलरूपी नेत्रों से अश्रुपात करते हुए मेरे सन्मुख किसी साधारण मनुष्य के समान विनय कर रहें हैं।

यह तव भगतबछलतहि पावन। जे तुअ मोहि गनत मनभावन॥
मम बिचार यह तव प्रभुताई। न त कछु गुपुत न जग तहि पाई॥

यह तुम्हारी पवित्र भक्तवत्सलता ही है, जो तुम मुझे प्रिय समझते हो। मेरे विचार से यह तुम्हारी प्रभुता ही है, अन्यथा संसार में तुम्हारे सन्मुख कुछ भी गुप्त नहीं है।

छन्द- तहि पाइ जीवहि सकल संसय मोह भ्रम किमि बिनसही।
आदित्य पाइ तिमिर सुगुर सन मोह घन जिमि दरकही॥
मैं नित अकृत गतचेष्ट बिनु रव तोर बल जे बिसरहूँ।

एहि तें कृपा करि प्रेम मोहि निज देत रहु एहि बरु चहूँ॥

तुम्हें पाकर प्राणी के समस्त संशय, भ्रम और मोह कैसे नष्ट हो जाते हैं; जैसे सूर्य से अन्धकार और उत्तम गुरु से महामोह मिट जाता है। यदि तुम्हारा आश्रय छोड़ूँ, तो मैं नित्य निश्चेष्ट, निष्कर्म और वाणीहीन हूँ। अतः तुम कृपाकर, मुझे प्रेम देते रहो, मैं यही वर चाहती हूँ।

दोहा– **सुनि राधा के मृदु बचन बिहँसे कान्हँ किसोर।**
पुनि हिय लाइ कहा प्रिये मैं अधीन नित तोर॥३९॥

राधाजी के वचन सुनकर किशोरवय श्रीकृष्ण मुस्कुरा दिये और उन्हें हृदय से लगााकर कहने लगे कि हे प्रिये मैं नित्य तुम्हारे अधीन हूँ।

चौ.– **राधे बपु न रहहि नित पासा। जरा पाइ इन्ह होत बिनासा॥**
किन्तु हमार तेज अबिनासी। जगगत नित्य परसपरबासी॥

हे राधे! शरीर सदैव पास नहीं रहता, वृद्धावस्था पाकर यह नष्ट हो ही जाता है। किन्तु हमारी आत्माएँ अविनाशी, संसार से परे और सदैव एक-दूसरे में स्थित रहनेंवाली है।

मोपर अपरहि जनि अधिकारा। जनि मोहि अपरउँ अधिक बिचारा॥
प्रीति करत अथवा रसुआई। जे मैं कत तहि परौं देखाई॥

(तुम्हें छोड़कर)मुझ पर किसी दूसरे का अधिकार नहीं है, न ही मुझे किसी अन्य का अधिक विचार है। प्रेम करते हुए अथवा प्रेम प्राप्त करते हुए यदि मैं तुम्हें कहीं पर दिख जाऊँ,

तहँ रसकिनिहिं गनेसु निज रूपा। प्रीति धरे निज सरिस अनूपा॥
मैं नित निधि अरु अनुचर तोरा। तवगत कवन प्रभाउँ न मोरा॥

तब वहाँ उपस्थित प्रेमिका को तुम अपने ही समान अनुपम प्रेमयुक्त, अपनी ही मूर्ति जानना। मैं सदैव ही तुम्हारा सेवक और तुम्हारी सम्पदा हूँ, तुमसे अलग होकर मेरा कोई प्रभाव नहीं है।

तव प्रति मम अस सहज सुभाऊ। तुम खिजाहुँ मैं तोहि मनाऊँ॥
अजहुँ बिगत सुनु प्रीति प्रबीना। मोर होत गनु निजहि न हीना॥

तुम्हारे प्रति मेरा यह सहज स्वभाव है कि तुम मुझसे रूठो और मैं तुम्हें मनाऊँ। हे प्रेमप्रवीणा! आज के उपरान्त मेरे होते हुए तुम स्वयं को तुच्छ न समझना।

दोहा– **मैं सेवक तुम सबबिधि स्वामिनि मोर उदार।**
मोर प्रीति कइ रीति एहि जानहिं जिन्हँ संसार॥४०॥

मैं तुम्हारा सेवक हूँ और तुम सब प्रकार से मेरी उदारमना स्वामिनी हो। यही मेरे प्रेम की रीति है, जिसे संसार जानता है।

चौ.– **जग महुँ समरथ मोर समाना। आन न मोहि अस भा अभिमाना॥**
तोरहि अमल प्रीति धन पाई। सहज गुमान सो गयउ पराई॥

इस संसार में मेरे समान समर्थ दूसरा कोई नहीं है, मुझे इसी बात का अभिमान हो गया था। किन्तु तुम्हारे ही निर्मल प्रेमरूपी धन को पाकर मेरा वह अभिमान सहज ही जाता रहा।

करत जतन बहु कलप अनंता। सेवहुँ तदपि न तव रिनु अंता॥

तातें निज हिय धरि नवनीता। हरहुँ आपु निज रिनु सुपुनीता॥

यदि मैं अनेक प्रयत्नों से अनन्त कल्पों तक भी तुम्हारी सेवा करूँ, तब भी मुझ पर तुम्हारे ऋण का अंत नहीं होगा। अतः उदारमन से तुम स्वयं ही अपना यह उत्तम व पवित्र ऋण हर लो।

सुनि राधिका पियहि मृदु बानी। प्रेम पयोधि बूड़ि सुखमानी॥
उमगि ससिन्हँ तें सोम प्रधारा। जलधि लहेहुं जिन्हँ उरमि पसारा॥

प्रियतम की ऐसी वाणी सुन राधाजी सुख मानकर प्रेममग्न हो गई। उस समय उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली, जिसे हाथ बढ़ाकर भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी हथेली पर धारण कर लिया।

रस मुकुता पुनि सो हिय लाई। पेमुबस्य सिरु लीन्ह चढ़ाई॥
अस लखि सकुचि सुलोचनवारी। पिय पद परसे आनँदु भारी॥

फिर प्रेम के उन मोतियों को हृदय से लगाकर प्रेमबस्य उन भगवान ने सिर पर चढ़ा लिया। यह देखकर सुलोचना राधाजी ने सकुचाते हुए महान आनन्द से प्रियतम के चरण स्पर्श किये।

तरु तमाल दुहुँ साख बढ़ाई। लतिकहि तब करि अभय उठाई॥
रूख लतामय लता रूख सी। सरदनिसा मनु ससि दुति बिलसी॥

श्रीकृष्ण ने दोनों भुजाएँ बढ़ाई और अभय देकर राधाजी को उठाया। प्रेमाधिक्य से श्रीकृष्ण राधामय हो गए और राधाजी कृष्णमय हो गई, मानो शरद्ऋतु की रात्रि कौमुदी से भीग गई हो।

नवल बिपिन अस पावस पाई। भा बसंतमय नव छबि छाई॥
एहिबिधि जनम जनम अनुरागी। मिले नृपति कबिता सुख लागी॥

उन युवा प्रेमियों के हृदय इस सुन्दर मिलन से प्रेम के पवित्र भावों व नवीन इच्छाओं से भर गए। हे परीक्षित! इस प्रकार जन्म-जन्मों के प्रेमी वे कविता के लिये सुखद विषय होकर मिले।

उन्ह रस कइ यह कथा सुहावनि। मोच्छद गंग सरिस अति पावनि॥

उनके प्रेम की यह सुन्दर कथा मोक्षदायिनी और देवनदी गङ्गा के समान अत्यन्त पवित्र है।

दोहा- **लहिबे पियपद पेमु बर राधा गोपिन्हँ संग।**
कात्यायनि ब्रत कीन्ह बर श्रद्धा सहित अभंग॥४१॥

प्रियतम श्रीकृष्ण के चरणों के प्रति प्रेम-प्राप्ति के लिये राधाजी ने गोपियों के साथ अक्षय-श्रद्धापूर्वक कात्यायनी-देवी का उत्तम व्रत किया था।

चौ.- **सोउ अवधि उन्ह ग्वालिन्हँ चीरा। नटखट हरेउँ कज्जली तीरा॥**
गोपि सबनि तब उन्ह तें माँगा। पिय हम लहँ तव पद अनुरागा॥

उसी अवधि में भगवान श्रीकृष्ण ने यमुनातट से उन गोपियों के वस्त्र चुराये थे। तब समस्त गोपियों ने उनसे यह माँगा कि हे प्रियतम! हमें तुम्हारे चरणों में प्रेम प्राप्त हो।

तब प्रसन्न भए कृपानिकेता। कहेहुं भाँति इहि उन्ह बरु देता॥
सरद पुरनिमहि राति सुहावन। रास करौं मैं तव सँग पावन॥

तब कृपानिकेत भगवान श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर उन्हें वर देते हुए इस प्रकार कहा कि शरत्पूर्णिमा की सुहावनी रात्रि को, मैं तुम सबके साथ पवित्र रास-लीला करूँगा।

तेहिं दिनु तें ग्वालिन समुदाई। सो निसि जोहि लागि अतुराई॥
जब कछु समउँ बिगत नरराई। सरद पुरनिमहि सो निसि आई॥

उसी दिन से गोपी-समूह व्याकुलतापूर्वक उस रात्रि की प्रतीक्षा करने लगा। हे परीक्षित्! फिर जब कुछ समय बीतनें पर शरद्-ऋतु की वह रात्रि आ गई,

तब गत अरध निसा हरि जागे। बर नट बेषु धरन तनु लागे॥
कचन्हि सँवारि प्रथम बिधि नाना। पहिरेहुँ नवल पीत परिधाना॥

तब अर्द्धरात्रि पाकर श्रीकृष्ण जागे और अपने शरीर पर उत्तम नटवेष धारण करने लगे। पहले तो अनेक प्रकार से अपने केश सँवारकर उन्होंने पीले रङ्ग के नवीन वस्त्र धारण किये।

सिखि सिखंड सिरु मनिजुत नाना। कुंडल बर उदभासहिं काना॥
नवल सरद सरसिज इव लोचन। खंजन झष अभिमान बिमोचन॥

उनके सिर पर मणिजटित मयूरपङ्खमुकुट शोभित है और कानों में उत्तम कुण्डल उद्भासित हो रहे हैं। शरद्ऋतु के नवीन कमल जैसे उनके नेत्र हैं, जो खञ्जन व मत्स्य का गर्व हरनेवाले हैं।

उर मनिहार अधर दल कंजिनि। मृदु बिहँसनि मनसिज मद गंजिनि॥

हृदय पर मणियों की माला है, कमलिनी की पङ्खुड़ी के समान अधर और उनकी मृदुल मुस्कान कामदेव का भी मान भङ्ग करनेवाली है।

दोहा– **बृषभ कंध रुच पीत पट बपु जनु नील तमाल।**
कटि करधनि पैजनिं पदन्हि रव उपजाव रसाल॥४२॥

वृषभ के कन्धों के समान उनके पुष्ट कन्धे पर पीताम्बर शोभित है। शरीर का रङ्ग मानों तमालवृक्ष के रङ्ग के समान है।

चौ.– **तदुप बैनु गहि हरि सुखकारी। आए मधुबन भवन बिसारी॥**
सोरह कलन्हि सहित थित अम्बर। निसिपति धरे सान्ति घन सुन्दर॥

तदुपरान्त सुख की सृष्टि करनेवाली मुरली लिये वे घर से निकलकर मधुवन आ गए। आकाश पर स्थित, सौन्दर्य और सघन शान्ति धारण किये, सोलह कलाओं से युक्त चन्द्रमा,

सुभ्र अमिअमय किरन पसारी। रहा न्हवाइ मनहुँ ब्रज धारी॥
कज्जलि ब्यक्त करन अनुरागा। ससि तें गहि कछु कौमुदि भागा॥

अपनी श्वेत और अमृतमयी कौमुदी से मानों व्रज की भूमि को स्नान करा रहा है। नीलवर्णी यमुनाजी भी अपना प्रेम व्यक्त करने के लिये चन्द्रमा से कौमुदी का कुछ भाग लेकर

रास केर बर अवसर पाई। निज जलु सुषमउँ लागि बढ़ाई॥
सौरभजुत सरिसिज अति भाए। जुबती जनु तन भूषन छाए॥

रास के उत्कृष्ट अवसर पर अपने जल की सुन्दरता बढ़ाने लगी। उसमें खिले हुए सुगन्धयुक्त कमलसमूह अत्यन्त सुहावने हैं, मानो किसी युवती ने शरीर पर बहुत-से आभूषण सजा रखे हों।

अलि तापर गुंजन कछु गाई। गहिबे उन्ह रस रहे उड़ाई॥
ब्रजमंडल मंडित नव सुषमा। खोज जड़हि कबि तिन्हँ हित उपमा॥

भौंरों के समूह गुञ्जन में कुछ गाते हुए, मधुपान की इच्छा से उन पर मँडरा रहे हैं। (सम्पूर्ण) व्रजमण्डल नवीन सौन्दर्य से विभूषित है और कोई मूर्ख कवि ही होगा, जो उसके लिये उपमा खोजेगा।

बृंदाबन धरि दिब्य सरूपा। त्रिपुर होइ लग ब्यक्त अनूपा॥
कोरक कुसुम नवल बहुरंगा। बुदबुद सम उए लतिन्हँ तरंगा॥

इस दिव्यरूप से वृन्दावन त्रिलोक में अनुपम दिखने लगा। नदी की तरङ्गों-सी लक्षित लताओं पर जल की बूँदों के समान विविध रङ्गों की कलिकाएँ और नवीन पुष्प विकसित हो गए।

किसलय माँझ सिराबिन्यासा। सघन भयउँ लखि अवसर रासा॥
रूखन्हँ तनउँ कठिनतउ माहीं। उमगि प्रनय प्रमोद मृदुताई॥

रास के अवसर को उपस्थित देखकर वनस्पतियों के पत्तों के मध्य स्थित शिराओं का जाल अत्यन्त घना हो गया। वृक्षों के तनों की कठोरता में प्रणयरूपी आनन्द की कोमलता उमड़ आई

पाइ पंथतिय नव छबि सारी। बनहिं देत जनु मंगल गारी॥
मनि कंचनमय भै सरि घाटा। मनहुँ धनिक बैठे अति ठाटा॥

मार्गरूपी स्त्री सौन्दर्यरूपी नवीन साड़ी पाकर उसकी सुन्दरता से मानों वन को मङ्गलमय गालियाँ दे रही है। यमुना के तट मणियों व स्वर्ण से सज गए, मानों दो कुबेर ठाठ से बैठे हों।

दोहा- **सहसदलन्हँ पंकजन्हँ सरि करइ बिचित्र सुगंध।**
मंद अनिल गहि जाहिं हिय आकरषहि अलि बृंद॥४३॥

सहस्रदल कमलों से युक्त यमुना विचित्र सुगन्ध फैला रही है। मन्द गति से चलता हुआ पवन उसी सुगन्ध को अपने आँचल में समेटकर उससे भौंरो के समूहों को आकर्षित कर रहा है।

चौ.- **बिबिध रूखमय भूधर राजा। नील बसनजुत जनु रितुराजा॥**
बहुमनि उन्नत सिखर मनोहर। बाछा उच्च जुबहि जनु सुन्दर॥

गिरिराज बहुत-से वृक्षों से अलंकृत है, मानों नीलवस्त्र धरे ऋतुराज वसन्त हो। अनेक मणियों से युक्त उसके उन्नत शिखर मनोहर हैं, मानों किसी तरुण की ऊँची और सुन्दर आकाङ्क्षाएँ हों।

सिखर तें उमगि बिमल जलधारा। कल कल करि थल लहँहि प्रसारा॥
मनहुँ परसि महि के कठिनाई। टूटेहुँ जुबहि उछाह पृहाई॥

शिखरों से उमड़ती निर्मल जलधाराएँ कल-कल ध्वनि से भूमि पर गिरकर इधर-उधर फैल रही है, मानों सत्य की कड़वाहट के बोध से किसी युवा का उत्साह व आकाङ्क्षाएँ टूट गई हों।

गति रच्छित तेहिं निरमलताई। थिरता जा कहँ सकहि नसाई॥
जथा कर्मि उद्यम उतकरषहि। आलसि किन्तु आपु अपकरषहि॥

निरन्तरता से रक्षित वह जल स्वच्छ है, स्थिरता जिसे नष्ट कर सकती है। जैसे कर्मठ मनुष्य परिश्रम करने पर उन्नति पाता है, किन्तु आलसी मनुष्य स्वयं ही पतन को प्राप्त हो जाता है।

गिरि पर इत उत तममय सुन्दर। दमकहि लघु गुर नाना कंदर॥
जनु हिमगिरि पर तापस नाना। कठिन तपहि लहँ तेज महाना॥

पर्वत पर यहाँ-वहाँ अन्धकारयुक्त किन्तु सुन्दर, अनेक छोटी-बड़ी कन्दराएँ सुशोभित है। मानों हिमालय पर अनेक तपस्वी कठोर तप करके, महान तेज प्राप्त कर रहे हो।

कानन खग पसु नाना जाती। हिय धरि सान्ति चरत संघाती॥
निरखहि बिपिन चकित सब भागा। जानि न पर तिन्ह चित कित लागा॥

अनेक जातियों के पशु-पक्षि मन में शान्ति लिये, साथ-साथ विचरते हुए चकित हो वन के समस्त स्थानों को देख रहे हैं। यह सूझ ही नहीं पड़ता कि उनका चित्त कहाँ लगा हुआ है?

गिरि पद प्राँत जलासय सुन्दर। प्रतिबिम्बित छबि बह जहँ भूधर॥
निरखि कान्हँ अस सुषमा भारी। काढ़ि बेनु रस गाढ़निहारी॥

पर्वत की तराई में एक सुन्दर जलाशय है, जिसके जल में पर्वत के सौन्दर्य का बिम्ब बह रहा है। कन्हैया ने व्रज की यह सुन्दरता देख प्रेम को और गहरा करनेवाली मुरली निकाल ली।

दोहा- **राधा आदिक अलिन्हँ कर तिहि रव नाउँ पुकारि।**
रास हेतु टेरत भए मोहन रासबिहारि॥४४॥

उसकी मधुर ध्वनि में राधा आदि गोपियों के नाम पुकार कर रास-रङ्ग में विहार करनेवाले वे मनमोहन रास-नृत्य के लिये उन्हें बुलाने लगे।

चौ.- **मुरलि बजात सोह हरि कैसे। मयन उठेउँ जग मोहन जैसे॥**
राग सो उपजावत अनुरागा। पुष्पबान इव सब दिसि लागा॥

बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण कैसे शोभा दे रहे हैं; जैसे संसार को मोहने के लिये स्वयं कामदेव उठे हो। वह राग प्रेम उत्पन्न करता हुआ कामदेव के पुष्पबाण-सा सब दिशाओं में भर गया।

सुनि ग्वालिनि सो नाद महाना। परिहरेउँ तन मानस ध्याना॥
चित भा पंगु लोलपनु त्यागी। हरि पद अमल प्रीति उन्ह जागी॥

उस महान ध्वनि को सुन गोपियों ने तन और मन की सुधि भुला दी। उनका चित्त चञ्चलता त्यागकर स्थिर हो गया और प्रियतम के चरणों के प्रति उनमें विकारशून्य प्रेम जाग उठा।

धुनि सो मधुर श्रवन तल पाहीं। खग मृग थकित भए बन माहीं॥
सिद्धन्हँ अचल ध्यान बिचलाना। तापस तप सबबिधि बिसराना॥

उसी मधुरतम ध्वनि को कानों से सुनकर वन में विचरते हुए पशु-पक्षि थकित रह गए। सिद्धों का अचल ध्यान भी विचलित हो गया और तपस्वियों ने सब प्रकार से तप त्याग दिया।

अज बिमोहबस भए अधीरा। सिवहि समाधि लागि गम्भीरा॥
कज्जलि के भइ गति बिपरीता। सुररिषि चंचल भै सुनि गीता॥

महान मोह के वशीभूत हुए ब्रह्माजी अधीर हो उठे और शिवजी को गहरी समाधि लग गई। यमुनाजी विपरीत दिशा में बहनें लगी और उस वेणुगीत को सुनकर देवर्षि नारद चञ्चल हो उठे।

दोहा- **लच्छि बाढ़ि निज उभय कर बाँधे जगपति कान।**
तदपि सुनत भइ आपु रत छितिधर हिय बिचलान॥४५॥

उस समय महालक्ष्मी ने दोनों हाथ बढ़ाकर श्रीहरि के कान बन्द कर दिए, किन्तु स्वयं ध्वनि सुनकर मग्न हो गई और पृथ्वी को धारण करनेवाले शेषनाग का हृदय विचलित हो गया।

चौ.- इत ब्रज जुबती आतुर धाई। लौकिकतहि सब बंध बिहाई॥
जे चख भरि रहि काजर कोरा। चलि ऐकउँ करि दूसर छोरा॥

इधर लौकिकता के समस्त बन्धन तोड़े गोपियाँ उतावली से चली। उस समय जो गोपी अपने नेत्रों में काजल की रेखा अङ्कित कर रही थी, उसने एक नेत्र में काजल लगाया और दूसरे को बिना लगाये ही चल पड़ी।

आतुरि महुँ भूषन भुज केरे। पग पहिरे पग के भुज पेरे॥
तेहिं समउ एक प्रेम सरि बही। जे निज पतिउँ चरन चापत रहि॥

शीघ्रता के कारण ही किसी ने भुजाओं के आभूषण पैरों में पहन लिये और पैरों के हाथ में। उस समय एक गोपी जो अपने पति के चरण दबा रही थी, श्रीकृष्ण के प्रेम में मग्न हो गई।

बार बार तेहिं कछु कहि चाहा। तिय हित तिय पै कर न निबाहा॥
तदुप कहा तेहिं साहस लाई। पति मोहिं जगपति रहे बोलाई॥

उसने बार-बार पति से कुछ कहना चाहा किन्तु जिह्वा उसका साथ नहीं दे रही है। तदुपरान्त वह बोली- हे स्वामी! जो सम्पूर्ण संसार के स्वामी हैं, वे परमात्मा मुझे बुला रहे हैं।

सुनि पति केर जरे सब गाता। भभकति कोपि कही तेहिं बाता॥
किन्तु गोपि पद गहि समुझाएहु। कंत ब्यरथ मोहि तैं धमकाएहु॥

यह सुन पति के सारे अङ्ग जल उठे, उसने क्रोधित हो उसे बहुत सी जली-कटी सुनाई। किन्तु उसने उसके चरण पकड़कर कहा- हे कंत! तुमने व्यर्थ में ही मुझे इतना भला-बुरा कहा।

बेगि तजौं तममय अभिमाना। चित आनहु उन्ह हरि कर ध्याना॥
मैं अरु तुअ आतम पुनि स्यामा। परमातम मलगत सुखधामा॥

किन्तु अज्ञानयुक्त अभिमान को तुम शीघ्र ही त्याग दो और श्रीहरि के ध्यान में चित्त लगाओ, क्योंकि मैं और तुम केवल आत्माएँ हैं, जबकि श्रीकृष्ण विकारों से रहित, सुखधाम परमात्मा हैं।

पूरनकाम अखिल जग स्वामी। सगुनरूप भगतन्हँ अनुगामी॥
तासु अमिअमय दरसनु पाई। मैं भव फंद गहउँ पुनि आई॥

वे पूर्णकाम, समस्त जगत के स्वामी और सगुण रूप से भक्तों का अनुशरण करनेवाले हैं। उनके अमृतमय दर्शन पा लेने पर लौटकर मैं पुनः इस लौकिक बन्धन को ग्रहण कर लूँगी।

तातें देहु रजायसु मोही। सुनि अस भा अँगार सठ कोही॥
तदपि गोपि नयबस गहि चरना। तिन्हँ समुझान कहत मृदु बचना॥

इसलिये मुझे वहाँ जाने की आज्ञा दो, यह सुनकर वह मूर्ख और क्रोधी आगबबूला हो उठा। तब भी गोपी ने विनम्रतापूर्वक उसके चरण पकड़कर उसे कोमल वचनों से (बहुत) समझाया।

पुनि कह कुपित जब न पति माना। लम्पट जड़ सुनु उघारि काना॥
भय देखाइ मोहि रोकत काहीं। सब तें प्रथम जाउँ प्रभु पाहीं॥

जब पति नहीं माना तो उसने क्रुद्ध होकर कहा- रे मन्दबुद्धि, कामी पुरुष! कान खोलकर सुन! तू डरा-धमकाकर मुझे क्या रोकता है, मैं तो उन प्रभु के पास सबसे पहले पहुँच जाऊँगी।

दोहा- मन त गयउ प्रथमही तहँ अबहि चले मम प्रान।
आदेसत मृत तनहि अब रहेहुँ छाति जुड़ान॥४६॥

मन तो पहले ही (परमात्मा के चरणों में) जा चुका है, ले अब मेरे प्राण भी वहीं चले। अब मेरे मृत शरीर को आदेश दे-देकर अपनी छाती ठण्डी करते रहना।

चौ.- अस कहि तजि तन अरु जग मोहा। तेहिं अलौकिकउँ पाएहुँ छोहा॥
परिछित भाउ जोइ जे लावहि। तसहि रूप तें हरिपद पावहिं॥

यह कहकर सांसारिक मोह और शरीर त्यागकर, उसने उन अलौकिक का प्रेम पा लिया। हे परीक्षित! जो मनुष्य जैसी भावना रखता वह उसी रूप में भगवान के चरणों को प्राप्त करता है।

सुनतहि मुरलिहि मधुमय ताना। सोउ दिसि गोपिबृंद उमगाना॥
सूल बिषैल जन्तु सब आसा। पंथ माँझ तदपि न उन्ह त्रासा॥

मुरली की मधुमिश्रित तान सुनते ही गोपियों का समुदाय उसी ओर उमड़ पड़ा। उस मार्ग पर सब ओर विषैले जीव व काँटे बिखरे पड़े थे, फिर भी उन्हें उनका कोई भय नहीं था।

सबनि आइ पुनि जहँ घनस्यामा। निरखि पियहि भा उन्ह बिश्रामा॥
नयन भए मधुरसिक समाना। लगे करन मुखमद छबि पाना॥

फिर सब गोपियाँ वहाँ आई जहाँ श्रीकृष्ण थे। प्रियतम को देखकर उन्हें संतोष प्राप्त हुआ। उनके नेत्र भौंरो के समान हो गए उन श्रीकृष्ण के मुख का सौन्दर्यरूपी पराग पीने लगे।

तब हरि हरषि पूछि कुसलाई। बन्दन करि पुनि कह मुसुकाई॥
कहु सुभदा केहि हित इहँ आई। कुल पितु पति मरजाद बिहाई॥

तब श्रीहरि ने हर्षपूर्वक उनकी कुशल पूछी। फिर प्रणाम करके, मुस्कुराकर उन्होंने कहा- हे शुभे! तुम सब अपने पिता, पति और कुल की मर्यादा लाँघकर यहाँ किस कारण आई हो।

सुमुखि सुलोचनि लखु निसि घोरा। हिंसक जन्तु फिरहि चहुँओरा॥
तियहि दुखद जामिनि बन ठाऊँ। तातें फिरहुँ तुरत सब गाँऊ॥

हे सुमुखी! इस अन्धकारयुक्त सघन रात्रि को देखो! हिंसक जीव चारों ओर घूम रहे हैं। फिर स्त्री के लिये वन में रात्रिविश्राम दुःखदायी होता है। अतः तुम सब तुरन्त ही गाँव में लौट जाओ।

सुनि लजान कस उन्ह उल्लासा। बालक जस सकुचहि उपहासा॥
तव महतारि तात अरु भाई। चिंतित होइ घर न तुम्हँ पाई॥

ऐसा सुनकर उनका उल्लास किस प्रकार लजा गया, जिस प्रकार उपहास हो जाने पर बालक सकुचा जाता है। तुम्हारे माता-पिता और भाई, तुम्हें घर में न पाकर चिन्ता करेंगे।

तातें हृदयँ सुमिरि उन्ह नेहू। मम मत मानि तुरत फिरु गेहू॥

इसलिये उनके स्नेह को मन में लाकर और मेरा मत मानकर तुम शीघ्र ही घर लौट जाओ।

दोहा- कछु न कहा सुनि चकित सब जगत मोह उन्ह नाहिं।

कृष्न प्रीतिमय भइ सकल गति न आन उर माहिं॥४८॥

यह सुनकर उन्होंने कुछ न कहा, अपितु चकित रह गई। उन्हें संसार का कुछ भी मोह नहीं, क्योंकि वे कृष्णप्रेममय हो गई, कृष्ण के अतिरिक्त उनके हृदय में कोई अन्य गति नहीं थी।

चौ.- बिनय करत हरि पुनि समुझाई। मोर सिखावन सुनु चित लाई॥
परसि जमुन भरि ससिदुति अंका। अनुभवएहुँ तैं तम अकलंका॥

श्रीकृष्ण ने विनयपूर्वक पुनः समझाया- तुम चित्तपूर्वक मेरी सीख सुनो! यमुना का स्पर्श करके, कौमुदी को अङ्क में भरकर तुमने रात्रि के निष्कलङ्क अन्धकार का अनुभव कर लिया है।

बन बहुबरन पुष्प तें सोहा। नवल पातमय भलिबिधि जोहा॥
तातें बेगि फिरहुँ अब गेहा। राखि सत्य उर उन्ह प्रति नेहा॥

तुमने नवीन पत्तों व अनेक रङ्गों के पुष्पों से सुशोभित यह वन भली-प्रकार देख लिया है। अतः अब अपनों के प्रति सच्चा स्नेह रखकर, तुम सब शीघ्र ही घरों को लौट जाओ।

सेवहुँ प्रीति सहित पति चरना। जे सबबिधि भव संकट हरना॥
जे सतिभाय पतिहि अनुगामिनि। तिन्ह करतल सब सुख दिनु जामिनि॥

तुम प्रेम सहित पति के चरणों की सेवा करो, जो सब प्रकार से भवरूपी सङ्कट हरनेवाला है। जो स्त्री सच्चे मन से पति का अनुशरण करनेवाली है, सब सुख दिनरात उसके वश में रहते हैं।

भलेहि होइ पति रुजि बलहीना। गुन सुरूप बिरहित अति दीना॥
कामि कोहि अथवा अति भीरू। तदपि सो तिय हित पूज्य सधीरू॥

पति चाहे रोगी हो, निर्बल हो, गुण व उत्तम रूप से रहित अत्यधिक दरिद्र हो अथवा कामी, क्रोधी व डरपोक हो, किन्तु तब भी स्त्री के लिये पतिरूप में वह धैर्यपूर्वक पूज्य ही होता है।

दोहा- जे तिय निज पति तजि हृदयँ राख परपुरुष आस।
ते न नरक महुँ ठाउ लहँ होइहि सील बिनास॥४९॥

जो स्त्री अपने पति को छोड़कर अपने हृदय में पराए पुरुष के प्रति आसक्ति रखती है, उसका चरित्र नष्ट हो जाता है और उसे नर्क में भी स्थान नहीं मिलता।

चौ.- मनुज जानि मोहि करन बिलासा। आइ इहाँ जे हिय धरि आसा॥
तब तुम निजहि गनेसु सो नारी। अघ करि अजसु जोर जे भारी॥

यदि तुम मुझे साधारण मनुष्य जानकर किसी प्रकार का विलाश पाने की आशा लिये यहाँ आई हो, तो तुम स्वयं को उस स्त्री के समान समझना जो पाप करके, महान अपयश पाती है।

सुनत सचुप लहिं सीतल स्वासा। पदन्हँ नखन्हि महि खनहिं निरासा॥
बदनु प्रभा जे पूरब बाढ़ी। बिनसि चित्रवत रहि तहँ ठाढ़ी॥

यह सुनकर ठण्डी श्वास लेती हुई वे निराश और चुप हुई पैर के नखों से भूमि कुरेद रही है। उनके मुख पर पहले जो आनन्द था, वह नष्ट हो गया और वे सभी चित्रवत खड़ी रह गई।

सान्ति सूलमय अस चहुँओरा। ब्यापि हृदय जिन्हँ घात कठोरा॥
पाइ बिकल भइ नयन तरेरी। गोपि बोलि एक खीजि घनेरी॥

उस समय चारों ओर शूल-सी कष्टदायक शान्ति छा गई, अपने हृदय पर जिसका कठोर आघात पाकर व्याकुल हुई एक गोपी आँखे तरेरकर और अत्यधिक चिढ़कर इस प्रकार बोली-

कान्हँ हृदयँ अति कुटिल तिहारा। प्रथम मुरलि हमु नाउँ पुकारा॥
अब पंडित सम करि उपदेसा। नारि धरम समुझात बिसेषा॥

हे कन्हैया! तुम्हारा हृदय बड़ा कुटिल है। पहले तो तुमनें मुरली की ध्वनि में हमारा नाम पुकार कर हमें यहाँ बुलाया और अब पण्डित के समान जोर देकर हमे स्त्रीधर्म समझा रहे हो।

हृदयँ माँझ भइ सुचि रस सृष्टी। आइ इहाँ हम जाकइ पुष्टी॥
किन्तु कुटिल मति तव दृगहीना। तेइहि कहि रहि परम मलीना॥

हमारे हृदय में तुम्हारे प्रति पवित्र प्रेम की उत्पत्ति हुई थी, जिसे पुष्ट करने हम यहाँ तुम्हारे पास आई हैं। किन्तु तुम्हारी टेढ़ी और नेत्रहीन बुद्धि उसे ही महान दोषयुक्त कह रही है।

दोहा- **हम नस्वर जग मोहगत बिषय बिकार बिसारि।**
आइ सरन तव पुरवहुँ उर जे प्रीति हमारि॥५०॥

इस नश्वर संसार के मोह से मुक्त हम सब गोपियाँ विषयरूपी विकारों को त्यागकर तुम्हारी शरण में आई हैं। इसलिये हमारे हृदय में (तुम्हारे प्रति) जो प्रेम है, तुम उसे सार्थक कर दो।

चौ.- **धरम रहहि तव आश्रय पाई। तुमहि परम गति तासु कन्हाई॥**
बिधिहि बिनति तुम महि अवतारे। गरग स्वमुख अस बचन उचारे॥

तुम्हारे ही बल से धर्म स्थिर रहता है और हे तुम्ही उसकी एकमात्र परमगति हो। ब्रह्माजी की विनती पर तुमने धरा पर अवतार लिया है, ऐसा महर्षि गर्ग ने स्वयं अपने मुख से कहा था।

निज सुचि रस प्रभाउ प्रगटाई। हरेहुँ हमार हृदयँ बरिआई॥
पुनि करि हमरे नयन निवासा। जग प्रति मोह हमार बिनासा॥

अपने पवित्र प्रेम का प्रभाव प्रकट करके, तुमने बलपूर्वक हमारे हृदय हर लिये। फिर हमारे नेत्रों में निवास करके, तुमने इस संसार के प्रति हमारा मोह नष्ट कर दिया।

अब उपदेस स्वाँग बिरचाई। रहे सयानप हमहि देखाई॥
हमहि बिदित भल कपट तुम्हारा। तातें निस्चय अटल हमारा॥

और अब उपदेश का यह ढोंग करके, तुम हमें अपना सयानापन दिखा रहे हो। हम तुम्हारे कपटी स्वभाव को भली-भाँति समझती हैं, इसलिये हमारा निश्चय अटल है।

तुम परमेस्वर जगत नियंता। अहहि तोर उर अमल अनंता॥
धरम अहहि जग महुँ प्रभु जेते। तव पदसिंधु सरित सम तेते॥

तुम जगन्नियन्ता परमेश्वर हो, तुम्हारा हृदय विकारमुक्त और अनन्त है। हे प्रभु! संसार में जितने भी धर्म हैं, वे सभी तुम्हारे चरणरूपी समुद्र में आकर मिलनेंवाली नदियों के समान हैं।

सब जीवातम नारि सरूपा। तुम परमातम तिन्ह पति रूपा॥
इहइ बिचार हृदयँ हम लाई। प्रमुदित तोहि वरिबे इत आई॥

समस्त जीवात्माएँ नारी स्वरूप है और परमात्मा होकर तुम उनके स्वामी हो। यही विचार अपने हृदय में रखकर हम सब गोपियाँ महान आनन्द से तुम्हारा वरण करने आई थी।

नर आपन गनि नारि समाना। तोहिं पति गनि जतनहिं बिधि नाना॥
तिय परन्तु केउ लहिबे तोही। अमल पेमु आश्रय लहँ ज्योंही॥

पुरुष तुम्हें पतिरूप व स्वयं को नारी समझकर (तुम्हारी प्राप्ति के निमित्त) अनेक प्रकार यत्न किया करते हैं, किन्तु तुम्हें पानें के लिये, ज्यों-ही कोई स्त्री निर्मल प्रेम का आश्रय लेती है,

त्योंहि तोर मत अधरम होई। नारि होन यह दंड न कोई॥

त्यों-ही तुम्हारे मत में अधर्म हो जाता है। किसी के स्त्री होने का यह तो कोई दण्ड नहीं।

दोहा- **तनउँ सगे पितु पति तनय छूटहि जे मझधार।**
पाछे सब जीवातम लहहि तवहि आधार॥५१॥ (क)

पिता, पति और पुत्र तो केवल शरीर के सगे होते हैं, जो मझधार में छूट जाते हैं, तत्पश्चात् समस्त जीवात्माएँ तुम्हारा ही आश्रय ग्रहण करती हैं।

तातें हमहि भरोष तव एहि महुँ कोउँ न बिकार।
पूरनकाम बहोर तुम सकल सुखन्हँ आगार॥५१॥ (ख)

इसलिये हमें तुम्हारे प्रति विश्वास है और हमारे इस विश्वास में कुछ भी दोष नहीं है। फिर तुम तो अपने आप में पूर्णकाम और समस्त सुखों के धाम हो।

चौ.- **हम आतमहिं तोहिं पति मानहिं। आन धरम सपनेहुँ जनि जानहिं॥**
दीन दयाल जलजदल लोचन। भवधि सेतु सब संकट मोचन॥

रीहम अपनी आत्मा से तुम्हें पति मानती हैं और कोई अन्य धर्म स्वप्न में भी नहीं जानती। हे दीनदयाल! हे कमलदललोचन! हे भवसिन्धु में सेतुस्वरूप, समस्त सङ्कट हरनेवाले प्रभु!

हम तजि तनु बिषयक सब मोहा। चहैं तोर पद पंकज छोहा॥
अब न नस्वरहि देहुँ दुहाई। हम सब तोर सरन तकि आई॥

हम सब शरीर-सम्बन्धी समस्त मोह त्यागकर, केवल तुम्हारे चरणकमलों के प्रति प्रेम चाहती हैं। इसलिये अब तुम किसी नश्वर वस्तु की दुहाई न दो, हम सभी तुम्हारी शरण तककर आई हैं।

जे पति रहे पाछ बपु केरे। सो सबिकार काम के चेरे॥
तासु प्रेम हमरे तन लागी। तें न हमहि आतम अनुरागी॥

शरीर के पति जो अब पीछे छूट गए हैं, वे सब विकारयुक्त और काम के दास हैं। उनका प्रेम तो केवल हमारे शरीर के प्रति था, उन्हें हमारी आत्मा से कोई प्रेम नहीं है।

पै हम आतम तोहिं पति माना। धरम इहइ सब भाँति महाना॥
एहि सो पतिब्रत धरम हमारा। कहा उचित तुम जेहिं अबिकारा॥

किन्तु हमनें आत्मा से केवल तुम्हें अपना पति माना है, यही सब प्रकार से महान धर्म है और यही हमारे लिये वह पतिव्रत धर्म है, जिसे तुमने उचित और विकार रहित कहा है।

अब सो देहुँ पदाम्बुज छारा। जेहिं हित बिधि कर जतन अपारा॥

जासु दरस हर नित हिय करही। जेहिं सिरु लाइ रमा मुद भरही॥

हे कृष्ण! अब हमें अपने उन चरणों की रज दो, जिसके लिये ब्रह्माजी अपार यत्न करते हैं, शिवजी नित्य जिसे मन में देखते हैं और जिसे सिर पर चढ़ाकर लक्ष्मी आनन्दित हुआ करती हैं।

गोपिन्हँ निछल प्रीति सुचिताई। जोगेस्वरहि नृपति अति भाई॥
प्रभु देखा तेहिं रहित बिकारा। सबबिधि आश्रित निज आधारा॥

हे परीक्षित! योगेश्वर श्रीकृष्ण को गोपियों के निष्कपट प्रेम की पवित्रता अत्यधिक प्रिय लगी। प्रभु ने देखा कि वे सब विकार रहित और सब प्रकार से मेरे ही बल पर आश्रित है।

दोहा- जानि गयउ भलिभाँति मैं प्रीति बिसुद्ध तुम्हार।
तातें पुरवउँ अवसि तव बाँछा रहित बिकार॥५२॥ (क)

तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा-हे गोपियों! मैं तुम्हारे विशुद्ध प्रेम को भली-भाँति जान गया हूँ, इसलिये अब मैं तुम्हारी विकार रहित इच्छा को अवश्य पूर्ण करूँगा।

सुनि हरषांकुर गोपिन्हँ पुलकत भयउँ बिसाल।
इत मायापति सुमिरि उर जोगमाय सोउ काल॥५२॥ (ख)

यह सुनकर गोपियों का प्रसन्नतारूपी अङ्कुर पुलक पाकर विशाल हो गया। इधर मायापति भगवान ने उसी समय योगमाया का स्मरण किया।

चौ.- प्रगटि जोग माया तब तहवाँ। गोपिन्हँ मध्य रहे हरि जहवाँ॥
तेन्हँ निरखि ग्वालिनि हरषाई। मनहुँ महारुजि सँजिवनि पाई॥

तब योगमाया वहाँ प्रकट हुई, जहाँ गोपीसमूह के मध्य भगवान श्रीकृष्ण थे। उन्हें देखकर समस्त गोपियाँ प्रसन्न हो उठी, मानों किसी महान रोगग्रस्त जीव ने सञ्जीवनी औषधि पा ली हो।

आयसु देत कहेउ उन्ह स्यामा। रचहुँ रासमंडल छबिधामा॥
माया सुनत अकथ छबिखाना। रचेहुँ बिचित्र सुरास बिताना॥

उन्हें आज्ञा देकर श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम एक अत्यन्त सुन्दर रासमण्डल बना दो। माया ने सुनते ही वहाँ एक अकथनीय सौन्दर्ययुक्त विचित्र और उत्तम रासमण्डल की रचना कर दी।

पुरटाबरन तासु महि छाई। जहाँ महादुति मनि बिखराई॥
सुरतरु सुमन सोह महि नाना। मनिन्हँ संग जिन्हँ अनख महाना॥

उसकी भूमि स्वर्णावरण से ढँकी थी, जिस पर मणियों ने महाद्युति बिछा रखी थी। वहीं कल्पवृक्ष के अनेक पुष्प बिछे थे, जिनका सौन्दर्य मणियों की आभा से सघन स्पर्धा कर रहा था।

बृत्ताकार बिसाल बिताना। कदलि खंब छबि परिधि समाना॥
पदुमरागमनिमय उन्ह पाता। तापर सिरन्हि जाल छबिदाता॥

वह विशाल रासमण्डल वृत्ताकार था, कदलीस्तम्भों का सौन्दर्य जिसकी परिधि-सा जान पड़ता था। उनके पत्ते पद्मराग मणियों से अलंकृत थे, जिन पर शिराओं का सुन्दर विन्यास था।

कदलि परिधि रच्छत बहु जाती। बिटपावलि रुच जे न कहाती॥
कुसुम गुच्छ बिगसित प्रति साखा। सूल रहित रितुपति गहि राखा॥

स्तम्भों को घेरे अनेक जाति की वृक्षावलियाँ शोभित थी, जिनका वर्णन नहीं हो सकता। पुष्पगुच्छों से लदी उनकी प्रत्येक शाखा शूलमुक्त थी, जिसे स्वयं बसन्त ने पकड़ रखा था।

बज्र झालरन्हि सो तरु छाए। जिन्हँ बिच मुकतन्हि दुति अलसाए॥

वे वृक्ष हीरे की झालरों से लदे थे, जिनमें मोतियों की आभा अलसाई-सी जान पड़ती थी।

दोहा- नृत्य बिबिध मुद्रा निरत रति कामहि बुत चित्र।
जापर मरकत मनि बिपुल बरनहिं सिलप बिचित्र॥५३॥

वहाँ नृत्य की विभिन्न मुद्राओं में रत काम और रति की मूर्तियाँ व चित्र स्थित थे, जिन पर अनेक मरकत मणियों का अलंकरण, उन मूर्तियों के शिल्पकौशल का बखान कर रहा था।

चौ.- माया बिरचेउँ चारु बिताना। धुज पताकमय तोरन नाना॥
जहाँ सोह हरि गोपिन्हँ संगा। मनहुँ बिपुल रति संग सुअंगा॥

माया ने अनेक ध्वजा-पताकाओं और बहुत से तोरणों से अलंकृत सुन्दर रासमण्डप बना दिया, जिसमें श्रीकृष्ण गोपियों के साथ शोभित थे, मानों कई रतियों के साथ कामदेव स्थित हो।

ससिहि धवल दुति न्हाइ बिताना। जनु जीवंत भयउँ छबिखाना॥
तुरत जुरेउँ तहँ बाद्य समाजा। पट बहुरंग बस्तु तिय साजा॥

चन्द्रमा की स्वच्छ चाँदनी में नहाकर वह मण्डप जैसे सौन्दर्य की सजीव खान हो उठा। वहाँ तुरन्त ही अनेक वाद्य, बहुत-से रङ्गों के वस्त्र और स्त्रियों का श्रृङ्गार-प्रसाधन भी प्रकट हो गया।

पेमु उमगि जुबती अतुराई। लागि जथारुचि निजहि सजाई॥
पियहि रिझावन जानि अधारा। सबन्हँ कीन्ह सोरह सिंगारा॥

वे युवतियाँ प्रेम में उमड़कर, शीघ्रता से स्वयं को रुचि अनुरूप श्रृङ्गारित करने लगी। (इस प्रकार) प्रियतम को रिझानें का आधार मानकर उन सबनें सोलह-श्रृङ्गार धारण किया।

तदुप बुझावन बिरहु कृषानू। समुख लागि करि पिय छबि पानू॥
रहे स्याम बृषभानुसुता सँग। निरखि काम रति कर भा मद भँग॥

तदुपरान्त अपनी विरहाग्नि बुझाने के लिये वे प्रिय के सन्मुख हो उनकी छवि निहारने लगी। श्रीकृष्ण राधाजी के साथ थे, यह देखकर कामदेव व रति का सौंदर्याभिमान नष्ट हो गया।

जीव ब्रह्महि मिलन कर सुन्दर। एहिबिधि रासारँभ भा रुचिकर॥
नर्ति लाग बहुबिधि नट नागर। भए संग राधहि छबि सागर॥

इस प्रकार जीव और ब्रह्म के मिलन का सुन्दर और मन को भानेवाला महारास प्रारम्भ हुआ और सौन्दर्यसिन्धु राधा के साथ नृत्यनिपुण भगवान श्रीकृष्ण अनेक प्रकार से नृत्य करने लगे।

छन्द- छबि सिंधु राधेहि नृत्य अदभुत देखि बिबुधांगन्हि लजी।
पट चारु पाटम्बर बिभूषन हेम उन्ह सुषमा सजी॥
चितवनि तिरीछी सुमनसर सम कान्हँ उर जब उन्ह लगी।
ते भै अचत अस निरखि निरमल प्रीति जुबतिन्हँ हिय जगी॥

सौन्दर्यसमुद्रस्वरूपा श्रीराधाजी का अद्भुत नृत्य देख देवाङ्गनाएँ लजा गईं। सुन्दर रेशमी वस्त्र और सोने के आभूषण धारण करके उनकी सुन्दरता सज्जित हो गई। उनकी तिरछी और कटाक्षपूर्ण दृष्टि कामदेव के पुष्पबाण के समान जब कन्हैया के हृदय में जा लगी, तब वे शरीर और मन की सुध-बुध खो बैठे। यह देखकर गोपियों के हृदय में निर्मल प्रेम उत्पन्न हो गया।

दोहा- रहे अकेल हरि होइ पिय गोपिन्हँ निकर बिसाल।
अस बिलोकि भइ बिकल सब कर बिचार तेहिं काल॥५४॥

(उस रासमण्डप में) सबके प्रियतम होकर भगवान श्रीकृष्ण अकेले थे और गोपियों का समुदाय विशाल था। यह देखकर वे सभी गोपियाँ उस समय व्याकुल होकर विचार करने लगी कि

चौ.- राधहि छबि बलवंति अगाधा। मुरलिधरहि बिमोहि जेहिं बाँधा॥
अब हमार कस पूजिहि आसा। इहइ हेरि भइ सबन्हँ निरासा॥

राधा की सुन्दरता प्रबल है, जिसने मुरलीधर कृष्ण को विमुग्ध करके अपना बन्दी बना लिया है। अब हमारी आशा किस प्रकार पूर्ण होगी। यही बात सोचकर वे सब निराश हो गई।

उन्ह नैरासइ परसनि पाई। सरबग्यता हरिहि बिचलाई॥
तब मायामय तन धरि नाना। प्रति प्रेयसि सँग भै भगवाना॥

गोपियों की इस निरासा को सर्वज्ञ भगवान श्रीकृष्ण तुरन्त जान गए। तब अपनी माया से अनेक रूप धारण करके, वे भगवान प्रत्येक गोपी के साथ हो गए।

भेद तेन्ह यह तनक न जाना। मुअहि संग पिय सब अस माना॥
पुनि उन्ह सँग कन्हँ राजहि कैसे। नखत निकर अगनित ससि जैसे॥

वे इस लीला का मर्म नहीं जान पाई, सबने यही समझा कि कृष्ण केवल मेरे ही साथ हैं। फिर कन्हैया उनके साथ कैसे विराजमान हैं; जैसे नक्षत्रसमूह में अगणित चन्द्रमा विराजमान हों।

जब मोहन निज बाहु पसारी। गोपिन्हँ कोमल काँधनि डारी॥
पुनि अति मृदु रव बाँसुरि छेरी। भइ पूरन तिन्ह पृहा घनेरी॥

जब मनमोहन ने अपनी भुजा फैलाकर गोपियों के कोमल कन्धो पर रखी और अत्यधिक मधुर ध्वनि से वेणुवादन किया तब उन सबकी (रास-सम्बन्ध) उत्कट इच्छा पूर्ण हो गई।

बिरहानल गहि पिय सितलाई। भा सीतल ग्वालिनि हरषाई॥

प्रियरूपी शीतलता से विरहरूपी अग्नि शीतल हो गई, जिससे सब गोपियाँ हर्षित हो उठी।

दोहा- परिछित निरखि प्रमोद अस कहइ बिबुध इरिषाइ।
इन्ह सुभाग कहिबे जतन निपट बुधिहि जड़ताइ॥५५॥

हे परीक्षित! इस अलौकिक आनन्द को देखकर देवतागण ईर्ष्या करते हुए कहने लगे कि इन गोपियों के सौभाग्य की प्रशंसा करने का प्रयत्न बुद्धि की जड़ता मात्र है।

चौ.- कर कँज बैनु मुकुट सिरु सोहा। कन्हँ नट बेषु सबन्हँ मनु मोहा॥
बैनु बजाइ मंद मुसुकावत। गोपिन्हँ हिय अति प्रीति बढ़ावत॥

हाथ में मुरली व कमल और सिर पर मुकुट शोभित है, कन्हैया के इस नटवेष ने सबका मन मोह लिया। मुरली बजाकर वे मन्द मुस्कुराते हैं और गोपियों के मन के प्रेम को और बढ़ाते हैं।

नृत्य करत बनितन्हँ श्रमु पावा। पियहि हाथ गहि सनय सुनावा॥
भई श्रमित अति प्रान अधारा। करि चाहिय अब बारि बिहारा॥

नृत्य करते हुए जब गोपियाँ थक गई, तो उन्होंने प्रिय का हाथ पकड़कर विनयपूर्वक उन्हें सुनाकर कहा- हे प्राणाधार! हम अत्यन्त थक गई हैं, अतः अब हमें जलविहार करना चाहिये।

सुनि कन्हँ तनक भए गम्भीरा। कीन्ह गवन पुनि सीतलि तीरा॥
सबन्हँ जमी कहँ देखिसि आई। जल तें तट लौ जे छबि छाई॥

यह सुनकर श्रीकृष्ण कुछ गम्भीर हो गए, फिर उन्होंने शीतलजला यमुना के तट की ओर प्रस्थान किया। सबने आकर यमुना को देखा, जो जल से लेकर तटपर्यन्त सुन्दरता से पूर्ण थी।

तेहिं सवँ कूलद्रुमन्हि करि स्यामा। स्यामप्रिया भइ घन छबिधामा॥
नील नीर कौमुदि संसर्गा। तटहि अभासहि जनु अपबर्गा॥

उस समय तट के वृक्षों को अपना नीला रङ्ग देकर श्यामप्रिया यमुना सघन सौन्दर्ययुक्त हो उठी। उनका नीला जल चाँदनी के संसर्ग से मानों तट पर ही स्वर्ग का आभास करा रहा था।

तटहि सए बहुबरन बिहंगा। उमगत जिन्हँ थपकाव तरंगा॥

तट पर ही अनेक रङ्ग के पक्षि सोए हैं, नदी से आती हुई लहरें जिन्हें थपकियाँ दे रही है।

क.- **सय अरु सहस दलन्हँ कंज छबि सींव, बढ़ावन सरि धार कंजनि कतार हैं।**
सित स्याम अरुन कनककरनिकावारे, कंजन्ह पे मधुर मधुप गुंजार हैं॥
जल मृदु सीतल बिलोकि सब न्हात भए, सुखदानुभूति देत त्रिबिध बयार हैं।
अस अनुपम पेमबर्धिनि सरित तट, जुबतिन्हँ संग कान्हँ करत बिहार है॥

यमुनाजल में खिले हुए सतदल और सहस्रदल कमलों की सुन्दरता की सीमा को बढ़ाने के लिये उसकी धारा में कमलिनियों की कतारें विद्यमान हैं। उन कमलों की श्वेत और श्याम रङ्ग की स्वर्णकर्णिकाओं पर भौंरो का मधुर गुञ्जन हो रहा है। उस समय नदी के जल को ठण्डा और स्नान योग्य देखकर गोपियाँ और श्रीकृष्ण स्नान करने लगे। मन्द गति से बहता हुआ शीतल और सुगन्धित पवन सुखद अनुभूति दे रहा है। ऐसी अनुपम और प्रेम को बढ़ानेवाली यमुना के तट पर कन्हैया गोप-युवतियों के साथ जल-विहार कर रहे हैं

दोहा- **श्रम बिरहित भइ गोपि सब पिय सँग करत बिहार।**
चित्त उल्लसित भयउँ मिटि दुबिधा मनहुँ अपार॥५६॥

(इस प्रकार) प्रियतम कृष्ण के साथ जल-विहार करते हुए समस्त गोपियाँ श्रम से सर्वथा रहित हो गई, मानों दुविधा के मिट जाने पर चित्त उल्लास से भर गया हो।

चौ.- **एहिबिधि जल महुँ करत बिहारा। कछुक गुआलिन्ह कर कचहारा॥**
टूटे सुमन तासु जल माहीं। इत उत छबि करि गै बिखराही॥

इस प्रकार जलविहार करते हुए कुछ गोपियों की वेणिमालिकाएँ टूट गई, जिनके पुष्प सौन्दर्य बिखेरते हुए जल में यहाँ-वहाँ बिखर गए।

करत पियहि सँग बारि बिहारा। गोपिबृंद ठाढ़ेउँ बिच धारा॥
छपछपात तें नीर मृदुल कर। ढारहि अंजुलि भरि पिय ऊपर॥

प्रिय के साथ जलविहार करते हुए गोपियों का समूह धारा के मध्य खड़ा है। गोपियाँ अपने कोमल हाथों से जल को छपछपाते हुए अञ्जुली में भरकर कन्हैया के ऊपर डालती हैं।

बूँद समूह तेन्ह कर त्रासा। बिखरत मुकुतन्हि देइ अभासा॥
कछुक परसपर कर भरि बारी। किलकि उड़ावहि पीटत तारी॥

उनके हाथों से पीड़ित जल की बूँदों का समूह बिखरते हुए मोतियों-सा आभास देता है। कुछ गोपियाँ अञ्जुली में जल भर लेती है और किलककर एक-दूसरे पर उड़ाकर ताली पीटती है।

कोउँ करइ पिय सन परिहासा। सतत संग कोउ गहनइ त्रासा॥
बहुतक करत तटहुँ बिश्रामा। निरखहि बारि बिलास ललामा॥

कोई प्रिय से विनोद कर रही है और कोई नदी की गहराई से भयभीत हो निरन्तर कन्हैया के साथ रहती है। बहुत-सी गोपियाँ तट पर विश्राम करते हुए मनमोहक जल विहार देख रही हैं।

कोउँ तरहि गहनेहि जलु जाई। पुनि तहहिं तें लग टेर लगाई॥
कान्हँ अहहि जलु इहँ अति ऊँडा। अवसि लहहिं मुद तव भुजदंडा॥

कोई गोपी गहरे जल में जाकर तैरती है और वहीं से प्रिय को पुकारने लगती है- हे कन्हैया! यहाँ जल बहुत गहरा है, यहाँ तैरकर तुम्हारी भुजाओं को अवश्य ही आनन्द मिलेगा।

दोहा- तरत अनख करि परसपर लहहि पराभउँ जोइ।
नृप तेहिं उपहासहि अपर खीझहि तातें सोइ॥५७॥

हे परीक्षित! परस्पर स्पर्धा करते हुए तैरकर जो गोपी पराजित हो जाती है, दूसरी गोपियाँ उसका उपहास करने लगती है, जिससे वह रूठ जाती है।

चौ.- एहि बिधि सब जल बाहेर आई। लागी कच अरु बसन सुखाई॥
राधादिकन्हँ सहित बनवारी। लगे तदुप बन माँझ बिहारी॥

इस प्रकार वे सब जल से बाहर आई और अपने केश सुखाने लगी। तदुपरान्त बनवारी श्रीकृष्ण राधा आदि गोपियों के साथ वन विहार करने लगे।

पंथ बिटप एक परम सुहावा। निरखि तेहिं गोपिन्हँ सुख पावा॥
तिन्ह नव किसलय गुच्छ सुचारू। मंद मंद रहे झूमि बयारू॥

मार्ग में एक वृक्ष अत्यन्त सुशोभित था, जिसे देखकर गोपियों ने सुख पाया। उस वृक्ष के नवीन और सुन्दर पत्तों के गुच्छे धीरे-धीरे वायु में झूम रहे थे।

लतिन्हँ जालमय चारु बिताना। पुष्पाछन्न मृदु कुरक नाना॥
वात परस करि चलति सुबासा। चंचरीक कर हरहि निरासा॥

जाल के समान गूँथी हुई उसकी लताओं का सुन्दर मण्डप कोमल कलिकाओं और बहुत-से पुष्पों से आच्छादित था; जिनसे उमड़ती सुगन्ध वायु के स्पर्शगुण से भौंरो की निराशा हर रही है।

राधउँ कर गहि निज कर कंजा। गोपिन्हँ संग किए बनकुंजा॥

चितवत बन बसंत सुखदाता। चरहि करत मोहन मृदु बाता॥

(उस समय) राधा का हाथ अपने हाथ में लेकर गोपियों को साथ किये हुए मनमोहन वन में छाए हुए सुखदायक बसन्त को देखते हुए और कोमल बातें करते हुए उनके साथ चल रहे हैं

दोहा- **परिहासत नटखट तबहि राधउँ हाथ मरोरि।**
दुरे तुरत तरु ओट एक अति आतुरि तें दौरि॥५८॥

तभी ठिठौली करते हुए राधा का हाथ मरोड़कर नटखट कन्हैया बड़ी उतावली से दौड़कर तुरन्त ही एक वृक्ष की ओट में जा छिपे।

चौ.- **चकित चहूँदिसि चितव प्रतारी। कतहुँ न दीख परे बनवारी॥**
सहसा बिटप ओट उमगाई। उन्ह वोजन दुति मंद लखाई॥

प्रिय के द्वारा सतायी गई चकित राधा चारों ओर देख रही है, किन्तु बनवारी कहीं नहीं दिखे। फिर अचानक उन्हें उनके आभूषणों की मन्द आभा एक वृक्ष की ओट से उमड़ती दिखाई पड़ी।

तब उन्ह सचुप गवन तहँ कीन्हा। सहसा दौरि पियहि गहि लीन्हा॥
एहिबिधि अवचट जब समुहाने। तरु अरु लता चौंकि किलकाने॥

तब वे चुपचाप वहाँ गई और दौड़कर अचानक ही प्रिय को पकड़ लिया। जब ऐसे सहसा आमने-सामने हुए तब राधा-कृष्ण दोनों ही चौंक गए और उनके मुख से किलकारी छूट गई।

छकि उन्ह किलकनि मदमय हाला। झूमहि बन जनु भा मतवाला॥
तेहिं सवँ तरु नटखटपनु बाढ़ा। साखन्हि बाँधि लता कहँ गाढ़ा॥

मदोन्मत्त करनेवाली उनकी किलकारीरूपी मदिरा पीकर, सम्पूर्ण वन जैसे मतवाला होकर नाच उठा। उस समय कृष्ण नटखट हो गये और राधा को भुजाओं के गाढ़ बन्धन में बाँध लिया।

किन्तु सकोच पवन झकराई। लता छिटकि पुनि महि दिसि धाई॥
चपल मनहि सम तें जब भाजी। पैंजनि किंकिनि मृदु रव बाजी॥

किन्तु राधा सकुचा गई और भुजाओं से छूटकर पुनः गोपियों की ओर लौट पड़ी। चञ्चल मन-सी जब वे भागी, तो उनकी पैंजनिया और कमर में बँधी करधनी कोमलध्वनि से बज उठी।

दुरत चलहि तें कानन कुंजा। गहिबे पाछ दौर रसपुंजा॥
मनहुँ सरित सिवाल कर फेला। चंचल मीन उभय कर खेला॥

राधा वन के वृक्षावृत्त मार्ग में छिपकर चल रही हैं और उन्हें पकड़नें के लिये प्रेमपुञ्ज उनके पीछे दौड़ रहे हैं; मानों नदी में उगे हुए शैवालवन के रेसों में दो चञ्चल मछलियाँ खेल रही हों।

दोहा- **चितएहुँ राधा पाछ फिरि लखि परे रास बिहारि।**
श्रमकन भींजित पियहि छबि निरखि थकित तें ठारि॥५९॥

जब राधा ने पीछे मुड़कर देखा तो उन्हें प्रियतम रासबिहारी दिखाई पड़े। उस समय प्रियतम के पसीने से भीगे हुए मुख का सौन्दर्य देखकर वे थकित-सी खड़ी रह गई।

चौ.- **जब जब गहहि कान्हँ उन्ह धाई। सकुचि तें तब तब जात पराई॥**
उन्ह अनुपम सुखदायक सोभा। निरखि गुआलिन्हँ हृदयँ प्रलोभा॥

कन्हैया दौड़कर जब-जब उन्हें पकड़ लेते हैं, तब-तब सकुचाकर वे दूर भाग जाती हैं। उनकी सुखद और अनुपम शोभा देखकर अन्य गोपियों का हृदय उन पर अत्यन्त रीझ गया।

इहिबिधि प्रमुदित जूथ बनाए। हरि उन्ह सँग बहुला बन आए॥
निरखि स्वेद तर गोपिन्हँ गाता। बिहँसे प्रेयसिन्हँ आनँददाता॥

इस प्रकार अत्यन्त आनन्दपूर्वक समूह बनाकर श्रीकृष्ण उनके साथ बहुलावन आए। उस समय गोपियों के मुख पसीने से तर हुए देखकर प्रेमिकाओं के आनन्ददाता मनमोहन मुस्कुराए।

काढ़ि बैनु पुनि अति मृदु ताना। मेघ मल्हार गाइ भगवाना॥
जासु प्रभाउँ घुमरि घन छाए। छम्म छम्म लग मृदु बरिषाए॥

फिर उन्होंने मुरली निकाली और अत्यन्त मीठी ध्वनि से मेघमल्हार राग बजाने लगे; जिसके प्रभाव से घुमड़-घुमड़कर नभ में बहुत से मेघ छा गए और छम-छम करके, धीमे बरसने लगे।

तड़ित घनाँगन धुनि सुनि नाची। बिपिन माँझ चहुँदिसि झरि माची॥
झरति बूँद उन्ह मुख परसाई। लै चलि पस्यौ देत सितलाई॥

मुरली की मधुर ध्वनि सुनकर बादलों के आँगन में बिजली नाच रही है और वन में चारों ओर वर्षा की झड़ी लग गई है। उस समय बरसती हुई बूँदें उनके मुख को स्पर्श करके, शीतलता प्रदान करते हुए उनके मुख के पसीने को बहाकर अपने साथ ले चली।

दोहा- **राधा ललितादिक अली श्रमगत अस उलसाइ।**
बिटपहि आश्रय लता जस दून बेग बिगसाइ॥९०॥

राधा, ललिता आदि सखियाँ इस प्रकार परिश्रम से मुक्त होकर उल्लास से भर गई। जैसे वृक्ष का आश्रय पाकर लता दुगुनी शक्ति से वृद्धि करती है।

चौ.- **जोरि सबन्हँ पुनि उन्ह चितचोरा। हरषित चले तालबन ओरा॥**
तहँ पुनि कीन्ह रुचिर हरि रासा। इहिबिधि उन्ह बिरहातप नासा॥

समस्त गोपियों के साथ, चित्तचोर कन्हैया हर्षित होकर तालवन की ओर चले। वहाँ पुनः भगवान श्रीकृष्ण ने सुन्दर रासलीला की और इस प्रकार उनके विरहरूपी ताप को मिटाया।

तृषावंति भइ तहँ सब भारी। बिकल कहा उन्ह सुनु गिरिधारी॥
तृषित कंठ भयऊँ अति खूरा। बहुरि जमी इहँ तें अति दूरा॥

वहाँ जब सब गोपियों को अत्यधिक प्यास लगी तब उन्होंने व्याकुल होकर कहा- हे गिरिधर सुनो! प्यास के कारण हमारा कण्ठ अत्यधिक सूख गया है, फिर यमुना भी यहाँ से बहुत दूर है।

तुम सब समरथ बिबुधन्हँ नायक। तव पद बसहि गंग सुखदायक॥
अब सोइ करिअ बिनोद बिसारी। जातें मिटहि पिआस हमारी॥

तुम सर्वसमर्थ और देवताओं के स्वामी हो, तुम्हारे चरणों में सुखदायिनी गङ्गाजी निवास करती हैं। अब ठिठौली त्यागकर तुम वही यत्न करो जिससे कि हमारी प्यास मिट जाए।

अस सुनि हरि तिन्ह धीरज दीन्हा। पुनि महि लकुटिहुँ ताड़न कीन्हा॥
फूटि तुरत तब तहँ जलधारा। बेंतगंग मुनि जाहिं पुकारा॥

ऐसा सुनकर कन्हैया ने उन्हें धैर्य बँधाया, फिर अपनी लकुटिया से भूमि पर चोट की। तब तुरन्त ही वहाँ जल की एक धारा फूट पड़ी, मुनि-समाज जिसे वेत्रगङ्गा कहकर पुकारता है।

दोहा- ब्रह्मदलन अघ छूटहि परसे जाकर नीर।
पुनि न्हावतहि सहज मनुज तरहि भवधि गम्भीर॥६१॥

जिसके जल का स्पर्श कर लेने मात्र से ही ब्रह्म-हत्या का भयङ्कर पाप छूट जाता है और जिसके जल से स्नान कर लेनें पर मनुष्य सहज ही भवरूपी महान सागर का पार पा लेता है।

चौ.- जल गहि सबन्हँ कीन्ह असनाना। तदुप कुमुदबन कीन्ह पयाना॥
बन देखेहुँ आवत श्रीकंता। कन कन जागेहुँ पुलकि बसंता॥

वेत्रगङ्गा का जल पीकर सबने उससे स्नान किया। तदुपरान्त कन्हैया के साथ वे कुमुदवन गई। जब वन ने श्रीपति को आते देखा, तो उसके कण-कण में पुलकित हो बसन्त जाग उठा।

तहहिं सघन बट एक सुहावा। जिहि समीप सर सीतल छावा॥
राधेस्याम बैठि जिन्हँ कूला। सींचि लाग आपन रस मूला॥

उसी वन में एक विशाल और अत्यधिक घना वटवृक्ष था, जिसके निकट ही शीतल जलयुक्त एक सरोवर था। जिसके तट पर बैठकर राधा और कृष्ण अपनी प्रेमरूपी जड़ को सींचने लगे।

राधा तहाँ कुसुम गहि नाना। पियहि सिंगारि परम सुख माना॥
तरु कदम्ब कर पुष्प मनोहर। गहि बिरचेउँ सिखंड अति सुन्दर॥

उस सरोवर के तट पर अपने प्रियतम का श्रृङ्गार करके, राधा ने अत्यन्त सुख माना। कदम्बवृक्ष के मनोहर पुष्प लेकर उन्होंने एक अत्यन्त सुन्दर मुकुट बनाया।

केकिपंख बिच बीच खँसाई। मुकुटहि सो छबि चरम चढ़ाई॥
पुनि सहस्त्रदल सर तें लाई। पुरटकर्निका तासु जुड़ाई॥

फिर बीच-बीच में मोरपङ्ख लगाकर उन्होंने मुकुट की सुन्दरता को चरम पर पहुँचा दिया। फिर वे सरोवर से सहस्रदलोंवाले कमलपुष्प ले आई और उसकी स्वर्णकर्णिकाए एकत्र करके,

दोहा- मकराकृत कुंडल बिरचि पुनि पिय श्रवन धराइ।
मुदित तासु छबि निरखि लगि कला सराह कन्हाइ॥६२॥

उनसे मकराकृत कुण्डल बनाए और उन्हें प्रियतम के कानों में पहनाकर फिर आनन्दपूर्वक राधा उनकी सुन्दरता को निहारने लगी। तब कन्हैया उनकी कला की प्रशंसा करने लगे।

चौ.- जूहि कुसुमहि चारु भुजबन्दा। दए पियहि भुज बिहँसत मंदा॥
केतकि केर सुवासित माला। पहिरानी उन्ह कंठ बिसाला॥

फिर मन्द मुस्कान के साथ उन्होंने जूहीपुष्पों से सुन्दर भुजबन्द बनाए और उन्हें प्रियतम की भुजाओं पर बाँधा और केतकि-पुष्पों की सुगन्धित माला बनाकर उनके विशाल कण्ठ में पहनाई।

चम्पाकलि कर गुच्छ जुड़ाई। कटि मेखला सुगाढ़ि धराई॥
अलसि कुसुम एहि बिधि बिच जासू। मंद करइ मनि केर अभासू॥

फिर चम्पा की कलियों के गुच्छे लेकर उनसे भली-प्रकार गढ़कर मेखला बनाई और उसे प्रियतम की कमर में पहना दी, जिसके बीच में अलसी के पुष्प कुछ इस प्रकार गुथे हुए थे कि वे अपनी शोभा से मणियों के आभास को भी मन्द कर रहे थे।

अंस बसन सुन्दर मंदारा। कहहिं जे बिरचनि कला अपारा॥
तुलसी मंजरिजुत बनमाला। पहिरि सोह तन स्याम तमाला॥

मन्दार के सुन्दर पुष्पों का उत्तरीय बनाकर पहनाया, जो राधा का अपार रचनाकौशल व्यक्त कर रहा था। तुलसीमाला पहनकर कन्हैया का तमालवृक्ष-सा नीला शरीर शोभित हो रहा है।

बहुरि कदम्ब सुमन कछु आने। कंकन गढ़ि गढ़ि कर पहिराने॥
निरमि लकुट सरसिज गहि नाना। मुख पत्रावलि चारु महाना॥

फिर राधा ने कदम्बपुष्पों से भली-प्रकार गढ़कर उनके कंकण बनाए और कन्हैया के हाथों में पहना दिये। बहुत-से कमलपुष्पों से लकुटी बनाई और उनके मुख पर पत्रावलि की रचना की।

दोहा- **कीन्ह कुटिल कच चिक्कन चंदन तेल सँवारि।**
चरचे गात बहुरि मलय पत्रावलि मुख सारि॥६३॥

फिर चन्दन के तेल से सवारकर कन्हैया के घुँघराले बालों को चिकना बनाया। फिर उनके अङ्गों पर मलयगिरि के चन्दन का अङ्गराग लगाया और मुख पर पत्रावली की रचना की।

चौ.- **तब सप्रेम प्रेयसिहि सजाए। कान्हँ लाग अतिसय मनभाए॥**
रस कर सबुहि अंग परिपूरी। मनहुँ कबित अलँकारित भूरी॥

उस समय प्रेयसि राधा के द्वारा प्रेमपूर्वक श्रृङ्गारित कन्हैया अत्यधिक मनभावन जान पड़ रहे थे, मानों रस के समस्त अङ्गों से परिपूर्ण और अलङ्कारयुक्त कोई उत्कृष्ट कविता हो।

कछु छिन गत तहँ भा पुनि रासा। भा ब्रह्मँडभर जासु प्रकासा॥
लखि गोपिन्हँ उर अति गरुआवा। निज छबिबल हम हरिहि रिझावा॥

कुछ क्षणोपरान्त वहाँ भी रास हुआ, जिसकी चर्चा ब्रह्माण्डभर में व्याप गई। यह देखकर गोपियों के हृदय में अभिमान हो गया कि सौन्दर्य के बल पर हमनें भगवान को भी नचा दिया।

जग पालक जे तिहुँपुरराई। तेन्हँहि भुज भरि दीन्ह नचाई॥
अब हरि नित हम कहँ अनुसरिहि। पद न एक कत हम बिनु धरिहि॥

जो जगत्पालक और त्रिलोकपति हैं, उन्हीं को हमनें भुजाओं में भरकर नचा दिया। अब से कन्हैया नित्य हमारा अनुशरण करेंगे और कहीं जाते हुए हमारे बिना एक पग भी नहीं बढ़ाऐंगे।

जब उन्ह मानस मल अस जाना। बिहँसे कृपासिंधु भगवाना॥
बिसरि बहोरि सुरास बिताना। भै राधउँ सँग अंतरध्याना॥

उनके मन में उत्पन्न हुए इस विकार को जब कृपासिन्धु भगवान ने जाना, तब वे हँसे। फिर उस उत्तम रास-मण्डल को त्यागकर वे राधा के साथ वहाँ से अंतरध्यान हो गए।

जनहि मत्त नृप जब लखि पावहिं। सजतन उन्ह सदपंथ फिरावहि॥

हे राजन! श्रीहरि जब भक्त को गर्वित देखते हैं, तो यत्नपूर्वक उन्हें सन्मार्ग पर ले आते हैं।

दोहा- **जब न कान्हँ तहँ दीख परे ग्वालिनि सब अकुलाइ।**
मिटेउ मोद जल बुंद सम सोचहि सब चकराइ॥६४॥

जब रास-मण्डल में कन्हैया दिखाई नहीं दिये तब समस्त गोपियों अकुला उठी। उनका सारा आनन्द जल की बूँद के समान नष्ट हो गया और वे सब चकित होकर सोचनें लगी।

चौ.- **रहे अबहि इहँ रास रचाई। कित गै तनक पलक झपकाई॥**
रासेस्वरि पुनि अह इहँ नाहीं। सूझ नाथ उन्ह साथ जुड़ाहीं॥

अभी-अभी तो कन्हैया रास में नृत्य कर रहे थे, जरा पलक ही झपकाई है, इतने में ही कहाँ चले गए? रासेश्वरी राधा भी यहाँ नहीं है, लगता है! नाथ उन्हें भी अपने साथ ही ले गए हैं।

सुनि हरि बिरहु बिसेष अधीरा। कहहिं एक करि सोक गभीरा॥
मम गर निज सुन्दर भुज डारी। नाचत कित निकसे बनवारी॥

यह सुनकर कृष्ण-विरह से विशेष अधीर एक गोपी अत्यधिक शोक करके, कहने लगी। मेरे कण्ठ में अपनी सुन्दर भुजा डालकर नाचते हुए वे बनवारी कहाँ चले गए?

जेहिं देखा कहु गै पिय कितही। बिकल प्रान मम चलि चह तितही॥
जात उन्हहि लखि पावति जोई। रहति न तासु संग बिनु होई॥

जिसने भी देखा हो वह कहे कि प्रियतम कहाँ चले गए; व्याकुल हुए मेरे प्राण भी वहीं जाना चाहते हैं। यदि जाते हुए मैं उन्हें देख पाती तो उनके साथ हुए बिना न रहती।

करुना करि तब एक अस कहही। पियहि बिरहु अति मोकहँ दहही॥
श्रवन रहे सुनि उन्ह मृदु बैनू। पै तें निदरि गए तिन्ह ऐनू॥

तब एक अन्य रोकर कहने लगी- प्रिय का विरह मुझे अत्यन्त जला रहा है। मेरे कान उनकी मधुर वंसी सुन रहे थे, किन्तु उस ध्वनि पर मेरे कर्णाधिकार का निरादर करके, वे चले गए।

दृग अलि चह तिन्ह छबिमधु पाना। थलबन किन्तु उजार भराना॥
मम कटि तिन्ह भुज परसनि पाई। थिरकत रही अमित रसु छाई॥

नेत्र-भ्रमर उनका सौन्दर्य-मधु पीना चाहते हैं, किन्तु स्थानरूपी यह वन उनकी अनुपस्थितिरूपी उजाड़ता से भर गया है। मेरी कमर उनकी भुजा के स्पर्श से अपार प्रेमवश नृत्य कर रही थी।

किन्तु अकेल इहाँ मोहि त्यागी। गवने कत राधा अनुरागी॥

किन्तु मुझे इस स्थान पर अकेला छोड़ राधा से प्रेम करनेवाले प्रियतम कृष्ण कहाँ चले गए?

दोहा- **पिय बिनु सखि यह सरद निसि पावकमय अब होइ।**
धरनि तप्त भइ मोर हित निज सीतलता खोइ॥६५॥

हे सखि! प्रियतम के बिना शरद ऋतु की यह रात्रि मेरे लिये अब अग्निमय हुई जाती है। यह पृथ्वी मेरे लिये अपनी शीतलता खोकर तापयुक्त हो गई है।

चौ.- **पिय पयान अब खल ससि जाना। तातें बरिसहि अगिनि महाना॥**
जब लौ इहाँ रहे ब्रजराई। रहा साधु सम उन्ह भय पाई॥

अब दुष्ट चन्द्रमा भी जान गया है कि प्रियतम चले गए हैं, इसलिये यह भीषण अग्नि बरसा रहा है। जब तक व्रजराज यहाँ थे, तब तक यह भी उनके भय से किसी सभ्यपुरुष-सा शान्त था।

अब निसंक भा यह बिषभ्राता। जारे चह हमार मृदु गाता॥
अहि अरु बज्र गरलमय जैसे। यह खल हृदयँ धरहि बिष तैसे॥

किन्तु अब विष का यह भाई निडर हो गया है और हमारे कोमल अङ्गों को जलाना चाहता है। जैसे सर्प व वज्र विषयुक्त होते हैं, ठीक वैसे ही यह दुष्ट भी हृदय में विष लिये रहता है।

जब सुरपाल मिलइ मोहि आई। अवसि कहबि इन्ह अस निठुराई॥
कह एक देहु न ससि कहँ दोषा। बिनु जाने न करहु अस रोसा॥

जब श्रीकृष्ण मुझसे मिलेंगे तब मैं अवश्य उनसे चन्द्रमा की निष्ठुरता के विषय कहूँगी। तब किसी अन्य गोपी ने कहा कि चन्द्रमा को दोष न दो और बिना जाने इस प्रकार क्रोध न करो।

ससि गहि हरिहि हृदय सितलाई। रहा अभउँ लगि सीत लखाई॥
पै उन्ह जातहि भा अति दीना। बिरहु जरइ उन्ह केर मलीना॥

कन्हैया के हृदय से शीतलता प्राप्त करके, अब तक चन्द्रमा शीतल जान पड़ रहा था। किन्तु उनके जाते ही यह अत्यधिक दीन हो गया और कन्हैया के विरह में मलीन होकर जल रहा है।

हम निज दुखहि परसपर कहही। तें बपुरो अकेल चुप दहही॥

हम अपना दुःख परस्पर कह लेती हैं, किन्तु वह बेचारा अकेला ही चुपचाप जला करता है।

दोहा- तब एक आकुल गोपि कह समुझ न आवहिं मोहिं।
भइ खोटाइ हम तें कवन पिय रिसए जिन्हँ जोहि॥६६॥

तब विरह में व्याकुल हो रही एक गोपी ने कहा कि मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि हमसे ऐसी कौन सी भूल हो गई है, जिसको देखकर प्रियतम हमसे रूठ गए।

चौ.- एहिबिधि करत बिलाप कठोरा। खोज पियहि आतुर चहुँओरा॥
राजन प्रभुहि बिरहु परितापा। दाव सरिस उन्ह हियबन ब्यापा॥

इस प्रकार कठोर विलाप करते हुए गोपियाँ आतुर हो कृष्ण को चारों ओर खोज रही हैं। हे परीक्षित! भगवान के विरह का महादुःख उनके हृदयरूपी वन में दावाग्नि-सा व्याप्त हो गया।

जब न मिले हरि खोजत हारी। ऐक कहा तब हृदयँ बिचारी॥
ऐहिं बनहिं तरु खग मृग जेते। हरिहि पाछ आए महि तेते॥

खोजने पर भी जब कृष्ण नहीं मिले तो वे निराश हो गई। तभी एक ने मन में सोचकर कहा- इस वन में जो पशु-पक्षि व वृक्ष हैं, वे सब भी कन्हैया के कारण ही भूमि पर उत्पन्न हुए हैं।

ते सब सुर अरु मुनि कर अंसा। राखहि हिय हरि चाकरि मंसा॥
पियहि जात उन्ह अवसि बिलोका। पूछि तिन्हहि सक होइ बिसोका॥

वे सब देवता-मुनियों के अंश हैं और कृष्ण की सेवा की इच्छा रखते हैं। इसलिये प्रियतम को जाते हुए उन्होंने अवश्य ही देखा होगा। अतः अब उन्हें ही पूछकर हम शोकमुक्त हो सकती हैं।

बाँवरि सम सब सुनतहि धाई। बूढ़त गा जनु तृनबल पाई॥

किए जूथ बन सबहि बिभागा। पियहि पूछि लगि अति अनुरागा॥

यह सुनते-ही पागलों-सी सब दौड़ी, मानों कोई डूबता प्राणी तिनके का आश्रय पा गया हो। वे सभी दल बनाकर वन के प्रत्येक अङ्ग से प्रियतम कृष्ण के विषय में बड़े प्रेम से पूछनें लगी।

स.- **नील तमाल महाबट पाकर निम्ब कदम्ब तजौ जड़ताई।**
कान्हँ बिसारि दियौ दुख कानन काहँ गए हम जानि न पाई॥
ताकौ बियोग कठोर घनौ सह्यौ जात न जात ए प्रान सुखाई।
बेनुगोपालहि जे कत देख्यौ त देहु बताइ औ लेहु बचाई॥

हे नीलवर्णी तमाल! हे विशाल वट! हे पाकर! हे नीम! और कदम्ब! जड़ता का त्याग करो। कन्हैया ने वन में अकेली त्यागकर हमें दुःख दिया है और हमें ज्ञात नहीं कि वे कहाँ चले गए हैं? उनका वियोग बड़ा ही कठोर है, जिससे प्राण सूखे जा रहे हैं। हमसे उनका विरह सहा नहीं जा रहा है। इसलिये यदि उन वेणुगोपाल को तुमने कहीं देखा है, तो बताओ और हमें बचा लो।

दोहा- **चंदन तव महिमा अकथ परसुहि देत सुबास।**
तुअहि कहिअ पिय गए कत उन्ह बिनु लग अति त्रास॥६७॥

हे चन्दन! तुम्हारी महिमा अकथनीय है, तुम अपने वधिक कुल्हाड़े को भी सुगन्ध दे देते हो; अब तुम्ही बताओं कि हमारे प्रियतम कहाँ चले गए; उनके बिना हमें अत्यधिक भय लगता है।

चौ.- **बिटप मौलश्री अरु कचनारा। जे तुम पिय पदकमल निहारा॥**
तो करि कृपा बताइअ हमही। मुरलिमनोहर गवने कतही॥

हे मौलश्री और हे कचनारवृक्ष! यदि तुमने हमारे प्रियतम के चरणकमल देखे हैं, तो कृपा करके, हमें बताइये कि मुरलीमनोहर कृष्ण कहाँ चले गये है?

हे तुलसी भव सोक बिभंजनि। महासती निज जन मन रंजनि॥
तोर कृपा जे भै अनुकूला। भए तेइ किउँ अब प्रतिकूला॥

भवभय का नाश करनेवाली हे तुलसी! हे महासती! भक्तों के मन को आनन्दित करनेवाली हे भगवती! तुम्हारी ही कृपा से जो हम पर प्रसन्न हुए थे, वे ही कन्हैया अब हमसे रूठ क्यों गए?

अकथ सोकमय गति हम पाई। दाड़िम हसहुँ न दसन देखाई॥
आपु न करु निज सुकृत बिनासा। हरि सुधि कहु तजि सब परिहासा॥

हमारी इस अकथनीय दुर्दशा पर हे अनारवृक्ष! दाँत दिखाकर तुम ऐसे हम पर हँसो मत। अपने पुण्य स्वयं नष्ट न करो, समस्त परिहास त्यागकर, हमें हमारे कन्हैया का पता बता दो।

कदलि सुभाय तोर अति मीठा। कहउँ पियहिं जे तुअँ कत दीठा॥
सोक हरन नागर तिहुँलोका। जग परसिद्ध सुनाउँ असोका॥

हे कदलीवृक्ष! तुम्हारा स्वभाव तो अत्यन्त मीठा है, यदि प्रिय को तुमने कहीं देखा है तो बता दो। शोक हरनें में तीनों-लोकों में निपुण संसारभर में प्रसिद्ध हे अशोक इस सुन्दर नाम के वृक्ष!

क.- **पियहि बिरह केर बारिधि प्रसार अति, हम बूड़ि जात अब आसरौ तिहारो है।**
तातें एहि कुसमय हम हित पोत होत, तजिअ जे मौनउ दुसह तुम धारौ है॥

कनकहि देखि सब दंडवत करि कह, तुरत बताहुँ नंदलाल कित ठारौ है।
एहि पाछे कहौ तो करैंगि नित सेव तोर, करै न बिचार तोहि जगत बिसारौ है॥

प्रियतम का वियोगरूपी सागर अत्यधिक विस्तृत है, जिसमें हम डूबी जा रही हैं। अब हमें एकमात्र तुम्हारा ही आश्रय है। इसलिये इस विपरीत समय में हमारे लिये जहाज होओ और हमें असहनीय लगनेवाले अपने इस मौन को जिसे तुमने धारण कर रखा है, त्याग दो। फिर धतूरे को देखकर सब गोपियाँ दण्डवत कर-करके, कहने लगी कि हे कनक! तुम शीघ्र ही बताओ कि नन्दलाल कहाँ खड़े हैं? इसके बाद यदि तुम कहोगे तो हम नित्य तुम्हारी सेवा किया करेंगी और इस बात का विचार नहीं करेंगी कि यह संसार तुम्हें भूल चुका है।

दोहा- **इहिबिधि नाना बिटप सन अति आतुरि तें धाइ।**
बाँवरि इव पूछत फिरहि अतिसय बिनय देखाइ॥६८॥

इस प्रकार अनेक वृक्षों के सन्मुख बड़ी उतावली से दौड़कर अत्यधिक विनय करते हुए वे समस्त गोपियाँ उनसे पागलों के समान प्रियतम कृष्ण के विषय में पूछनें लगी।

चौ.- **पुनि जब कत न मिलेउ बिश्रामा। कहहिं परसपर भा बिधि बामा॥**
इतनेहुँ मृग बरूथ उन्ह देखा। उपजि बदनु आसउँ लघु रेखा॥

फिर जब उन्हें कहीं शान्ति न मिली, तो वे परस्पर कहने लगी- विधाता विपरीत है। इतनें में ही उन्होंने पशुओं का एक समूह देखा, जिससे उनके मुखों पर आशा की हल्की रेखा उभर आई।

हे मृग जूथ चपल अति चारू। होत तुम्हार सुछंद बिहारू॥
तोर नाभिमद गहि यह वाता। होत बिपिन हित अति सुखदाता॥

हे चञ्चल और अत्यन्त सुन्दर हिरणसमूह! तुम तो स्वच्छंद विहार करते हो। तुम्हारी नाभी से निकलनेंवाली कस्तूरी की सुगन्ध से तर यह वायु वन के लिये अत्यन्त सुखद हो जाती है।

जे कस्तुरि हित बाहु पसारी। कीन्हि जाचना तव बनवारी॥
तो तुहि बिदित अवसि तें कित गए। कहहुँ बेगि बिनु एकउँ छिनु हए॥

कस्तूरी के लिये अपनी भुजा फैलाकर यदि कन्हैया ने तुमसे याचना की है, तब तुम्हें अवश्य ही ज्ञात होगा कि वे कहाँ गए? अतः एक क्षण का भी विलम्ब किये बिना तुम शीघ्र ही बताओ।

गज तुम कत कि लखे गिरिधारी। की तुअँ पर उन्ह कीन्हि सवारी॥
केकि कि हरि तव सनमुख आई। नृत्य तोर लखिबे पृह गाई॥

हे गज! कहो, क्या तुमने उन गिरिधर को कहीं देखा है? क्या उन्होंने तुम पर सवारी की है? हे मयूर! क्या कन्हैया ने तुम्हारे सन्मुख आकर तुमसे तुम्हारा नृत्य देखने की इच्छा की है?

की छिति तुम चितए चितचोरा। हम भइ श्रमित खोजि चहुँओरा॥
कीर कपोत सुराजमराला। की तैं दुरत लखे नंदलाला॥

हे पृथ्वी! क्या तुमनें चित्तचोर मनमोहन को देखा है? हम उन्हें खोज-खोजकर थक चुकी हैं। हे शुक! हे कपोत! हे उत्तम राजहंश! क्या तुमने नन्दनन्दन को कहीं छिपते हुए देखा है?

दोहा- **हे नभ हे उड़गन सघन हे सुर मुनि अरु ब्याल।**

हे बयार हे मगन घन कहु कत दुरे गुपाल॥६९॥

हे आकाश! हे सघन तारामण्डल! हे देवताओं! हे मुनिगण! और हे सर्पो! हे वायु! हे मग्न मेघों! बताओ कि गौ के पालनकर्ता वे श्रीकृष्ण कहा छिप गए हैं।

चौ.- हे कज्जलि हरि उरतल माला। बिसरि बक्र गति होहु कृपाला॥
कहु कि कान्हँ आए तव तीरा। सोकहरनि किन देति सुधीरा॥

हे श्यामवर्णा! हे श्रीहरि के हृदय प्रदेश की मालारूपिणी यमुना! यह टेढ़ी गति त्यागकर कृपा कीजिये। कहो क्या कन्हैया तुम्हारे तट पर आए थे? हे शोकहारिणी! हमें धैर्य क्यों नहीं बँधाती?

तव जल सुखहि कमल रह छाए। अवसि कृष्न इहँ मज्जन आए॥
तुम अति मृदुल अखिल संसारा। तब किउँ अस कठोरपनु धारा॥

तुम्हारे जल में नित्य ही सुखरूपी कमल खिले रहते हैं, इसलिये कृष्ण अवश्य ही यहाँ नहानें आए होंगे। तुम संसारभर में अत्यन्त कोमल हो, फिर तुमने यह कठोरता क्यों धर रखी है?

बेगि देहु सुधि कत घनस्यामा। पावहिं हृदय परम बिश्रामा॥
नृप पै चुप लखि उन्ह अकुलाई। ग्वालिनि धरनि खसी मुरुछाई॥

घनश्याम कहाँ है, शीघ्र ही बता दो! ताकि हमारे हृदय को परम शान्ति प्राप्त हो। किन्तु हे परीक्षित! उन सबको चुप देखकर व्याकुल हुई गोपियाँ मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी।

उर निरास भै तन दुतिहीना। जनु कढ़ि जल तें तट धरि मीना॥
बसन सँभार न मुख महुँ बानी। सीत मनहुँ पुरइनि कुम्हलानी॥

विरह में वे मन से निराश और शरीर से कान्तिहीन हो गई; मानों मछलियों को जल से निकालकर तट पर डाल दिया गया हो। न वे कुछ कहती हैं ; न उन्हें अपने वस्त्रों की सुध रही; मानों शीतऋतु में कमलिनियाँ मुरझा गई हों।

दोहा- खोजि लागि पुनि धीर धरि पाए पिय पद चिन्ह।
ठिठुकि चकित चितवहि सकल पुनि प्रनाम उन्ह कीन्ह॥७०॥

फिर धीरज धरकर जब वे पुनः खोजने लगी तब उन्हें प्रिय के पदचिह्न मिले, जिसे देखकर वे सभी ठिठक गई और चकित होकर देखने लगी। फिर उन चिन्हों को सबने प्रणाम किया।

चौ.- कह ललिता तब दृग भरि बारी। इन्ह अनुसरन करहु अलि प्यारी॥
कछुहि अनुसरन पुनि उन्ह कीन्हा। पाए संग अपर पद चीन्हा॥

तब ललिता सजल नेत्र हो कहने लगी- हे प्रिय सखियों! इन पदचिन्हों का अनुशरण करो। फिर कुछ ही दूर अनुशरण करने पर उन्हें उनके साथ ही किसी अन्य के पदचिह्न भी दिखाई पड़े।

अलि दारुन बन हमहि बिसारी। गै अकेल जनि रासबिहारी॥
करन हमार मान घन भंगा। अवसि लीन्ह उन्हँ राधहि संगा॥

हे सखि! इस दारुण वन में हमें त्यागकर रासबिहारी कन्हैया अकेले नहीं गए हैं। हमारे भारी अभिमान को भङ्ग करने के लिये उन्होंने अवश्य ही राधा को अपने साथ कर लिया है।

राधा तप कठोर अति कीन्हा। उमा पुरारि ताहि बरु दीन्हा॥
जेहिं कारन कमला कर नाथा। राधहि राखत प्रतिछिनु साथा॥

(पूर्वकाल में) राधा ने अत्यन्त कठोर तप किया था, तब शिव-पार्वती ने उन्हें वर दिया था। जिस कारण वे कमलापति राधा को प्रतिक्षण अपने साथ रखते हैं।

अस बिचारि सब अति अकुलाई। खोजत भइ पुनि उन्ह अतुराई॥
कृष्न कान्हँ मोहन सुखधामा। रोम रोम उन्ह जप एहि नामा॥

ऐसा विचार करके, वे सब व्याकुल हो गई और शीघ्रतापूर्वक पुनः उन्हें खोजने लगी। गोपियों का रोम-रोम कृष्ण, कन्हैया, मोहन, सुखधाम इन्हीं नामों को जप रहा है।

दोहा- **इहाँ गोपिपति बिचरत सँग करि कीर्तिकुमारि।**
गै सँकेत बन बटहि तर लखि भा बिपिन सुखारि॥७१॥

इधर गोपियों के स्वामी श्रीकृष्ण! राधा को अपने साथ करके, विचरते हुए सङ्केत नामक वन में एक वट-वृक्ष के नीचे गए। उन्हें आया हुआ देखकर वन सुखी हो गया।

चौ.- **मृदु किसलय साँथरी बनाई। तहँ सबाम बैठे रसुराई॥**
रितुपति हरि हिय अरु बन माहीं। पुनि सुषमा सबपुष दुहुँ पाहीं॥

कोमल पत्तों की शैय्या बनाकर श्रीकृष्ण प्रिया राधाजी के साथ वहाँ बैठ गए। उन श्रीकृष्ण के मन में प्रेम व वन में वसन्त व्याप्त था और दोनों ही के पास जीवन्त सुन्दरता विराजमान थी।

पाइ सँजोग मंजु बनवारी। जोरि साज सिंगारउँ भारी॥
अंगकांति जस राधेहि केरी। करि लग तस सिंगार अवेरी॥

ऐसे उत्तम संयोग को पाकर बनवारी श्रीकृष्ण ने अनेक प्रकार के साज-शृङ्गार की वस्तुएँ ली और राधाजी के अङ्गों की जैसी कान्ति थी, वे वैसा ही शृंङ्गार लेकर उन्हें धारण करवानें लगे।

मुखससि कर दुति पियूष पाई। जेहिं पटोर गुन लीन्ह जुड़ाई॥
सो कच कचकलाप अति नागर। पाइ कान्हँ कर परसनि सुन्दर॥

मुखरूपी चन्द्रमा का आभारूपी अमृत पाकर जिसनें उपमा का गुण पा लिया, वे केश, केश-सज्जा में चतुर कन्हैया के हाथ का सुन्दर स्पर्श पाकर

गहि आश्रय कुसुमन्ह कर श्रेनी। धरहि रूप मनमोहक बेनी॥
तदुप बेनिश्रँग मृदु मुसुकाई। हरि चूड़ामनि चारु धराई॥

पुष्पों की लड़ियों के आश्रय से मनमोहक वेणी का रूप धारण करने लगे। तत्पश्चात् उस वेणी के शिखर भाग पर उन हरि ने सुन्दर चूड़ामणि धारण करवाई।

मलयज पत्रावलि तें छाए। भाल कपोल लाग गरुआए॥
तेहिं तें उठहि सुरेख सुबासा। सुष्क माधविहि दायक हासा॥

मलयगिरि के चन्दन से चित्रित राधाजी के कपोल व ललाट गर्वित हुए से लगते हैं। उनसे सुगन्ध की रुचिकर रेखा उठ रही थी, जो चिन्ता से मलिन मुख को भी हास्य देनेवाली थी।

अरुन अधर दुहुँ दीन्ह ललाई। जेहिं हँसि झाइ बिमुग्ध कन्हाई॥
नाक बुलाक ताक हरि धीरा। मनहुँ पिनाक धरे कर कीरा॥

फिर उन्होंने उनके अधरों पर लाली लगाई, जिनकी मुस्कान की छाया पर स्वयं श्रीकृष्ण भी अत्यन्त मुग्ध थे। उनके नाक में पहनी गई बुलाक उन श्रीहरि के धैर्य की परीक्षा ले रही थी, मानों तोते ने अपने हाथ में धनुष धारण कर रखा हो।

कुटिल बिलोचन काजर कोरा। बैठि सचुप गहि सकुचनि डोरा॥
तदपि चख न तज नटखटताई। अवसर परत करहि चपलाई॥

उनके कुटिल नेत्रों में काजल की कोर, सङ्कोचरूपी धागे को पकड़कर चुपचाप बैठी हुई थी, किन्तु फिर भी नेत्र नटखटता नहीं त्याग रहे थे और अवसर मिलनें पर चपलता कर ही जाते थे।

दोहा- **बिपिन क्यारि अलसे बिटप नव प्रभात बिगसाइ।**
कुसुम रासि गहि माल करि हरि प्रेयसिहि धराइ॥७२॥

वन की क्यारी में स्थित अलसाए वृक्षों पर नवीन प्रभात के द्वारा विकसित किये गए पुष्पों के समूहों को लेकर फिर उनसे माला बनाकर उन हरि ने अपनी प्रियतमा को धारण कराई।

सरितउँ जस रबि प्रदुति लसि लहर मालिका सोह।
प्रभु पहिराए श्रवन जोइ श्रवनपूर तस मोह॥७२॥

जिस प्रकार यमुना के जल में सूर्य की किरणों से भरी हुई लहरों की मालाएँ सुशोभित होती है, भगवान के द्वारा राधाजी को पहनाए गए कर्णफूल, ठीक वैसी ही मोहिनी उत्पन्न कर रहे हैं

चौ.- **अम्बर रुच जस अगनित मोती। तसहि भालतोरन कन जोती॥**
अधर धरे मृदु सुरतिन्हँ हासी। भाल बेंदि तस चंदकला सी॥

जैसे गगन में अनेक नक्षत्र शोभित होते हैं, उनके भालतोरण पर वैसी ही छोटी मणियों की आभा है। उनके अधर जैसे मधुर स्मृतियों की मुस्कान लिये है; भाल पर चन्द्रकला-सी बिन्दी है।

मनु भ्रुअ धनु ससिदंड चढ़ाई। रहा बदनु मनसिज गरुआई॥
एहिबिधि करि प्रेयसिहिं सिंगारा। कान्हँ मधुरतम बचन उचारा॥

मानों भौंहरूपी धनुष पर चन्द्ररूपी दण्ड चढ़ाकर मुखरूपी कामदेव गर्वित हो रहा है। इस प्रकार प्रियतमा राधा को शृङ्गार कराकर भगवान श्रीकृष्ण ने अत्यन्त मधुर वाणी में कहा कि,

प्रिये नवोदित ससि तहिं पाई। उअत अरुन भा कोप खिझाई॥
सुरसरि तट जगमगत अपारा। दीपकतार बिभव जेहिं धारा॥

हे प्रिये! अभी-अभी उदित हुआ चन्द्रमा, तुम्हें देखते ही चिढ़कर क्रोध से लाल हो गया है। यमुनाजी के तट पर उद्भाषित होते हुए कमलों का सौन्दर्यरूपी वैभव जिसनें धारण कर रखा है

अस मनि पुरट करधनिहिं रूरी। हरि उन्ह कटि सुषमा करि भूरी॥
जमी प्रदत्त कनक बिरचाए। कंकन नूपुर ताहि धराए॥

मणि-स्वर्ण से निर्मित ऐसी सुन्दर करधनी से कन्हैया ने उनके कटिप्रदेश की सुन्दरता को और बढ़ा दिया। फिर उन्होंने यमुनाजी के द्वारा दिये, स्वर्णनिर्मित कंकण व नूपुर उन्हें पहनाए।

जिन्हँ रव बसहि नीरझर रागा। सहित बसंतप्रिया अनुरागा॥

जिसकी ध्वनि में निर्झरों का संगीत व वसन्तप्रिया कोकिला की प्रेमयुक्त वाणी बसती थी।

दोहा- **माँडि महावर चरनतल अँगुरिन्हँ मुदरी दीन्ह।**
केसर मृगमद मलय तें गात सुबासित कीन्ह॥७३॥

फिर उन्होंने राधाजी के चरण-तलों पर महावर (मेंहदी) लगाई और अँगुलियों में मुद्रिका पहनाई। फिर केशर, कस्तूरी व चन्दन के अङ्गराग से उन्होंने उनके अङ्गों को सुवासित किया।

चौ.- **एहिबिधि प्रेयसि कर बनवारी। करि सिंगार लहेहुँ सचु भारी॥**

राधा पिय कहँ लीन्ह रिझाई। रस हित कवन काज कठिनाई॥

इस प्रकार अपनी प्रियतमा को शृङ्गारित कराकर बनवारी श्रीकृष्ण ने अत्यधिक आनन्द प्राप्त किया। राधाजी ने अपने प्रियतम को रिझा लिया, प्रेम के लिये कौन सा कार्य करना कठिन है।

मनु बैठे उन्ह पलिकन्हि ऊपर। तदपि अपलक बिलोचन दुहुँ कर॥
जुगन्हँ हृदयँ नव सुरतिन्ह केरा। होइ रहेउ मधुमास सबेरा॥

उन दोनों की पलकों पर महाराज 'मनु' विराजमान थे, किन्तु फिर भी उन दोनों की पलके झपकती न थी। दोनों-ही के हृदय में नवीन स्मृतियों का मधुमासीय प्रभात हो रहा था।

जब हरि धोइ महाबर ताकी। कहा निरखि करि चितवनि बाँकी॥
अबहि प्रथम सम चरन तुम्हारे। बृथा महाबर राखेउ धारे॥

जब श्रीकृष्ण ने उनके चरणतलों की महावर धोई, तो तिरछी चितवन करके उन्होंने कहा- हे प्रिये! तुम्हारे चरण तो अब भी पहले जैसे लाल हैं, यह महावर तो तुमने व्यर्थ ही लगा रखी थी।

अथवा सहज रूप तव पाई। सूझि न परहि मैंदि अरुनाई॥
तव मृदुगात सुबासहि तारी। चेतनता हिय केर हमारी॥

या फिर तुम्हारे स्वाभाविक रूप के कारण, मुझे महावर की लालिमा दिखाई ही नहीं पड़ रही है। तुम्हारे मधुर अङ्गों की सुगन्धरूपी ताली, हमारे हृदय की चेतनता है।

रसजुत मधुर सपुन कर गोदा। हृदयँ सोइ चह मोर प्रमोदा॥
एहि प्रसंग बिच बन दुख पाई। भयउँ निकट ग्वालिन समुदाई॥

तुम्हारे प्रेमयुक्त मधुर स्वप्नों की गोद में मेरा हृदय आनन्दपूर्वक सो जाना चाहता है। इसी प्रसङ्ग में वन के दुःखों से आहत हुआ गोपियों का समुदाय उनके निकट आ पहुँचा।

हरि निज दिसि उन्हँ आवत जानी। राधहि कहि लग अस मृदुबानी॥
गोपिन्हँ जूथ निकट अति आवा। चलहुँ अनत मम जिय कदरावा॥

कन्हैया ने उन्हें आते हुए देख राधाजी से मधुरवाणी में कहा कि गोपियों का समूह हमारे अत्यन्त निकट आ पहुँचा है, मेरा मन घबरा रहा है, अतः हम अन्य किसी स्थान पर चलते हैं।

जो भइ ग्वालिनि हमरे संगा। अवसि हमार होइ मुद भंगा॥
इहिबिधि बिनबि लाग भगवाना। जातें राधहि भयउँ गुमाना॥

यदि वे गोपियाँ हमारे साथ हो गई, तो उनके दुःख से अवश्य ही हमारा आनन्द नष्ट हो जायेगा। जब भगवान इस प्रकार विनय करने लगे, तो राधाजी को स्वयं पर अभिमान हो गया।

मैं पिय कहँ सब तें अति प्यारी। मम छबि रीझे रासबिहारी॥
कहहिं प्रगट पुनि मैं सुकुमारी। पूरब लखि न बिषम बन धारी॥

(उन्होंने सोचा) मैं प्रिय को सबसे अधिक प्रिय हूँ, ये रासबिहारी मेरी छवि पर रीझ गए हैं। फिर उन्होंने कहा- हे कान्हा! मैं कोमलांगी हूँ, मैंने वन की कठोर भूमि पहले कभी नहीं देखी।

दोहा- **काहँ अगम पथ बिपिन कर काहँ मृदुल पद मोर।**
पुनि अजहूँ बिचरे अधिक बलु अब बपुष न थोर॥७४॥

कहाँ तो वन का दुर्गम पथ और कहाँ मेरे कोमल-कोमल चरण? और आज हम पहले ही बहुत विहार कर चुके हैं, इसलिये अब मेरे शरीर में थोड़ा भी बल नहीं रह गया है।

मासपारायण उन्नीसवाँ बिश्राम

चौ.- तब सरबग्य भेद सब जाना। उपजेहुँ राधहि हृदय गुमाना॥
पवन करत मुख स्वेद सुखावहि। चलिबे हरि उन्ह बहुत मनावहि॥

तब सर्वज्ञ सारा भेद जान गए कि राधा के मन में मान उत्पन्न हो गया है। कन्हैया पवन करके, उनके मुख का पसीना सुखा रहे हैं और चलने के लिये उन्हें अत्यधिक मना रहे हैं।

थाके पै मनाइ भगवाना। राधा तदपि दीन्ह नहिं काना॥
पियहि बिमुख पुनि लगि मुसुकाई। नैंकु न पद बढ़ात गरुआई॥

किन्तु मनाते हुए भगवान थक गए, फिर भी राधाजी ने उनकी बात नहीं सुनी। फिर वे प्रियतम के विमुख होकर मुस्कुराने लगी और अभिमान के कारण तनिक भी पग नहीं बढ़ाया।

मम प्रति रस गोपिन्हँ हिय भारी। तदपि भजउँ तहि तेन्ह बिसारी॥
करउँ काज तव रुचि अनुहारा। तव प्रति मम हिय पेमु अपारा॥

हे राधा! गोपियों के मन में मेरे प्रति अपार प्रेम है, फिर भी उन्हें त्यागकर मैं केवल तुम्हारा ध्यान करता हूँ। तुम्हारी रुचि के अनुसार चलता हूँ और तुम्हारे प्रति मेरे मन में अपार प्रीति है।

बेगि करेहु पावन मम काँधा। अनत चलहि इहँ तें हम राधा॥
रासेस्वरि अस सुनि मुसुकाई। तुरत दीन्ह निज चरन बढ़ाई॥

अतः हे राधा! अब तुम शीघ्र ही मेरे कन्धे पर बैठ जाओ, हम यहाँ से किसी अन्य स्थान पर चलते हैं। ऐसा सुनकर रासेश्वरि राधाजी मुस्कुराई और उन्होंने तुरन्त ही अपना पैर बढ़ा दिया।

दोहा- तब अबाधगति मोह पर गुनातीत जगनाथ।
अंतरध्यान भए तुरत तजि मानिनि कर साथ॥७५॥

तब निर्बाधगति, मोह से परे, गुणों से रहित और सम्पूर्ण जगत के स्वामी भगवान श्रीकृष्ण मानिनि राधा को छोड़कर तुरन्त ही वहाँ से अंतरध्यान हो गए।

चौ.- जात पियहि उन्ह सब मद भागा। उर अपराधबोध सर लागा॥
चढ़ेउँ सोक ज्वर हिय अति ताड़ा। रहा निपट चख सन तम गाढ़ा॥

कन्हैया के जाते ही उनका सारा अहङ्कार दूर हो गया और उनके हृदय में अपराधबोधरूपी बाण आ लगा। तब उन्हें शोकरूपी ज्वर चढ़ गया जिसने उनके हृदय को अत्यधिक दुःख दिया। उस समय उनके नेत्रों के आगे केवल सघन अन्धकार ही रह गया।

इत अनुसरत पियहि पद चीन्हा। गोपिन्हँ गवन बटहि तर कीन्हा॥
कुसुम साँथरि बिलोकि सुहावन। लागि परसपर तरकि बुझावन॥

इधर प्रियतम के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए समस्त गोपियाँ भी उस वट के नीचे आ पहुँची और वहाँ बिछी हुई सुहावनी शैय्या देखकर तर्क करके, एक-दूसरे को समझानें लगी कि,

राधेस्याम अवसि इहँ आए। मेटन पथ श्रम इहँ सुसताए॥
अह सुभागि बृषभानुकुमारी। संग कीन्ह जे उन्ह बनवारी॥

अवश्य ही राधा-कृष्ण यहाँ आए होंगे और मार्ग में हुई थकान मिटाने के लिये यहाँ सुस्ताए होंगे। राधा बहुत सौभाग्यशालिनी है, जो उसे कन्हैया ने अपने साथ ले लिया है।

सादर बंदि सो थल सुख माना। पुनि आगिल उन्ह कीन्ह पयाना॥
कछुक चलत पथ रोदत भारी। उन्ह कहँ मिलि बृषभानुकुमारी॥

तब उन्होंने उस स्थान की सादर वन्दना करके, सुख मानकर फिर उन्होंने आगे की ओर प्रस्थान किया। कुछ ही चलनें पर उन्हें मार्ग में अत्यधिक रुदन करती हुई राधाजी मिली।

हे मनमोहन पिय चितचोरा। कस मोहि बिसरि बिपिन तैं घोरा॥

(वे कह रहीं थी) हे मनमोहन! हे चित्तचोर प्रिय! तुमनें मुझे इस बीहड़ में कैसे छोड़ दिया?

दोहा- ग्वालिनि हरष बिषाद भरि कीतिसुतिहि हिय लाइ।
पूछन लगि पुनि पुनि पियहि कहु कत कुमर कन्हाइ॥७६॥

राधा को देखकर) हर्षित और दुःखी हुई गोपियों ने उन्हें हृदय से लगा लिया और बार-बार उनसे प्रियतम के विषय में पूछनें लगी कि हे राधा! कहो कुँवर कन्हैया कहाँ हैं?

चौ.- तब राधा गहि दीरघु स्वासा। सकुचि लाग कहि हृदयँ निरासा॥
पूछ कि तुअ उपहासहि मोही। मोर दसा लखि सूझ न तोही॥

तब राधा ने दीर्घ श्वाँस लिया और सकुचाकर मन की निराशा कहने लगी- तुम पूछ रही हो या मेरा उपहास कर रही हो। क्या मेरी दशा देखकर तुम्हें ज्ञात नहीं होता कि मनमोहन कहाँ हैं?

पुनि तिन्हँ कहि उन्ह आपन बीती। जेहिं सुनि सकल उमगि अति प्रीती॥
सबन्हँ दीन्ह तब धीरज गाढ़ा। सबन्हौं हिय उन्ह प्रति रसु बाढ़ा॥

फिर उन्होंने अपनी आप बीती कही, जिसे सुनकर वे सब अत्यधिक प्रेम में डूब गई। उन सबने राधा को अत्यधिक धैर्य बँधाया। उस समय उनके मन में राधा के प्रति प्रेम बढ़ गया।

पुनि तें गहि बहु कुसुमन्हि सारा। करि लगि स्वामिनि कर उपचारा॥
तदुप आनि केसर कसतूरी। अंग बिरचि पत्रावलि भूरी॥

फिर वे अनेक पुष्पों का रस लेकर उससे अपनी स्वामिनी का उपचार (सेवा) करने लगी। तदुपरान्त केसर और कस्तूरी लाकर गोपियों ने उनके अङ्गों पर पत्रावली की रचना की।

पवन किए कछु चामर आनी। धीर देत कछु चतुर सुबानी॥
पिय जस कीन्ह तासु सनमाना। कहा सहित आपन अभिमाना॥

राधा पर पवन करने के लिये कुछ गोपियाँ चँवर ले आई, तो कुछ चतुर गोपियाँ कोमल वाणी से उन्हें धैर्य बँधानें लगी। प्रियतम कृष्ण ने जिस प्रकार उनका सम्मान किया था, अपने द्वारा किये गए अभिमान सहित सारा वृत्तान्त राधा ने उन्हें कह सुनाया।

दोहा- कान्हँ बिरहु बारिधि अतल जहँ रहि सबुहि बुड़ाइ।
अस अवसर पिय कथन उन्ह धीरज दीन्ह बढ़ाइ॥७७॥

कन्हैया का विरहरूपी सागर अथाह है, जिसमें समस्त गोपियाँ डूब रही थी। ऐसे अवसर पर प्रियतम की लीलासम्बन्धी चर्चा ने उनके धैर्य को बढ़ा दिया।

चौ.- पोछि नयन तब एक सयानी। सबन्हौं बोलि कहा मृदुबानी॥
सोक करत अस रोदत भारी। कबहुँ न हमहि मिलिहि बनवारी॥

तब अपने नेत्रों को पोछकर एक चतुर गोपी ने सबको बुलाकर कोमल वाणी से इस प्रकार कहा- शोक करके, इस प्रकार अत्यधिक रुदन करने से कन्हैया हमें कभी नहीं मिलेंगे।

द्रवहि तें जब दुख देखि हमारा। दरस देइ तब अवसि उदारा॥
तातें सब चलु रास बिताना। करहु पियहि मधुमय गुनगाना॥

हमारे दुःख को देखकर जब वे द्रवित हो जाऐंगे, तब उदारमना वे अवश्य ही हमें दर्शन देंगे। इसलिये सब मिलकर रासमण्डप में चलो और उन प्रियतम के मधुर गुणों का गान करो।

सुनि सब हरषि धरे नव आसा। रास बितान गई तजि त्रासा॥
आइ तहाँ उरहत मृदु बानी। पिय प्रति कह एक गोपि सयानी॥

ऐसा सुनकर हर्षित हुई गोपियाँ निर्भय हो, नवीन आशा लिये रासमण्डप को गई। वहाँ आकर कोमल वाणी से उलाहना देते हुए प्रियतम के प्रति एक चतुर गोपी ने इस प्रकार कहा-

जब तें तुम महि धरेहुँ सरीरा। संतत रहे हरत हमु पीरा॥
तो पुनि अज कस धरि निठुराई। प्रगटि तुरत किन देत जनाई॥

हे प्रियतम! जब से तुमने पृथ्वी पर शरीर धारण किया है, निरन्तर हमारे कष्टों को हरते रहे हो। तो फिर आज तुमने ऐसी निष्ठुरता कैसे धर ली; शीघ्र ही प्रकट होकर बताते क्यों नहीं?

दोहा- बिरह प्रलय तें दारुन जे हरिबे चह प्रान।
तो तब किहु राखिहुँ हमहि जब घनराज रिसान॥७८॥

जो यदि अपने विरहरूपी दारुण प्रलय से तुम हमारे प्राण ही हरना चाहते हो, तो जब बादलों के स्वामी इन्द्र ने क्रोध किया था उस समय हमें बचाया ही क्यों?

चौ.- बहुरि जोगमायहि सँग लाई। करि लगि पियहि चरित सुखदाई॥
माखन चीर चोरि सुखखाना। आदि चरित करि कछु सुखमाना॥

फिर माया को साथ करके, गोपियाँ अपने प्रिय की सुखद लीलाओं का अभिनय करने लगी। माखन और वस्त्र चुराना आदि सुन्दर लीलाओं का अभिनय करके उन्होंने कुछ सुख पाया।

अघ बकादि कोउँ अभिनय कीन्हा। कोउँ कन्हँ रूप तासु बल चीन्हा॥
गोचारन अरु उरग सिखावन। कीन्ह कछुक गिरिधर कृत पावन॥

किसी ने अघ, बकादि का अभिनय किया, तो किसी ने कृष्ण हो उनसे युद्ध किया। किसी ने गोचारण व सर्पदमन सम्बन्धी लीला की, तो किसी ने गोवर्धन धारण का पावन चरित्र किया।

जदपि तें अभिनय कला प्रबीना। पियहि बिरहु तद्यपि अति दीना॥

दीपहुँ तेल घटत जेहिं भाँती। लौ कर बिभव रासि बिनसाती॥

यद्यपि वे सब अभिनयकला में निपुण हैं, किन्तु फिर भी प्रिय के वियोग में वे अत्यधिक दीन हो गई हैं। जिस प्रकार दीपक में तेल घटनें पर लौ का सघन तेज मन्द पड़ जाता है।

छबि मृदुता अंबोजिनि केरी। घटहि जथा गहि सीत घनेरी॥
तसहि कान्हँ बिनु ग्वालिनि भारी। भई मलीन बिरहु कइ जारी॥

जिस प्रकार अत्यधिक शीत के कारण कमलिनी की कोमलता और सौन्दर्य घट जाता है। ठीक उसी प्रकार कन्हैया के विरह से दग्ध हुई गोपियाँ अत्यधिक दुःख को प्राप्त हुई।

दोहा- **नारि हृदयँ जे सहि न सक कमल दलन्ह आघात।**
अजहि सोइ मृदुतम कृति सहहि बिरहु पबिपात॥७९॥

नारी का हृदय जो पुष्प की कोमल पङ्खुड़ियों का आघात भी नहीं सह सकता, ब्रह्माजी की वही कोमलतम कृति विरहरूपी वज्र की मार सह रही है।

चौ.- **पियहि चरित करि भा कछु धीरा। कहि लगि बैठि जमुन कर तीरा॥**
पिय जब तें बिधुवदनु तुम्हारा। उरनभ करत भयउँ उजिआरा॥

जब प्रियतम की लीलाओं का अभिनय करके, उन्हें कुछ धैर्य हुआ तब यमुनातट पर बैठकर वे कहने लगी-हे प्रिय! तुम्हारा मुखचन्द्र जब से हमारे हृदयाकाश को प्रकाशित करने लगा है,

ममता सब जगदीपहि त्यागी। तब तें हम भइ तव अनुरागी॥
परस सुधामय बचनरस्मि तव। करहि श्रवकुमुद प्रमुदित केसव॥

तब से जगरूपी दीपक के प्रति समस्त ममत्व त्यागकर, हम केवल तुम्हारी अनुरागिनी हैं। हे केशव! तुम्हारी वचनरश्मियों का अमृतमय स्पर्श हमारे श्रवणकुमुदों को प्रफुल्लित कर देता है।

हम तव पद निकाम रस लाई। पै तुम बिसरि न निज कुटिलाई॥
अवसरु पाइ भजे अनयासा। तजि अकेल निसि देइबे त्रासा॥

हमनें तुम्हारे चरणों में निष्काम प्रेम किया, किन्तु फिर भी तुमने अपनी कुटिलता नहीं छोड़ी और अवसर मिलते ही हमें डराने के लिये इस रात्रि में हमें अकेली छोड़कर सहसा भाग गए।

हा बिधि फूटेउ करम हमारा। पिय प्रतिकूल बिपिन अँधकारा॥
बेगि मिलहु पिय हम तें आई। देइ अवसि न त प्रान बिहाई॥

हा! विधाता! हमारे तो भाग्य ही फूट गए, जो वन में व्याप्त इस अन्धकार में प्रियतम हमसे रूठ गए हैं। हे प्रियतम! शीघ्र ही हमसे आकर मिलो, अन्यथा हम अवश्य ही प्राण त्याग देंगी।

दोहा- **प्रेयसिन्हँ प्रति निठुराइ यह नाहिं रसग्यहि सोह।**
तुरत प्रगटि सीतल करेहु थाके दृग मग जोह॥८०॥

प्रेमतत्व के मर्मज्ञ को अपनी प्रेमिकाओं के प्रति ऐसी निष्ठुरता शोभा नहीं देती। तुम्हारा मार्ग देखते-देखते हमारे नेत्र थक चुके हैं, इसलिये शीघ्र ही प्रकट होकर हमें शान्ति प्रदान करो।

चौ.- **जारि जारि बिरहागि महाना। जे तुअ हरि चह हमरे प्राना॥**
तो जब दाव उमगि ब्रज माहीं। तब जरि जान दीन्हि किउँ नाहीं॥

हे कन्हैया! यदि तुम हमें अपने विरह की महान अग्नि में ही जलाना चाहते हो, तो जब व्रज में दावाग्नि लगी थी, तभी हमें क्यों नहीं जल जाने दिया?

जब सुरेस अतिसय रिस कीन्हा। तबहि ब्रजहुँ किन बूड़न दीन्हा॥
अवसि होति तब तनु कछु पीरा। पै सहि लेति ताहि धरि धीरा॥

जब देवराज इन्द्र ने महान क्रोध किया था, तभी व्रज को क्यों नहीं डूब जाने दिया? उस समय शरीर में कुछ पीड़ा तो अवश्य होती, किन्तु उसे हम धैर्यपूर्वक सह लेती।

अब तव बिरहु बरछि अति तीछी। उर खसि ताड़हि मानहुँ बीछी॥
तेहिं बिष सकल तनुहि जर घोरा। भेषज एक चंद्रमुख तोरा॥

तुम्हारे विरह की अत्यन्त तीक्ष्ण बरछी; हमारे हृदय में उतरकर बीछी-सी पीड़ा पहुँचा रही है। उसके विष से सम्पूर्ण शरीर ही अत्यन्त जल रहा है और तुम्हारा चन्द्रमुख ही इसका उपचार है।

सुनि प्रभु तैं अस आकुल बानी। अवसि लइब बिरहिनि गति जानी॥
अब त आइ पिय निज सुखदाई। चितवनि अमिय देहुँ बरिषाई॥

हे प्रभु! हमारी ऐसी व्याकुल वाणी सुनकर आपने हम विरहिणियों की दशा तो जान ही ली होगी। इसलिये अब तो आकर अपनी सुखदायक चितवन (दृष्टि) का अमृत बरसा दो।

दोहा- **तब एक गोपि कहेउ अस परम धीर हिय लाइ।**
पिय हमार दीनन्हँ हितू सो भजु उन्ह चित लाइ॥८१॥

तब एक गोपी ने हृदय में अत्यधिक धैर्य धरकर इस प्रकार कहा- हमारे प्रियतम दीनजनों का हित करनेवाले हैं, अतः चित्त लगाकर उनका भजन करो।

चौ.- **अवसि तें द्रव हमार दुख जानी। बिनवत भइ तब सब मृदुबानी॥**

हमारा दुःख जानकर वे अवश्य द्रवित होंगे। तब वे सब कोमलवाणी से विनय करने लगी-

छन्द- **हर जेइ पदकंजन्हँ मत्त मधुप इव निज हिय प्रतिछिन ध्यान धरै।**
बारिधितनुजा जिन्हँ पलुटावत निज भाग बिचारि गुमान करै॥
जिन्हँ आश्रय गहि अगनित खल निज अघ परिहरि भवनिधि सहज तरै।
सोइ पदपंकज सुचि चारु दरस हरि देहिं कृपा करि बिरहु हरै॥

भगवान शिव उन्मत्त भ्रमर के समान जिन चरणकमलों का मन में प्रतिक्षण ध्यान किया करते हैं, जिन चरणों को दबाते हुए सिन्धुसुता अपने भाग्य पर गर्वित हुआ करती है, जिन चरणों का आश्रय पाकर अनेक दुष्ट निष्पाप होकर सहज ही भवसागर से पार उतर गए, अपने उन्हीं चरणकमलों का पवित्र और सुन्दर दर्शन देते हुए कृपा करके, श्रीकृष्ण हमारा विरह दूर करें।

जेहिं कंसहि बधन सरीर धस्यो ब्रज कीन्ह सिसु चरित बिबिध बिधी।
जे सुजन सखा सुरपति सेवित श्रुति कथित सेष बंदित गुनधी॥
जिन्हँ अंग वारिअहिं मयन मनोहर हास हरहिं जिन्हँ चेतन धी।
गोपाल भए जे ग्वालन सँग तेइ होइ हमहि हित दयानिधी॥

जिन्होंने कंस के वध के लिये अवतार लिया और व्रज में अनेक बाललीलाएँ की। जो सत्पुरुषों के सखा, इन्द्रसेवित, वेदों द्वारा प्रशंसित, शेषजी द्वारा वन्दित और गुणों के धाम हैं। जिनके अङ्गों पर स्वयं कामदेव को न्योछावर किया जा सकता है, जिनकी मनोहर मुस्कान चेतना व बुद्धि को हर लेती है और जो ग्वालों के साथ गौमाता की पालना करनेवाले हुए, वही श्रीकृष्ण हमारे लिये दया के सागर हों।

तुम राधहि मुखपंकज मधुकर तहिं ग्वालकुमुद कर चंद भले।
तुम तरुन हृदयँ महि उठति सुबास हमार सपुन जेहिं परसि फले॥
जेहिं रास सुखद बिरचेहुँ सुचरित करि कोपि भयंकर असुर दले।
सो रासबिहारिहि मधुमय छबि पुनि मिलहि हमहि सुबितान तले॥

हे कन्हैया! तुम राधा के मुखकमल के मधुकर हो और तुम्हीं ग्वालकुमुदों के उत्तम चन्द्रमा हो। तुम तरुण हृदयरूपी पृथ्वी से उठती हुई सुगन्ध हो जिसके स्पर्श से हमारे स्वप्न सफल हो उठे हैं। जिन्होंने सुखद रास रचाया और सुन्दर लीलाएँ करते हुए क्रोध करके, भयङ्कर असुरों का संहार किया है, उन रासबिहारी की माधुर्ययुक्त छवि हमे उत्तम रासमण्डप में पुनः प्राप्त हो।

जेहिं होत बेनुधर सैल धरौ घनराजहिं कठिन घमंड दरौ।
सरबग्य बिदित तोहिं भाँतिभली घनघोर बिपिन मनु दुखि हमरौ॥
तोहिं पाहिं सुखहि सुख मनमोहन बिनु तोर नरक यह जग सगरौ।
बिनु तोर मलीन अनाथ भई हम नाथ हमार बियोग हरौ॥

जिसनें मुरलीधर होते हुए भी पर्वत उठाकर, इन्द्र के कठोर अहङ्कार को नष्ट कर दिया। हे सर्वज्ञ! आपको यह भली-भाँति विदित है कि इस घनघोर वन में हमारा मन दुःखी है। तुम्हारे होते हुए हमें सुख-ही सुख होता है और हे मनमोहन! तुम्हारे बिना यह सम्पूर्ण जगत हमारे लिये नर्कतुल्य है। तुम्हारे बिना हम दीन व अनाथ हो गई हैं, हे नाथ! तुम यह वियोग हर लो।

दोहा- **पिय तुम्हार बिनु सुधाकर दाहक पावक तूल।**
चक्रवात सम त्रिबिध पव ताड़हि मुदबन मूल॥८२॥

हे प्रियतम! तुम्हारे बिना यह अमृतमय चन्द्रमा अग्नितुल्य दाहक है और यह शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन हमारे आनन्दरूपी वन के मूल को भीषण चक्रवात के समान दुःख दे रहा है।

चौ.- **प्रथम रही जे निसि मुदकारी। अब भइ सोउ महादुखकारी॥**
यह बसंतमय बन न सुहाए। जनु असिपात बिपिन महुँ आए॥

जो रात्रि पहले आनन्दायिनी थी, (विरह में) अब वही दुःख देनेवाली हो गई है। वसन्तऋतु युक्त यह वन अब नहीं सुहाता, मानों यमलोक के 'असिपत्र' नामक वन में आ गए हों।

तव बिनु कास पुष्प यह चारू। ढार दृगन्हि मृत आसन्हँ भारू॥
ससिमरिचिन्हँ तें गहि सितलाई। भई तप्त महि मरुथल नाई॥

हे प्रियतम! तुम्हारे बिना पलाश के ये सुन्दर पुष्प हमारे नेत्रों में निष्प्राण आशाओं का भार उढ़ेल रहे हैं। यह भूमि चन्द्रमा की किरणों से शीतलता लेकर मरूभूमि के समान तप्त हो गई है।

अनिल प्रतारित खरकत पाता। रोम रोम भय कर दुखदाता॥
तरुहि ललित कुसुमावलि छाई। मनहुँ अँगार धरे दहकाई॥

पवन द्वारा प्रताड़ित वृक्षों के ये खड़कते हुए पत्ते हमारे रोम-रोम में दुःखद भय उत्पन्न करते हैं। वृक्षों ही पर मनोहारी पुष्पसमूह खिले हुए हैं, मानों प्रज्वलित करके, अङ्गारे धर दिये गए हों।

उपजावत हिय घोर निरासा। करहि अकथ दुख तासु सुबासा॥
जब तें तुम तजि गै अबिनासी। सरद राति भइ काल निसा सी॥

देखने पर वे हृदय में घोर निराशा उत्पन्न करते हैं और उनकी सुगन्ध अकथनीय दुःख देती हैं। हे अविनाशी! जब से तुम हमें छोड़ गए हो तभी से यह शरद्‌रात्रि हमें कालरात्रि हो गई है।

दोहा– **सब सुपासजुत राति यह मनहुँ चिता कइ आँच।**
गगन अहहि मरघट सरिस उड़गन मनहुँ पिसाच॥८३॥

समस्त उत्तम प्रबन्धों से युक्त यह शरत्कालीन रात्रि चिता की अग्नि के समान (दाहक) जान पड़ती है, आकाश श्मसान के समान है और नक्षत्र ही मानों वहाँ निवास करनेवाले पिशाच हैं।

चौ.– **कहु अस को जे निसि अस घोरा। तजहि प्रेयसिन्हँ होइ कठोरा॥**
गोपिनाथ तुम भै जग ख्याता। तापर होहु न कारिखदाता॥

हे प्रिय! कहो तो ऐसा कौन है, जो अपनी प्रेमिकाओं को ऐसी निबिड़ रात्रि में कठोरता से छोड़ देता है। संसार में तुम 'गोपीनाथ' प्रसिद्ध हुए हो, इस नाम को स्वयं कलङ्कित मत करो।

बिसरि हमार सकल जड़ताई। प्रगटि तुरत मुद देहुँ गोसाई॥
जिमि जलु बाहेर होतहिं मीना। जिअति अधिक जनि होत मलीना॥

हे इंन्द्रियों के स्वामी! हमारा सारा अपराध भूलकर शीघ्र ही प्रकट हो हमें आनन्दित करो। जैसे जल से बाहर होते ही मछली व्याकुल हो जाती है और अधिक समय तक जी नहीं पाती।

तिमि हम तोर बिरहु कुम्हलाई। प्रगटि प्रानपति लेहुँ बचाई॥
तोर बिरहु निकसहि जब प्राना। तब तुम जे लाउब दृग काना॥

ठीक वैसे ही हम तुम्हारे विरह में कुम्हला गई हैं, हे प्राणपति! प्रकट होकर हमारी रक्षा करो। जो तुम्हारे विरह में प्राण ही निकल गए; तब यदि हमारी दशा देखोगे और विनती सुनोंगे भी,

तब तिन्हँ तें का होइहि लाहू। तातें सद करु पेमु निबाहू॥
बिनु तुम्हार यह अवसर चारू। निरस भयउँ लग चित पर भारू॥

तो उससे क्या लाभ होगा? अतः शीघ्र ही प्रेम का निर्वाह करो। हे प्रियतम! तुम्हारे बिना रास का यह सुन्दर अवसर नीरस हो गया है और चित्त पर भार के समान प्रतीत होता है।

दोहा– **जरत तोर बिरहानल अति आकुल भै प्रान।**
तातें दरससुधा बरिसि इन्ह उबारु सुखखान॥८४॥

तुम्हारे विरह की अग्नि में जलते हुए हमारे प्राण अत्यधिक व्याकुल हो गए हैं, इसलिये हे सुख की खान कन्हैया! अपना दर्शनरूपी अमृत बरसाकर इन्हें उबार लो।

चौ.– **तोहि निरखत हम कहँ दिनु राता। जात न जानि परहि मुददाता॥**

पै एक दिनु कर बिरहु तुम्हारा। कोटि कलप सम लाग अपारा॥

हे आनन्ददाता! तुम्हें देखते हुए हमें दिन और रात का बीतना जान ही नहीं पड़ता, किन्तु तुमसे एक दिन का विरह भी करोड़ों कल्पों के समान अपार जान पड़ता है।

दीन्ह देव जीवन अति लाघव। मिलि सुभागबस संगति माधव॥
किन्तु सुनै बिनु तव मृदु बाता। लखु यह समउँ बृथा कन्हँ जाता॥

विधाता ने बहुत छोटा जीवन दिया है जिसमें सौभाग्यबस माधव का संग मिल गया। किन्तु हे कन्हैया! तनिक देखो तो! तुम्हारी मधुर बाते सुने बिना यह समय व्यर्थ ही बीता जा रहा है।

हम सब कुल मरजादा त्यागी। भई एक तव पद अनुरागी॥
जे तहि जानि परेउँ यह दोषा। प्रथमहि कीन्ह किउँ न अस रोषा॥

हम गोपियाँ कुल की मर्यादा त्यागकर एकमात्र तुम्हारे ही चरणों की अनुरागिनी हो चुकी हैं। यदि हमारा यह कार्य तुम्हें दोषयुक्त लगा था, तो पहले ही ऐसा रोष क्यों न कर लिया?

पुनि सुनि तव बैनुहि मृदु ताना। अस को जासु न हृदयँ लुभाना॥
जीव जन्तु प्राकृत नर नारी। इन्हँ बपुरन्हि कहँ देहुँ बिसारी॥

फिर तुम्हारी मुरली की मधुर तान सुनकर ऐसा कौन है जिसका हृदय मुग्ध न हो जाए। जीव-जन्तुओं और साधारण स्त्री-पुरुष, इन बेचारों को तो छोड़ो

सुर मुनि जोगि महातपि साधू। बूड़हि बैनु अनंदु अगाधू॥
तब हम ग्वार गवालिनि भोरी। जे बिमोहि हम कवनेहुँ खोरी॥

स्वयं देवतागण, मुनि, योगी, महान तपस्वी और साधु भी तुम्हारी वंशी की ध्वनि से उत्पन्न हुए महान आनन्द में डूब जाया करते हैं। तब यदि हम अनपढ़-गँवार और सीधी-साधी ग्वालिनें यदि तुम्हारी वंशी सुनकर विमुग्ध हो भी गई, तो इसमें हमारा क्या दोष।

इहि प्रकार पीरित बिरहागी। ग्वालिन सकल धरनि रजु लागी॥

इस प्रकार विरहरूपी अग्नि से दग्ध समस्त गोपियाँ मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी

दोहा- मन बच करमहि ग्वालिनि निज मय जब प्रभु जानि।
नृप तब उन्ह सनमुख प्रगटे निज त्रिभंगि छबि आनि॥८५॥

हे परीक्षित! जब प्रभु श्रीकृष्ण ने देखा कि समस्त गोपियाँ मन, वचन और कर्म से मेरे स्वरूप में लीन हो गई हैं, तब वे उनके सन्मुख त्रिभङ्गी मुद्रा में स्थित होकर प्रकट हुए।

चौ.- दासदास जब निज हिय जाना। ग्वालिन बिरहु तजिहि अब प्राना॥
तब तें बैजयन्ति धरि कंठा। प्रगटे हरन मिलनि उतकंठा॥

दासानुदास श्रीकृष्ण ने जब हृदय में जाना कि अब गोपियाँ विरह में प्राण त्याग देंगी, तब वे कण्ठ में बैजयन्ती माला धरे, मिलन की उत्कण्ठा हरनें के लिये उनकें सन्मुख प्रकट हुए।

निरखि कान्हँ सब हरषि अपारहि। पद बन्दन लगि प्रान अधारहि॥
सुमनाकरहि उगत जनु पावा। पुरइनि बिपिन हृदयँ हरषावा॥

कन्हैया को प्रकट हुआ देख गोपियाँ अपार हर्ष से भर गई और बार-बार प्राणाधार के चरणों की वन्दना करने लगी। मानों सूर्य को उदित होता देख कमलिनी समूह मन में हर्षित हो उठा हो।

तेहिं सवँ सबुहि घेरि उन्ह मोहन। करन लागि दृग अमरित दोहन॥
नविं अरु ताप अपेच्छित पाई। जथा मृदहि बढ़ बीज तोराई॥

उस समय उन मोहन को घेरकर समस्त गोपियाँ अपने नेत्रों के लिये उनके दर्शन का अमृत दुहनें लगी। जैसे आवश्यक ताप और नमी पाकर मिट्टी में दबा बीज तेजी से बढ़ने लगता है,

तसहि राध प्रमुदित समुहानी। देन लागि उरहन मृदु बानी॥
प्राननाथ हम तजि मरजादा। तव प्रति हिय धरि प्रीति अगाधा॥

वैसे ही परमानन्द में भरकर राधा श्रीकृष्ण के सन्मुख आई और कोमल वाणी से उलाहना देकर बोली- हे प्राणेश! हमनें मर्यादा त्यागकर मन में तुम्हारे प्रति अगाध प्रेम धारण किया और

आइ बिपिन तव दरसन आसा। पै तुम निदरि दीन्ह अति त्रासा॥

तुम्हारे दर्शन की आशा में हम वन आई, किन्तु तुमनें निरादर करके, हमे बहुत दुःख दिया।

दोहा- **अंतहि देन परेउँ दरस तब किउँ दीन्हेसि त्रास।**
लाग प्रकृति नित तोर यह बृथ जिन्हँ बदलन आस॥८६॥

तुम्हें अंत में तो हमें दर्शन देना ही पड़ा, फिर तुमनें हमें दुःख क्यों दिया? लगता है यही तुम्हारा नित्य स्वभाव है, जिसके बदल जाने की आशा करना व्यर्थ है।

चौ.- **पुष्कर द्वीप सिंधु मुनि एका। साधि रहे मुअँ बरिस अनेका॥**
कछु सवँ पूरब झष एक आई। ग्रसि उन्ह पुनि गा सिन्धु दुराई॥

(तब श्रीकृष्ण बोले-) पुष्करद्वीप पर एक मुनि रहते हैं, जो अनेक वर्षों से मेरा तप कर रहे थे। कुछ ही समय पूर्व एक मत्स्य आया और उन्हें निगलकर पुनः समुद्र में जा छिपा।

तब सभीत अति आरत बानी। टेरन लाग मोहि मुनि ज्ञानी॥
सो मैं गयउ तहहिं अतुराई। मर्दि झषहिं उन्ह लीन्ह छराई॥

तब भयभीत होकर वे ज्ञानी मुनि आर्त्तवाणी से मुझे पुकारनें लगे। इसलिये मैं वहीं गया था और उतावली से उस मत्स्य को मारकर उससे मैनें उन मुनि को छुड़ा लिया।

तजहुँ सोक अब मैं फिरि आवा। अस सुनि सब प्रतोष हिय पावा॥
पियहि कंठ भुज धरि उल्लासा। अलि एक कहि लगि करि परिहासा॥

अब मैं लौट आया हूँ, अतः शोक त्याग दो। ऐसा सुनकर सबको हृदय में परम संतोष हुआ। तभी एक गोपी प्रियतम के गले में अपनी भुजा डालकर परिहास करते हुए इस प्रकार बोली-

कान्ह बपुष सम हृदय तुम्हारा। अह सबभाँति कुटिल अरु कारा॥
निज बलु गै तुम हमहि बिहाई। हियहिं प्रीति गइ दृगन्हँ बृथाई॥

हे कन्हैया! शरीर के समान ही तुम्हारा हृदय भी सब प्रकार से कुटिल और काला है। तुम अपने बल पर हमें छोड़कर चले गए थे, जिससे हमारे मन का प्रेम नेत्रों से व्यर्थ ही बह गया।

दोहा- **झोंकि कपटबल अब सकल सबबिधि जतन जुड़ान।**

मानिनिहि हम तहि मायपति उर तें करहु पयान॥८७॥

किन्तु अब तुम अपना कपटरूपी सम्पूर्ण बल लगाकर और सब प्रकार के प्रयत्न करके, हमारे हृदय से निकल कर हमें दिखा दो, हम मान लेंगी कि तुम मायापति हो।

चौ.- **निरखि कान्हँ उन्ह प्रीति अगाधा। भै प्रसन्न पुनि करि सँग राधा॥**
सबन्हँ संग गै जमुनहिं तीरा। उन्ह अंतर अति पेमु अधीरा॥

उनका अपार प्रेम देखकर श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गए और राधा को साथ करके, समस्त गोपियों के साथ यमुना के तट पर गए। उनके अंतरमन प्रेम की अधिकता के कारण अधीर हो रहे थे।

गोपि एक निज बसन बिछाई। कह इहँ करु बिश्राम कन्हाई॥
तदुप घेरि पिय कहँ सब गोपी। सिकौ लागि निज उन्ह सन रोपी॥

एक गोपी ने वहाँ अपना वस्त्र बिछाकर कहा- हे कन्हैया! तुम इस पर विश्राम करो। तदुपरान्त प्रियतम को घेरकर सब गोपियाँ उनके सन्मुख अपनी-अपनी शिकायतें रखनें लगी।

तुम प्रपंचि नित दनुजन्हँ जैसे। समुझ न आव हरहि हिय कैसे॥
जगत होत नर चारि प्रकारा। गुन अनुरूप करहि ब्यवहारा॥

हे कन्हैया! तुम सदैव से असुरों जैसे प्रपञ्चरत हो; समझ में नहीं आता तुम दूसरों का मन कैसे हरते हो? संसार में चार प्रकार के पुरुष होते हैं, जो अपने गुणों के अनुरूप ही आचरण करते हैं।

प्रथम श्रेनि कर तें नर होई। प्रेमु करहि निज प्रेमिन्हँ जोई॥
कर ए प्रीति परसपर भारी। अस लोअन्हँ जानहुँ ब्यवहारी॥

पहली श्रेणी के पुरुष वे होते हैं, जो अपने प्रेमियों के प्रति प्रेम किया करते हैं। ऐसे पुरुष एक-दूसरे से महान प्रेम किया करते हैं, इसलिये इन्हें व्यवहारकुशल समझना चाहिये।

दूसर श्रेनिहिं उभय सुभाऊ। रस प्रति उन्ह हिय चिंत न चाऊ॥
तीसर खल अरु सुजनन्ह संगा। एक जानि कर प्रेमु अभंगा॥

दूसरी श्रेणी के पुरुष उदासीन होते हैं, उनके मन में प्रेम के प्रति न चिन्ता होती है और न ही कोई रुचि। तीसरी श्रेणी के पुरुष दुष्टों व सत्पुरुषों दोनों को समरूप अखण्ड प्रेम करते हैं।

दोहा- **चौथि श्रेनि महिमा अकथ लहहिं गिरा संकोच।**

किए कोटि हित तदपि न तें तज सुभाय निज पोच॥८८॥

और चौंथी श्रेणी के पुरुषों की तो महिमा ही अकथ्य होती है, जिसे कहते सरस्वती भी लजाती है। वे पुरुष करोड़ों प्रकार से हित किये जाने पर भी अपना नीच स्वभाव नहीं छोड़ते।

चौ.- कवनि श्रेनि कर नर तुम स्यामा। तब उठि बोलि एक हरिबामा॥
मूढ़ सरिस कस पूछत आली। चउथि श्रेनि कर ए बनमाली॥

हे कृष्ण! इनमें से तुम किस श्रेणी के पुरुष हो, यह सुनते-ही एक श्रीकृष्णप्रिया बोल उठी- अरी सखि! मूर्ख के समान क्या पूछती हो? ये वनमाली श्रीकृष्ण चौथी श्रेणी के पुरुष हैं।

कपटी कुटिल असित जग जेते। इन्हहि छायड़उ बिगसहि तेते॥
इन्ह त्रिभंगि कर कुटिल सुभाऊ। तातें इन्ह केउ एक न ठाऊँ॥

संसारभर में जितनें भी कपटी, कुटिल और झूठे हैं, वे इन्हीं की छाया में उन्नति करते हैं। त्रिभङ्गीमुद्रावाले इन कन्हैया का स्वभाव कुटिल है, इसीलिये इनका कोई एक ठिकाना नहीं है।

प्रीति कीन्हि हम इन्ह तें भारी। निदरि बिपिन पै हमहि बिसारी॥
सुनि अस कह कृपालु मुसुकाई। इहि प्रपंचगत मैं सुखदाई॥

हमनें इनसे अत्यन्त प्रेम किया, किन्तु हमारा निरादर करके, इन्होंने हमें वन में अकेला छोड़ दिया। तब कृपालु भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं इन प्रपञ्चों से परे सुखदायक परमात्मा हूँ।

सुमिर मोहि जे जस उर लाई। तसहि रूप मैं मिलु तिन्ह आई॥
अखिल जगहि मैं पालनहारा। जग हित होत मोर अवतारा॥

जो प्राणी हृदय में जैसा भाव लिये मेरा स्मरण करता है, मैं आकर उसे वैसे ही रूप में प्राप्त होता हूँ। मैं सम्पूर्ण संसार का पालक हूँ और संसार के हित के लिये ही मेरा अवतरण होता है।

दोहा- मैं तजि तुम कहुँ कानन कतहि गयउ अलि नाहिं।
संतत बसउँ तुम्हार हिय रहा परिखि कछु ताहिं॥८९॥

हे गोपियों! तुम्हें वन में अकेला छोड़कर मैं कहीं नहीं गया था। मैं तो नित्य ही तुम्हारे अंतःकरण में निवास करता हूँ और इसे ही थोड़ा परखकर देख रहा था।

चौ.- मैं देखा तजि तिमिर जहाना। तुम हिय सघन कीन्ह मम ध्याना॥
चेर होउँ अज आयु तिहारा। तदपि न रिनु तव चुकइ अपारा॥

(और) मैनें पाया कि संसार का मोह त्यागकर तुमनें मन में मेरा सघन ध्यान किया है। यदि मैं ब्रह्मा की आयु तक भी तुम्हारा दास बना रहूँ, तब भी मुझसे तुम्हारा अपार ऋण नहीं चुकेगा।

अस कहि सब गोपिन्हँ करि साथा। रास बितान गए ब्रजनाथा॥
धरि बहुरूप रास पुनि करही। भँवर मनहुँ सरि अंचलु परही॥

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण उन समस्त गोपियों को साथ करके, रासमण्डप में गए और अनेक रूप धरकर पुनः रासलीला करने लगे, मानों नदी की धारा में बहुत से भँवर पड़ रहे हों।

मायाबस ग्वालिनि तेहिं काला। भई भ्रमित अस समुझि भुआला॥
नर्तहि पिय केवलु मम संगा। हिय धरि मम प्रति प्रीति अभंगा॥

हे राजन! उस समय भगवान की माया के वश होकर भ्रमित हुई गोपियाँ यह समझनें लगी कि प्रियतम अपने हृदय में मेरे प्रति अखण्ड प्रेम धरे, केवल मेरे ही साथ नृत्य कर रहे हैं।

धरे स्याम जे बिबिध सरीरा। ग्वालि जानि जनि मोह गभीरा॥
नर्तहि कान्हँ अदा करि नाना। नट छबि दृग सुख देइ महाना॥

श्यामसुन्दर ने जो अनेक शरीर धरे थे, उनके विषय में महामोहग्रस्त गोपियाँ जान न सकी। कन्हैया अनेक शैलीयों में नाच रहे हैं। उनके नटवेष की छवि नेत्रों को महान सुख दे रही है।

दोहा- **अरुन अरुन मृदु अधर उन्ह ढार दारु रसु भारि।**
भरहि मीचुरिपु मानहुँ मानस सप्त मँझारि॥९०॥

श्यामसुन्दर के कोमल और लाल-लाल अधर मुरली में महान मधुरता उढ़ेल रहे हैं, मानों मुरली के छिद्ररूपी सात सरोवरों में उनके अधर अमृत भर रहे हैं।

चौ.- **बाँसुरि पर मनि कंचन केरे। सोह सुचित्र बिचित्र उकेरे॥**
हरि अधरामृत सिंधु अपारा। जहँ खेलत तें बिबिध प्रकारा॥

उस मुरली पर मणियों और स्वर्ण से उकेरे गए सुन्दर व अद्भुत चित्र शोभित हैं। श्रीकृष्ण के अधरों का अमृत अपार सागर के समान हैं, जिसमें वह अनेक प्रकार से खेल कर रही है।

अँगुरि बिलास वात कर संगा। सोभ लहहि जनु ताल बिहंगा॥
हरि छबि कइ उत्ताल तरंगा। उठि उठि परसति ससिउ उछंगा॥

अधरों से फूँकी गई वायु के साथ मुरली पर निश्चित क्रम से होता हुआ उनकी अँगुलियों का नर्तन शोभा पा रहा है, मानों सरोवर में पक्षि सुशोभित हों। भगवान श्रीकृष्ण के सौन्दर्य की उत्ताल तरङ्गें (अकथनीय प्रभाव) उठ-उठकर चन्द्रमा के आँचल का स्पर्श कर रहा है।

जुबतिन्हँ मानस मानस माहीं। जस नव नलिन बिपिन बिगसाहीं॥
जस हिमसैल सिखर सिसु दिनकर। लखि पर दीपसिखहि सम सुन्दर॥

युवतियों के मनरूपी सरोवर में जैसे कामनारूपी नवीन कमलवन विकसित होता है, जैसे हिमालय के शिखरों पर स्थित प्रातःकालीन सूर्य दीपक की लौ जैसा सुन्दर दिखाई पड़ता है,

तैसेहि छबिजुत केकि सिखंडा। प्रभु सिरु सोहत मुदद अखंडा॥
मुखनभ झहरत कच घनमाला। रुकि रुकि भींज हँसि लहरि हाला॥

वैसा ही छवियुक्त अखण्ड आनन्ददायक, मयूरपङ्खयुक्त मुकुट प्रभु के सिर पर शोभित है। उनके मुखरूपी आकाश पर केशरूपी मेघमालाएँ लहरा रही हैं, जिन्हें हास्यरूपी मदिरा की लहरें रह-रहकर भिगो रही है।

उन्ह कच घनन्ह करत दुतिमाना। दमकहि मकराकृत दुहुँ काना॥
बुदबुद मुकुतावलि जेहिं भाँती। सरित धार सुषमा बिगसाती॥

फिर उन मेघमालाओं को उद्भाषित करते हुए मकराकृत कुण्डल उनके कानों में बिजली जैसे चमक रहें है। बुलबुलोंरूपी मोतियों की माला नदी की धारा में जैसा सौंदर्य प्रकट करती है,

सोउ छटा निज तार गहाई। कन्हँ हिय तस मनिमाल सुहाई॥

दृष्टि बाँकपनु काजर बोरा। होइ रहा ग्वालिन्ह हिय चोरा॥

वैसे ही सौन्दर्य को अपने तार में पिरोए मणियों की माला कन्हैया के कण्ठ में सुशोभित हो रही है। काजल में डूबा हुआ उनकी चितवन का बाँकापन गोपियों के हृदय चुराये जा रहा है।

चारु सुमृदुल कपोलन्ह ऊपर। जौबन सुधा भरे सर सुन्दर॥
भ्रुअ धनु पनच प्रगटि बल भारी। जुग झष करति जासु रखवारी॥

अत्यंत कोमल, सुन्दर कपोलों पर यौवनरूपी अमृत से भरे सरोवररूपी दो भँवर हैं। भौहरूपी धनुष की प्रत्यञ्चा पर अत्यन्त बल प्रकट करके, नेत्ररूपी दो मछलियाँ जिनकी रक्षा कर रही है।

सरद निसिहि ससि पूरन पाई। छबिनिधि ग्वालिन्ह छबि उमगाई॥
लतिका साख सुआश्रय पाई। जस तरु सिखर बढ़हि लपटाई॥

शरत्चन्द्र को पूर्ण उदित जानकर सौन्दर्यसिन्धुरूपिणी गोपियों की सौन्दर्यरूपी लहरें उमड़ी और जैसे एक लता शाखा का आश्रय पाकर लपटाते हुए वृक्ष के शिखर की ओर बढ़ती है,

तस हरि कर गहि निज कर माहीं। लागिसि ग्वालिनि रास रचाहीं॥

उसी प्रकार श्रीकृष्ण का हाथ अपने हाथों में लेकर वे गोपियाँ रास-नृत्य करने लगी।

क.- बहुबिधि नृत्य करि संग संग ताल दइ, मंद मंद हँसि गोपि पियहि रिझात हैं।
मोहन बजात मृदु बाँसुरि कटाछ करि, बाँकि चितवनि करि भ्रुअ मटकात हैं॥
मधुरातिमधुर कंकन किंकिनि नूपुर, मृदु धुनि प्रगटि श्रवन हरषात हैं।
महि होत क्रम क्रम चरन बिलास घन, जासु साखि देत अँग अँग द्रव न्हात हैं॥

साथ-साथ तालियाँ बजाकर अनेक प्रकार से नृत्य करते हुए, धीरे-धीरे मुस्कुराकर गोपियाँ प्रिय को रिझा रही है। मनमोहन मधुरध्वनि से मुरली बजाते हुए तिरछी चितवन करके, भौंहों को मटकाकर गोपियों पर कटाक्ष करते हैं। मधुरता से भी अधिक मधुर ध्वनि उत्पन्न करनेवाले उनके हाथों के कंकण, कमर की करधनी और पैरों के नूपुर कोमल ध्वनि से बजते हुए, कानों को प्रसन्नता प्रदान कर रहे हैं। नृत्य करते समय समस्त गोपियों के चरण एक निश्चित क्रम में बड़ी तीव्रता से भूमि पर पड़ रहे, पसीने में भीगा उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग जिसकी साक्षी दे रहा है।

क.- राधा ललिता बिसाखा आदि ग्वालिनिन्ह संग, रास अति अद्भुत कान्हँ उपजात हैं।
नवनीत सम हरि केर मृदु कपोलन्ह, चिक्कन कुटिल कच रासि लहरात हैं॥

कर कंज बैनु सोह खीन कटि पीत पट, नाचै थेई थेई अपछरान्ह लजात हैं।
बीच मटकाई चख चपल करत सैन, अस महारास सोभा बरनि न जात हैं॥

राधा, ललिता और विशाखा आदि गोपियों के साथ नृत्य करते हुए श्रीकृष्ण रासनृत्य की अत्यन्त अद्भुत छटा प्रकट कर रहे हैं। कन्हैया के मक्खन जैसे कोमल कपोलों पर चिकनी और घुँघराली केशराशि लहरा रही है। उनके करकमलों में मुरली शोभा दे रही है और उनकी पतली कमर में पीताम्बर बँधा हुआ है। थेई-थेई के स्वर पर नृत्य करते हुए वे कन्हैया अपने नृत्य से नृत्यप्रवीणा अप्सराओं को भी लज्जित कर रहे हैं। बीच-बीच में चञ्चल नेत्रों को मटकाकर वे गोपियों को सङ्केत करते हैं। उनके इस महारास की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

छन्द- **जनि जात बरनी रास अनुपम छबि सकुचि मम लघु गिरा।**
नाचत परे कच गोपिकन्ह मुख प्रति कचहि श्रम कन धरा॥
मानहु भुअंगिनि मनिहिं भ्रम बुदबुदन्हँ खावन धावही।
हरि निरखि तिन्ह अति श्रमित निज पट काढ़ि स्वेद निबारही॥

रास की अनुपम शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता, इस कार्य को करते मेरी तुच्छ वाणी सकुचा गई है। नाचते हुए गोपियों के मुख पर केश छा गए और प्रत्येक केश ने अपनी नोंक पर पसीनें की बूँद धर रखी है, मानों मणि के भ्रम में सर्पिणियाँ जल के बुलबुलों को खाने के लिये दौड़ रही हो। श्रीकृष्ण उन्हें अत्यन्त थकी देख, पीताम्बर से उनके मुख से पसीना पोंछ रहे हैं।

सो.- **पुनि करि लाग समीर पट भँवात हिय हरषि हरि।**
लखि लहँ मोह गभीर सुर मुनि बिधि हर चित्रवत॥९१॥

फिर कन्हैया प्रसन्नहृदय से अपने वस्त्र को हिलाकर उन पर पवन करने लगे। देवता, मुनिगण, ब्रह्माजी और शिवजी यह देखकर थके से रह गए और महान मोह को प्राप्त हुए।

चौ.- **पुनि हरि छेरि बैनु मृदु ताना। जग दिसि चलि जे बिसरि बिताना॥**
जब तें आइ मिलि त्रिबिध बयारा। सरि तट भा प्लाबित गुंजारा॥

फिर श्रीकृष्ण ने मुरली की तान छेड़ी, जो रासमण्डप से संसार की ओर चली। जब वह आकर त्रिविध वायु में मिली तो उसकी गुञ्जन से यमुना का सम्पूर्ण तट आप्लावित हो उठा।

परत श्रवन सो सुधुनिहु तारा। भई बाम भ्रमबस सरि धारा॥
मधुपन्ह पंखाबृति लय टूटी। तहँ तें धुनि सो बिपिन दिसि छूटी॥

उस मधुर ध्वनि की तरङ्गें यमुनाजी के कानों में पड़ी तो भ्रमवश उनकी धारा विपरीत हो बहनें लगी। भौरों के पङ्खों की आवृत्ति का क्रम टूट गया। फिर वहाँ से वन की ओर चल पड़ी।

जेहिं सुनि पुष्प कलिन्ह छबि भारी। देन लागि गोपिन्हँ सँग तारी॥
बिटप संग करि लता बहोरी। झूमि परे जहँ तहँ पनु छोरी॥

जिसे सुनकर पुष्पों और कलियों का महान सौन्दर्य नृत्य करती हुई गोपियों के साथ ताल देने लगा। फिर लताओं को अपने साथ करके, वृक्ष जड़ता त्यागकर जहाँ-तहाँ झूम उठे।

कमल बिपिन निज बिभव बढ़ाई। मुरलिहि संग लाग झहराई॥

दलन्हि जूथ निज अरुनिउ त्यागी। भै रितुराजबरन अनुरागी॥

कमल-पुष्पों के वन अपना सौन्दर्यरूपी वैभव बढ़ाकर मुरली की ध्वनि के साथ लहरानें लगे। उन पुष्पों की पङ्खुड़ियाँ लालिमा त्यागकर ऋतुराज बसन्त के नीलवर्ण में परिवर्तित हो गई।

कलरव जगत तब्ध भरमाई। श्रवन तानि लग मोद जुड़ाई॥
तासु प्रमोद सबद सुनि पावा। तरत बारिचर ऊपर धावा॥

पक्षियों के समूह भ्रमित और स्तब्ध हो कान खड़े करके, ध्वनिरूपी उस आनन्द को पा रहे हैं। मुरलीध्वनि के उस आनन्द का शब्द सुनकर जलचर तैरते हुए ऊपर की ओर दौड़े।

सरित तरंग सुधुनि सुनि पाई। तटन्ह कहन हित चलि अतुराई॥
महि ममत्व आरती सजाए। असमय बानस अंकुर जाए॥

उस ध्वनि को जैसे ही सुना वैसे ही यमुना की तरङ्गें तटों को इसकी सूचना देने उतावली से दौड़ी। ममता की आरती सँजोए पृथ्वी ने बिना ही ऋतु के वनस्पतियों के अङ्कुर उपजा दिए।

बारिहीन मानस मुनि केरे। भै जल कुबलयजुत धुनि प्रेरे॥
जीति अखिल भुवि धुनि श्रमु पाई। न्हावन गगन गंग दिसि धाई॥

उस ध्वनि के प्रभाव से मुनियों के निर्मल मन, आसक्ति और शृङ्गारभावों से भर गए। इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी को जीतकर वह थककर स्नान करने के निमित्त आकाशगङ्गा की ओर दौड़ी।

सान्त मूँदि दृग सरित उछंगा। उतरि लागि बहि लहरन्हि संगा॥
एहिबिधि तजि श्रम बिभव बढ़ाई। गवनी सक्र धाम हरषाई॥

शान्तभाव से नेत्र बन्द करके, वह आकाशगङ्गा में उतरकर उसकी लहरों में बहनें लगी। इस प्रकार थकान मिटाकर, वैभव लिये वह ध्वनि प्रसन्नतापूर्वक इन्द्र की नगरी अमरावती में गई।

स.- **तारित कीन्ह तहाँ घन जूथन्ह सक्र सभा कछु कौतुक कीनौ।**
तुम्बुरु देखि के ठाढ़ौ रह्यो मुख तें कछु बोल्यो न आनंद भीनो॥
ब्रह्म के धाम सनंदन आदिक निर्गुन संतन्हँ को हिय छीनो।
पाछे पयान कैलास पे कीन्हो नचाइ महादेवही जसु लीन्हो॥

वहाँ उसने मेघ-समूहों को मधुर ताड़ना (पीड़ा) देकर फिर इन्द्र की सभा में कुछ कौतुक कर दिया। जिसे देखकर सभा में उपस्थित तम्बुरु नाम का गन्धर्व खड़ा का खड़ा रह गया और महान आनन्द में मग्न होकर मुख से कुछ नहीं बोल पाया। फिर ब्रह्मलोक जाकर उस ध्वनि ने सनन्दनादि निर्गुणब्रह्म के भक्तों का हृदय हर लिया। तदुपरान्त उसने कैलाश पर्वत पर प्रस्थान किया और वहाँ भगवान शिव को आनन्दमग्न करके, नचाकर महान कीर्ति प्राप्त की।

दोहा- **कहि न चपल हर गनन्हि गति देखि दसा मयनारि।**
बैनु तान गरुआत पुनि पातालउ पइसारि॥९२॥

कामदेव के शत्रु शिवजी की दशा देखकर स्वभाव से ही चञ्चल उनके गणों की दशा का वर्णन नहीं किया गया है। फिर गर्वित होकर मुरली की उस तान ने पाताललोक में प्रवेश किया।

चौ.- **राजहि तहँ बलि असुरन्हँ राजा। हरषे धुनि सुनि सहित समाजा॥**

छत्तिस रागिनि अरु षट रागहि। जुत धुनि उमगानेहुँ अनुरागहि॥

वहाँ असुरराज बलि राज्य करते थे, जो मुरलीध्वनि सुनकर समाज सहित हर्षित हो उठे। छः रागों और छत्तीस रागिनियों के माधुर्य से युक्त ध्वनि ने उनके हृदय में महान प्रेम उत्पन्न किया।

नृप पुनि धरनिधरहि ठगुराई। निज तरंग तें लागि नचाई॥
एहिबिधि करत त्रिलोक अनंदा। चरि लग अनुपम नाद सुछंदा॥

हे परीक्षित! फिर शेषजी पर टोना करके, ध्वनि उन्हें अपनी तरङ्गों पर नचानें लगी। इस प्रकार त्रिलोक को आनन्दित करके, मुरली का वह अनुपम नाद स्वच्छंद विचरण करने लगा।

दीपसिखहि सम झलमल झलमल। नर्ति लाग इत रस अति निरमल॥
आतम अरु परमातम केरा। महामिलन यह मुदद घनेरा॥

इधर गोपियों और श्रीकृष्ण का अत्यन्त निर्मल प्रेम दीपशिखा के समान झलमल-झलमल करके, नृत्य करने लगा। आत्मा और परमात्मा का यह महामिलन महान आनन्द का देनेवाला है।

चंचल स्याम अरुन घन ऊपर। नभ सुरसरित तरंगन्हि सुन्दर॥
नर्तहि अति उमंग उड़ माला। चेत धरे रस सौरभ आला॥

नीले और लाल रङ्ग के चञ्चल मेघों पर, आकाशगङ्गा की सुन्दर लहरों के मध्य स्थित नक्षत्रसमूह, अपनी चेतना में प्रेम की अद्भुत सुगन्ध धरे अत्यधिक उत्साह से नृत्य कर रहा है।

अंधकारि निज मरिचि पसारी। तब्ध रास चितवहि दृग फारी॥
न्हाइ तेहिं कौमुदि महि कानन। सोभहि सहित दसउँ दिसि आनन॥

चन्द्रमा अपनी किरणों को फैलाकर स्तब्ध खड़ा उस महारास को आँखे फाड़कर देख रहा है। उसकी कौमुदी में नहाकर वन की भूमि अपने दस-दिशारूपी सिरों सहित सुशोभित हो रही है।

श्रीमद् मँडव सिसिर कन छाए। नयन मूँदि झूमहि हरषाए॥
बहुबिधि रितुपति कइ अँगराई। रहि लतिकन्हि कर प्रदुति जगाई॥

सात्विकमद से मतवाले हुए रासमण्डप पर ठहरी हुई ओंस की बूँदें नेत्र बन्द किये हर्षित हो झूम रही है। ऋतुराज की अँगड़ाई अनेक प्रकार से लताओं के महासौन्दर्य को जगा रही है।

बहुरि लता तजि रितु के सीवाँ। चुंबहि चढ़ि तरु साखहि ग्रीवाँ॥
तहाँ नवल किसलय रोमारी। सिरु उठात पुनि पुनि मतवारी॥

साथ ही लताएँ भी ऋतुसीमा लाँघकर वृक्षों पर जा चढ़ी और शाखारूपी कण्ठ का चुम्बन करने लगी। उन शाखाओं पर नवीन पत्तों की मतवाली रोमावली बार-बार सिर उठा रही है।

मुकुल उए प्रतीक अनुरागा। पुनि भै सुमन बहात परागा॥
बिगसत निरखि कुसुम निसि माहीं। भ्रमरन्हि बुधि भ्रमधूरि भराहीं॥

लताओं और वृक्षों पर अनुराग की प्रतीक कलियाँ निकल आई और पुष्प बनकर पराग बिखेरनें लगी। उन पुष्पों को असमय खिलते देख भौरों की बुद्धि भ्रमरूपी धूल से भर गई है।

दिवस कि यह जामिनि के रेखा। अस अचंभ पूरब जनि देखा॥

वे विचार कर रहें हैं कि यह दिन है या रात, यह अचम्भा पहले तो कभी नहीं देखा।

खगगन कइ मृदु निदरउँ माहीं। मंजुल सपुन सृजत हरषाहीं॥
लघु चेतनता के परिछाई। मंद मंद लागिसि उभराई॥

पक्षियों की कोमल निद्रा में हर्षपूर्वक सुन्दर स्वप्नों का सृजन करती हुई सूक्ष्मचेतना की परछाई धीरे-धीरे उभरनें लगी।

मुरलिहि प्रतिधुनि हृदयँ बसाए। सरि तट जुगल मिलन उमगाए॥
तिमिर भींजि जमुनहि कल कल धुनि। सचुप बिचारहि मुरलिहि धुनि सुनि॥

मुरली की प्रतिध्वनि हृदय में बसाए यमुना के दोनों तट मिलनें के लिये दौड़े। अन्धकार में भीगी हुई यमुना की कल-कल ध्वनि श्रीकृष्ण की मुरलीध्वनि सुनकर चुपचाप विचार कर रही है।

सरित तरंग मुकुर मनु भावा। महारास कर बिम्ब सुहावा॥
गोपिन्हँ पग कर कम्पन पाई। तट बालुका लहहि सितलाई॥

यमुना के तरङ्गरूपी मनोहर दर्पण में महारास का सुन्दर प्रतिबिम्ब शोभा प्राप्त कर रहा है। गोपियों के पैरों के कम्पन से यमुना के तट पर बिछी हुई बालू शीतलता पा रही है।

तम अनुभवत तासु रस भारी। भा दुतिमय निज प्रकृति बिसारी॥
वातहि त्रिबिध सिनिग्ध सुअंचल। लहरहि मुरलिहि रागिनि चंचल॥

अन्धकार का अनुभव करता हुआ उनका महान प्रेम अपने स्वभाव को त्यागकर तेजयुक्त हो उठा। त्रिविध वायु का स्निग्ध और सुन्दर आँचल मुरली की चञ्चल रागिनियों पर लहरा रहा है।

पुष्प दलन्हि अरु किसलय माहीं। लखि पर राध कान्हँ परिछाहीं॥
भूधर ब्योम सकल सरि ताला। लखि लग महारास तेहिं काला॥

पुष्पों की पङ्खुड़ियों व वनस्पतियों के पत्तों में श्रीकृष्ण और राधाजी की सुन्दर छाया दिखलाई पड़ती है। उस समय आकाश, समस्त पर्वत, नदियाँ और सरोवर उस महारास को देखने लगे।

बन उपबन सँग श्रीमद् पागे। धरि धरि नरतन नरतन लागे॥
मानस कमल सबन्हँ तनु पाए। रास बितान भ्रमहि सुख पाए॥

वन उपवनों के साथ वे सब भी मनुष्य शरीर धरकर सात्विक मद से उन्मत्त हो नृत्य करने लगे। सरोवरों के कमल भी मनुष्य शरीर प्राप्त कर रासमण्डप में सुखपूर्वक नृत्य करने लगे।

थिरकहि दसहुँ दिसा रसु भारी। नर्तहि बिबुध सबुहि करि नारी॥

दशों दिशाएँ महाप्रेममग्न हो नाचने लगी और सब देवता अपनी स्त्रियों के साथ नाचने लगे।

छन्द- **नर्तहि मुदित सुर निज तियन्ह सँग अपछरन्हि धीरज तज्यो।**
भेषज सकल नर तनु प्रगटि पुनि जयति जय कहि हरि भज्यो॥
सब लोकपाल दिसिप उदधि नररूप द्वीपन्ह सँग तने।
चर गति कहहिं कस अचर गति सो रास महुँ देखत बने॥

आनन्दित होकर देवता अपनी स्त्रियों के साथ नृत्य करने लगे, यह देखकर अप्सराओं का धैर्य छूट गया। समस्त औषधियाँ मनुष्य का शरीर धरकर प्रकट हुई और जय हो, जय हो इस प्रकार कहकर उन्होंने श्रीकृष्ण का भजन किया। समस्त लोकपाल, दिक्पाल और सातों समुद्रों के

साथ समस्त द्वीप भी मनुष्य शरीर धारण करके, महारास में आ डटे। चर -जगत की दशा के विषय में कैसे कहा जाए; उस महारास में अचर-जगत की दशा भी देखते-ही बनती थी।

दोहा- नाचत कोउँ अलि कान्हँ तें छीनि बजावहि बैनु।
कोउ प्रियतम कटि कर धरि प्रगटावहि निज ऐनु॥९३॥

नृत्य करते हुए कोई कन्हैया के हाथ से मुरली छीनकर स्वयं बजाने लग जाती है, तो कोई गोपी प्रियतम कृष्ण की कमर में अपनी भुजा डालकर उन पर अपना अधिकार जताती है।

चौ.- कत त्रिभंग मनमोहन ठारे। राध भब्य कँध अह सिरु धारे॥
नयन मूँदि सुनि बाँसुरि ताना। मूक गीत गावहि छबिखाना॥

किसी स्थान पर कन्हैया त्रिभङ्गी मुद्रा में खड़े हैं और राधाजी उनके भव्य कन्धे पर सिर रखे खड़ी हैं। सौंदर्यराशि वे राधाजी नेत्र मूँदकर मुरली की तान सुनते हुए चुपचाप गीत गा रही हैं।

कत प्रेयसिहि श्रमित अति पाई। पद पलुटहि निज गरुअ बिहाई॥
नाचत छूटि मुकुट परि जाई। बाँध सुधारि कोउ अतुराई॥

कहीं प्रियतमा को अत्यन्त थकी जानकर श्रीकृष्ण अपनी प्रभुता भुलाकर उनके पैर दबा रहे हैं। नाचते हुए जब उनका मुकुट गिरता है, तब कोई गोपी शीघ्रता से पुनः सुधारकर बाँध देती है।

थिरकत गोपिन्हँ छूटहि पैंजनि। पिय तें बँधात तें तब कहि सैननि॥
कोउँ पिय कर गहि सूनउँ जाई। कह मैं थाकि नाथ श्रमु पाई॥

जब नाचते हुए किसी की पैंजनी छूट जाती है, तो वह सङ्केत, कन्हैया से पुनः बँधवा लेती है। प्रिय का हाथ पकड़ कोई गोपी एकान्त में जाकर कहती है- हे नाथ! मैं बहुत थक चुकी हूँ।

दासदास तब बसन चलाई। पवन करइ प्रमुदित अतुराई॥
कोउँ पिय पद पलुटहि सुखमानी। कोउँ नाचहि गहि पिय कर पानी॥

तब दासानुदास श्रीकृष्ण अत्यन्त आनन्दित हो शीघ्र पीताम्बर से पवन करते हैं। कोई गोपी सुखपूर्वक प्रिय के चरण दबा रही है, तो कोई उनका हाथ अपने हाथों में लिये नाच रही है।

उन्ह तनु श्रमकन चले उड़ाई। सुषमा अमित न जासु कहाई॥
मनहुँ सरित कइ चपल तरंगा। तट प्रभाउँ भइ मोतिउँ भंगा॥

उस समय उनके शरीर से पसीनें की बूँदें उड़ चली, जिसकी सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता। मानों नदी की चञ्चल तरङ्गें तट से टकराकर बूँदोंरूपी मोतियों में बिखर गई हों।

स.- स्यामहि बैनु बजावत देखिके ग्वालिनि गावत आनंद भारी।
सो मृदु गानहुँ जो सुनि पावत नाचत डोलत रासबिहारी॥
चंदन केसर गोपिन्ह गातन्हँ केर निजांग जे पाव तमारी।
भूलौ आज मैं सो तैने दीन्हौ मोहि गातन्ह राग महासुखकारी॥

कन्हैया को मुरली बजाते देख ग्वालिनें परमानन्द में भरकर गा रही है। रासेश्वर श्रीकृष्ण जैसे ही उसे सुन पाते हैं, वैसे ही मग्न हो वे नाचनें-डोलनें लगते हैं। गोपियों के अङ्गों पर लगा चन्दन

और केसर जब कन्हैया के अङ्गों पर लग जाता है, तो वे कहते हैं कि आज मैं अङ्गराग लगाना भूल गया था, किन्तु तुमनें इस प्रकार यह महान सुखदायक अङ्गराग मुझे दे दिया।

स.- मृगिनि जैसी सुचंचल ग्वालिनि नाचत नाचत जे परि जाईं।
बेगि रमापति कुंजर सुंड सी बाँह पसारि के लेत उठाईं॥
नाचत जे थकि जात खिजात मनोहर ताहि सो जात रिसाईं।
ताके पलोलट पाद रमेस सुबैन सुनावत लेत मनाईं॥

मृगी-सी सुकुमारी और चञ्चल गोपियाँ जब नाचते-नाचते थककर गिर पड़ती है, तब रमापति अपनी गजसूँड़-सी भुजा बढ़ाकर शीघ्र ही उन्हें उठा लेते हैं। नृत्य करती हुई जो गोपी थक जाती है, मनोहर श्रीकृष्ण उसे चिढ़ानें लगते हैं और इसी कारण वह रूठ जाती है। तब वे रमापति भगवान श्रीहरि उसके चरण दबाते हुए कोमल वाणी सुनाकर उसे मना लेते हैं।

दोहा- लखि बिरंचि हर बिबुधगन गोपिन्हँ भाग सिहाइ।
महारास चितवहि मुदित लाग कुसुम बरिषाइ॥९४॥ (क)

यह देखकर शिवजी, ब्रह्माजी और देवता गोपियों के भाग्य की सराहना करके, आनन्दपूर्वक महारास देखते हुए उन पर पुष्पवर्षा करने लगे।

ससि अबिचल उड़गन सहित बरसहि अमिअ बितान।
निसि सो भइ षट मास कइ जेहिं दिसि कवन न ध्यान॥९४॥ (ख)

महारास देख तारागणों के साथ अविचल खड़ा चन्द्रमा किरणों से रासमण्डप पर अमृत बरसा रहा है। जिससे वह रात्रि छः महीनें की हो गई, किन्तु इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया।

चौ.- मोहनिसा भइ सो जग ख्याती। तिहुँपुर हित अतिसय सुखदाती॥
एहिबिधि श्रमित भई जब भारी। कीन्ह बिहार कज्जलिउँ बारी॥

त्रिलोक को महान सुख देनेवाली वह रात्रि 'मोहरात्रि' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार नृत्य करते जब गोपियाँ अत्यन्त थक गई, तब उन्होंने प्रिय के साथ यमुना में जलविहार किया।

तहँ हरि कीन्ह सबन्हँ सिंगारा। मनिकुसुमन्ह पहिराएसि हारा॥
हरि कह गजगामिनि ससिबदना। रतिहि गरुअ मर्दिनि मृगनयना॥

वहाँ कन्हैया ने सबका श्रृङ्गार करके, उन्हें मणिपुष्पों की मालाएँ धराई और बोले- हे गजगामिनियों! हे चन्द्राननाओं और कामदेव की स्त्री रति का गर्व हरनेवाली मृगलोचनाओं!

पुरइनि गंध सरिस यह राती। नभदल त्यागि चली इठलाती॥
बिधि भय पाइ निसापति भागा। नभ तें ढरकि छितिजपट लागा॥

आकाशरूपी पुष्प-दल से उतरकर कमलिनी की सुगन्ध के समान यह रात्रि इठलाती हुई बीत चली। ब्रह्माजी के भय से यह चन्द्रमा भी आकाश से उतरकर क्षितिजपटल से जा लगा।

अब घरि माँझ दिवाकर आई। देइ कनकपट भुविहि ओढ़ाई॥
सो अब फिरहुं घरन्हँ अतुराई। मिलिहिं काल्ह पुनि एहि जघ आई॥

अब घड़ी भर में ही उदित होकर सूर्य इस पृथ्वी को अपना धूपरूपी स्वर्णिम वस्त्र औढ़ा देगा। अतः अब तुम सब शीघ्र ही अपने घर लौट जाओं, हम कल पुनः यहीं आकर मिलेंगे।

सुनि पिय बचन सकल सकुचानी। मनहुँ हास करुना परसानी॥
ग्रीषम लतिकन्हि गति जस होई। तस मलीन सुनि रोदत सोई॥

प्रिय के वचन सुन सब गोपियाँ सकुचा गई, मानों हास्य को शोक छू गया हो। ग्रीष्मऋतु में जैसे लताएँ झुलस जाती है, उनकी बात सुनकर ठीक वैसे ही संतप्त गोपियाँ रुदन करने लगी।

दोहा- **धीर देत समुझाइ पुनि हरि तिन्ह दीन्ह बिदाइ।**
गई भवन सब बिकल अति पिय जनि जात बिहाइ॥९५॥

तब भगवान ने उन्हें धैर्य बँधाकर समझाया, फिर उन्हें विदा किया। तब वे ग्वालिनें व्याकुल होकर अपने घरों को लौट गई, उनसे प्रियतम को (सहज ही) छोड़ते नहीं बनता।

चौ.- **एहिबिधि हरि प्रति पूरनमासी। ब्रजहि लुटात महासुखरासी॥**
अब सुनु नृप सो कथा सुहावन। संखचूड़ जेहिं बिधि भा पावन॥

इस प्रकार भगवान प्रत्येक पूर्णमासी पर व्रज की धरा पर महारासरूपी महासुख का कोष लुटानें लगे। हे राजन! 'शङ्खचूड़' जैसे पवित्र हुआ था, अब आप वह सुन्दर कथा सुनिये।

एक दिनु हरि बर रास तंरगा। नर्ति रहे तट गोपिन्हँ संगा॥
संखचूड़ तब तहँ चलि आवा। धनिक कंस अनुचर मन भावा॥

एक दिन कन्हैया उत्कृष्ट रास के उत्साह में भरे यमुनातट पर गोपियों के साथ नृत्य कर रहे थे। उस समय शङ्खचूड़ नामक कुबेर और कंस का प्रिय सेवक उस स्थान पर आ पहुँचा।

तेहिं देखा जब आनँदु ऐसा। जरि उठेउ तिन्हँ रुचेहुँ न कैसा॥
जैसे खल सुनि हरि गुनगाना। करहि बिरोध बाँधि दुहुँ काना॥

जब उसने यह रासानन्द देखा तो वह ईर्ष्या से जल उठा। उसे यह कैसे नहीं सुहाया; जैसे श्रीहरि का गुणानुवाद सुनकर दुष्ट मनुष्य अपने दोनों कान बन्द करके, विरोध करता है।

बैनु मगन हरि कहँ तेहिं देखा। रही गोपि सब मगन बिसेषा॥
तबहि बाँधि गोपिन्हँ चातुरि तें। खल चलेउ हरिभय आतुरि तें॥

उसने कन्हैया को मुरलीवादन में मग्न देखा और सभी गोपियाँ भी मुरली की ध्वनि में विशेष मग्न थी। तभी गोपियों को चतुराई से बाँधकर वह दुष्ट दैत्य श्रीकृष्ण के भय से उतावलीपूर्वक चल पड़ा।

दोहा- **भेद बँधान बिमुग्धन्हिहि प्रथम परा जनि जान।**
दूरि गये श्रवनन्ह परी मंद बासुरी तान॥९६॥

मुरली से अत्यन्त मुग्ध हो चुकी गोपियों को बाँधे जाने का भेद ज्ञात ही न हुआ। फिर जब असुर के द्वारा कुछ दूर ले जाए जाने के कारण उनके कानों में मुरली की ध्वनि मन्द पड़ गई,

चौ.- **ब्याकुल सब तब नयन उघारे। पुनि बिलोकि निसिचर सँग ठारे॥**
कंपित भइ सब त्रास कठोरा। जात लख्यौ न बदनु तिन्ह घोरा॥

तब सबनें व्याकुल होकर अपने नेत्र खोले और अपने साथ एक राक्षस को खड़ा देखकर वे सभी अत्यधिक भय के कारण काँपनें लगी। उनसे उस दैत्य का विकट मुख देखा नहीं जाता।

असुर बघानन सो बिकराला। रहा बपुष उन्नत दस ताला॥
नथुनन्हि चाटहिं जीहँ चलाई। गर्जहिं पुनि पुनि चख चवँकाई॥

बाघ के-से मुखवाला वह विकराल दैत्य, दस ताड़ के वृक्षों जितना ऊँचा था। वह जीभ चलाकर अपने नथुनों को चाटता और आँखे चमका-चमकाकर बार-बार गरज रहा था।

नख देखरावहि बारहि बारा। सभय गोपिन्हँ करि लागि पुकारा॥
करुनानिधि सुनि करुना ताही। धाए निसिचर पाछ रिसाही॥

वह बार-बार नख दिखा रहा था, जिससे गोपियाँ भयभीत होकर पुकार करने लगी। उस समय करुणानिधि भगवान उनका करुणकृंदन सुनकर कुपित होकर उस दैत्य के पीछे दौड़े।

लीन्ह उपारि महातरु साला। पुनि पुनि लग पचारि नंदलाला॥
उन्हँ आवत तिय तहँहिं बिहाई। उत्तर दिसि खल चला पराई॥

साल का एक विशाल वृक्ष उखाड़कर वे नन्दलाल बार-बार उसे ललकारनें लगे। उनके आते ही वह दुष्ट राक्षस उन गोपियों को वहीं छोड़कर उत्तर दिशा की ओर भाग चला।

कतहुँ न जब रच्छा भइ तेहीं। फिरा समर हित पादप लेही॥

फिर जब कहीं भी उसकी रक्षा न हो पाई, तब वह युद्धाकाङ्क्षी हो एक वृक्ष लेकर लौटा।

दोहा- **कुपित खलदवन आवतहि हना साल तरु ताहिं।**
परा मेघ सौं गरजि महि नयन रहे अँधिआहिं॥९७॥

उसके आते ही, दुष्टनिकन्दन श्रीकृष्ण ने उस पर उसी वृक्ष से प्रहार किया, तब मेघ के समान गर्जना करता हुआ वह दुष्ट भूमि पर गिर पड़ा और उसके नेत्रों में अन्धकार छा गया।

चौ.- **दृग मसकत पुनि उठा सँभारी। मारेसि हरि उर मुठिका भारी॥**
गर्जेउँ पुनि लोकप बिचलाई। सहसा हरि तब ताहिं उठाई॥

आँखें मसलते हुए पुनः खड़ा हो उसनें कन्हैया की छाती पर भयङ्कर घूँसा मारा और लोकपालों को विचलित करता हुआ गर्जने लगा। तब श्रीकृष्ण ने सहसा उसे भुजाओं पर उठाकर

महि पछारि मुसुकावन लागे। तब खल कम्पि लाग भय पागे॥
लरखरात जब पुनि फिरि आवा। हरि एकौ मुठिका तेहिं ढावा॥

पृथ्वी पर पटक दिया और मुस्कुरानें लगे। तब वह दुष्ट भय से काँपनें लगा। लड़खड़ाता हुआ जब वह पुनः आक्रमण करने लगा, तब श्रीकृष्ण ने घूँसे के एक प्रहार से उसका वध कर दिया।

पुनि सिरमनि तिन्हँ तुरत निकारी। गोपिन्हँ पहि आए असुरारी॥
उन्ह पूछी पिय के कुसलाई। हरि परितोषि सबन्हि मुसुकाई॥

फिर तुरन्त ही उसके सिर से मणि निकालकर असुरों के शत्रु वे गोपियों के पास लौट आए। गोपियों ने प्रियतम की कुशलक्षेम पूछी, तब कन्हैया ने मुस्कुराकर उन सबको शान्ति प्रदान की।

इहिबिधि एक दिनु बरषा काला। तिन्ह सँग मधुबन गै नंदलाला॥
तहाँ पुरट मनिमय अनमोला। तरु बाँधा घनस्याम हिंदोला॥

इसी प्रकार एक बार वर्षा-ऋतु पाकर नन्दलाल श्रीकृष्ण उन गोपियों के साथ मधुवन गए। वहाँ उन घनश्याम ने एक वृक्ष पर सोनें व मणियों से अलंकृत अमूल्य झूला बाँधा।

तदुप धरे तनु बहु सचु पागे। तें गोपिन्हँ सँग झूलन लागे॥

तदुपरान्त अत्यन्त आनन्द के साथ अनेक शरीर धरकर वे उन गोपियों के साथ झूलनें लगे।

पद- **घुर्मि घुर्मि घन तेहिं सवँ छाए जाहिं निरखि मुद भा गुपालहि।**
चमचमात दामिनि घन धाए दुरत प्रगटि भ्रम करहि जालहि॥
सरिता उमगि कूलथल न्हाए अरुन मृदामय नीर तालहि।
बिबिध पतिंग उड़त सचु पाए दादुर हरषि बजाव गालहि॥

उस समय घुमड़-घुमड़कर बादल छा गए, जिन्हें देखकर श्रीकृष्ण आनन्दित हो उठे। चमकती हुई बिजली, बादलों में दौड़नें लगी, जो छिपकर और प्रकट होकर जाल-सा भ्रम उत्पन्न करने लगी। नदियों ने उमड़कर तटों की भूमि को नहला दिया। मिट्टी से सरोवरों का जल लाल हो गया। अनेक पतिंगे आनन्दित से उड़ रहे हैं और मेंढक हर्षित हो गाल बजा रहे हैं।

सो.- **किए रजत पचिकारि मनिमय कनक हिंदोल बर।**
तरुन्हँ बाँधि बनवारि राध सहित हिचि लाग॥९८॥

(उस समय) वृक्षों पर मणियों व सोने से निर्मित, चाँदी से पच्चीकारी किये हुए झूले बाँधकर उन पर, बनवारी श्रीकृष्ण राधाजी के साथ झूलनें लगे।

चौ.- **हरषि पियहिं पद रति धरि भारी। एक एक करि गोपकुमारी॥**
हीचि लागि हरि देइ झकोरा। कहत बचन उन्ह सन रसु बोरा॥

प्रियतम श्रीकृष्ण के चरणों में अपार प्रेम धरे, हर्षित हुई वे गोपबालाएँ एक-एक करके, झूलनें लगी और कन्हैया उनके सन्मुख प्रेमयुक्त वचन कहते हुए, उन्हें झूला देने लगे।

तदुप गोपि सब क्रम क्रम आई। हरषि मोहनहिं लागि हिंचाई॥

कबहुँ राधिकहिं सँग बैठाई। झूलत उन्नत चढ़हिं कन्हाई॥

तदुपरान्त समस्त गोपियाँ भी क्रम से आकर हर्षपूर्वक मनमोहन को झुलाने लगी। कभी तो राधाजी को अपने साथ बैठाकर झूलते हुए भगवान श्रीकृष्ण बहुत ऊँचे पहुँच जाते हैं।

किन्तु होइ भय राधहिं जबहीं। हिचकहिं मंद हाँक तें तबहीं॥
कबहुँ बेगबस राधहिं बेनी। सिथिल होइ श्रव पुष्पन्हि श्रेनी॥

किन्तु जब राधा को भय होता है, तब वे झूला धीरे-धीरे हाँकते हैं। कभी झूलते हुए वेगाधिक्य से राधा की वेणी शिथिल हो जाती थी, जिससे उसमें बँधी पुष्पलड़ियाँ छूट पड़ती थी।

झूलत बिच बिच घन श्रव बारी। मुदित भींजि लग गोपकुमारी॥
पुनि मधुमय रव गाइ मलारा। नाचहिं जोरि बरूथ अपारा॥

झूलते हुए बीच-बीच में मेघ जल बरषानें लगते थे, तब गोपियाँ आनन्दित हो भीगनें लगती थी। फिर मधुरवाणी से मल्हारराग गाते हुए, विशाल समूह बनाकर वे नृत्य करने लगती थी।

ऐहिंभाँति प्रति रितु पिय आपन। संग किए मुद लहँ सब पावन॥

इस प्रकार प्रत्येक ऋतु में अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ गोपियाँ पवित्र आनन्द पाती थी।

दोहा- **भूपति बारक मोदमय आएहुँ फागुन मास।**
सीत मंदि तपि लाग रबि फूले बिपिन पलास॥९९॥

हे परीक्षित्! एक बार आनन्द से पूर्ण फागुन का महिना आया, जिसमें शीत का प्रभाव कम हो गया, सूर्यदेव तपनें लगे और वन में पलाश के वृक्ष पुष्पित हो गए।

चौ.- **लखि अस सखि सँग कीतिकुमारी। जाइ हरिहिं सन लाग उचारी॥**
स्याम सुहावन फागुन आवा। बिपिन रसाल पलास सुहावा॥

यह देख सखियों के साथ राधाजी, श्रीकृष्ण के सन्मुख जाकर कहने लगी- हे घनश्याम! फागुन का सुहावना माह आ चुका है, जिससे वन में आम व पलाश फल-फूल गए हैं।

देखु सबनि दिसि झर अनुरागा। हम खेलन चह तव सँग फागा॥
प्रथम संग करि सख समुदाई। खेलु फाग बरषानहिं आई॥

देखो! सब ओर से प्रेम झर रहा है, (इस अवसर पर) हम सब तुम्हारे साथ होली खेलना चाहती हैं। पहले अपने सखा-समुदाय के साथ तुम हमारे गाँव बरसानें में आकर फाग खेलो।

दूसर दिनु सब सखिन्हँ सँघाता। मैं तव गाँउ आउँ मुददाता॥
ऐहिंभाँति हम खेलिहिं फागा। दुहुँ दिसि होइ परम अनुरागा॥

फिर हे आनन्ददाता प्रियतम! दूसरे दिन अपनी समस्त सखियों के साथ, मैं भी तुम्हारे गाँव आऊँगी। इस प्रकार हम मिलकर होली खेलेंगे और दोनों-ही पक्षों में महान प्रेम उत्पन्न होगा।

तब उत्तम कहि राजिवनैना। अति सिहान राधहिं एहि बैना॥
तदुप प्रात भए सखन्हँ बोलाई। रंग जोरि बहुजाति कन्हाई॥

तब कमलनयन भगवान श्रीकृष्ण ने ठीक है, इस प्रकार कहकर राधाजी की इस बात को अत्यन्त सराहा। तदुपरान्त सवेरे सखाओं को बुलाकर, अनेक प्रकार के रङ्ग लेकर कन्हैया,

किलकत उद्धम करत महाना। खेलन फाग चले बरसाना॥
उहाँ गोपि उन्ह आवत जानी। प्रेमातुर परबहिं उलटानी॥

किलकारी मारकर अत्यधिक उत्पात मचाते हुए, फाग खेलनें के निमित्त बरसाना चले। उधर गोपियाँ भी उन्हें आते हुए जानकर प्रेमातुर होकर होली के उस पर्व में उमड़ पड़ी।

बहुतक चढ़ी अटारिन्हँ ऊपर। बीथि हाट पग बनै कत न धर॥

कई भवनों की अटारियों पर चढ़ गई, गलियों, हाटों आदि कहीं भी पैर नहीं धरते बनता।

छन्द- **पग धरत बनहिं न भीर भइ अति भारि स्यामहि दरसना।**
सनमुख परहिं जे गोपि तिन्ह मुख पोत कन्हिआ रँग घना॥
जे रहि अटारिन्हँ ढार तहहिं तें इत्र अबिर गुलालुआ।
तनु नील हरि कर भा अरुन लखि गोपि घन आनँद छुआ॥

कन्हैया के दर्शन के लिये इतनी भीड़ हो गई कि कहीं भी पैर नहीं धरते बनता। उस समय जो भी गोपी सन्मुख पड़ जाती, श्रीकृष्ण उसके मुख पर बहुत-सा रङ्ग लगा देते थे। जो गोपियाँ अटारियों पर थी, वहीं से इत्र, अबीर और गुलाल उढ़ेल देती थी। जिससे कन्हैया के शरीर का नीला वर्ण लाल हो गया और यह देखकर गोपियों को अत्यन्त आनन्द हुआ।

सो.- **हठि पोते बहु रंग हरि बरषानहिं बिनितान्हँ।**
तेपि धाइ सब संग सखन्हँ सहित पिय कहँ रँजेहुँ॥१००॥

उस समय भगवान श्रीकृष्ण ने बरसाना की युवतियों को हठपूर्वक बहुत-से रङ्ग पोत दिये। तब उन्होंने भी दौड़कर अपने प्रियतम कन्हैया को उनके समस्त सखाओं सहित रङ्ग दिया।

चौ.- **नटखट तदुप राध पहि आए। पुनि उन्ह लाग गुलाल लगाए॥**
देखि दाव निज हठि अनुरागे। उन्ह नट बेषु धरावन लागे॥

तदुपरान्त वे नटखट राधाजी के पास आए और उन्हें गुलाल लगानें लगे। फिर अपना दाव लगा जानकर हठी कन्हैया प्रेम में मग्न हो गए और उन्हें अपना नटवेष धारण करवानें लगे।

प्रथम त आपन मुकुट उतारी। राधहिं सिरु सजान बनवारी॥
कटि कसि पिअर बसन बरजोरी। तामहँ बाँसुरि खोंसि बहोरी॥

उन बनवारी ने पहले तो अपना मुकुट उतार लिया और राधाजी के सिर पर सजा दिया। फिर उनकी कमर में बलपूर्वक अपना पीताम्बर कस दिया, फिर उसमें अपनी मुरली खोंस दी।

ऐहिंभाँति एक एक अलँकारा। हरि राधहिं पहिरान उतारा॥
तदुप मेलि कर लकुटि काँमरी। छबि उन्ह सतत लगे नयनन्हि भरि॥

इस प्रकार कन्हैया ने एक-एक अलङ्कार उतारकर राधाजी को पहना दिये। तदुपरान्त उनके हाथ में लकुटी व कम्बल थमा दी, फिर उनकी छवि को वे निरन्तर अपने नेत्रों में भरनें लगे।

लखि राधहिं अस नटवर बेषा। सख करि लग उपहास बिसेषा॥
तारि पीटि हँसि हँसि पुनि नाचा। अतिसय उद्धम सब मिलि माचा॥

राधाजी के इस नटवेष को देखकर वहाँ उपस्थित सखागण उनका अत्यधिक उपहास करने लगे। फिर ताली बजाकर हँस-हँसकर नाचते हुए उन सबने अत्यधिक उत्पात मचा दिया।

लखि अस राधा परम खिसानी। जान देहुँ कहि लगि मृदु बानी॥

यह देख राधा अत्यन्त लजा गई और श्रीकृष्ण से मधुरवाणी में बोली कि मुझे जाने दो।

दोहा- ऐहिंभाँति दूसर दिवस राधा सखिन्ह बटोरि।
नंदगाँउ हित अतुरतइ निकसी खेलन होरि॥१०१॥

इसी प्रकार दूसरे दिन सखियों के समुदाय को साथ लेकर राधाजी नन्दगाँव में जाकर होली खेलनें के लिये शीघ्रतापूर्वक निकली।

चौ.- तेहिं सवँ ग्वालन्हँ बेषु बनाई। ग्वालिनि दुइ कन्हिआ पहि आई॥
पुनि कह कछुकहिं सवँ बनवारी। सखि समुदाय संग करि भारी॥

उसी समय ग्वालों का वेष बनाकर दो गोपियाँ कन्हैया के पास आई और कहने लगी कि हे बनवारी! कुछ ही समय में सखियों के बड़े विशाल समूह को साथ लेकर

राधा आइ रही सरि तीरा। सुनि रसबस हरि भए अधीरा॥
कह सचेत करि सखन्हँ कन्हाई। सावधान होइ जैउब भाई॥

राधा यमुनाजी के तट पर आ रही है, यह सुनते ही प्रेम के वश होकर कन्हैया अधीर हो उठे। फिर उन कन्हैया ने अपने सखाओं को सचेत करके कहा- हे भाईयों! सावधान हो जाओ!

घर बसि लहेहुँ पराभव जेई। सदल घात हित आवहि तेई॥
अब हम सरि तट पहिलेहिं जाई। दुरि उन्ह चालि देब उलटाई॥

जिसने घर बैठे पराजय पाई थी, वही राधा अपने सखिसमूह के साथ (हम पर) प्रतिघात करने आ रही है। अब हम सब पहले ही यमुनातट जाकर छिप जाऐंगे और जो चाल उन्होंने चली है, उलट देंगे।

अस कहि सख समूह करि भारी। सरि तट अए सचुप बनवारी॥
देखि लतामंडप गम्भीरा। तुरत धाइ कन्हँ दुरे सधीरा॥

ऐसा कहकर सखाओं का विशाल समूह साथ लिये वे बनवारी चुपचाप यमुनातट पर आ गए। फिर वहाँ लताओं के सघन समूह देखकर वे कन्हैया तुरन्त दौड़कर धैर्यपूर्वक छिप गए।

कछुकहिं दूर सोधि बर थाना। दुरे बहोरि सखा सब आना॥
बिदित रहेहुँ पै उन्ह यह नाहीं। राधा रचेहुँ प्रपंच अथाहीं॥

फिर छिपनें के लिये उत्तम स्थान देखकर अन्य समस्त सखागण भी उसमें छिप गए। किन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि राधाजी ने बड़ा भारी कपट रचा था,

जे करि गोपि समूह गभीरा। प्रथमहिं तहँ दुरि बैठि सधीरा॥
पुनि जब लखेहुँ अए झखनैना। सखिन्हँ कीन्ह उन्ह घाइहिं सैना॥

जो सखियों के विशाल समूह के साथ धैर्यपूर्वक, पहले ही वहाँ छिपी बैठी थी। फिर जब देखा कि मीनाक्ष श्रीकृष्ण आ चुके हैं, तब उन्होंने सखियों को धावा करने का सङ्केत कर दिया।

नृप कान्हहिं देखत तेहिं काला। प्रगटेहुँ तहँ सखि जूह बिसाला॥
जेहिं खदेरि ग्वालन्हँ बरिआई। कान्हहिं सहसा घेरेहुँ धाई॥

हे परीक्षित्! उस समय श्रीकृष्ण के देखते हुए वहाँ गोपियों का विशाल समूह प्रकट हो गया, जिसनें समस्त गोपों को बलपूर्वक खदेड़ दिया और दौड़कर सहसा कन्हैया को घेर लिया।

अस अवलोकि परम अनुरागे। मनहिं कान्हँ अस सोचन लागे॥

यह देख कन्हैया प्रेम में अत्यन्त मग्न हो गए और मन-ही मन इस प्रकार सोचनें लगे कि,

क.- **ऊँट आइ फँसौ आज गिरिहि तराइ गुरु, चातुरि मैं करि इन्ह कान काटै मोर है।**
अब त अहहिं हित ठाढ़ु चुपचापही मैं, देअँहि बचावै मोहि यह घेरौ घोर है॥
काह करुँ भजु कत काह करि छुटि पाऊँ, चोर पाए महाचोर सोचे दधिचोर है।
देअँ करै नटखटता बिसार गोपि मम, सोच अस कान्हँ स्यान करत न सोर है॥

आज तो ऊँट पर्वत की विशाल तराई में आ फँसा है, मैंने चतुराई तो की, किन्तु इन्होंने मेरे भी कान काट लिये। अब मेरे लिये अच्छा यही होगा कि मैं चुपचाप ही खड़ा रहूँ। विधाता ही मुझे बचा सकते हैं, क्योंकि ये घेरा बड़ा ही जटिल है। क्या करूँ, कहाँ भागूँ, ऐसा क्या कर लूँ कि मैं इन गोपियों से बच जाऊँ? (उस समय) दहीं चुरानेंवाले वे श्रीकृष्ण सोचनें लगे कि मुझ चोर ने आज अपने से भी बड़े चोर पाए हैं। विधाता करे कि ये गोपियाँ मेरी (सारी) नटखटता भूल जायँ, इस प्रकार सोचते हुए चतुर कन्हैया बिना कोई शोर मचाये चुपचाप खड़े हैं।

दोहा- **बिबस देखि उन्ह गोपि सब किलकि सोर करि लागि।**
भजि चलिबे तुअ निपुन अति तब चलते किन भागि॥१०२॥ (क)

उन्हें इस प्रकार विवश हुआ देख सब गोपियाँ किलकारी मारकर कोलाहल करने लगी और कहने लगी- अरे कन्हैया! भाग चलनें में तो तुम बड़े चतुर हो, फिर अब क्यों नहीं भाग जाते?

तारि पीटि पुनि पुनि सबहि लगि बहुभाँति खिजाइ।
झेंपत किन्तु रहे चुपहिं गोपिन्हँ मध्य कन्हाइ॥१०२॥ (ख)

फिर तालियाँ बजाकर वे सब उन्हें अनेक प्रकार से चिढ़ानें लगी, किन्तु उन गोपियों के बीच खड़े कन्हैया लज्जायुक्त हँसी लिये चुपचाप ही खड़े रहे।

चौ.- **तदुप गोपि कछु आनिहुँ दामा। हठि बाँधेहुँ चपल सुखधामा॥**
बहुरि राध सँग साधन नाना। गहि सब गोपनि मुदित महाना॥

तदुपरान्त कुछ गोपियाँ रस्सी ले आई और सुख के उन अस्थिर धाम को हठपूर्वक उससे बाँध दिया। फिर राधाजी के साथ महान आनन्द प्राप्त, वे गोपियाँ अनेक प्रकार के साधन लेकर

प्रकट बिंग्य करि हिय अनुरागी। तिय सौं पियहिं सिंगारन लागी॥
पूरब बसन चोरि कन्हिआ रे। तुअ नचान अति नाच हमारे॥

प्रकट में व्यंग्य करते हुए मन में प्रेममग्न होकर अपने प्रियतम श्रीकृष्ण का स्त्री के समान शृङ्गार करने लगी। कन्हैया रे! पहले हमारे वस्त्रों को चुराकर तुमनें हमें बहुत नाच नचाया था।

प्रथम रास हित हमहिं बोलाई। पाछे तजि बन बहुत सताई॥

लाइ हिये कर पाछ मरोरी। घटन्हँ रहे बड़ दिनु तें फोरी॥

पहले तो रास के लिये तुमनें हमें बुला लिया, फिर बाद में हमें वन ही में त्यागकर बहुत सताया। हमें हृदय से लगाकर बाद में बहुत दिनों से हमारे घड़ों को फोड़ते आये हो।

बहुत भाँति तुअ हमहिं सतावा। भलिबिधि तहिं अज देब सिखावा॥
अस कहि सारि घाघरौ बोली। हठि पहिरान सहित उन्ह चोली॥

तुमनें बहुत प्रकार से हमें सताया है, आज तुम्हें भली प्रकार शिक्षा देंगी। ऐसा कहकर उन्होंने साड़ी व घाघरा बुलवाकर चोली सहित हठपूर्वक उन्हें पहना दिया।

सिरु दुइ बेनि गूथि पुनि पाछे। तहँ चम्पाकलि गुच्छन्हि गाछे॥
कज्जल पोति बहोरि मयंका। श्रवन उभय धरान ताटंका॥

उनके शीश पर वेणी गूँथकर फिर बाद में उसमें चम्पा की कलियों के गुच्छे लगा दिये। फिर उनके नेत्रों में काजल लगाकर दोनों कानों में कुण्डल पहना दिये।

नकबेसर हठि नाक धराई। तदुप मुकुर उन्ह लाग देखाई॥
सखि एहि दसा उचित कपटी की। कहि गर माल भाल दइ टीकी॥

उनकी नाक में नकबेसर पहनाकर वे उन्हें दर्पण दिखाने लगी व बोली- हे सखियों! कपटी की यही दशा उचित है। यह कहकर उन्होंने उनके कण्ठ में माला व ललाट पर बिन्दी लगा दी।

दसा देखि अस तेहिं सवँ स्यामहिं। गोपि लहेहुँ मनहुँ सुखधामहिं॥
देखि बंधु कर नारि बनाऊ। खिलखि सखन्हँ सँग भागे दाऊ॥

उस समय घनश्याम की ऐसी दशा देखकर गोपियों ने मानों सुख का धाम पा लिया। अपने भाई का स्त्रीवेष देखकर बलदाऊ सखाओं के साथ खिलखिलाकर हँसे और भाग छूटे।

तदुप भरे कर राध गुलालहिं। रंगे उभय कपोल गोपालहिं॥
पाछ टूटि परि जनु सब गोपी। लगि पिय वदनु बरन बहु रोपी॥

तदुपरान्त राधाजी ने हाथों में गुलाल लेकर गोपाल के दोनों कपोल रङ्ग दिये। फिर उनके पश्चात् सभी गोपियाँ मानों टूट ही पड़ी और अपने प्रिय के मुख को अनेक रङ्गों से पोतनें लगी।

दोहा- **रंगि भाँति एहि कान्हँ कह हठि लै चलि बिच गाम।**
दलान्तरित सख मौजि सँग करत चले कुहराम॥१०३॥

इस प्रकार कन्हैया को रँगकर वे सब उन्हें जबरदस्ती गाँव के मध्य ले चली। उस समय कन्हैया के वे सखा जो राधाजी के दल के साथ हो गए थे, हल्ला मचाते हुए उनके साथ चले।

चौ.- **दलु पुनि ज्योंहिं गाँउ महुँ पैठा। त्योंहिं लाजबस कन्हँ मुख ऐंठा॥**
सुबलादिक सखगन तेहिं काला। हरिहिं खिजाइ लाग दै ताला॥

फिर वह दल जैसे ही गाँव में प्रविष्ट हुआ, त्योंही लज्जा के कारण कन्हैया का मुख ऐंठ गया। उस समय सुबल आदि कृष्णसखा ताली बजाकर कन्हैया को चिढ़ानें लगे।

बाजत सघन झाँझ ढप ढोला। किलकि नाचि लग तेइ सख डोला॥
कुंजबिहारिहिं एहिंबिधि बाँधे। आई सदलु नंदगृह राधे॥

झाँझ, ढपली और ढोल सघनध्वनि से बज रहे थे और वे सखा ही किलकारी मारकर उस जुलूस में नाचने लगे। कुञ्जबिहारी को इस प्रकार बाँधे राधा सखियों के साथ नन्दभवन पहुँची।

मैयहिं कहि लगि पुनि एहिंभाँती। सुत तुम्हार अह अति उतपाती॥
जब हम जाहिं सरित जल आने। पाछ आव ए सखन्हँ जुड़ानें॥

फिर वे मैय्या यशोदा को इस प्रकार कहने लगी- हे मैय्या! तुम्हारा पुत्र बड़ा उत्पाती है। जब हम जल लाने यमुना पर जाती हैं, तब सखाओं के साथ ये भी पीछे-पीछे आ जाते हैं।

तहँ सताहिं हमरे घट फोरी। चलहिं दौरि पुनि हाथ मरोरी॥
सपरेहुँ आजु बिगत बहु बारा। सो हम पाछिल घात निकारा॥

फिर वहाँ सताकर हमारे घड़े फोड़कर ये हमारे हाथ मरोड़कर भाग चलते हैं। बहुत दिनों के पश्चात् ये आज हाथ चढ़े हैं। इसलिये हमनें पूर्व में घटित हुई बातों का बदला लिया है।

सुनि अस पुनि कन्हँ दसा निहारी। हँसि परि ठहकि मातु दै तारी॥

यह सुनकर व कन्हैया की दशा देखकर मैय्या ताली बजाते हुए ठहाका मारकर हँस पड़ी।

छन्द- **दइ तारि मैय्या बिहँसि सहसा कान्हँ अति सकुचाएहूँ।**
लग झेंपि गति उन्ह नंद लखि आनंद अतिसय पाएहूँ॥
यह चरित निरमल कीन्ह हरि निज भगत सुख बर कारने।
तातें कहहि सुन ऐहि जे निरमल हृदय उन्ह कर बनै॥

ताली बजाकर मैय्या यशोदाजी अचानक ही हँस पड़ी, यह देखकर कन्हैया अत्यन्त सकुचा गए और झेंपनें लगे। उनकी ऐसी दशा देखकर नन्दरायजी को भी अत्यन्त सुख प्राप्त हुआ। भगवान श्रीकृष्ण ने यह पवित्र लीला अपने भक्तों के आनन्दरूपी उत्तम कारण को पाकर की है। इस चरित्र को जो लोग भी गाते-सुनते हैं, उनके हृदय निर्मल हो जाते हैं।

सो.- **रासादिक बर पेमुमय अमल चरित हरि केर।**
प्रेयसि प्रति कामिन्हँ हृदय आदरु ढार घनेर॥१०४॥

रासलीला आदि भगवान श्रीकृष्ण के जितनें भी निर्मल प्रेममय चरित्र हैं, वे प्रेमिकाओं के प्रति प्रेमियों के हृदय में महान आदर उत्पन्न करे।

मासपारायण बीसवाँ बिश्राम

श्री गणेशाय नमः

श्रीकृष्णचरितमानस

चतुर्थ सोपान

मथुराकाण्ड

चौ.- एक दिनु सभउँ सचिव मत पाई। कंस बृषभ कहँ लीन्ह बोलाई॥
पुनि कह भूधर सरिस सरीरा। सुभट माँझ तैं परम गभीरा॥

एक बार सभा में मन्त्रियों की मन्त्रणा पाकर कंस ने वृषभासुर को बुलवा लिया और उससे बोला- हे पर्वत के समान शरीरवाले अरिष्टासुर! तुम उत्तम योद्धाओं में भी महान बलशाली हो।

हतहुँ जाइ ब्रज जदुकुल चंदा। जातें लहुँ बिश्राम अनंदा॥
सुनि अस धीर देत बहुभाँती। चला पापनिधि सुर आराती॥

इसलिये तुम व्रज जाकर उस कृष्ण का वध कर दो, जो यदुवंश के निमित्त चन्द्रस्वरूप है; ताकि मैं आनन्द और शान्ति पा सकूँ। ऐसा सुनकर, उसे धैर्य बँधाकर पाप की राशि, वह देवशत्रु दैत्य चला।

बपुष महीधर लखि पर तासू। जनु दुरभाग केर अटहासू॥
लखि प्रदोस धावा ब्रज ओरा। खोजत भा लच्छहि चहुँओरा॥

उसका शरीर पर्वत-सा जान पड़ता था, मानों दुर्भाग्य का भयानक अट्टहास हो। संध्या का समय देख, वह व्रज की ओर दौड़ा और वहाँ चारों ओर अपने लक्ष्य कन्हैया को खोजनें लगा।

पद प्रतारि महि धूरि उड़ाई। पात पात ब्रज लाग कँपाई॥
लखतहि गोप डकरि रव घोरा। करि बिषान धावा उन्ह ओरा॥

अपने खुरों से भूमि को पीड़ित करके, धूल उड़ाता हुआ वह, व्रज के पत्ते-पत्ते को कम्पायमान करने लगा। ग्वालों को देखते ही घोर शब्द करता हुआ वह उनकी ओर सींग तानकर दौड़ा।

आवत लखि तिन्ह काल समाना। भजि छूटे सब अति भय माना॥

यम के समान उसे अपनी ओर आता देखकर, सभी अत्यन्त भयभीत होकर भाग छूटे।

दोहा- ग्वाल बाल नर नारि सब जहँ तहँ करइ पुकार।
सभय भाजि चलि सुरभि लखि बिहँसे तारनहार॥१॥

ग्वालबाल और समस्त गोप-गोपियाँ जहाँ-तहाँ पुकार करने लगे। गायें भी भयभीत हो भाग चली; यह देखकर तारणहार श्रीकृष्ण (दैत्य को पहचानकर) मुस्कुरा दिये।

चौ.- बहुरि सहज निसिचर सन आई। डाँटि डपटि कहि लाग कन्हाई॥
रे सठ लरै मोहि तें डरही। जे अबलन्ह हिय अस भय करही॥

फिर वे सहज ही में दैत्य के सन्मुख आए और उसे डाँटकर इस प्रकार कहने लगे- रे शठ! क्या तू मुझसे युद्ध करने से डरता है, जो इस प्रकार इन निर्बलों के मन में भय उत्पन्न कर रहा है?

सुनि अरिष्ट अस परम रिसावा। अबहि जनाउँ कहत अस धावा॥
अघसूदन तिन्हँ आवत पाई। कटि कसि लाग ताहिं उकसाई॥

यह सुनते-ही अरिष्टासुर अत्यन्त कुपित हो उठा और अभी बताता हूँ, इस प्रकार कहता हुआ उनकी ओर दौड़ा। अघ के शत्रु श्रीकृष्ण ने जब उसे आते हुए देखा, तब वे अपनी कमर कसकर उसे उकसानें लगे।

बृष चहेहुं उन्ह सींग उठाई। पै हरि निफल कीन्हिं तिन्ह घाई॥
पुनि बिषान धरि पाछे मेला। मनु अहि तें खगपति कृत खेला॥

वृषभासुर ने उन्हें सींगों पर उठाना चाहा, किन्तु कन्हैया ने उसके इस घात को निष्फल कर दिया। फिर उसके सींग पकड़कर, उन्होंने उसे पीछे पीछे धकेल दिया, मानों गरुड़जी ने किसी सर्प से खेल किया हो।

दनुज जतन कीन्हें बहुभाँती। नैंकु लटै न दनुज आराती॥
खल तब कीन्हेंसि चरन प्रहारा। जिन्हँ धरि हरि तिन्ह दूर पबारा॥

उस दैत्य ने अनेक यत्न किये, किन्तु दैत्यनिकन्दन तनिक भी पीछे न हटे। तब उस दुष्ट ने अपने पैरों से उन पर प्रहार किया, किन्तु कन्हैया ने उन्हीं पैरों से पकड़कर, उसे दूर फेंक दिया।

पुनि उठि छल बल कीन्हँ अपारा। तदपि न भा कछु अरिहि बिगारा॥
अस बिलोकि सठ परम खिसाई। गोपन्हँ त्रासन लागेहुं धाई॥

अरिष्ट ने पुनः उठकर बहुत छल बल किया, फिर भी उससे शत्रु का कुछ अहित न बन पड़ा। यह देखकर वह मूर्ख अत्यन्त लज्जित हो गया और दौड़कर गोपों को पीड़ित करने लगा।

कन्ह कह बिहँसि ताहि उकसाई। रोंच मारजरि खंब खिसाई॥
सुनत फिरा सठ होत अँगारा। कीन्हेंसि हरि हिय चरन प्रहारा॥

तब कन्हैया ने हँसते हुए उसे उकसाकर कहा- खिसियानी बिल्ली खम्भा नोंचे। यह सुनते-ही वह मूर्ख अत्यन्त कुपित होकर लौटा और उसनें श्रीकृष्ण की छाती पर अपने अगले पैरों से प्रहार किया।

तब सोइ पद धरि तिन्हँ असुरारी। करि प्रकोप महि दीन्ह पछारी॥

तब श्रीकृष्ण ने उन्हीं पैरों से पकड़कर, उसे अत्यधिक क्रोध करके, पृथ्वी पर पछाड़ दिया।

दोहा- **एहिंभाँति हति खलहि हरि गए राधउँ समीप।**
कीन्हि सबन्हँ जयकार लखि बृष भा मुक्त महीप॥२॥

इस प्रकार अरिष्टासुर का वध करके, श्रीकृष्ण राधाजी के पास गए। हे परीक्षित्! यह देखकर सबनें श्रीकृष्ण की जय-जयकार की और अरिष्टासुर नामक वह असुर मुक्त हो गया।

चौ.- **इत पिय कर गहि अस कह राधा। बृषभहि बधि अति भा अपराधा॥**
पिय अब करु तैं तीरथबासा। जातें होइ तोर अघ नासा॥

इधर प्रियतम का हाथ पकड़कर राधाजी ने कहा कि इस बैल का वध करके, आपसे महान अपराध बन पड़ा है। अतः हे प्रिय! अब आप तीर्थ सेवन कीजिये, जिससे कि आपको लगा हुआ यह पाप छूट जाय।

सोच न करु खगलोचनवारी। इहहिं लेब तीरथन्हँ हँकारी॥
अस कहि हरि दुइ कुंड बनाए। उन्ह आयसु सब तीरथ आए॥

तब उन्होंने कहा- हे पक्षि के-से (सुन्दर और दूरदर्शी) नेत्रोंवाली! तुम चिन्ता न करो। मैं तीर्थों को यहीं बुला लूँगा। यह कहकर उन्होंने दो कुण्ड बनाए और उनकी आज्ञा से समस्त तीर्थ वहीं आ गए।

पुनि उन्हँ जगपति पृह अनुहारी। कुंडन्हि ढारेउ निज निज बारी॥
मज्जि सलिल सो तदुप बृषारी। भए पापगत परम सुखारी॥

फिर उन्होंने जगत्पति श्रीकृष्ण की इच्छानुसार, कुण्डों में अपना-अपना जल डाल दिया। तदुपरान्त उस जल में स्नान करके, वृषभासुर के शत्रु श्रीकृष्ण पापमुक्त होकर, अत्यन्त सुखी हुए।

राधाकृष्न नाउँ पृहदाता। कुंड भए सो जग प्रख्याता॥

मनोकामनाओं की सिद्धि करनेवाले वे कुण्ड, संसार में 'राधा-कुण्ड' और 'श्रीकृष्ण-कुण्ड' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बृष गति इहाँ सुनत निज काना। भयउँ कंस हिय सोच महाना॥
सभा देवरिषि आए तबहीं। जिन्हँ आदरेहुँ कंस सँग सबहीं॥

इधर वृषभासुर का वध हुआ अपने कानों से सुनकर कंस के मन में अत्यधिक चिन्ता होने लगी। तभी कंस की सभा में देवर्षि नारदजी पधारे, जिनका कंस सहित सभी ने सत्कार किया।

दोहा- **मुनि कह मर्दे तोर चर पहिचाने तुम ताहिं।**
तेइ आठउँ सुत देअकिहिं तुम्हहिं चहै जे खाहिं॥३॥

(उस समय) नारदजी ने कंस से कहा कि जिन्होंने तुम्हारे सेवकों को मारा है, क्या तुमने उन्हें पहचाना? वही तो देवकी का आठवाँ पुत्र है, जो तुम्हारा भी वध करना चाहता है।

चौ.- **उपजा बिषम राति सो जबहीं। बसुद्यौ पठवा गोकुल तबहीं॥**
पुनि तहँ तें जसुदहि सुति आनी। उन्ह तिहि निज कहि दइ तव पानी॥

उस भयानक रात्रि में जब वह उत्पन्न हुआ था, तभी वसुदेव ने उसे गोकुल पहुँचा दिया था। फिर वहाँ से यशोदा की पुत्री लाकर, उन्होंने उसे ही अपनी पुत्री बताकर, तुम्हारे हाथों में दे दी थी।

बल बहोर सप्तम सुत तासू। माया कीन्हँ अकरषन जासू॥
रोहिनि गरभु जाइ पुनि थापा। बैठि रहे तब तुम करि दापा॥

बलराम उनका सातवाँ पुत्र है, जिसे योगमाया ने देवकी के गर्भ से खींच लिया था और जाकर उसे रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया था; उस समय तुम दर्प करके, बैठे गए थे।

तव गुर गुर जोधा उन्हँ मारे। अब चह सछल तोहिं संघारे॥

मुनि बच तासु उघारेसि काना। बसुद्यौ पर तें परम रिसाना॥

उन्होंने तुम्हारे प्रमुख-प्रमुख असुर योद्धाओं को मार डाला और अब तुम्हें भी कपटपूर्वक मारना चाहते हैं। नारदजी की बातों से उसके कान खुल गए; तब वह वसुदेवजी पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ।

पुनि असि गहि उन्ह मारन धावा। नारद माय ताहि उरुझावा॥
बध बिचार तब तासु बिसारी। सतिय दीन्ह उन्ह तमगृह डारी॥

फिर खड्ग लेकर उन्हें मारनें दौड़ा, किन्तु नारदजी ने अपनी बातों की माया से उसे उलझा लिया। तब वसुदेवजी के वध का विचार त्यागकर, उसने उन्हें देवकीजी सहित बन्दीगृह में डाल दिया।

दोहा- **तदुप गयउ केसिहि भवन हृदयँ परम अकुलान।**
राम स्याम बल बृषभ बध कह्यो तासु समुहान॥४॥

तदुपरान्त अपने हृदय में अत्यधिक अकुलाया हुआ वह केशी (नामक दैत्य) के घर गया और उसके समक्ष उसने बलराम व श्रीकृष्ण के पराक्रम व अरिष्ट के वध की बात कह सुनाई।

चौ.- **सुनि तिन्हँ बच करि निज भुजगाना। चला काल प्रेरित अघखाना॥**
तिन्हँ जातहि सचिवन्हँ सन जाई। कंस लाग कहि अस संकाई॥

उसके वचन सुनकर, पापराशि केशी अपने बाहुबल का बखान करता हुआ, कालप्रेरित हो व्रज को चला। उसके जाते ही कंस मन्त्रियों के पास गया और आशङ्कित हुआ-सा इस प्रकार बोला-

भयउँ जे केसिहि कर संघारा। करिअ काह तब करहु बिचारा॥
तब चाँडूर कहहिं सिरु नाई। सुनु मम यह मत निसिचरराई॥

(हे सभासदों!) "यदि केशी का भी वध हो गया, तब क्या किया जाना चाहिये"; इस बात पर विचार करो। तब चाणूर ने सिर नवाँकर कहा- हे दैत्यराज सुनिये! मेरा मत यह है कि,

करिअ बेगि धनुजग्य उछाहा। एहि मिस बोलि लेहुँ ब्रजनाहा॥
उन्हँ सँग मख देखन दुहुँ भाई। लेहुँ जतन करि इहाँ बोलाई॥

आप धनुर्यज्ञ का उत्सव आयोजित कीजिये और इसी बहानें नन्द को यहाँ बुलवा लीजिये। उन्हीं के साथ यत्नपूर्वक उन दोनों भाईयों को भी यज्ञ देखने के लिये, यहाँ बुलवा लीजिये।

इहँ आए तव भट बलवाना। मर्दिहिं तिन्ह गहि मसक समाना॥
मत चाँडूर लाग तेहिं नीका। जदपि कुसल तिन्ह सबबिधि फीका॥

यहाँ आने पर आपके बलवान योद्धा, उनको पकड़कर किसी मच्छर के समान मसल देंगे। चाणूर की यह सम्मति उसे प्रिय लगी; यद्यपि वह उसकी कुशलता के लिये सब प्रकार से अर्थहीन थी।

दोहा- **कार्तिक सुदि नौमी तिथि लीन्हँ धनुषमख सोधि।**
रंगभूमि बिरचाइ कह चँडुरहि बिबुध बिरोधि॥५॥

देवशत्रु कंश ने कार्तिक माह के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को धनुर्यज्ञ का उत्सव निश्चित करवाकर, रङ्गभूमि निर्मित करवा ली और चाणूर से बोला-

चौ.- होमभूमि करु मल्ल अखारा। जानि पर न जिन्हँ निकसन द्वारा॥
तिन्हँ सनमुख रचु उच्च मचाना। अगम जे भूधर सिखर समाना॥

यज्ञभूमि पर मल्लों के लिये एक ऐसा अखाड़ा बनवाओ, जिससे निकलनें का द्वार दिखाई ही न पड़े। फिर उसी के सन्मुख एक ऊँचे मञ्च का निर्माण कराओ, जो किसी पर्वतशिखर-सा दुर्गम हो।

हर पिनाक धरि प्रथमहि द्वारा। पुर महुँ अस करि देहुँ प्रचारा॥
नौमी तिथि इहँ धनुमख होई। जिन्हँ देखिबे आव सब कोई॥

उस रङ्गभूमि के प्रथम द्वार पर शिवजी का धनुष रखवाकर; सम्पूर्ण नगर में यह बात प्रचारित कर दो कि नवमी तिथि को यहाँ धनुष-यज्ञ होगा, जिसे देखने के लिये हर कोई पधारे।

आइ करिहिं जब दुहुँ धनु पूजा। हतिहिं धनुष जामिक करि जूझा॥
जे तें प्रथम द्वार लहँ पारा। मर्दिहिं गज तिन्ह दूसर द्वारा॥

जब वे दोनों आकर धनुष का पूजन करेंगे, तभी वहाँ उपस्थित धनुष के रक्षक उन्हें युद्ध में मार डालेंगे और यदि वे पहले द्वार को पार कर जायेंगे; तब दूसरे द्वार पर उपस्थित हाथी उन्हें मसल देगा।

तीसर ड्योरि मल्ल रह भारी। जे बलात तिन्ह देइ बिदारी॥
तिन्हँ अस आयसु दइ गरुआई। बैठा सभा माँझ खल जाई॥

तीसरी ड्योड़ी पर बड़े-बड़े मल्ल उपस्थित रहेंगे, जो वहाँ बलपूर्वक उन्हें मार डालेंगे। उसे इस प्रकार की आज्ञा देकर फिर वह दुष्ट जाकर अभिमान सहित सभा में बैठ गया।

दोहा- अक्रूरहिं पुनि बोलि कह जानि सखा मैं तोहि।
कृत बिसेष एक देउँ तुअ तवहि भरोषा मोहि॥६॥

फिर उसनें अक्रूरजी को बुलवाकर कहा- हे अक्रूर! मैं तुम्हें अपना सखा जानकर एक विशिष्ट कार्य सौंपता हूँ, मुझे अब केवल तुम्हारा ही भरोषा है।

चौ.- अति प्रिय सखा नंद तव ख्याता। मत तुम्हार चरही दिनुराता॥
सो धनुमख निवता मिस लाई। आनु ससुत उन्ह इहाँ बोलाई॥

यह सब जानते हैं कि नंद तुम्हारा प्रिय सखा है और दिन-रात तुम्हारी ही सम्मति पर चलता है। अतः धनुर्यज्ञ के निमन्त्रण को हेतु बनाकर, तुम उसे उसके पुत्रों सहित यहाँ लिवा लाओं।

सुक्र सरिस प्रबुद्ध तैं ताता। सिअसत सुरगुर सम प्रख्याता॥
नंद तोर नय सकसि न टारी। अस भरोष मोरे जिय भारी॥

हे तात! तुम आचार्य शुक्र के समान परम बुद्धिमान और राजनीति में देवगुरु बृहस्पति के समान प्रसिद्ध हो। नन्द तुम्हारे निहोरे को टाल नहीं सकेगा, मेरे मन में ऐसा गहरा विश्वास है।

आवतही इहँ दुहुँ आराती। किए जतन मैं देहुँ निपाती॥

कह अक्रूर नाथ तजि क्रोधा। मानिअ मम तजु हरिहि बिरोधा॥

यहाँ आते ही मैं अपने उन दोनों शत्रुओं का यत्नपूर्वक वध कर दूँगा। तब अक्रूरजी ने कहा- हे नाथ! क्रोध त्यागकर, आप मेरा कहना मानिये और श्रीहरि से शत्रुता त्याग दीजिये।

जे मम बिनय नाथ हिय राखी। अवसि करउँ कउँ संकर साखी॥
मम मत तैं गन जिन्हँ लघु ग्वाला। तें जगपाल काल कर काला॥

यदि आप मेरी यह विनती सुनेंगे, तो शिवजी को साक्षी मान कहता हूँ! मैं अवश्य आपका कार्य करूँगा। जिन्हें तुच्छ ग्वाले समझ रहे हैं, मेरे विचार में वे जगत के स्वामी व काल के भी काल हैं।

मधु केटभ मर्दे जिन्हँ भारी। बलिहि पताल दीन्ह संचारी॥
जाकर परसु कठिन अस धारा। बूड़े बलधि जासु बिस्तारा॥

जिन्होंने महाबलि मधु व कैटभ का वध किया और बलि को पाताल भेज दिया था; जिनके परसे की धारा इस प्रकार कठिन थी कि बल में सागर तुल्य होकर भी कई महायोद्धा जिसके विस्तार में डूब गए।

दोहा- **सवा लाख नाती जिन्हँ घेरि रहे दिनु राति।**
अस रावन जिन्हँ सहज हत्यो उन्ह लहँ तुम केहिं भाँति॥७॥ (क)

सवा लाख नाती जिसे दिन रात घेरे रहते थे, ऐसे रावण को भी जिन्होंने सहज मार दिया था, उन भगवान को आप किस प्रकार जीत पायेंगे।

अघ बकादि भगिनिहुँ सहित अगनित जोधा तोर।
खेल बधे उन्ह मारि चहौ अलप भटन्हँ कर जोर॥७॥ (ख)

अघासुर, बकासुर और उनकी बहिन पूतना सहित आपके अनेक योद्धाओं को जिन्होंने खेल ही खेल में मार डाला, आप उन्हीं को अपने इन शूद्र योद्धाओं के बल पर मारना चाहते हैं।

चौ.- **कस न फरहि यह जतन तिहारा। फरहि न जस तरु तड़ित प्रतारा॥**
नाथ बुधन्हँ मैं सुनि अस बानी। प्रीति बैर करु अति सउधानी॥

किन्तु आपका यह यत्न किस प्रकार सफल नहीं हो सकेगा; जैसे विद्युत की मार से झुलसा हुआ वृक्ष पुनः कभी नहीं फलता। हे नाथ! मैंने विद्वानों के मुख से यह सुन रक्खा है कि प्रेम व शत्रुता बड़ी सावधानी से करना चाहिये।

पाछ पराभव होइ न जातें। तव कल्यान चहउँ कउँ तातें॥
मनुज चाह अति पै घट सोई। देव भाग लिखि राखा जोई॥

जिससे कि अंत में असफलता न मिले; मैं केवल आपका कल्याण चाहता हूँ, इसीलिये कह रहा हूँ। मनुष्य बहुत चाहता है, किन्तु होता वही है, जो विधाता ने भाग्य में लिख रखा है।

सो भरोष तजि अलपन्हँ नाथा। अहमिति परिहरि भजु हरनाथा॥
आगे जे नृप आयसु होई। मन बच करम करौं मैं सोई॥

अतः हे नाथ! इन तुच्छ राक्षसों का भरोषा और अहङ्कार त्यागकर शिवजी के स्वामी उन प्रभु का भजन कीजिये। अब आगे राजन की जो भी आज्ञा हो, मन, वचन और कर्म से मैं वही करूँगा।

सठ चुप सुनत रहा अभिमाना। तनक खसेटि न जूँ तिन्ह काना॥
जिमि मृत जीव न भेषज चढ़हीं। तिमि हित पथ सठ पाउँ न धरही॥

अहङ्कार में डूबा हुआ मूर्ख कंश चुपचाप सुनता रहा; अक्रूरजी की बातों का उस पर कोई प्रभाव न हुआ। जैसे मृत प्राणी पर कोई औषध प्रभाव नहीं करती, ठीक वैसे ही वह भी हित के मार्ग पर पैर नहीं बढ़ाता।

तब अक्रूर भाबि अनुमानी। चले नाइ सिरु ब्रज सुखमानी॥

तब होनी का अनुमान करके, अक्रूरजी उसे सिर नवाकर सुखपूर्वक व्रज को चले।

दोहा- **इहाँ केसि उद्भट दनुज महातुरग तनु लाइ।**
आवा बृंदाबन निकट गर्जत अति हिहिनाइ॥८॥

इधर बड़े भारी अश्व का शरीर धरे उद्भट दैत्य केशि, हिन-हिनाकर अत्यधिक गरजता हुआ, वृन्दावन के निकट आ पहुँचा।

चौ.- **लोहित दृग बरषत रिस दापा। खनि लग महि करि पीरित टापा॥**
पद आघात महातरु तोरे। गर्जि काल मद चह जनु मोरे॥

लाल-लाल नेत्रों से अहं व क्रोध बरसाता हुआ वह अपने पैरों की टापों से भूमि को खोदकर पीड़ित करने लगा। उसने अपने पैरों के आघात से बड़े-बड़े वृक्ष तोड़ डाले और इस प्रकार गर्जने लगा, जैसे यम के भी दर्प को हर लेना चाहता हो।

जब कर द्रुम फटकार कठोरा। तितर बितरहि गगन घनघोरा॥
एहि बिधि खल धावा अति बेगा। जनु पावा तिन्हँ कृतांत नेगा॥

जब वह अपनी पूँछ की कठोर फटकार करता था, तब आकाश पर स्थित मेघसमूह भी तितर-बितर हो जाते थे। इस प्रकार वह दुष्ट बड़े वेग से दौड़ा, मानों यम का दूत बन गया हो।

आवा ग्राम निरखि नरनारी। धावा उन्ह दिसि हिहिनत भारी॥
हाहाकार पाइ भगवंता। कूदि परे खल समुख तुरंता॥

जब दौड़ते हुए वह नन्दगाँव में आया और उसने वहाँ गोप-गोपियों को देखा; तो अत्यधिक हिन-हिनाता हुआ उनकी ओर दौड़ा। तब हाहाकार मचा देखकर कन्हैया तुरंत उसके सन्मुख कूद पड़े।

कटि पट कसि अरु ताल बजाई। लागे तें खल कहँ उकसाई॥
रे सठ किन मारसि तुअ मोहीं। ताड़त अबलन्हँ लाज न तोहीं॥

उन्होंने अपने पीताम्बर को कमर में कस लिया और ताल ठोंककर, उस दुष्ट को उकसानें लगे- रे मूर्ख! तू मुझे क्यों नहीं मारता? इन निर्बल स्त्री-पुरुषों को दुःख देते हुए तुझे लज्जा नहीं आती?

दोहा- **पद उठाइ हरि हृदयँ तब तिहिं घन कीन्हँ प्रहार।**

किन्तु सोउ पद गहि खलहि हरि छिति दीन्ह पछार॥९॥

तब उसनें अपने अगले पैरों को उठाकर उनसे भगवान श्रीकृष्ण की छाती पर बड़ा भारी आघात किया, किन्तु श्रीकृष्ण ने उन्हीं पैरों से पकड़कर उस दुष्ट को पृथ्वी पर पछाड़ दिया।

चौ.- उठि पुनि कीन्हेंसि लूम प्रहारा। हरि लूमहि गहि नभ संचारा॥
करत जहाँ तें बारिदनादा। परा धरनि मनु भा तिन्ह माँदा॥

पुनः उठकर उसने पूँछ से प्रहार किया; तब श्रीकृष्ण ने पूँछ ही से पकड़कर, उसे आकाश की ओर उछाल दिया; जहाँ से मेघ के समान गरजता हुआ वह भूमि पर आ गिरा और मन-ही मन घबरा उठा।

गरदनि टूटि भई अति पीरा। तदपि न बपु तजेहुँ गम्भीरा॥
पुनि सम्भरत गर्जत गति घोरा। धावा असनि सरिस हरि ओरा॥

गिरनें से उसकी गर्दन टूट गई और उसे अत्यन्त पीड़ा होने लगी; किन्तु फिर भी वह भीषण दैत्य मरा नहीं। फिर पुनः सम्भलकर गरजता हुआ वह दानव उठा और वज्र के समान बड़े वेग से कन्हैया की ओर दौड़ा।

तब कन्हँ तिन्हँ मग माँझ बिरोधा। मुखहुँ मारि मुठिका करि क्रोधा॥
रुधिर धार तब मुख उमगाई। टूटे रद कछु गा मुरछाई॥

तब कन्हैया ने उसे मार्ग में ही रोक लिया और कुपित हो उसके मुख पर एक घूँसा मारा। तब उसके दाँत टूट गए और मुख से रक्त की धारा बह चली; जिससे वह कुछ मूर्छित-सा हो गया।

कछु छिनु माँझ उठा पुनि धाई। हरि कर मुखनि गहेउ रिसाई॥
पुनि चढ़ि गयउ गगन घन ऊपर। तहाँ लाग करि जुद्ध भयंकर॥

कुछ ही क्षणों में वह पुनः उठकर दौड़ा और कुपित हो उसनें अपने मुख से कन्हैया का हाथ पकड़ लिया। फिर वह आकाशस्थ बादलों पर जा चढ़ा व वहाँ उनसे भीषण युद्ध करने लगा।

दोहा- परिछित दानव दसन पद लूम अयाल चलाइ।
जतनि लाग अरि मर्दन बरजै सहज कन्हाइ॥१०॥ (क)

हे परीक्षित्! वह राक्षस दाँतों, पैरों, पूँछ और अपनी अयाल चलाकर, अपने शत्रु कृष्ण का वध करने के निमित्त अनेक प्रयत्न करने लगा, किन्तु कन्हैया सहज ही में उसे रोक देते हैं।

जब हरि दुहुँ कर मूठि करि जामिनिचर सिरु मारि।
अनिल प्रतारित तरु सरिस महितल परा चिकारि॥१०॥ (ख)

फिर जब श्रीकृष्ण ने दोनों हाथ से मुक्का बनाकर उस निसाचर के सिर पर मारा, तब वायु के द्वारा उखाड़े गए वृक्ष के समान, वह दैत्य गर्जता हुआ आकाश से भूमि पर आ गिरा।

चौ.- तदुप फिरे हरि असनि समाना। रोपि भुजा लखि खल भय माना॥
बाहुदंड पुनि सोउ पसारा। लपकि डारि मुख उदर बिदारा॥

तत्पश्चात् भूतल पर लौटकर श्रीकृष्ण ने अपनी भुजा वज्र के समान तान ली; यह देख वह दुष्ट भयभीत हो उठा। फिर उसी भुजदण्ड को फैलाकर उन्होंने बड़ी फूर्ती से दैत्य के मुख में डालते हुए उसका पेट फाड़ दिया।

कछु छिन बिगत टूटि जब स्वासा। परा प्रानगत मिटि सब त्रासा॥
अघनिधि रहा जदपि सो राजन। किन्तु सहज भा प्रभु पद भाजन॥

कुछ क्षण बीतनें पर स्वास टूटने से वह दैत्य निर्जीव होकर गिर पड़ा; उसके मरते ही सारा भय मिट गया। हे राजन! यद्यपि वह दैत्य पाप की खान था, फिर भी सहज ही भगवान के परमपद का पात्र हो गया।

लखि ब्रजपति सुत कहँ हिय लाई। देन असीस लाग हरषाई॥
नृप पूरब सो असुर घनेरा। रहा छत्रधर सुरपति केरा॥

यह देखकर व्रजेश्वर नन्दरायजी ने अपने पुत्र को हृदय से लगा लिया और हर्षित होकर आशीर्वाद देने लगे। हे परीक्षित्! वह भीषण दैत्य पूर्व-जन्म में देवराज इन्द्र का छत्र धारण करनेवाला सेवक था।

कुमुद रहा तब ताकर नाऊँ। नित्य निकट राखहि सुरराऊ॥
बज्रपानि जब बृत्तहि मारा। परा तासु सिरु द्विज बध भारा॥

उस समय उसका नाम कुमुद था और देवराज सदैव उसे अपने निकट ही रखते थे। जब वज्रपाणि इन्द्र ने वृत्तासुर का वध किया था, तब उन्हें ब्रह्महत्या का पाप लगा था।

छय हयमेध कीन्हँ उन्ह जागा। कुमुद जासु हय पर अनुरागा॥
तातें तें मखतुरग चुराई। अतललोक गा तुरत दुराई॥

पाप क्षय के लिये उन्होंने अश्वमेधयज्ञ किया, जिसके अश्व पर छत्रधर कुमुद का मन अनुरक्त हो गया था। इसलिये वह यज्ञ के उस अश्व को चुराकर, तुरन्त ही अतललोक में जा छिपा था।

इन्द्र साप तब हय तनु पाई। कुमुदहि केसि भयउँ नरराई॥
कंस सुना जब केसिहि नासा। भयउँ सहज जनि तिन्हँ बिस्वासा॥

हे परीक्षित्! तब इन्द्र के श्राप से अश्व होकर, वह कुमुद ही केशि नामक दैत्य हुआ। जब केशि के वध का समाचार कंस को मिला, तो उसे इस घटना का सहज ही में विश्वास न हुआ।

पुनि पठएसि खल ब्योम दुरातम। जे मायाबि रहा अति उत्तम॥

फिर उस दुष्ट ने दुरात्मा व्योमासुर को (ब्रज) भेजा, जो बड़ा ही उत्तम मायावी था।

दोहा- इहाँ कान्हँ घन रूखमय सीतल कज्जलि कूल।
बिबिध भाँति खेलत रहे खेल सखन्हँ अनुकूल॥११॥

इधर कन्हैया सघन वृक्षों से आच्छादित, यमुना के शीतल तट पर, सखाओं को प्रिय लगनेंवाले अनेक प्रकार के खेल, खेल रहे थे।

चौ.- आवा ब्योम तहाँ तेहिं काला। धरे रूप एक परिचित ग्वाला॥
पुनि उन्ह महुँ खेलत छल साँधी। लै गयऊ बहु लरिकन्हँ बाँधी॥

उस समय व्योमासुर उनके एक परिचित गोपबालक का शरीर धरकर वहाँ आ पहुँचा। फिर उनके साथ खेलते हुए कपट करके, वह दैत्य बहुत से ग्वालबालों को बाँधकर अपने साथ ले गया।

राखि सबन्हँ पुनि भूधर खोहा। फिरि खल लीन्हँ कान्हँ सन लोहा॥
निज बल दरप हरिहि लघु जानी। अस दुरबादत भा अभिमानी॥

फिर उन सबको पर्वत की एक कन्दरा में डालकर, वह लौटा और आते ही कन्हैया से युद्ध करने लगा। अपने बल के घमण्ड में श्रीकृष्ण को तुच्छ समझकर, दुर्वाद करते हुए वह दम्भी बोला-

रे कपटी मैं हति तहि आजा। करउँ प्रसन्न निसाचर राजा॥
हरि एहिबिच करि कोप अपारा। तुरत चरन गहि ताहिं पछारा॥

रे कपटी! आज तुम्हारा वध करके, मैं महाराज कंस को प्रसन्न करूँगा। इसी बीच श्रीकृष्ण ने अत्यन्त कुपित हो, तुरन्त ही पैरों से पकड़कर, उसे भूमि पर पछाड़ दिया;

निकसे प्रान पुनि न फिरि पावा। तदुप जाइ कन्हँ सखन्हँ छरावा॥
सब उन्ह गुन गावत हरषाए। संध्या जानि ग्राम फिरि आए॥

जिससे उसके प्राण निकल गए और वह पुनः लौट न सका। तदुपरान्त कन्हैया ने जाकर सखाओं को छुड़ाया और संध्या हुई जानकर वे सब उनका गुणगान करते हुए गाँव लौट आए।

दोहा- अस्विन सुदि द्वादसी तिथि बधे सुभट दुहुँ स्याम।
तेहि दिवस अक्रूर रथ चढ़ि चलेउँ नँदग्राम॥१२॥

भगवान श्रीकृष्ण ने अश्विन माह के शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि को उन दोनों योद्धाओं का वध किया था और उसी दिन अक्रूरजी भी रथ पर आरूढ़ हो, नन्दगाँव के लिये निकले।

चौ.- भजहि सदा नृप कहि दुखहरना। पराभगति उन्ह हिय हरि चरना॥
अस अक्रूर परम हरषाई। चले जात मग सुमिरि कन्हाई॥

हे राजन्! श्रीहरि के चरणों के प्रति उनके हृदय में पराभक्ति विद्यमान थी; वे सदैव 'दुःखहर्ता' कहकर प्रभु को भजते थे। ऐसे अक्रूरजी कन्हैया का स्मरण करते हुए, मार्ग में अत्यंत हर्षपूर्वक चले जा रहे हैं।

अब लौ जीवन मोर बृथाही। गयउ महाखल चाकरि माहीं॥
पै अज कीन्हिसि दया स्याम घन। दृगन्हि लखउँ मूरति मनभावन॥

(वे विचार करने लगे कि,) मेरा अब तक का जीवन उस महादुष्ट कंस की सेवा में, व्यर्थ बीत ही गया; किन्तु आज श्रीकृष्ण ने मुझ पर यह अत्यधिक दया की है कि, मैं उनकी मनभावन मूर्ति को अपने नेत्रों से देख पाऊँगा।

कवन सुकृत कर फलु यह भारा। जे मम हित भा मुदद अपारा॥
हरि पद पंकज रज सिरु लाई। लेउँ जिवन अज सुफल बनाई॥

यह मेरे किस सत्कर्म का महाफल है, जो मेरे लिये अपार आनन्ददायक हो गया है? श्रीकृष्ण के चरणकमलों की रज अपने सिर पर चढ़ाकर, मैं आज अपना जीवन सार्थक कर लूँगा।

पंथ सुसकुन लहर सुखकारी। चहुँ दिसि निज माया बिस्तारी॥
दृस्य बिबिध सुन्दर बिरचाई। उन्हँ दुहुँ दृग तट लगि परसाई॥

मार्ग ही में शुभशकुनों की सुखद लहरें, चारों दिशाओं में अपनी माया फैलाकर, विविध प्रकार के सुन्दर दृश्यों की सृष्टि करती हुई उनके नेत्ररूपी दोनों तटों का स्पर्श करने लगी।

दोहा- **एहिभाँति गांदिनितनय सुमिरत प्रभुहि प्रभाउ।**
साँझ काल रस अनुभवत गए निकट नँदगाउ॥१३॥

इस प्रकार गांदिनीनन्दन अक्रूरजी प्रभु श्रीकृष्ण के प्रभाव का स्मरण करके, मन में प्रेम का अनुभव करते हुए, संध्या के समय नन्दगाँव के निकट आ पहुँचे।

चौ.- **जानि मही पुनि प्रभु पद मंडित। धीर सेतु उन्ह भयउँ बिखंडित॥**
प्रीति सरित मरजाद नघाई। सोउ रज बारिधि दिसि चलि धाई॥

फिर वहाँ की भूमि को श्रीकृष्ण की चरणरज से मण्डित जानकर, उनके धैर्य का बाँध टूट गया; जिससे उनकी प्रीतिरूपी सरिता मर्यादारूपी तट को लाँघकर, चरणरजरूपी उसी समुद्र की ओर दौड़ पड़ी।

करत प्रनाम महि निकट गयऊ। प्रमुदित पुनि तहँ लोटत भयऊँ॥
हरि प्रति प्रीति निरखि उन्ह भारी। प्रेम मगन सिहात नरनारी॥

प्रणाम करते हुए, (रथ से उतरकर) वे भूमि के अधिक निकट हो गए और बड़े ही आनन्द से वहाँ लोटनें लगे। कन्हैया के प्रति उनका महान प्रेम देखकर, (वहाँ उपस्थित) गोप-गोपियाँ प्रेममग्न होकर उनकी सराहना लगे।

तदुप चले रथु चढ़ि धरि धीरा। लखे ग्राम खेलत दुहुँ बीरा॥
स्याम गौर मनहर बिधु जोरी। करति बिरति रतिमय बरजोरी॥

तदुपरान्त धैर्य धारण करके, वे रथ पर चढ़कर चले और गाँव में (जाते ही) उन्होंने दोनों भाईयों को खेलते हुए देखा। श्याम और गौर वर्ण के दो मनोहर चन्द्रमाओं-सी उनकी जोड़ी, वैराग्य को भी बलपूर्वक ममत्वयुक्त किये देती थी।

तिन्हहिं बिलोचन कइ चपलाई। सहज मृगन्हँ कहँ लेति रिझाई॥
दूरिहि तें लखि अकरुर धाए। पाहि दंड इव महितल छाए॥

उनके नेत्रों की चपलता, हिरणों को भी सहज आकर्षित कर लेती थी। (उनकी इस शोभा को) दूर से ही देखकर अक्रूरजी दौड़े और निकट जाकर दण्ड के समान भूमि पर गिर पड़े।

मनहि जुड़ाउ रुद्ध उन्हँ केरा। चला नयनमग बेग गहेरा॥
हरि उठाइ चह बारहि बारा। तदपि न उन्ह पदपंकज छारा॥

श्रीकृष्ण के प्रति उनके मन में बसनेवाला अपनत्व का भाव, जो (परिस्थितिवश) अवरुद्ध था; नेत्र के मार्ग से अत्यंत वेगपूर्वक बह निकला। भगवान ने उन्हें बार-बार उठाना चाहा, किन्तु फिर भी उन्होंने उनके चरणकमल नहीं छोड़े।

भई चेत जब कंपित गाता। उठि उन्हँ पाहि ब्रजहि कुसलाता॥

परिचौ आपन कहा बहोरी। चले हरिहि सँग जुग कर जोरी॥

जब उनकी भाव-विह्वलता कम हुई, तब काँपते हुए शरीर से वे उठे और उन्होंने श्रीकृष्ण से ब्रज का कुशल समाचार जाना। फिर अपना परिचय देकर, दोनों हाथ जोड़कर, वे दोनों भाईयों के साथ होकर आगे चले।

नंदभवन एहिबिधि जब आए। नंद भेंटि उन्ह अति हरषाए॥
हरि पखारि पद आसन दीन्हा। तदुप सबनि मिलि भोजन कीन्हा॥

इस प्रकार जब वे नन्दभवन में आए, तब नन्दजी उनसे मिलकर अत्यन्त हर्षित हुए। कन्हैया ने उनके चरण धोकर उन्हें उत्तम आसन पर बैठाया, तदुपरान्त सबनें मिलकर भोजन किया।

रहे करत निसि जब बिश्रामा। लगे चरन चापन सुखधामा॥
करि प्रनाम गोपाधिप आई। पूछत भै मथुरहि कुसलाई॥

रात्रि के समय जब अक्रूरजी विश्राम कर रहे थे, तभी श्रीकृष्ण उनके चरण दबानें लगे। उस समय नन्दरायजी वहाँ आए और उन्हें प्रणाम करके, मथुरा के कुशल समाचार पूछनें लगे।

क्रूर तिमिर सुर नर आराती। सखा प्रजहुँ पालत केहिं भाँती॥
कहु दुहुँ धीर उदधि कुसलाता। जिन्हँ बहु बार सहे पबिपाता॥

हे अक्रूरजी! क्रूर, अज्ञानता का प्रतीक, मनुष्यों व देवताओं का शत्रु वह कंस प्रजा का पालन किस प्रकार करता है? फिर धैर्य के सिन्धु वसुदेवजी व देवकीजी की कुशल सुनाईये, जिन्होंने अनेक बार (पुत्रशोकरूपी) वज्रपात सहे हैं।

मोर समुझ खल जीअहि जब लौ। सपनेहुँ सुख न होइ तहँ तब लौ॥

मुझे लगता है, वह दुष्ट जब तक जीवित है, तब तक वहाँ स्वप्न में भी सुख न हो सकेगा।

दोहा- **सुनि रहेउ चुप दृगन्हँ कहि जस पूछेहुँ उन्ह नंद।**
ग्रसी बिबसतउँ बदनु दुति साप ग्रसा जनु चंद॥१४॥ (क)

यह सुनकर अक्रूरजी तो चुप ही रहे, किन्तु उनके नेत्रों ने वह सब कह दिया, जो नन्दजी ने पूछा था। उनके मुख की कान्ति विवशता में ऐसे डूब गई, जैसे चन्द्रमा को श्राप ने ग्रस लिया हो।

मौन उतरु उन्ह पाइ तब फिरे नंद अकुलाइ।
गान्दिनिनंदन तें पुनि हरि पूछा सिरु नाइ॥१४॥ (ख)

मौनरूपी उनका उत्तर पाकर नन्दरायजी दुःखी होकर लौट गए। फिर अक्रूरजी को सिर नवाकर भगवान श्रीकृष्ण ने उनसे पूछा-

चौ.- **तात बात सो कहिअ बुझाई। अवचट ब्रज तव पद रज पाई॥**
बिबुध सीसमनि पूछहि मोहीं। भेद कवन जे अबिदित तोही॥

हे तात! आप वह बात समझाकर कहिये, जिसके कारण व्रजभूमि को (इस प्रकार) अचानक आपकी चरण रज प्राप्त हुई। (अक्रूरजी बोले-) हे देवसिरोमणि! आप मुझसे पूछ रहे हैं, किन्तु ऐसा कौन सा भेद है, जिससे आप अनभिज्ञ हों?

कंस तुम्हार भेद जब पावा। खल बसुद्यौ कहँ मारन धावा॥
सुररिषि बरजा तब कहि नीती। तदपि भरोष न तासु अनीती॥

कंस को जब आपका भेद ज्ञात हुआ, तो वह दुष्ट वसुदेवजी को मारनें दौड़ा। उस समय नारदजी ने नीतिपूर्वक उसे रोक लिया; फिर भी उसकी अनीति का कोई भरोषा नहीं।

जानहिं तोहिं तदपि मद अंधा। बैठा तव बध किए प्रबंधा॥
मोहिं पठवा इहँ तुम्हहि लिवाने। पै करु सो जिहि करि मन माने॥

यद्यपि वह आपको जानता है, तथापि अहङ्कार में अंधा वह, आपके वध का प्रबन्ध किये बैठा है। उसी ने आपको लिवा लाने के लिये मुझे यहाँ भेजा है; किन्तु आप वही कीजिये, जिसे करके, आपका मन संतुष्ट हो।

हरि सुनि खेद जनित उन्ह बानी। बिहँसे मरनु खलहिं अनुमानी॥
पुनि पितु मातहि माय भुलाई। धनुमख खबरि लाग कहि जाई॥

उनकी खेदयुक्त वाणी सुनकर, श्रीकृष्ण ने कंस की मृत्यु का अनुमान किया और मुस्कुरा दिये। फिर जाकर उन्होंने मैय्या-बाबा को अपनी माया से विमोहित कर दिया और उन्हें धनुर्यज्ञ का समाचार कहने लगे।

प्रातकाल हम सब ब्रजनाहा। मधुपुरि चलिहहिं जग्य उछाहा॥

हे व्रजनाथ! सवेरा होने पर हम सब धनुर्यज्ञ का उत्सव देखने मथुरा चलेंगे।

दोहा- **तहँ होइहि सिव धनुष मख जहँ हम सहित समाज।**
नेवते नृप सादर पठवा गान्दिनिसुत एहि काज॥१५॥

वहाँ शिवजी के धनुष का यज्ञ होगा, जिसके निमित्त कंस की ओर से गोपसमाज सहित, हमें सादर निमन्त्रण आया है और उसने अक्रूरजी को इसी कार्य से यहाँ भेजा है।

चौ.- **तनुज बचन अस सुनि ब्रजराजा। कहि पठवा सब गोप समाजा॥**
मायबिबस नृप नंद बिमोही। खलता खलहि न पाए जोही॥

पुत्र की यह बात सुनकर नन्दरायजी ने समस्त गोपों को चलनें के लिये कह दिया। हे परीक्षित्! भगवान की माया से विमुग्ध हुए नन्दरायजी, दुष्ट कंस की दुष्टता को देख न सके।

यह संबाद निसिहि ब्रज छावा। बूझि गोपि हिय दुख उमगावा॥
भाबी बिरहु बिचारि कठोरा। जहँ तहँ ग्वालिन भइ इकठौरा॥

यह समाचार रात्रि में ही व्रज में फैल गया, जिसके परिणाम को समझकर गोपियों के मन में दुःख उमड़ पड़ा। आनेवाले विरह की कठोरता का विचार करके, वे गोपियाँ जहाँ-तहाँ एकत्र हो गई।

तब कह एक लिवान कन्हाई। पठवा केउ बसींठ नरराई॥
पुनि हरि हरषि भए सखि राजी। उन्ह हिय कस अस कुमति बिराजी॥

तब एक ने कहा- हे सखि! कन्हैया को मथुरा ले जाने के लिये राजा ने कोई दूत भेजा है और कन्हैया भी चलनें के लिये सहर्ष तैय्यार हैं; उनके हृदय में ऐसी दुर्बुद्धि कैसे बस गई?

उन्ह बिनु सखि हमरेउँ का होई। जतन किए किन बरजत कोई॥
गति हमार जिन्हँ तजि नहिं आना। उन्हहिं गए कि धरिहिं हम प्राना॥

हे सखि! उनके न रहने पर हमारा क्या होगा? यत्न करके, कोई उन्हें रोकता क्यों नहीं? जिन्हें छोड़कर हमारी कोई अन्य गति नहीं; उन्हीं के चले जाने पर क्या हम जीवित रह सकेंगी?

यह प्रपंच पुर नारिन्हँ केरा। रुचइ न जिन्हँ ब्रज माँझ सबेरा॥

यह प्रपञ्च नगर की स्त्रियों द्वारा रचित है, जिन्हें व्रज में व्याप्त आनंद का सवेरा अच्छा नहीं लगता।

दोहा- कुसुमघात जे सहि न सक सो हिय मृदुल हमार।
बिरहु कुलिस कर दारुन हा अब सहहि प्रहार॥१६॥

जो पुष्प की मार नहीं सह सकता, हमारा वहीं कोमल हृदय हा! अब विरहरूपी वज्र का भीषण प्रहार सहेगा!

चौ.- की तोहि हरिहि सुभाय न बोधा। जे सुख लहँ करि प्रियन्हँ बिरोधा॥
जे पितु मात तजन तैयारा। तें कस आदरु करिहि हमारा॥

हे सखि! क्या तुम्हें कन्हैया का स्वभाव ज्ञात नहीं; जो स्वजनों का विरोध करके ही सुखी होता है? जो अपने मैय्या-बाबा तक को छोड़नें के लिये तत्पर है, वह हमारा आदर क्या करेगा?

अहो मोहपर पुरुष सुभावहि। अति बिचित्र कोउ बूझि न पावहिं॥
जे न मनोहर मथुरा जैहहि। कवन बिगार कंस करि लैहहि॥

अहो! निर्मोही पुरुष का तो स्वभाव ही बड़ा विचित्र होता है; उसे कोई भी नहीं समझ सकता। जो यदि मनोहर कृष्ण मथुरा न भी जाएँ, तो कंस क्या बिगाड़ लेगा?

की ब्रज माहिं न अस मतिमंता। जे सजतन रोकहि श्रीकंता॥
अवसि हरिहि मानस छइ काई। जे रहेहुँ तें हमहि बिहाई॥

क्या व्रज में ऐसा कोई बुद्धिमान पुरुष नहीं, जो यत्नपूर्वक (चञ्चला) लक्ष्मी के स्वामी श्रीकृष्ण को रोक सके? अवश्य कृष्ण ही के मन में खोट आ गया है, जो वे हमें त्याग रहे हैं।

अलि जब तें मैं अस सुनि पाई। चहै काल्ह कन्हँ मथुरा जाई॥
रोम रोम तब तें मम जरही। हिय न एक छिनु धीरज धरही॥

हे सखि! जब से मैं यह सुन पाई हूँ कि कन्हैया कल मथुरा जाना चाहते हैं; तभी से मेरा रोम-रोम जल रहा है और हृदय एक क्षण के लिये भी धैर्य नहीं धर रहा।

दोहा- अरध राति यह खबरि सुनि तबहि तें नींद उड़ाइ।
पुनि यह राति अरातिन बीति न जात बिताइ॥१७॥

अर्द्धरात्रि को मैंने यह समाचार सुना था; बस तभी से मेरी नींद उड़ी हुई है और एक शत्रुरूपिणी यह रात्रि है; जो बिताए नहीं बीत रही।

चौ.- तापर रबि भा तासु सहाई। उगहि न जे हमार दुख पाई॥
पियहि गए रह जे तनु प्राना। तब इन्हँ सम जग को अघखाना॥

ऊपर से सूर्य उसका सहायक हो गया है, जो हमारे इस दुःख पर भी उदित नहीं हो रहा। प्रिय के जाने के पर भी यदि प्राण शरीर में बनें रहते हैं; तब संसार में इनके जैसा अधम कौन होगा?

जिन्हँ हित हम सब लाज बिहाई। सोइ हमार निधि होत पराई॥
सबबिधि सत्य बुधन्हँ यह बानी। कुटिल देव गति जाति न जानी॥

जिसके लिये हमनें समस्त मर्यादा त्याग दी, हे सखि! हमारी वही सम्पत्ति पराई हुई जा रही है। विद्वानों का यह वचन तो सत्य ही है कि, कुटिल विधाता की गति जानी नहीं जाती।

आस बिगत एहिभाँति बिचारी। परी धरनि अति होत दुखारी॥
परिहरि सहज सुधुनि उन्ह कंकन। गातन्हँ भयउँ मलिनतउँ अंकन॥

ऐसा सोचकर आशा से रहित हुई गोपियाँ अत्यन्त दुःखी हो, भूमि पर गिर पड़ी। उनके हाथों के कङ्कणों ने स्वभाविक मधुरध्वनि त्याग दी और अनके अङ्गों पर मलिनता अङ्कित हो गई।

बेनी सिथिल भई बिरहागी। मनहुँ भुअंगि बिकल मनि त्यागी॥
दृग मंदे परिहरि बय ओजा। चेत गइ मानहु सुख खोजा॥

विरह की ज्वाला से दग्ध हुई उनकी वेणियाँ शिथिल पड़ गईं; मानों मणि खोकर सर्पिणी अकुला गई हो। उनके नेत्र यौवन की आभा से रहित होकर मंद पड़ गये और उनकी चेतना मानों सुख की खोज में चली गई।

दोहा- प्रियतम चलन खबरि जब गई राधिकहि कान।
तेपि महादुख धरनि खसि भयउँ बदनु अति म्लान॥१८॥

प्रियतम के प्रस्थान का समाचार जब राधाजी के कानों में पड़ा; तब वे भी महान दुःख से आहत हो भूमि पर गिर पड़ी और उनका मुख अत्यन्त उदास हो गया।

चौ.- लोयन उमगि पीर कइ बाढ़ा। चली किए अंजन दुख ताड़ा॥
परत कपोल प्रदुति पुनि खाई। तापर डारि बिषादहि झाई॥

उनके नेत्रों से पीड़ा की बाढ़-सी उमड़ पड़ी; जिसकी धारा ने विरह से पीड़ित काजल को अपने साथ कर लिया। फिर कपोलों पर पड़ते ही उसने, उनकी कान्ति को खाकर, वहाँ विषाद की काली छाया डाल दी।

पद अधीरता धरे अपारा। तुरत चहहि पथ सम निसि पारा॥
तासु दसा कछु बरनि न जाई। पुरइनि जनु सीतउँ ठठराई॥

अपार अधीरता लिये उनके चरण, किसी मार्ग के समान रात्रि का पार पा लेना चाहते हैं। उनकी मनोदशा कही नहीं जाती, मानों शिशिर ऋतु में कमलिनी शीत से व्याकुल हो गई हो।

हृदयँ बाढ़ि जब अतिसय पीरा। कखहि उमगि निरास गम्भीरा॥
लखि मोहन बहु रूप बनाई। सबन्हँ प्रबोधन गै अतुराई॥

जब उनके हृदय में पीड़ा अत्यधिक बढ़ गई, तब उनके कक्ष में भी गम्भीर निराशा छा गई। यह देखकर मनमोहन अनेक रूप धरकर, बड़ी ही शीघ्रता से उन सबको समझानें पहुँचे।

जब राधहि सन गै भगवाना। अघटित तें उन्ह मन कंपाना॥

परि एकान्त तन धरि मुरुछाई। निरखि नारिउर गए सुखाई॥

फिर जब भगवान राधा के पास गए, तब किसी अघटित भय से उनका मन काँप उठा। राधाजी शरीर में मूर्छा लिये एकान्त में पड़ी थी; यह देखकर स्त्री जैसे कोमल हृदयवाले श्रीकृष्ण चिन्ता से सूख गए।

कीन्हि ससाहस बाँसुरि ताना। भइ सचेत राधा सुख माना॥

फिर साहस करके, उन्होंने मुरली बजाई, जिसे सुनकर राधाजी की मूर्छा टूट गई और उन्हें सुख हुआ।

दोहा- उठि चितवहि सहसा बिकल पिय कर बदनु मयंक।
बूड़ि पेमबारिधि प्रथम उमगि पाछ हिय संक॥१९॥

फिर वे सहसा उठीं और व्याकुलता से प्रियतम के मुखचन्द्र को देखने लगी; जिससे प्रथमतः तो वे प्रेम में मग्न हो गई, फिर पीछे उनके मन में (प्रिय से वियोग की) आशङ्का उमड़ आई।

चौ.- तातें संतत दृग भरे बारी। निरखन आव न छबि सुखकारी॥
तरकि दसा कर गहे कन्हाई। उन्ह हिन्दोल सप्रेम बैठाई॥

जिससे उनके नेत्र निरन्तर सजल हो रहे थे और प्रिय की सुखद छवि उन्हें ठीक से दिखाई नहीं पड़ रही थी। उनकी दशा अनुमानकर, कन्हैया ने उनका हाथ पकड़कर, बड़े प्रेम से उन्हें हिंडोले पर बैठाया।

पुनि कह जलद गिरा गम्भीरा। प्रिया होत केहि हेतु अधीरा॥
मथुरा चलन मोर सुनि ठाना। बृथा सोक तैं हृदयँ महाना॥

फिर मेघ-सी गम्भीर वाणी में उन्होंने कहा- हे प्रिये! तुम क्यों अधीर होती हो? मेरे मथुरा जाने का समाचार सुनकर तुमनें व्यर्थ ही में अपने हृदय में यह महान शोक पाल लिया है।

बिधिहि बिनय मैं धरि अवतारा। आवा हरन मेदिनि प्रभारा॥
किन्तु मोहि सबबिधि बलु तोरा। एहि कारन करु तोर निहोरा॥

ब्रह्माजी की विनती पर मैं इस भूमि का महान भार हरनें के लिये अवतरित हुआ हूँ; किन्तु मुझे तो सब प्रकार से केवल तुम्हारा ही बल है और इसी कारण तुमसे निहोरा करता हूँ कि,

हरषि बिदा करु मोहि तजि सोका। जातें सुख लहि सक तिहुँलोका॥
कंसादिक खल समर सँहारी। दरिदन्हँ सुख करि पुनि मिलु प्यारी॥

शोक त्यागकर, मुझे सहर्ष विदा करो; ताकि तीनों लोक सुख पा सकें। हे प्रिये! कंसादि दुष्ट राजाओं को युद्ध में मारकर और दरिद्रों के सुख का प्रबन्ध करके, मैं पुनः तुमसे आ मिलूँगा।

दोहा- **पियहि जथारथ अस बचन सुनि राधा बिलखाइ।**
सोक करत परि मनहुँ लता दावानल झुलसाइ॥२०॥

प्रियतम के ऐसे यथार्थ वचन सुनकर राधाजी बिलख उठी और शोक करती हुई भूमि पर गिर पड़ी, मानों कोई लता दावाग्नि से झुलस गई हो।

चौ.- **पिय कर चलन अटल जब जाना। हृदय भयउँ उन्ह दाह महाना॥**
ससिमुख उन्ह अति भयउँ मलीना। पाइ खुररु जनु ससि भइ दीना॥

जब राधाजी ने प्रियतम का जाना निश्चित समझा; तब उनके मन में महान दाह हुआ। उनका चन्द्रमुख अत्यन्त मलीन हो गया, मानों वर्षाऋतु की अवधि में सूखे से खेती मुरझा गई हो।

अजिव भई हिय आसा कैसे। जल कन मिटहि धरनि परि जैसे॥
दृगन्हँ परा बिषाद उमगाई। कंपित रव कह पियहि सुनाई॥

उनके हृदय की आशा कैसे निष्प्राण हो गई; जैसे जल की बूँद भूमि पर गिरकर नष्ट हो जाती है। उनके नेत्रों से विषाद उमड़ चला, तब उन्होंने कम्पित वाणी में प्रियतम को सुनाकर कहा-

अवसि जाहु मथुरा चितचोरा। हृदय लेहुँ धरि बच भल मोरा॥
गए तोर तजि देब सरीरा। सहै को बिपति बिरहु गम्भीरा॥

हे चित्तचोर! तुम मथुरा अवश्य जाओं; किन्तु मेरी यह बात भली प्रकार अपने हृदय में उतार लो कि, तुम्हारे जाने पर, मैं यह शरीर त्याग दूँगी; भला! विरह की इस भीषण विपत्ति को कौन सहे?

एहि छिनु दुखि तव बिरहु महाना। चलिबे अधर लगे मम प्राना॥
परिखि चहहु जे प्रान अधारा। कहि लखु चलन प्रसंग दुबारा॥

इस क्षण तुम्हारे विरह में अत्यन्त दुःखी हो रहे मेरे प्राण, शरीर से निकलने के लिये अधरों पर आ लगे हैं। हे प्राणाधार! यदि परखना चाहते हो, तो जाने की बात पुनः कहकर देख लो;

मिलिहि अवसि तहि मम बच साखी। मृतक बपुष मम निज चख चाखी॥
तब हरि कह बियोग यह भारी। कोउँ न चह पै नियति हमारी॥

मेरे मृत शरीर को अपने नेत्रों से देखकर, तुम्हें मेरे प्रण की साक्षी निश्चय ही मिल जायेगी। तब भगवान ने कहा कि यह महावियोग हममें से कोई नहीं चाहता, किन्तु यही हमारी नियति है।

पूरब कलह भयउँ गोलोका। परा समउँ सहिबे तिन्ह सोका॥

पूर्वकाल में गोलोक में जो कलह हुआ था, उसका फल भोगनें का समय आ गया है।

दोहा- श्रीदामहि अस साप तउँ असुर होहु तन त्यागि।
तोहि दीन्ह तेहिं साप जरु सत सम्बत बिरहागि॥२१॥

उस समय गोलोक में तुमनें (मेरे सखा और पार्षद) श्रीदामा को असुर होने का श्राप दिया था और इस कारण उसनें भी तुम्हें सौ वर्षों तक विरहरूपी अग्नि में जलनें का श्राप दिया था।

चौ.- निज बचन त मैं देहुँ बिसारी। पै भगतन्हँ पनु सकुँ कस टारी॥
सो मोहि तें सत सम्बत तोरा। होइहि बिरहुँ न संसय थोरा॥

हे राधे! मैं अपना वचन तो टाल भी दूँ, किन्तु अपने भक्त का वचन कैसे टाल सकता हूँ? अतः सौ वर्ष तक मुझसे तुम्हारा विरह होगा ही, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

तव बच मोल मोर हिय जेता। श्रीदामहि बच म्हातम तेता॥
अब जे करउँ बिरह प्रतिकारा। श्रीदामहि प्रति होइ अँधारा॥

मेरे हृदय में जितना मूल्य तुम्हारे वचन का है, उतना ही महत्व श्रीदामा के वचन का भी है। जो यदि अब मैं इस विरह को रोक दूँ, तो यह श्रीदामा के प्रति अन्याय होगा।

पुनि जेहिं हित मैं नर तनु धारा। सो अधर्म कस मिटिहि अपारा॥
पुनि मेटन तिन्हँ जे पुर जेहौं। तब तुम आपन तनु बिसरेहौं॥

फिर जिसके लिये मैंने मनुष्य शरीर धारण किया है, वह अपार अधर्म किस प्रकार नष्ट होगा और यदि मैं उस अधर्म को मिटाने के लिये मथुरा जाता हूँ; तब तुम अपना शरीर त्याग दोगी।

परा धरम संकट बड़ मोरे। तुमहि उबारु प्रनत मैं तोरे॥
सुनि अस बूझि जगत दुख राधा। अति कठिनाइ धीर हिय साँधा॥

हे राधे! मुझ पर यह बड़ा धर्मसङ्कट है; मैं तुम्हारी शरण में हूँ, अब तुम्ही मेरा उद्धार करो। भगवान के ये वचन सुनकर और संसार का दुःख समझकर राधाजी ने बड़ी कठिनाई से मन में धैर्य धारण किया।

जे तव चलन अटल जगसाईं। तब तुम पर मम कवन बसाई॥
तब हरि कहा हरषि सुखखाना। देउँ तोहि मैं यह बरदाना॥

हे सम्पूर्ण संसार के स्वामी! यदि आपका जाना अटल ही है; तो फिर मेरा आप पर क्या वश? तब भगवान श्रीकृष्ण ने हर्षित होकर कहा- हे सुख की खान राधे! मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ कि,

सहत बिरहु कर दारुन त्रासा। तुहि मम दरस होइ प्रतिमासा॥
बिरहु अवधि इहि महुँ दुखहरना। जे मास न देखौ तव चरना॥

विरह का दारुण दुःख सहते हुए भी प्रत्येक माह में तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त होगा। (तब राधाजी बोली-) हे दुःखहर्ता! विरह की इस अवधि में जिस किसी माह में मुझे आपके चरणों का दर्शन प्राप्त नहीं हुआ,

तेइ मासहि तृनवत तजि प्राना। आपु लेउँ मैं सान्ति महाना॥

उसी माह में मैं अपने प्राणों को तिनके के समान त्यागकर, स्वयं महान शान्ति प्राप्त कर लूँगी।

दोहा- सपथ लेहुँ अज मम समुख मोहि भेंटन प्रतिमास।
जातें प्रानन्हँ मिलहि कछु आश्रय दारुन त्रास॥२२॥

हे प्रिय! आज आप मेरे सन्मुख, मुझसे प्रत्येक माह में भेंट करने का प्रण कीजिये, जिससे कि विरह के इस दारुण दुःख में मेरे प्राणों को कुछ आधार मिल जायँ।

चौ.- नृप काचित प्रतीति जेहिं खाई। को कहि सक सो बिरहुँ घनाई॥
बिरहु तिमिर महुँ जे प्रतिमासा। मैं न देउँ तोहि दरस प्रकासा॥

हे परीक्षित्! भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अनुपम और निष्काम प्रीति को परिपूर्ण रूप से प्राप्त कर लेनेंवाली उन राधाजी के विश्वास को जिसनें खा लिया, उस विरह की कठोरता का बखान कौन कर सकता है? राधा के वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा कि, विरहरूपी अन्धकार में यदि प्रत्येक माह, मैं तुम्हें अपना दर्शनरूपी प्रकाश नहीं दूँ,

तो मोहि सपथ धेनु ब्रज केरी। होइ बृथा मम प्रीति घनेरी॥
मैं जोइ दीन्ह बचन तोहि लाई। समुझु सत्य तेहिं बिगत छलाई॥

तो मुझे गौमाता और व्रज की शपथ हैं और तुम्हारे प्रति मेरी महान प्रीति व्यर्थ हो जायँ। हे राधे! तुम्हें साक्षी मानकर, जो वचन मैंने तुम्हें दिया है, उसे तुम कपटरहित और सत्य समझो।

प्रीति सरिस जग आन न कोई। करइ जे महिमा जानइ सोई॥
करइ जे रस बिनु हेतु निबाहा। रसिक अधिक जनि जगत अगाहा॥

संसार में प्रेम जैसा कुछ भी नहीं है और जो प्रेम करता है, वही उसकी महिमा भी समझता है। जो बिना किसी कारण के प्रेम का निर्वाह किया करते हैं, ऐसे प्रेमी संसार में अधिक नहीं है।

कपट करत जे किए मिताई। भोगहि नरक तें निज अधमाई॥
जे तोहि अरु मोहि जानइ एका। परिहरि कुतरक रह एहि टेका॥

जो मित्रता करके, कपट करते हैं, वे अपनी अधमता से परिणाम में नर्क भोगते हैं। जो मनुष्य तुम्हें और मुझे एक समझते हैं और समस्त कुतर्क त्यागकर इसी बात पर अटल रहते हैं,

तरहि सहज सो भवनिधि कैसे। पारहि कूप उड़त खग जैसे॥

वे मनुष्य (उसी प्रकार) सहज ही भवसागर तर जाते हैं, जैसे उड़ते हुए पक्षि किसी कुएँ को पार कर लेते हैं।

दोहा- प्रिये जे सठ हिय भेद धरि हमहि न मानहिं एक।
अस अघनिधि अरु कुटिल नर भोगहि नरक अनेक॥२३॥

हे प्रिये! जो मूर्ख मनुष्य अपने हृदय में भेद धरकर, तुम्हें और मुझे एकात्मा नहीं समझते; ऐसे पाप की राशि और कुटिल मनुष्य, अनेक प्रकार के नर्क भोगते हैं।

चौ.- यह बियोग तन केर हमारा। पर अबिलग नित मानस धारा॥
मैं बसेउँ तव महुँ तुअ मम महँ। तातें त्यागि देहुँ दुख दुसह॥

यह वियोग केवल हमारे शरीर का है, किन्तु हमारे मन की धाराएँ नित्य अभिन्न है। हे प्रिये! मैं तुममें बसा हुआ हूँ और तुम मुझमें; इसलिये इस असहनीय पीड़ा को त्याग दो।

देत सुधीर राध एहिंभाँती। भवन फिरे हरि कलि आराती॥
तबहि जसोदा उन्ह हठ ठानी। बरजि चहेहुँ खलहि भय मानी॥

हे कलि के शत्रु परीक्षित्! इस प्रकार राधाजी को गहन धैर्य बँधाकर, भगवान श्रीकृष्ण अपने भवन में लौट आए। तभी मैय्या यशोदा ने भी दुष्ट कंस के भय से, कन्हैया को हठ करके रोकना चाहा;

किन्तु मायपति मति उन्ह फेरी। राजि कीन्हि हरि पीर घनेरी॥
प्रात काल बहु भेंट सजाई। नंदादिक निकसे हरषाई॥

किन्तु मायापति भगवान ने उनकी मति फेरकर, उनका महान दुःख हरते हुए उन्हें मना लिया। फिर सवेरा होने पर नन्दादि गोप बहुत प्रकार की भेंट सामग्री सजाकर, हर्षित होकर निकले।

तब तहँ भइ गोपिन्हँ अति भीरा। दहत हृदयँ जिन्हँ बिरहु गभीरा॥
सुधि न बसन बपु भरि जल नयना। करि रहि सबुहि परसपर बयना॥

उस समय वहाँ उन गोपियों की भारी भीड़ हो गई, जिनके हृदय विरह की भीषण अग्नि में जल रहे थे। उन्हें वस्त्रों व शरीर की सुध न थी और नेत्रों में जल लिये वे परस्पर बातें कर रही थी।

यह बिरंचि अति अनुचित कीन्हा। हमहि पठइ जग तिय तनु दीन्हा॥
कुटिल बिबस प्रथम त अति कीन्हा। पियहि बिरहु तापर अस दीन्हा॥

हे सखि! यह विधाता ने बड़ा ही अनुचित किया कि हमें स्त्री का शरीर देकर संसार में भेजा। (स्त्री होने के कारण) पहले ही उस कुटिल ने हमें बहुत विवश कर दिया और उस पर प्रिय से ऐसा वियोग दे दिया।

मूढ़ नैकु नहिं कीन्ह बिचारा। दीन्ह हमहि जगभर दुख भारा॥
निरखे बिनु पिय बदनु ललामा। अब कस कटिहि जिवन दुखधामा॥

मूढ़ विधाता ने थोड़ा भी विचार नहीं किया और संसार भर के दुःख का भार हमें दे दिया। श्रीकृष्ण के सुन्दर मुख को देखे बिना, दुःख का धाम यह जीवन अब किस प्रकार कटेगा?

यह प्रपंच सब अकरुर केरा। जे करि चह इहँ घोर अँधेरा॥

यह सारा प्रपञ्च अक्रूर का है, जो यहाँ भयानक दुःख उत्पन्न कर देना चाहता है।

दोहा- आली उन्ह कछु दोष नहिं यह त हरिहि कुटिलाइ।
रीझे सुनि नागरिन्ह छबि सो मख मिस चह जाइ॥२४॥

हे आली! उनका कुछ भी दोष नहीं है, यह सब तो स्वयं कान्हाँ की ही कुटिलता है; जो नागरियों की सुन्दरता के विषय में सुनकर, रीझ गए हैं और इसीलिये यज्ञ के बहाने (उनके पास) जाना चाहते हैं।

चौ.- मुखहुँ राम अरु बगल कटारा। सुषमापति कर मनु अस कारा॥

हम परिहरि कुल गुरजन माना। साध्य एक निज जीवन जाना॥

सौन्दर्य के स्वामी श्रीकृष्ण का मन ऐसा काला है कि 'मुख में राम और बगल में छुरी'। हमनें अपने कुल और अपने बड़ों की मर्यादा त्यागकर, इन्हें ही अपने जीवन का एकमात्र साध्य समझा।

तदपि न हरि कछु जानेउ मोला। बिसरि चले मनु तनक न डोला॥
अब ग्वालिन कर दुरदिनु आए। प्राननाथु चह मथुरा जाए॥

फिर भी कन्हैया ने हमारी इस बात का कोई मूल्य नहीं समझा और हमें त्यागकर चल दिये, (ऐसा करके,) उनका मन तनिक भी विचलित नहीं हुआ। अब हम गोपियों के बड़े बुरे दिन आ गए हैं, क्योंकि हमारे प्राणेश्वर श्रीकृष्ण मथुरा जाना चाहते हैं।

पुरबालान्हँ सुना मैं काना। देव दीन्ह घन छबि बरदाना॥
सखि यह भेद अवसि हरि पावा। एहि ते चलत न हिय बिचलावा॥

मैंने सुना है कि, नगर की युवतियों को विधाता ने उन्हें सौन्दर्य का बरदान दे रक्खा है। हे सखि! अवश्य ही कन्हैया को यह रहस्य ज्ञात हो गया होगा; तभी तो जाते हुए उनका हृदय विचलित नहीं हो रहा है।

मलयहृदय अब नित तहँ रहही। संतत ब्रज बिरहानल दहही॥
जिन्हँ के जौअन रूप गुमाना। तैं न करहि प्रेयसिन्हँ सनमाना॥

अपने हृदय से चंदन के समान शीतलता उत्पन्न करनेवाले कृष्ण अब से सदैव वहीं रहेंगे और व्रज निरन्तर विरह की अग्नि में जलता रहेगा। जिन पुरुषों को अपने यौवन और रूप पर अभिमान होता है, वे अपनी प्रेमिकाओं का सम्मान नहीं करते।

दोहा- सखि हमार सँग असिततनु कबहुँ कि कीन्हि भलाइ।
करिहि जे अब नागरिन्हँ प्रति आपन प्रीति देखाइ॥२५॥

(तब एक ने कहा) हे सखि! इन काले शरीरवाले कन्हैया ने हमारे साथ क्या कभी कोई भलाई की है; जो अब उन नागरियों को अपनी प्रीति दिखाकर उनके साथ करेंगे?

चौ.- असित जिनिस महिमा अति न्यारी। जोरहि रस प्रकास जे भारी॥
किन्तु फिरावहि कबहुँ न भूली। बिरहुँ ताप मोचहि मुद फूली॥

हे सखि! काली वस्तुओं की महिमा भी बड़ी विचित्र है, जो प्रेमरूपी प्रकाश को (दूसरों से पाकर अपने भीतर) एकत्र तो बहुत करती है; किन्तु भूलकर भी उसे लौटाती नहीं; अपितु आनन्द में फूलकर दुःखरूपी ताप ही देती है।

एहिबिधि बिलपत उन्ह भगवाना। रथारूढ़ भै कीन्हँ प्रनामा॥
देखि उराहन करि एक आली। कह सखि लखु कस देव कुचाली॥

इस प्रकार उनके विलाप करते हुए ही श्रीकृष्ण रथ पर आरूढ़ हो गए और उन्हें प्रणाम किया। यह देख उलाहना देते हुए एक गोपी कहने लगी- हे सखि! देखो तो! विधाता कैसा कुचक्र रचनेवाला है कि,

सबबिधि जानइ दसा हमारी। तद्यपि चलि परे रासबिहारी॥

ते त पयोदधि सम गम्भीरा। पै हम अलप धरहिं कस धीरा॥

रासेश्वर श्रीकृष्ण हमारी दशा को भली प्रकार से जानते हैं; फिर भी चल पड़े हैं। वे स्वयं तो समुद्र के समान गम्भीर हैं, किन्तु हम साधारण गोपियाँ किस प्रकार धैर्य धारण करें?

जे न अबहि मरजाद बिहाई। तौ पुनि कबहुँ न मिलिहि कन्हाई॥
पुनि का लाहु सखी अस माना। जे पिय बिरहु कराव महाना॥

जो यदि अब भी हमनें मर्यादा का त्याग नहीं किया, तो फिर कन्हैया हमें कभी नहीं मिलेंगे और हे सखि! फिर ऐसे मान का लाभ भी क्या, जो प्रियतम से महान वियोग करा दे।

दोहा- **अलि तुम्हार बच उत्तम चलि धरु चरन बिहारि।**
होत जाहिं तें पिय बिरहु लाज सो देहु बिसारि॥२६॥

हे आली! तुम्हारी बात उत्तम है, चलकर इसी समय हम उन बिहारी के चरण पकड़ लें और जिसके कारण उन प्रियतम से बिछोह हो रहा है, उस लोकलाज का त्याग कर दें।

चौ.- **अकरुर लखि उन्ह बिलपत भारी। स्यंदन हाँकेहु तब मनु मारी॥**
अस बिलोकि ग्वालिन अकुलाई। तुरगन्हि दाम गही मग धाई॥

उन्हें इस प्रकार बड़ा भारी विलाप करते देख अक्रूरजी ने मन मारकर रथ हाँका। यह देखकर गोपियाँ व्याकुल हो गई और उन्होंने मार्ग में दौड़कर घोड़ों की लगाम पकड़ ली।

पुनि कहेहुँ करुना करि भारी। कितै चले पिय हमहि बिसारी॥
बारिधि बिरहु बिसाल तिहारा। केहि भाँति हम उतरिहिं पारा॥

फिर उन्होंने अत्यधिक दुःख प्रकट करके, कहा- हे प्रियतम! आप हमें त्यागकर कहाँ चल दिये? आपके विरह का समुद्र बहुत विशाल है, हम इसका पार किस प्रकार पा सकेंगी?

तुम सीतल पुनि यह अति ताता। तरत बनहिं कस कोमल गाता॥
बन तें फिरत होति तोहि बारा। हमहि त सवँ सो रहा कुठारा॥

आप शीतल हैं और यह (वियोग का सागर) अत्यन्त तापयुक्त है; भला! इन कोमल अङ्गों से हमें कैसे तैरते बनेगा? वन से लौटते हुए जब कभी आपको विलम्ब हो जाया करता था, तब हमें तो उतना ही समय कुठार-सा (तीक्ष्ण) प्रतीत होता था और

अब तुअ जे मथुरा चलि जैही। बिरहु अथाह धरिहि कस देही॥
तव बिनु एहि निठुर जग माहीं। मनमोहन हमरेउ को आहीं॥

अब जो आप मथुरा चले जाऐंगे; तो अथाह वियोग में हम कैसे देह धारण करेंगी? हे मनमोहन! इस निष्ठुर संसार में आपके बिना हमारा और कौन है?

दोहा- **बूझ तदपि मथुरा चलत कहु कस होइ निबाह।**
जात जे नृप भय देखिहिं का करि लेइहि नाह॥२७॥

आप (इस बात को) जानते हैं, फिर भी मथुरा जा रहे हैं; तो आपही कहिये! हम कैसे जीवित रहेंगी और यदि आप केवल राजभय के कारण जा रहे हो, तो (मत जाओ) देखेंगे कि, राजा क्या बिगाड़ लेता है।

चौ.- किन्तु रहे हरि चुप अस देखी। एक अलिहि भइ खीज बिसेषी॥
अक्रूरहि एहि अनरथ हेतू। गनि कह ताकर पेमु अहेतू॥

किन्तु उनका विलाप सुनकर भी श्रीकृष्ण चुप रहे; यह देखकर एक गोपी को अत्यधिक चिढ़ हुई। अक्रूरजी को ही इस अनर्थ का हेतू समझकर, उस गोपी का निष्काम प्रेम इस प्रकार बोला-

सखि इहि सुजन नाउँ अक्रूरा। काज क्रूरता तें इन्ह क्रूरा॥
हरि हम प्रति जे प्रीति बढ़ाई। फूटि आँखि सो इहि न सोहाई॥

हे सखि! इन सत्पुरुष का नाम अक्रूर है; किन्तु इनका कार्य क्रूरता से भी अधिक क्रूर है। कन्हैया ने हमारे प्रति जो प्रेम बढ़ा रक्खा है; वह इन्हें फूटी आँख नहीं सुहाया।

बैठा बड़ दिनु घात लगाई। रचि प्रपंच लै जात कन्हाई॥
यह खल रीछ होइ अति घोरा। चहहि हमार स्याम मधु चोरा॥

यह बड़े दिनों से घात लगाए बैठा था, इसलिये अब प्रपञ्च रचकर कन्हैया को साथ लिये जा रहा है। यह दुष्ट बड़ा भीषण रीछ होकर, हमारे घनश्यामरूपी मधु को चुरा लेना चाहता है।

जे तुम चहौ पियहि लै जाना। होहु सहायक मीत समाना॥
हम सोवहि मग तुम रथु लाई। हतभागिन्हँ बपु देहुँ चलाई॥

जो यदि तुम हमारे प्रियतम को ले ही जाना चाहते हो; तो फिर मित्र के समान हमारे सहायक होओ। हम मार्ग में सो जाती हैं और तुम रथ लाकर हम हतभागिनियों के शरीर पर चला दो;

जातें हम न जरहि बिरहागी। निकसहि प्रान स्याम अनुरागी॥
सुनि उन्ह तें रथु जाइ न हाँका। एतनेहुँ जसुमति कर गहि छाका॥

जिससे कि हमें विरह की अग्नि में न जलना पड़े और हमारे ये कृष्णानुरागी प्राण भी निकल जायँ। यह सुनकर अक्रूरजी को रथ हाँकते नहीं बनता; इतनें में ही मैय्या यशोदा हाथ में छाक लिये,

कान्हँ कान्हँ कहि ब्याकुल आई। दुहु नयनन्हँ ममता निधि छाई॥
निरखु स्याम हौं माखन आना। चाखि रुचिरता करहुँ बयाना॥

कान्हा, कान्हा पुकारती हुई अकुलाकर वहाँ आ पहुँची; उनके दोनों नेत्रों में (वात्सल्य की सम्पदा के प्रतीक) अश्रु भरे हुए हैं। उन्होंने कहा- कन्हैया! देखो! मैं तुम्हारे लिये माखन लाई हूँ, चखकर इसका स्वाद तो बताओं।

दोहा- ममता श्रवहि पयोधर हृदयँ बिछोह कठोर।
सुत तोहि बिनु मम जीवन पवन सरिस बिनु ठौर॥२८॥

उनके स्तनों से दूधरूपी ममता बह रही थी और हृदय में पुत्र से बिछड़नें का कठोर दुःख था। मैय्या ने कहा- हे पुत्र! तुम्हारे बिना मेरा जीवन पवन के समान ठौर रहित (अस्थिर) है।

चौ.- राम स्याम तैं दुहुँ मम लोचन। सबबिधि मम दुख सोक बिमोचन॥
तव मुख दरसन जीवन मोही। मथुरा कस पठवहुँ सुत तोही॥

हे दाऊ! हे कान्हा! तुम दोनों तो मेरे नेत्र हो और सब प्रकार से मेरे दुःख व शोक को हरनेंवाले हो। तुम्हारे मुख का दर्शन ही तो मेरा जीवन है, फिर तुम्हें मथुरा किस प्रकार भेज दूँ।

की एहि दिनु लगि देव सँभारी। मैं राखे यह कमल उछारी॥
अकरुर तनु क्रूरता भयावन। आवहि मोहि तें इन्हहि छरावन॥

हा विधाता! क्या इसी दिन के लिये मैंने इन युगल-कमलों को पाल-पोषकर सम्हाल रखा था कि एक दिन अक्रूर के रूप में भयानक क्रूरता, इन्हें मुझसे छुड़ाकर ले जाने के लिये आ पड़े?

अह अक्रूर होत किउ क्रूरा। स्वेत बसन हिय कलुषित पूरा॥
तुअ अह मनुज किधौं जमदंडा। बसहि जासु हिय अनल प्रचंडा॥

(हे अक्रूर!) क्रूरता से रहित होकर भी तुम क्रूर क्यों हो रहे हो? तुम्हारे वस्त्र तो श्वेत हैं, किन्तु तुम्हारा हृदय पूर्णतः मलिन है। तुम मनुष्य हो या यम के दण्ड; जिसके मूल में प्रचण्ड अग्नि हुआ करती है।

तुअ न अराति होहु मम प्राना। करहु अकेलहि नगर पयाना॥
ए दुहु बिधु मम प्रानन्ह मूला। बृथा होत किहु मम प्रतिकूला॥

तुम मेरे प्राणों के शत्रु न बनों और अकेले ही मथुरा के लिये प्रस्थान करो। ये दोनों चन्द्रमा मेरे प्राणों के मूल हैं, (इन्हें ले जाकर) तुम व्यर्थ में मेरे प्रतिकूल क्यों होते हो?

क.- क्रूर तुअ अकरुर बचन कठोरतम, भेदेउँ हृदयँ तैंने दया न देखाइ हैं।
रोकइ न कोउ भए पाहन निप्रान सब, मोर ममतउँ निधि जात रे लुटाइ हैं॥
जोइ जीहँ ब्रजेसहुँ पितु कह्यो मोहि मात, ताहि तें चलउँ सुना पै न मीचु आइ हैं।
मोरे कर तनय तें लिखौ है बिछोह घनौ, देव पापी मम उर बरछि चलाइ हैं॥

हे अक्रूर! तुम बड़े ही क्रूर हो और तुम्हारे वचन कठोरतम है। मेरे हृदय को विदीर्ण करते हुए तुमनें तनिक भी दया नहीं दिखलाई। हा रे! मेरी ममता की सम्पदा को लूटा जा रहा है, किन्तु कोई भी (ऐसा होने से) रोक नहीं रहा है; सब पत्थर के समान संवेदनारहित हो गए हैं। जिस जिह्वा ने नन्द को पिता और मुझे मैय्या कहा था, उसी से आज मैंने 'जाता हूँ' ऐसा सुना हैं, फिर भी मुझे मृत्यु नहीं आई। लगता है! मेरे हाथ में पुत्र से दारुण वियोग लिखा है; विधाता पापी है, जिसनें मेरे हृदय पर (पुत्रवियोगरूपी) यह बरछी चला दी।

दोहा- माखन जाचिहि मथनि गहि मोतें सुत अब कौनु।
ठुमुकि चरिहि को मम अजिर करिहि को सुखमय भौनु॥२९॥

हे पुत्र! मथानी पकड़कर (हठपूर्वक) अब मुझसे कौन माखन माँगेगा? अब मेरे आँगन में (नाचते हुए) कौन ठुमुक-ठुमुक कर चलेगा और कौन मेरे भवन को सुख से परिपूर्ण करेगा?

चौ.- जे रिसाइ सुरपति पुनि आवा। तव बिनु तिन्हँ को देब सिखावा॥
मातु टेर हित जे मम काना। तृषहि देब को तोष पुराना॥

यदि क्रुद्ध होकर इन्द्र पुनः आ गया, तो हे पुत्र! तुम्हारे बिना उसे कौन सिखावन देगा। 'मैय्या' यह पुकार सुननें के लिये, जब मेरे कान तरसेंगे, तो वह पहलेवाला संतोष उन्हें कौन देगा?

बिपिन फिरन अब किन्ह मग जोहू। किन्ह नटखटपनु पर अब मोहू॥

को दधि चोरि मोहि सुख देही। पूप मलाइ मोटि को लेही॥

अब मैं वन से किसके लौटनें की प्रतीक्षा करूँगी और किसकी नटखटता पर रीझूँगी? दहीं चुराकर अब मुझे कौन सुख देगा और रोटी पर बहुत-सी मलाई कौन लेगा?

होइहि तव बिनु ब्याकुल धेनू। को चराव तिन्ह बाजत बेनू॥
तनक बदनु बिधु करि मम ओरा। सुत अनुभउँ मम पीर कठोरा॥

हे कान्हा! जब तुम्हारे बिना गायें व्याकुल हो जाऐंगी, तब (तुम्हारें समान) मुरली बजाते हुए उन्हें कौन चराऐगा? हे पुत्र! तनिक अपना चंद्रमुख मेरी ओर करके, मेरी इस कठोर पीड़ा का अनुभव तो करो।

रुद्धेहु कंठ कहत दुख भारी। बिकल सरित मानहुँ बिनु बारी॥
को सुख आस मूढ़ मम प्राना। अबहि लागि नहिं कीन्हँ पयाना॥

इस प्रकार कहते हुए दुःख की अधिकता से उनका गला रूँध गया; मानों जल के बिना कोई नदी व्याकुल हो गई हो। न जाने वह कौन-सा सुख है, जिसकी आशा में मेरे ये मूढ़ प्राण अब तक नहीं गये!

दोहा- **कहि न बनौ उन्हँ ते अधिक नृप तनु मुरुछा छाइ।**
मनहुँ दीपसिख तेल बिनु उतरि परि मुरझाइ॥३०॥

हे परीक्षित्! इससे अधिक मैय्या से कुछ न कहते बना; उनके शरीर में मूर्छा व्याप्त हो गई; मानों तेल के घट जानें से किसी दीपक की लौ तेजहीन होकर घट गई हो।

मासपारायण इक्कीसवाँ बिश्राम

चौ.- **उन्ह सँग रोहिनि करहि बिलापा। अमल ममत्व सहहि अति तापा॥**
कबहुँ परहि महि अति बिकलाई। उठि पुनि टेरहि कबहुँ कन्हाई॥

उनके साथ रोहिणीजी भी विलाप कर रही है, उनकी निर्मल ममता अत्यंत पीड़ित हो रही है। वे कभी अत्यन्त व्याकुल हो भूमि पर गिर पड़ती हैं और कभी उठकर पुनः कन्हैया को पुकारने लगती हैं।

ब्रज भा एहिबिधि सोक निवासा। परा जलज बन जनु हिम मासा॥
ममता रस प्रतीति अकुलाई। तब्ध रथहुँ चारिउ दिसि छाई॥

इस प्रकार सम्पूर्ण व्रज में शोक का निवास हो गया, मानों कमलवन को शिशिरऋतु मार गई हो। (ममता की प्रतीक) माताएँ, (प्रेम की प्रतीक) गोपियाँ और (विश्वास के प्रतीक) समस्त सखा व्याकुल और स्तब्ध हुए से रथ के चारों ओर खड़े हैं।

नयन श्रवहि सब प्रीतिहि मोती। जिन्हँ महुँ मंद आस कइ जोती॥
सुष्क बिपिन धावत अति वाता। ढारि लागि तहँ भय दुखदाता॥

सबके नेत्रों से प्रेम के मोती झर रहे हैं, जिसमें आशा की ज्योति क्षीण है। उनके निराश हृदयरूपी वन में, बहती हुई पीड़ा की प्रचण्ड वायु, वहाँ (कृष्ण के समक्ष) दुःखदायक भय उढ़ेलने लगी।

लखि अस बिकल भए गिरिधारी। रथ तजि दीन्ह धीर उन्ह भारी॥
पुनि जननिहिं सप्रेम उर लाई। गोपिन्हँ सहित लाग समुझाई॥

यह देखकर गिरिधर श्रीकृष्ण भी व्याकुल हो गए और रथ से उतरकर उन्होंने उन्हें महान धैर्य बँधाया। फिर मैय्या यशोदा को प्रेम सहित हृदय से लगाकर, गोपियों सहित (सबको) समझानें लगे।

दोहा- **प्रियजन परिहरि मोह दुख हरषि बिदा करु मोहिं।**
सुजनन्हँ संकट मेटि सब बेगि मिलउँ पुनि तोहिं॥३१॥

(श्रीकृष्ण बोले-) हे प्रियजनों! आप सब इस दुःख और मोह का त्याग कर, प्रसन्नतापूर्वक मुझे विदा कीजिये। मैं सत्पुरुषों के समस्त सङ्कटों का नाश करके, शीघ्र ही पुनः तुमसे आ मिलूँगा।

चौ.- **किन्तु बात उन्ह सुन कोउ नाहीं। छिन छिन सबहि जात अकुलाहीं॥**
जब हरि देखा अति दुख माहीं। धरहि अधिक सँव जिव कोउँ नाहीं॥

किन्तु उनकी बात कोई नहीं सुनता; जाते हुए प्रत्येक क्षण के साथ सब और अधिक व्याकुल होते जा रहे हैं। जब प्रभु ने देखा कि दुःख की अधिकता में कोई भी अधिक समय तक जीवित रहीं रहेगा;

तब मायापति सबन्हँ भुलाई। बिदा माँगि लग पुनि अतुराई॥
बिबस मातु तब उन्ह उर लाई। बिरहु ब्यथित कह दृगन्हँ बहाई॥

तब मायापति श्रीकृष्ण ने सबको मोहित कर दिया और शीघ्रता से उनसे विदा माँगनें लगे। तब विवश हुई मैय्या ने उन्हें हृदय से लगाया और विरह वेदना में अश्रुपात करती हुई बोली-

तुरत फिरहुँ सुत धनु मख देखी। मुअँ तब लगि रह चिंत बिसेषी॥
दुखिन्हँ प्रगाढ़ धीर हरि दीन्हा। रथु चढ़ि पुर पयान पुनि कीन्हा॥

हे पुत्र! धनुष-यज्ञ देखकर तुरंत लौट आना, (जब तक तुम नहीं लौटते) तब तक मुझे तुम्हारी विशेष चिन्ता रहेगी। तब दुःखी स्वजनों को प्रभु ने प्रगाढ़ धैर्य बँधाया, फिर रथारूढ़ हो उन्होंने मथुरा के लिये प्रस्थान किया।

ग्वालिन मलिन मनहुँ निधि हारी। परी धरनि बिलपहि अति भारी॥
जात निरखि रथु करुन पुकारी। अति आकुल कहि लगि महतारी॥

उस समय शोकाकुल गोपियाँ भूमि पर गिर पड़ी और बड़ा भारी विलाप करने लगी; मानों उन्होंने अपनी सारी सम्पदा गवाँ दी हो। रथ को जाते हुए देख करुण पुकार करके, अत्यन्त व्याकुल हुई मैय्या कहने लगी-

चपल चारु दृग दृष्टि चलाई। लखु सुत मातु तोर दुख छाई॥

अखय जिवनधन रतन अमोला। तहि गवाँइ प्रान न भै लोला॥

हे पुत्र! अपने सुन्दर चञ्चल नेत्रों की चितवन से इस ओर देखो! कि तुम्हारी मैय्या शोक में डूब गई है। हे जीवन की अक्षय सम्पदा! मेरे अमूल्य रत्न! तुम्हें गवाँकर भी मेरे प्राण नहीं निकले।

बदनु मयंक लजावनिहारा। देखरावहुँ सुत पुनि एक बारा॥
पुत्र सुपातर आग्याकारी। तव बिनु ब्रज बूड़हि तम भारी॥

हे पुत्र! (अपनी सुन्दरता से) चन्द्र को भी लज्जित कर देनेवाला अपना मुख एक बार पुनः दिखला दो। हे आज्ञाकारी सत्पात्र पुत्र! तुम्हारे बिना यह व्रज महान अन्धकार में डूब रहा है।

बैठि उछंग निरखि मम पीरा। मृदु हँसि देत मोहि किन धीरा॥
हा बिधना रचि प्रपंच भारी। तैं दुखि कीन्ह एक महतारी॥

मेरी पीड़ा को देखते हुए, मेरी गोदी में बैठकर, मधुर मुस्कान से तुम मुझे धैर्य क्यों नहीं बँधाते? हा विधाता! तुमनें बड़ा गहरा प्रपञ्च रचकर, आज एक माता को दुःखी कर दिया।

दोहा- **मथुरहि मारग सबन्हँ दृग उर दह बिरहु कठोर।**
दूर जात रथु जसहि जस तस तस बढ़ दुख घोर॥३२॥

सबके नेत्र मथुरा के मार्ग पर ही लगे हैं और उनके हृदय कठोर विरह में जल रहे हैं। श्रीकृष्ण का रथ जैसे-जैसे दूर जा रहा था, वैसे-ही वैसे उनका भीषण दुःख बढ़ता जा रहा था।

चौ.- **रथु पीरित रज मंद भई जब। तब ब्रजबासिन्हँ लुटि गयऊ सब॥**
परे धरनि लोटहि नरनारी। मनु तुच अनल रसायन जारी॥

रथ के पहियों से उठी हुई धूल जब कम हो गई, तब मानों व्रजवासियों का सर्वस्व लुट गया। गोपगोपियाँ भूमि पर गिर पड़े और लोटनें लगे, मानों दाहक रसायन के स्पर्श से चमड़ी झुलस गई हो।

बचन न मुख न रही सुधि गाता। मनहुँ तालबन तड़ित निपाता॥
जलगत नयन रहे पथराई। जतनै गति जनि जात कहाई॥

मुख से न वाणी निकलती थी और न ही उन्हें शरीर की सुध थी; मानों तालवन को बिजली मार गई हो। अश्रु रहित हुए उनके नेत्र पथरा रहे थे; यत्न करके भी उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

जरत हृदयँ हरि मूरति राखी। फिरे होइ निज चिर दुख साखी॥
परत उठत जहँ तहँ हरि सुरती। चलहि बिपथ पथ बियोग मूरति॥

वे सब अपने जलते हुए हृदय में कन्हैया की मूर्ति धरे; अपने चिर-दुःख के साक्षी आप होकर लौट पड़े। वियोग की वे मूर्तियाँ कृष्णस्मृति में जहाँ-तहाँ उठती-गिरती, मार्ग व मार्ग रहित होकर चल रही है।

सूझहि पंथ न सुनि पर काना। गाँउ फिरे हिय तिमिर महाना॥
बीथि बजारु सूनपनु घाऊ। सलि सलि होन लाग निरुपाऊ॥

न उन्हें मार्ग सूझता है और न कानों से सुनाई पड़ता है; इस प्रकार वे गाँव लौट आए, उनके मन में घोर निराशा थी। गलियों व बाजारों को लगा हुआ सूनेपन का घाव, सल-सलकर उपचार रहित होता जा रहा था।

दोहा- इहाँ गांदिनिनंदन करि लग हृदयँ बिचार।
जानउँ खलहि जुगुति सकल आने तदपि कुमार॥३३॥

इधर गांदिनीपुत्र अक्रूरजी मन में विचार करने लगे कि, मैं दुष्ट कंस की कुचाल के विषय में सबकुछ जानता हूँ; फिर भी मैं इन कुमारों को (मथुरा ले जाने के लिये) ले आया।

चौ.- कहाँ राहु कहँ ए बिधु जोरी। देव भई मोतें कस खोरी॥
करइ कंस जे इन्हँ संघारा। तब ह्वै जाइ मोर मुख कारा॥

कहाँ कंसरूपी राहु और कहाँ चन्द्रमाओं की यह जोड़ी? हे विधाता! मुझसे यह कैसी भूल हो गई है? जो यदि कंस इन्हें मार डालेगा; तो सब ओर मेरी अपकीर्ति हो जायेगी।

जब सरबग्य द्वंद्व उन्ह जाना। जुगुति कीन्हि हिय किए निदाना॥
पुनि पितु सहित सबन्हँ करि सैना। पठए आगेहुं राजिवनैना॥

जब सर्वज्ञ श्रीकृष्ण को उनकी यह दुविधा ज्ञात हुई; तब उसका निदान करने के लिये उन्होंने एक युक्ति सोची। फिर बाबा नन्द सहित अन्य सबको सङ्केत करके, उन्होंने आगे भेज दिया।

गए जानि उन्ह लखि सरि तीरा। रथ तजि जल पिएहुं दुहुँ बीरा॥
मज्जनु करि दुहु पुनि फिरि आने। तब गै अकरुर सरित नहाने॥

उन्हें गया जानकर और यमुनातट निकट आया देखकर, वे दोनों भाई रथ से उतरे और उन्होंने नदी से जल पिया। फिर स्नान करके, वे दोनों लौट आये; तत्पश्चात् अक्रूरजी यमुना स्नान के लिये गये।

सरि जल गहन अमल अति सोहा। तहाँ नहात कुमारन्हँ जोहा॥
परम चकित फिरि जब रथु देखा। तेपि दीप्त उन्ह तेज बिसेखा॥

नदी का जल गहरा, निर्मल व अत्यन्त शोभित था, वहाँ पहुँचकर उन्होंने दोनों कुमारों को वहाँ नहाते देखा। तब अत्यन्त चकित हो, उन्होंने रथ की ओर देखा, तो वह भी उन्हीं दोनों के तेज से प्रदीप्त था।

पुनि पुनि उन्हँ देखा दुहुँ ओरी। पाइ कुअरन्हँ एक एक जोरी॥

उन्होंने बार-बार दोनों ओर देखा और दोनों ही ओर उन्हें कुमारों की एक-एक जोड़ी दिखलाई पड़ी।

दोहा- पुनि सरितल दाउहि लखेउ बैठे सेष सरूप।
बिष्नु रूप कन्हँ कुँडलितल छबि लहँ परम अनूप॥३४॥

फिर उन्होंने देखा कि दाऊ यमुना के तल पर शेषजी के रूप में बैठें हैं और कन्हैया भगवान श्रीविष्णु के रूप में उनकी कुण्डली पर महान और अनुपम शोभा लिये विराजमान हैं।

चौ.- कंबु चक्र गद पंकज धारी। अति मोहक लागइ भुज चारी॥

चरन कमल कर कमल पलोटति। बारिधिसुता लाग अति मोदति॥

शङ्ख, चक्र, गदा और कमलपुष्प धरे, उनकी चार भुजाएँ हैं, जो अत्यन्त मोहक जान पड़ती थी। अपने करकमलों से उनके चरणकमल दबाते हुए, समुद्रकन्या लक्ष्मी परम आनन्दित जान पड़ रही थी।

नौ जोगीस्वर भगवति सारद। भृगु आदिक कुबेर मुनि नारद॥
हर बिरंचि सुरगन उरगारी। रहे सदिसिप सलाघत भारी॥

नौ योगीश्वर, भगवती सरस्वती, भृगु आदि सप्तर्षि, देवर्षि नारद, कुबेर, सर्पशत्रु गरुड़, देवताओं व दिक्पालों को साथ किये शिवजी और ब्रह्माजी, उनकी महान स्तुति कर रहे थे।

ग्वालिन सब छबि केर लता सी। रासत रहि उन्ह सँग मँद हासी॥
गुन गावहि किन्नर गधर्बा। कमलवदनु मधु लूटहि सर्बा॥

सौंदर्यलता-सी सब गोपियाँ मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए, भगवान के साथ रासनृत्य कर रही थी। किन्नर व गन्धर्व उनका गुणगान कर रहे थे और सब उनके मुखकमल के दर्शनों का मधु लूट रहे थे।

तीरथ सकल सरित सुररूपा। हरि अस्तुति करि रहे अनूपा॥
लखि प्रतीति उन्हँ लहेहुँ प्रमाना। कन्हिया अहहि प्रगट भगवाना॥

(वहाँ उपस्थित) समस्त तीर्थ और नदियाँ भी दिव्य शरीर धरकर, भगवान की अनुपम स्तुति कर रहे थे। यह देखकर, उनके विश्वास को यह प्रमाण मिल गया कि, श्रीकृष्ण साक्षात् नारायण हैं।

दोहा- **परिछित उन्ह हिय संसय मायापति हरि लीन्ह।**
अकरुर तब गदगद गिरा प्रमुदित अस्तुति कीन्ह॥३५॥

हे परीक्षित्! इस प्रकार मायापति भगवान ने (अपना प्रभाव दिखाकर) अक्रूरजी के हृदय का संशय हर लिया; तब वे अत्यन्त आनन्दित होकर, गद्गद् वाणी से उनकी स्तुति करने लगे।

चौ.- **नायकु कोटि कोटि ब्रह्मंडा। प्रनवउँ अकल अनंत अखंडा॥**
गोलोकाधिप राधास्वामी। सब सुखधाम नमामि नमामी॥

हे कोटी-कोटी ब्रह्माण्डों के नायक! हे कलारहित, अनन्त व अखण्ड ब्रह्म! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे गोलोकाधिपति! हे समस्त सुखों के धाम, राधेश! आपको नमस्कार है, नमस्कार है।

ब्रजपति गौपालक भगवंता। नर भै किए हेतु सुखि संता॥
बिबिध चरित जे जगत प्रमोदहि। बन्दउँ सो सुत नंद जसोदहि॥

हे व्रजेश! हे गोपाल! हे भगवन्! सत्पुरुषों को सुखी करने हेतू; आप मनुष्य हुए हैं। जो अनेक लीलाओं से संसार को परम आनन्द देते हैं, नन्द-यशोदा के उन पुत्र की मैं वन्दना करता हूँ।

देअकि हित जे सब सुखखाना। जिन्हँ बिनु बसुहि न जग सुख आना॥
देइ जे महाखलन्हँ भव तारी। मोपर नेह राख सो भारी॥

जो देवकी के लिये सब सुखों की खान हैं, वसुदेवजी के लिये जिनके अतिरिक्त संसार में अन्य सुख नहीं है और जो महान दुष्टों को भी भवसागर से पार लगा देते हैं, वे प्रभु मुझ पर अपना महान स्नेह बनाए रखें।

गिरा मोर रह प्रभु गुन लीना। श्रवन रहहि तव सुजसु तलीना॥
मम भुज रत रह प्रभु कर काजा। रहहि रूप यह हृदयँ बिराजा॥

हे प्रभु! मेरी वाणी आपका गुणगान करती रहे; मेरे कान आप ही का सुयश सुननें में तल्लीन रहे; मेरी भुजाएँ आपका कार्य करने में व्यस्त रहे और आपकी यह छवि मेरे हृदय में विद्यमान रहे।

दोहा- **नाथ मोर उर रहहि नित तव पद पंकज भृंग।**
पुनि जीवन मम बीतहि बसत सदा तव संग॥३६॥

हे नाथ! मेरा हृदय नित्य ही आपके चरणकमलों का भौंरा बना रहे और मेरा जीवन सदैव आपके निकट रहते हुए ही बीते।

चौ.- **सुनि हरि कहा होइहिं ऐहीं। करि दंडवत फिरत तब तेहीं॥**
पुनि रथु चढ़ि उन्ह संग समोदा। चले नगरु दिसि करत बिनोदा॥

यह सुनकर भगवान ने कहा- ऐसा ही होगा; तब लौटते हुए उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया। फिर रथ पर चढ़कर, दोनों भाईयों के साथ; विनोद करते हुए, वे सानन्द मथुरा की ओर चले।

संध्यहुँ पुर एक उपबन आए। मिले नंद तहँ उन्ह हरषाए॥
अकरुरहि हँसि कह सुखदाता। अबहि तात मैं सखन्हँ सँघाता॥

संध्या होने पर, वे नगर के एक उपवन में आ पहुँचे; वहाँ नन्दजी उनसे हर्षित होकर मिले। (उस समय) सुखदायक श्रीकृष्ण ने मुस्कुराकर अक्रूरजी से कहा- हे तात! मैं अभी अपने सखाओं को साथ लिये;

तोर पाछ पुर देखन आवउँ। मोर खबरि तुम नृपहि सुनावउँ॥
करहु प्रथम पावन मम धामा। जातें मिलहि मोहि बिश्रामा॥

आपके पीछे-पीछे नगर देखने आ रहा हूँ; अतः आप जाकर मेरे आने की सूचना कंस को दे दीजिये। तब उन्होंने कहा- हे भगवन्! पहले चलकर आप मेरा घर पवित्र कीजिये; जिससे मुझे संतोष प्राप्त हो।

अज होइहि इहँ मोर निवासा। काल्ह करउँ खल केर बिनासा॥
तेहिं पाछे आवउँ तव धामा। जाहुँ नगर भजु मोहि निकामा॥

तब श्रीकृष्ण ने कहा कि, आज तो मेरा निवास यही होगा और कल मैं उस दुष्ट कंस का संहार करूँगा। तत्पश्चात मैं आपके घर आऊँगा; अब आप नगर में जाईये और मेरा निष्काम भजन कीजिये।

दोहा- **करि प्रनाम अक्रूर तब कहा कंस पहि जाइ।**
मैं देअकि कर दुहुँ सुवन आने नाथ लिवाइ॥३७॥

तब कंस के समक्ष जाकर अक्रूरजी ने प्रणाम करके कहा- हे नाथ! मैं देवकीजी के दोनों पुत्रों (श्रीकृष्ण और बलराम) को अपने साथ लिवा लाया हूँ।

चौ.- नंदराय तव आयसु मानी। सुतन्हँ सहित आए रजधानी॥
सुनत कंस हिय अति हरषाना। बिदा कीन्ह पुनि करि सनमाना॥

आपका आदेश मानकर, नन्दरायजी अपने दोनों पुत्रों सहित मथुरा में पधार चुके हैं। यह सुनकर कंश मन-ही मन बहुत प्रसन्न हुआ; फिर उसनें अक्रूरजी को सम्मानूर्वक विदा किया।

इहाँ तात तें अनुमति पाई। पुर निरखन निकसे दुहुँ भाई॥
ते बिचरहि कस ग्वालन्हँ संगा। सिसु मानस जनु उमग तरंगा॥

इधर नंदबाबा से अनुमति पाकर, वे दोनों भाई नगर देखने निकले। अपने ग्वाल सखाओं के साथ वे दोनों नगर में किस प्रकार भ्रमण कर रहे हैं; जैसे किसी बालक के मन में कोमल भाव उमड़ते हैं।

अरि हित गढ़ दुरजय अति बंका। कंस बसहि जहँ सहज असंका॥
तिन्ह परकोट स्वेत पाषाना। सुदृढ़ द्वार सब असनि समाना॥

मथुरा का वह किला शत्रुओं के लिये दुर्जय और बड़ा ही भव्य था; जिसमें स्वभाव से ही निडर कंस बसता था। उसके परकोटे श्वेत पाषाण से निर्मित थे और किले के सब द्वार वज्र तुल्य सुदृढ़ थे।

जहँ तहँ हाट चारु चौगाना। श्रीजुत हय गयसाल महाना॥
अखिल नगरु कइ सुषमा भारी। पथ दुहु कूल भवन घन क्यारी॥

नगर में जहाँ-तहाँ हाट व सुन्दर चौराहे थे और वहाँ की गजशालाएँ व अश्वशालाएँ महान वैभव से सम्पन्न थी। सम्पूर्ण नगर ही बड़ा सुन्दर था, जहाँ मार्ग के दोनों ओर भवनों की घनी कतारें थी;

ते मनि हेम केर छबि छाए। सिखर लहँ न बिनु दृष्टि उठाए॥
पथिकन्हँ हित उपबन तहँ नाना। कूप बापि जल पोषक प्राना॥

वे भवन स्वर्ण और मणियों की सुषमा से अलंकृत थे और बिना दृष्टि उठाए उनके शिखरों को देख पाना सम्भव न था। पथिकों के लिये अनेक उपवन थे; जहाँ खुदे हुए कुओं व बावड़ियों का जल प्राणरूपी उर्जा से परिपूर्ण था।

कज्जलितट मनिमय सोपाना। सुन्दर घाट रहे तहँ नाना॥

यमुना के तट पर मणियों से सज्जित सीढ़ियाँ बनी थी और व हीं अनेक सुन्दर घाट भी थे।

दोहा- **लघु तरंगमय सरि सुभद सोभा अतिसय होति।**
जलज जूथ जल बहुबरन लखि पर मंजुल मोति॥३८॥

छोटी-छोटी तरङ्गों से युक्त मङ्गलदायिनी यमुनाजी की महान शोभा हो रही थी और उनके जल में अनेक रङ्ग के कमलसमूह खिले थे, जो बिखरे हुए सुन्दर मोतियों-से दिखाई पड़ते थे।

चौ.- **बिबुधन्हँ सम सुन्दर नरनारी। जिन्हँ तें पुर सुषमा लहँ भारी॥**
अस सुरम्य पुर महुँ नंदलाला। बिचरहि दाउ सहित करि ग्वाला॥

वहाँ के स्त्री-पुरुष देवताओं के समान सुन्दर थे, जिनसे नगर भी महान सुन्दरता प्राप्त करत था। ऐसे सुन्दर व रमणीक नगर में दाऊ और सखाओं के साथ श्रीकृष्ण भ्रमण कर रहे हैं।

तारक अगवन पुर जब जाना। जिअँ उठि पुनि उन्ह आस अप्राना॥
आतुर धाए अस नरनारी। सिंधु उमग जस बिधुहि निहारी॥

जब नगर को अपने तारणहार का आना ज्ञात हुआ, तो उसकी निष्प्राण आशा पुनः प्राणयुक्त हो उठी। उनके दर्शनों की इच्छा लिये सब स्त्रीपुरुष ऐसे दौड़ पड़े; जैसे (पूर्ण) चन्द्र को उदित देख समुद्र उमड़ पड़ता है।

कछु तिय लख उन्ह भवन अटारी। भै झरोख कछुकन्हँ सुखकारी॥
दृग सुख जोरहि कछु पट ओटा। सकुचि कीन्ह कोउँ अंचलु मोटा॥

कुछ स्त्रियाँ अपने भवन की अटारियों पर चढ़कर, उन्हें देख रही है; तो कुछ के लिये झरोखे सुखदायक होने लगे। कुछ स्त्रियाँ पर्दों की आड़ से नेत्रलाभ पा रही हैं; तो कुछ ने सकुचाकर, मुख पर लम्बा घूँघट कर लिया।

कछु बीथिन्हँ घन जूथ बनाई। चितवत कर निज भाग बड़ाई॥
बिसरि सदन कछु पाछे लागी। तनु सुधि नहिं हिय हरि अनुरागी॥

कुछ स्त्रियाँ गलियों में समूह बनाकर, उन्हें देखते हुए अपने भाग्य को सराहने लगी और कुछ तो शरीर की सुध भूलाए घरों से निकली और हृदय में कृष्णप्रेम की अधिकता से उनके पीछे हो लगी।

दोहा- **मनमोहन छबिबारिधि सरित सरिस पुरनारि।**
होन चहहि जे जलधिमय कुल मरजाद बिसारि॥३९॥

मनमोहन श्रीकृष्ण सौन्दर्य के समुद्र है और नागरियाँ नदियों के समान (समर्पण की प्रतीक) हैं; जो अपने कुल की मर्यादा को लाँघकर, श्रीकृष्णमय हो जाना चाहती हैं।

चौ.- मखकर्ता द्विज कछु सो कालहि। देन असीष अए नंदलालहि॥
कीन्हँ प्रनाम उभय उन्हँ भेंटे। धीर देत पुनि भय सब मेटे॥

उसी समय कुछ यज्ञनिष्ठ ब्राह्मण, नंदनन्दन श्रीकृष्ण को आशीर्वाद देने वहाँ पधारे। तब प्रणाम करके, दोनों भाई उनसे मिले और धैर्य बँधाकर, उन्होंने उनका समस्त भय दूर कर दिया।

पुलकि पाइ नयनन्हि छबि भारी। बरषहि सुमन बिबिध पुरनारी॥

उनकी महान शोभा का दर्शन अपने नेत्रों से पाकर पुलकित हुई नागरियाँ, अनेक प्रकार के पुष्प बरषा रही हैं।

हरि कह पुर कइ बीथि भुलैया। चलिअ परसपर कर गहि भैय्या॥
मूरति उभय साँवरी गोरी। बदनु कुटिल अलकावलि दौरी॥

कन्हैया बोले- हे भाई! नगर की गलियाँ भ्रमित कर देनेवाली है; इसलिये सब आपस में हाथ पकड़कर चलो। वे दोनों भाई श्याम व गौरवर्ण के हैं और उनके मुखों पर घुँघराली लटें झूल रही हैं।

काँधन्हँ नील पिअर रुचिराम्बर। मनु जुग सुरधनु घन ससि ऊपर॥
कान्हँ मृदुल कर कमल भँवावहि। मार सुमन धनु मनहुँ फिरावहि॥

कन्धों पर नीले व पीले रङ्ग के सुन्दर वस्त्र हैं; मानों मेघ व चन्द्रमा पर दो इन्द्रधनुष स्थित हों। कन्हैया अपने कोमल हाथ में कमल-पुष्प घुमा रहे हैं, मानों कामदेव पुष्पधनुष फिरा रहे हों।

चख खंजन भुज सिंधुरसुंडा। अधर कमलदल बिभव अखंडा॥
बिचरनि नाग ठवनि मृगनायक। तिलक भौंह जनु मनसिज सायक॥

उनके नेत्र पक्षी के नेत्रों जैसे हैं, भुजाएँ हाथी की सूँड़ जैसी और अधरों पर कमल की पङ्खुड़ियों का वैभव छाया हुआ है। उनकी चलने की शैली हाथी की चाल है, खड़े होने का ढंग सिंह के सदृश है और उनकी भौंहों के मध्य लगा तिलक तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कामदेव का वाण ही हो।

दोहा- बार बार इत नारि पुर उभयन्हि छबिहि सिहात।
लूटत सो छबि संतत दृग छिन लौ न अघात॥४०॥

इधर नगर की स्त्रियाँ बार-बार श्रीकृष्ण व दाऊ की महान शोभा की सराहना कर रही है। उनकी उस महान शोभा को निरन्तर लूटते हुए उनके नेत्र, क्षण-भर के लिये भी नहीं अघाते।

चौ.- सुमुखि सुना मैं ए दुहुँ बालक। देअकिसुत भाबी जदुपालक॥
जे ससि सम उजवल तन वारा। सो बसुद्यौ कर जेठ कुमारा॥

एक गोपी बोली- हे सुमुखि! मैंने सुना है, ये दोनों बालक देवकी के पुत्र और यदुवंश के भावि नायक हैं। जो चन्द्र के समान उज्जवल शरीर वाले हैं, वे वसुदेव के बड़े पुत्र हैं और

दाउ नाउँ मुनि कह तें सेषा। तिहुँपुर जासु प्रभाउँ बिसेषा॥

तेहिं प्रलंब हता बन खेला। रिस ताकर जिमि दुरगम सैला॥

उनका नाम दाऊ है; मुनि कहते हैं वे स्वयं शेषजी हैं, जिनका त्रिलोक में विशिष्ट प्रभाव है। वन में उन्होंने खेल-ही खेल में प्रलम्ब को मार डाला था, उनका क्रोध पर्वत जैसा दुर्गम है।

बहुरि बरन जिन्हँ बारिद जैसा। मोहिनि जप जे मनहि बिसेषा॥
सो कुमार देअकि सुत छोटा। नाउ कृष्न मन कर कछु खोटा॥

फिर जिनके शरीर का वर्ण जलयुक्त मेघ के समान श्याम है और जो मन-ही मन कोई विशेष मोहिनी मन्त्र जपते रहते हैं; कृष्ण नाम के वे कुमार, देवकीजी के छोटे पुत्र हैं, जो मन के कुछ नटखट हैं।

गोपिन्हँ बाँधि निज मधुर हासा। कीन्ह मधुबिपिन अनुपम रासा॥
जासु बिषय मैं अस सुनि राखा। बिबुध आइ सो उत्सव चाखा॥

अपनी मधुर मुस्कान से गोपियों को अपने वश में करके, उन्होंने मधुवन में (ऐसा) अनुपम रास किया था, जिसके विषय में मैंने यह सुन रक्खा है कि, स्वयं देवताओं ने आकर उस उत्सव को देखा था।

बलनिधि अस तुलना नहिं जासू। महादानवन्हँ कीन्ह बिनासू॥
अघ बक उत्कचादि बलवाना। बूड़े तिन्ह बल उदधि मुहाना॥

बलवान तो ऐसे हैं कि जिसकी कोई तुलना नहीं; उन्होंने बड़े-बड़े महादैत्यों को मार डाला है। अघ, बक और उत्कच आदि बलवान दैत्य, उनके बलरूपी सागर के मुहानें पर डूब चुके हैं।

ए दोउ पालित जसुमति केरे। आए मधुपुर धनुमख प्रेरे॥
पुनि कछु दिवस माँझ ब्रज फिरिही। महाबिरहु गोपिन्हँ हिम करिही॥

यशोदाजी के द्वारा पाले गए ये दोनों कुमार मथुरा में धनुष-यज्ञ देखने आए हैं और कुछ ही दिनों में पुनः व्रज लौटकर, महान विरह से पीड़ित गोपियों को पुनः शान्ति प्रदान करेंगे।

दोहा- **त्रिकालग्य मुनि गरग कह दाउ सेष अवतार।**
बहुरि कहात जे कृष्न कन्हँ सो जग पालनहार॥४१॥

त्रिकालदर्शी महर्षि गर्गजी कहते हैं कि दाऊ शेषजी के अवतार हैं और जो कृष्ण व कन्हैया कहलाते हैं, वे संसार का पालन करनेवाले भगवान श्रीविष्णु हैं।

चौ.- **सखि ए दुहुँ लघु ललित कुमारा। सत्य कहा तुम सुर अवतारा॥**
गगन गिरा जिन्हँ बिषय बखाना। जिन्हँ तें भय लहँ खल अघखाना॥

एक ने कहा- सखि! तुम सत्य कहती हो! सुन्दर और अल्प-अवस्थावाले ये बालक देवताओं के अवतार हैं; आकाशवाणी ने जिनके विषय में कहा था और पाप की खान दुष्ट कंस जिनसे डरता है।

उभय सोइ जे सिसु तनु लाए। कंसहि बधन जग्य मिस आए॥
मतिहि तोर बाँवरि भरमाई। लागहि कनक खाइ तुअ आई॥

ये दोनों वही (देवात्मा) हैं, जो बालरूप धरे, यहाँ यज्ञ के बहानें कंस का वध करने आए हैं। (यह सुनकर एक अन्य स्त्री ने कहा-) तेरी तो बुद्धि ही भ्रमित हो गई है, लगता है! तू धतूरा खाकर आई है।

कहँ खल कंस महाबलि जोधा। कठिन कृतांत सरिस जिन्हँ क्रोधा॥
कहँ ए दुहुँ मृदु गात कुमारा। कस सहि सकहि खलहि रिस भारा॥

कहाँ तो महाबलि योद्धा दुष्ट कंस; जिसका क्रोध यम के समान भयानक है और कहाँ ये कोमल अङ्गोंवाले बालक? भला! ये उस दुष्ट के क्रोध का भार कैसे सह सकते हैं?

धनुमख मिस इन्ह राउ बोलाए। अवसि बधिहि अब अवसर पाए॥
निपट निमूल तोर आसंका। त्रिकालग्य बच करिअ न संका॥

राजा ने इन्हें यज्ञ के बहानें बुलवाया है और अब अवसर पाकर वह अवश्य ही इन्हें मार देगा। (तब किसी अन्य ने कहा-) तुम्हारी आशङ्का नितान्त निर्मूल है; हमें त्रिकालदर्शी मुनि की वाणी पर सन्देह नहीं करना चाहिये।

पुनि प्रसंग इन्ह भुजबल केरे। सुने सबन्हि बहुबार घनेरे॥
कसि बिधि इन्ह अघ बक संघारे। असुर प्रलंब सहित अति भारे॥

फिर इनके पराक्रम की बड़ी-बड़ी कथाएँ, हम सबने भी कई बार स्वयं सुनी है कि, किस प्रकार इन्होंने अघासुर, बकासुर और प्रलम्बासुर सहित कई बड़े भारी दैत्यों को मारा था और

भाँति केहि अहि दर्पि सुरेसहि। खेलहि खदए आपन देसहि॥
सो तैं बृथा लरत भरमाई। रहि इन्ह दरस सुभाग गँवाई॥

किस प्रकार इन्होंने कालिय नाग व दम्भी इन्द्र को खेल ही खेल में अपनी व्रजभूमि से खदेड़ दिया था। इसलिये भ्रम के वशीभूत हो, तुम सब परस्पर लड़कर, व्यर्थ ही में इनके दर्शनों का सौभाग्य खो रही हो।

दोहा- धन्य सो ग्वालन्हँ बालक जे खेले इन्हँ संग।
ब्रजमहि ग्वालिनि धन्य सो लखा जे रास प्रसंग॥४२॥

(तब किसी अन्य नागरि ने कहा-) ग्वालों के वे बालक धन्य हैं; जो इनके साथ खेलें हैं। व्रज की वह भूमि और वे गोपियाँ भी धन्य हैं; जिन्होंने इनके रास के उत्सव को देखा है।

चौ.- सो नट बेषु कल्पि हिय माहीं। कुतुहल पेमु अहहि कमु नाहीं॥
एक कह इन्ह छबि सिंधु अगाधा। पारे मम चख लगे अबाधा॥

कृष्ण के उस नटवेष की कल्पना करते हुए, मेरे हृदय में प्रेम और कौतुहल कम नहीं है। एक अन्य ने कहा- इनके सौन्दर्य के अथाह समुद्र का पार पानें के लिये, मेरे नेत्र एकटक लगे हैं,

रोम रोम इन्ह मदनु अखारा। केवलु दुइ दृग लहँ कस पारा॥
तातें रोम जेतनउ धारे। चाहिअ उतनेहि नयन हमारे॥

किन्तु इनका तो रोम-रोम ही कामदेव का अखाड़ा है; केवल दो नेत्रों के बल पर, उसका पार कैसे पाया जायँ? इसलिये (इनकी अकथनीय सुन्दरता का पार पानें हेतू) जितने रोम इनके शरीर पर हैं, मुझे भी उतने ही नेत्रों की आवश्यकता है।

जेउ गात लग दृग तिन्हँ राऊ। फिरि न पाव तिहि देखि बनाऊ॥
अस छबि सुरा पाइ सब नारी। जहँ तहँ होइ रही मतवारी॥

हे परीक्षित्! उनके नेत्र उन भाईयों के जिस भी अङ्ग पर पड़ते हैं; उसकी शोभा देखकर, फिर वहाँ से लौट नहीं पाते। उनकी छवि की ऐसी मदिरा पाकर, नगर की समस्त स्त्रियाँ जहाँ-तहाँ मतवाली हो रही हैं।

हृदयँ धीर धरि कह एक बाई। इन्हहि न निरखहु नयन लगाई॥
दृष्टि पीर ब्यापिहि न त ताहीं। सारिहि को इहि पर पुरि माहीं॥

कुछ ने हृदय में धैर्य धरकर कहा- बहिन! इन्हें (इस प्रकार) दृष्टि गड़ा कर मत देखो! अन्यथा ये तुम्हारी दृष्टि से पीड़ित हो जायेंगे और इस पराये नगर में इनकी इस पीड़ा का उपचार कौन करेगा?

तब एक कहहिं न चिंता आनू। सहज जाइ मैं दोष निदानू॥
कह अगिलेहि छिनु तें सकुचाई। सुषमापति प्रभाउँ उर लाई॥

तब एक अन्य स्त्री बोली- चिन्ता न करो! मैं सहज ही में जाकर, इनका उपचार कर दूँगी। फिर श्रीकृष्ण के मोहिनि-प्रभाव का हृदय में स्मरण करके, अगले ही क्षण सकुचाकर उसनें कहा-

दोहा- आजु थवँहि जे समउ गति कन्हँ असतंभित होइ।
देखि लेहि हम नयन भरि छबि राधहि प्रिय जोइ॥४३॥

जो आज समय की गति रुक जायँ और कन्हैया स्तम्भित (मूर्ति के समान स्थिर) हो जायँ; तो हम उस सुन्दरता को नेत्र भरकर देख लें; जो राधा को अत्यन्त प्रिय है।

चौ.- एहिबिधि पुर छबि लखि सुखधामा। देन लगे सब कहँ बिश्रामा॥
एक बीथि पट गाठरि लादी। खलचर रजक मिला बकवादी॥

इस प्रकार नगर की शोभा देखते हुए, सुख के धाम दोनों भाई, सबको संतोष देने लगे। उस समय उन्हें एक गली में सिर पर कपड़ों की गठरी लादे हुए, उन्हें एक बकवादी धोबी मिला, जो कंस का दास था।

तिहि गहि राखि सुरा अति भारी। तरकि दसा तिन्हँ हँसे बकारी॥
पुनि कह तासु निकट कुछ जाई। देहुँ कृपा करि कछु पट भाई॥

उस समय उसने बहुत सारी मदिरा पी रक्खी थी; श्रीकृष्ण उसकी इस दशा का अनुमान करके, मुस्कुराये और उसके थोड़ा निकट जाकर बोले- हे भैय्या! कृपया! हमें कुछ वस्त्र दे दो।

ऐतनेहुँ सो अधम रिसावा। मुठिका तानि लाग धमकावा॥
रे गवार तुअँ जाँचत कैसे। सपुनहि तुअँ निरखे पट ऐसे॥

इतनी सी बात पर वह अधम क्रुद्ध हो गया और घूँसा तानकर उन्हें धमकाने लगा- रे गँवार! तू माँग ही कैसे रहा है? क्या तूने सपने में भी ऐसे वस्त्र देखे हैं?

रे अहीर छोहरे अबोधा। श्रवन न किधौं सुना नृप क्रोधा॥
जे पट जाँचन हाथ पसारा। भागु तुरत करि प्रान बिचारा॥

रे ग्वाले के अबोध बच्चे! क्या तूनें कभी अपने कानों से राजा का क्रोध नहीं सुना; जो वस्त्र माँगनें के लिये, हाथ फैला दिया? अब अपने प्राणों की चिन्ता कर और शीघ्र यहाँ से भाग जा।

दोहा- **सुनि तिन्ह सगरुअ कठिन बच रिसए सान्ताकार।**
भुट्ट सरिस सिरु खंडेहुँ तिन्ह करि कमल प्रहार॥४४॥

रजक के अहङ्कार से भरे कठोर वचन सुनकर, शान्ति के स्वरूप भगवान श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो गए और हाथ के एक ही प्रहार से, उसके सिर को भुट्टे के समान तोड़ दिया।

चौ.- **अस लखि अपर रजक सब भागे। कंसहि कही घटनि भय पागे॥**
इत पट सखन्हँ दए नंदलाला। लपकि झपटि पहिरे ततकाला॥

यह देखकर अन्य धोबी वहाँ से भाग गए और भयवश उन्होंने कंस से यह घटना कह सुनाई। इधर कन्हैया ने वस्त्र ग्वालबालों को दे दिए; जिन्होंने लपक-झपटकर उन्हें उसी क्षण पहन लिया।

हृदयँ बसन कोउ कटि थल बाँधा। कोउँ धोतिहि सिरु जतने साधा॥
तब पटकार एक तहँ आवा। नाउँ जासु कुरुसेन सुहावा॥

किसी ने छाती के वस्त्रों को अपनी कमर में बाँध लिया, तो किसी ने धोती को ही यत्न करके, अपने सिर पर बाँध लिया। तभी वहाँ एक दर्जी आया, जिसका नाम कुरुसेन शोभित था।

तिन्हँ हरि सैन पाइ सब अम्बर। काँटि छाँटि सिरए अति सुन्दर॥
पुनि सप्रेम सब कहँ पहिराए। अमर देखि तिहिं लाग सिहाए॥

उसनें श्रीकृष्ण का सङ्केत पाकर, सारे वस्त्रों को काट-छाँटकर, बड़े ही सुन्दर ढंग से सीं दिया। फिर उन्हें प्रेम सहित सबको पहना दिया; यह देखकर देवता उसकी प्रशंसा करने लगे।

केसव हरषि कहा पटकारहि। कछु न पास मम प्रति उपकारहि॥
देइअ भगति मोहि सुखमूला। रहिअ सदा प्रभु मम अनुकूला॥

केशव ने हर्षित हो कुरुसेन से कहा- हे सखा! इस उपकार के बदले तुम्हें देने के लिये मेरे पास कुछ भी नहीं है। तब रजक बोला- प्रभु! मुझे सुख की मूल अपनी भक्ति दीजिये और सदैव मेरे अनुकूल बने रहिये।

दोहा- **एवमस्तु तब हरि कहेहुँ परिछित अस जगपाल।**
तदपि भजहि नहिं मंद नर उरझ्यो रह भवजाल॥४५॥

तब भगवान ने कहा- ऐसा ही हो! हे परीक्षित्! जगत्पालक वे प्रभु ऐसे (उदार) हैं, किन्तु फिर भी मूर्ख मनुष्य उनका भजन नहीं करता और भवरूपी घनें जाल में उलझा रहता है।

चौ.- **चलत कछुक आगे नँदलालहि। मिलेउँ सुदामा उपबनपालहि॥**
करि दंडवत हरिहि हरषावा। सबिनय सखा सहित गृह लावा॥

वहाँ से कुछ आगे चलने पर कन्हैया को सुदामा नामक एक माली मिला। श्रीकृष्ण को दण्डवत् प्रणाम करके, वह हर्षित हो उठा और विनम्रतापूर्वक सखाओं सहित उन्हें अपने घर ले आया।

तहाँ सबनि आसन बैठारे। तदुप हरिहि पदपदुम पखारे॥
छुधावंत पुनि सब कहँ चीन्हा। कंद मूल तिहिं भोजनु दीन्हा॥

वहाँ उसनें सबको आसन पर बैठाया; तदुपरान्त उसने श्रीकृष्ण के चरणकमल धोए। फिर सबको भूख से आतुर जानकर, उसने कन्द-मूल आदि का भोजन दिया।

तिहिं प्रथमहि रचि राखे चारू। बिबिध बरन नव कुसुमन्हँ हारू॥
प्रभुहि समर्पि तासु सुख बाढ़ा। कह कर जोरि जिअहि करि गाढ़ा॥

उस माली ने पहले से ही अनेक रङ्गों के नवीन पुष्पों की सुन्दर मालाएँ बना रखी थी; जिन्हें श्रीकृष्ण को समर्पित करके, वह और अधिक सुखी हो गया। फिर अपने जी को गाढ़ा करके, हाथ जोड़कर वह बोला-

नाथ जगतपालक नारायन। होइ हृदय मम तवहि परायन॥
जे सरूप मुनि ध्यान न पावहिं। सो नित मम उर मोद बढ़ावहि॥

हे स्वामी! हे जगत्पालक! हे नारायण! मेरा हृदय केवल आप ही के प्रति समर्पित रहे। आपके जिस स्वरूप को मुनिगण भी अपने ध्यान में प्राप्त नहीं कर पाते; वही स्वरूप सदैव मेरे हृदय के आनन्द को बढ़ाता रहे।

सुरुचि जानि प्रतुषे भगवाना। एवमस्तु कहि कीन्हँ पयाना॥

उसकी उत्कृष्ट रुचि से श्रीकृष्ण परम संतुष्ट हुए और 'एवमस्तु' कहकर, उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया।

दोहा- आगे लखि सोउ सेरि उन्ह जुबती एक कुरूप।
पीठि कुधर सम कूबड़ नयन मनहुँ तम कूप॥४६॥

आगे चलकर उन्होंने उसी गली में एक कुरूपा युवती को जाते हुए देखा; जिसकी पीठ पर पर्वत सदृश एक बड़ा-सा कूबड़ था और उसके नेत्र मानों अन्धकार के कूप थे।

चौ.- हाथ मलयजुत कठौति चारू। चलहि लकुटबल तनु असिंगारू॥
कन्ह पूछा तिहि सहज सुभाऊँ। सुमुखि सुलोचनि का तव नाऊँ॥

उसके हाथ में (घिसे हुए) चन्दन से पूर्ण सुन्दर कटोरा था; वह लकड़ी के सहारे चलती थी और उसका शरीर शृङ्गार से रहित था। तब कन्हैया ने स्वभाविक ही उससे पूछा- हे सुमुखी! हे सुलोचना! तुम्हारा नाम क्या है?

सुंदरि तहि लखि मनु न अघाता। लागहि तोर मोर कछु नाता॥
घरसि मलय यह किन्हँ हित आना। बेगि कहहुँ मोहि ब्रीड़ महाना॥

हे सुन्दरी! तुम्हें देखते हुए मेरा मन नहीं अघाता; लगता है, तुम्हारा और मेरा कोई सम्बन्ध है। तुम यह चन्दन किसके लिये घिसकर लाई हो; शीघ्र ही बताओं, मुझे अत्यधिक जिज्ञासा हो रही है।

सुरभित मलय हमहि कछु देहूँ। पुनि जिअँ भाव माँगि सो लेहूँ॥
स्यामकिसोर महाछबिरासी। मैं नृप कंस केर लघु दासी॥

इस सुगन्धित चंदन में से थोड़ा-सा हमें भी दो और जो तुम्हारे मन को भाये, वही माँग लो। तब उसनें कहा- हे महान सौन्दर्य के समुद्र! हे! श्यामवर्ण किशोर! मैं राजा कंस की एक तुच्छ दासी हूँ।

कुब्जा नाउँ मोर सुखखाना। नृप हित मैं यह चंदनु आना॥
नाउ तुम्हार बहुत सुनि राखा। आज सुकृतबल आँखिन्ह चाखा॥

हे सुख की खान! मेरा नाम कुब्जा है; यह चन्दन मैं राजा के लिये लाई हूँ। तुम्हारा बहुत नाम सुन रक्खा था; आज अपने पुण्यबल पर तुम्हें अपने नेत्रों से देख भी लिया।

दोहा- **तिय हिय सम यह कोमल बाहु तोर मोहि भाय।**
होय जे अनुमति मोहन देहु मलय चरचाय॥४७॥

स्त्री-हृदय के समान तुम्हारी ये कोमल भुजाएँ, मुझे बहुत ही प्रिय लगी है; यदि अनुमति हो तो, हे मोहन! मैं इन पर चन्दन का लेपन कर दूँ।

चौ.- **आहि कौन तव गत जग आना। लेपिअ जाहिं मलय गरुआना॥**
मैं बिचारि देखा उर माहीं। त्रिभुवन अस सुषमा कत नाहीं॥

क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त इस संसार में ऐसा कौन है, जिसके अङ्गों पर इस मूल्यवान चन्दन का लेपन किया जायँ? मैं मन में विचारकर, देख चुकी हूँ; ऐसी सुन्दरता तीनों लोकों में कहीं नहीं है।

तब भगवान कहा रुच जोई। चंदन चरचुँ हमहिं बिधि सोई॥
मनहर रुखहि पेमु भरि नाची। लगि उन्ह भुज पत्रावलि राची॥

तब भगवान बोले- तुम्हें जिस प्रकार ठीक लगे, उसी प्रकार हमें चन्दन लगा दो। मनहरण कन्हैया का रुख पाकर, वह प्रेम में उमड़कर नाच उठी और उनकी भुजाओं पर चन्दन से पत्रावली की रचना करने लगी।

कुब्जहि बिमल हृदयँ अनुरागा। चितरा हरितनु होइ अँगरागा॥
जातें सुषमा भइ अति भारी। भाल गाल भुज रासबिहारी॥

कुब्जा के निर्मल हृदय का प्रेम, कृष्ण के श्रीअङ्गों पर अङ्गराग के रूप में चित्रित हो गया; जिससे उन रासविहारी के भाल, कपोलों और भुजाओं का सौन्दर्य और अधिक बढ़ गया।

पुनि चरचे तिहि ग्वालन्हँ गाता। हरषे सब घनस्याम सँघाता॥
रहा तीनि जघ तनु तिन्हँ बाँका। सीध किए जाँ कहँ हरि ताका॥

फिर उसनें सखाओं के अङ्गों में भी चन्दन लगाया; जिससे कृष्ण के साथ वे सब भी आनंदित हो उठे। कुब्जा का शरीर तीन जगहों पर टेढ़ा था; सीधा करने के लिये, श्रीकृष्ण जिसका निरीक्षण करने लगे।

पुनि जीअत छबि चरन बढ़ाई। कुबुजहि पद भल दीन्ह जमाई॥

चिबुक तदुप गहि अगुरिन्हँ माहीं। चितवत सबन्हँ दीन्ह झटकाहीं॥

फिर सौन्दर्य की उन जीवन्त मूर्ति श्रीकृष्ण ने अपना चरण बढ़ाकर, कुब्जा के चरण पर भली-प्रकार जमा दिया; तत्पश्चात् हाथ की अँगुलियों से उसकी ठोढ़ी पकड़कर, सबके देखते हुए उसे एक झटका दिया।

दोहा- **जातें तासु त्रिभंगतनु भयउँ सूध छबि भारि।**
सुषमादुति तिहि दामिनिहिं भई लजावनिहारि॥४८॥

जिससे उसका त्रिभङ्गी शरीर सीधा और अत्यधिक सुन्दर हो गया। उस समय उसके सौन्दर्य की द्युति बिजली को भी लजा देनेवाली हो गई।

चौ.- **हरिहि मुकुटमनि बदनु निहारी। कुबुजा कह करि अंचलु भारी॥**
दीन्ह मोहि हरि रूप अपारा। करहि प्रनय अब मम स्वीकारा॥

तब कन्हैया के मुकुट की मणि में अपना मुख देखकर, कुब्जा ने अपने मुख पर आँचल काढ़ लिया और बोली- कन्हैया ने मुझे अपार सुन्दरता दी है; अब वे मेरे प्रेम को भी स्वीकार करें।

प्रिये धीर धरु बिसरि निरासा। आउब मर्दि खलहि तव पासा॥
तब तें हरषि भवन निज गवनी। सुषमा लिए जथा सुररवनी॥

कन्हैया बोले- हे प्रिये! निराशा त्यागकर धैर्य धारण करो; कंस को मारकर, मैं तुम्हारे पास आऊँगा। तब देवाङ्गना तुल्य शोभा लिये वह हर्षित होकर, अपने घर चली गई।

होत गरुअ तिहिं हृदयँ बिचारी। मिले रमापति भुजा पसारी॥
बल अरु सखन्हँ सहित घनस्यामा। पुनि सुख करन लाग पुर भामा॥

उसे यह सोच-सोचकर गर्व होने लगा कि स्वयं लक्ष्मीपति मुझसे भुजाएँ फैलाकर भेंटे। इधर बलराम और सखाओं के साथ घनश्याम पुनः भ्रमण करते हुए, नगरवनिताओं को सुख देने लगे।

अहो सुभगता बरनि न जाती। एहि पुरिहिं जहँ बस आराती॥
मृदु सुभाय जन माखन नाईं। आपु पंथ सब देइ देखाईं॥

अहो! इस नगर की रम्यता का वर्णन नहीं किया जाता; जहाँ मेरा शत्रु कंश रहता है। यहाँ के लोग माखन के समान कोमल स्वभाव के हैं, जो स्वयं ही सारे मार्ग दिखा देते हैं।

दोहा- **भँवत मिले पथ बयसु कछु कीन्ह हरिहि सनमान।**
पुनि दीन्हे आसन सबन्हँ अरपे पय फल पान॥४९॥

इस प्रकार भ्रमण करते हुए मार्ग में कुछ वैश्य मिले; जिन्होंने श्रीकृष्ण का सम्मान किया और सबकों आसन देकर, दूध, फल व पान अर्पित किये।

चौ.- **तें प्रनाम करि कह दुखमोचन। रूप मनोभव मान बिमोचन॥**
जे तव राज इहाँ ह्वै जाई। रखिअहि हम पर नेह बनाई॥

उन्होंने प्रणाम करके कहा- हे दुःखहर्ता! अपने सौन्दर्य से कामदेव का भी मान भङ्ग करनेवाले हे कृष्ण! यदि इस नगरी पर आपका आधिपत्य हो जायँ; तो हम पर अपना स्नेह बनाए रखियेगा।

पूछा हरि उन्ह मृदु मुसुकाई। सिवधनु मखसाला कत भाई॥
तब उन्ह कर धनुभंजन तरकी। रहे चुपहिं छाति लगि धरकी॥

तब श्रीकृष्ण ने धीरे से मुस्कुराकर कहा- हे भाईयों! शिवजी का वह धनुष और यज्ञशाला कहाँ है? तब उनके हाथों धनुष तोड़े जाने की आशङ्का से वे वैश्य चुप रह गए और भय से उनकी छाती धड़कनें लगी।

किन्तु हेरि उन्ह अमित प्रभाऊ। कहा कछुक सबिनय अति चाऊ॥
चलिअ हमार संग सुखरासी। राखा कंस जहाँ धनु डासी॥

किन्तु उनके अपार प्रभाव का स्मरण करके, कुछ ने विनयपूर्वक बड़ी ही रुचि से कहा- हे सुख की राशि! आप हमारे साथ उस स्थान पर चलिये, जहाँ कंस ने धनुष रख छोड़ा है।

सुनि हरषित उन्हँ सँग नँदलाला। अति कौतुक आए मखसाला॥
प्रभु देखा हरधनुष कठोरा। चारु चित्र अंकित सब ओरा॥

ऐसा सुनकर हर्षित हुए नन्दनन्दन अपार कौतुहल लिये उनके साथ यज्ञशाला में आ पहुँचे। फिर उन प्रभु ने देखा कि शिवजी के कठोर धनुष पर सब ओर सुन्दर चित्र अङ्कित किए गए हैं।

सप्त ताल तरु सरिस प्रलंबा। धरा बितान हेममय खंबा॥

ताड़ के सात वृक्षों जितना विशाल वह धनुष, स्वर्ण-स्तम्भों से बनें मण्डप में रखा था।

दोहा- **पूजिअहिं पुर नारि नर चतुरदरसि तिथि पाइ।**
इहइ बिचारि धरान तिहि कंस सुजतन कराइ॥५०॥

चतुदर्शी तिथि को नगर के स्त्री-पुरुषों के द्वारा उसका पूजन किया जायगा; यही विचार करके, कंस ने उसे बड़े यत्न से, उस मण्डप में रखवाया था।

चौ.- **देखि धनुहि कन्हँ गै तिन्ह पासा। परसि लाग हिय तनक न त्रासा॥**
बरजत उन्ह धनु लीन्ह उठाई। सहज पनच पुनि दीन्ह चढ़ाई॥

धनुष को देखकर श्रीकृष्ण निकट गए और उसे छूने लगे; उनके मन में तनिक भी भय न था। फिर (रक्षकों द्वारा) रोके जाने पर भी उन्होंने धनुष उठा लिया और सहज-ही में उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी।

दंग रहे रखवारे सबही। लगे फिराइ कान्हँ धनु तबही॥
उन्ह बहोर श्रव लौ तिन्हँ ताना। अवचट टूटेउ नींद समाना॥

यह देख सारे रखवाले दंग रह गए; तभी कन्हैया धनुष को अपने हाथों में फिरानें लगे। फिर उन्होंने प्रत्यञ्चा को कानों तक खींचा, जिससे वह धनुष निद्रा के समान अचानक ही टूट गया।

टूटतही रव भा अस घोरा। दिसि गयंदु बिचले सब ओरा॥
टूटे नखत चलइ नभ गोला। ढनमनेउँ खल चिंतत डोला॥

उसके टूटते ही ऐसा भयङ्कर शब्द हुआ; जिसे सुनकर सब ओर दिशाओं के हाथी विचलित हो गए। तारे टूट पड़े और उनके टुकड़े आकाश में बिखर गये; कंस गिर पड़ा और चिन्ता से अधीर हो उठा।

सभय उभय तिय करहि बिषादा। रच्छक बधिर भए सोउ नादा॥
किन्तु सम्भारि सबनि उठि धाए। बाँधु सबनि सठ भागि न पाए॥

उसकी दोनों स्त्रियाँ भय से विषाद करने लगी; उस शब्द से सब रखवाले बहरे हो गए। किन्तु फिर वे सब सम्भलकर यह कहते हुए उठ दौड़े कि, इन सब मूर्खों को पकड़ लो, कोई भागनें न पाये।

सुनि धनुखंड गहे दुहुँ भाई। धाइ भिरे उन्ह तें बरिआई॥
कछु कादर लखि चले पराई। भोजराज सन घटनि सुनाई॥

यह सुनकर वे दोनों भाई धनुष के टुकड़ों को उठाकर; बलपूर्वक उनसे जा भिड़े। कुछ रक्षक जो कायर थे, उन्हें क्रुद्ध देखकर, भाग खड़े हुए और उन्होंने सारी घटना भोजराज कंस से कह सुनाई।

इहाँ कंस कर बहुतक जोधा। जरे कठिन नरकेहरि क्रोधा॥

इधर कंस के बहुत-से योद्धा नृसिंहरूपी श्रीकृष्ण की क्रोधाग्नि में जल मरे।

दोहा- बहुतन्हि सिरु खंडित भए पद भुज केतेन्ह अंस।
पुर भा अति कोलाहलु अब धौं करिहि कि कंस॥५१॥

बहुत-से सैनिकों के सिरों के टुकड़े हो गये, तो कितनों ही के पैर, भुजाएँ और कन्धे टूट गए। इस घटना से सम्पूर्ण नगर में कोलाहल मच गया कि, अब कंस न जाने क्या करेगा?

चौ.- भयउँ बिलम्ब चलिअ अब दाऊ। तब सब आए आपन ठाऊँ॥
धुआँ हरहि धनु कर सुनि काना। इहाँ कंस हिय अति भय माना॥

हे दाऊ! बहुत विलम्ब हो चुका है, अब चलिये; तब सभी अपने स्थान पर लौट आए। इधर शिव-धनुष के टूटनें की सूचना पाकर, कंस मन में बहुत अधिक भयभीत हो उठा;

रामु देत धनु कहा बुझाई। टूटिहि यह जिन्हँ कर कर पाई॥
सो निस्चय होइहि तव काला। सुमिरि प्रसंग ग्रसा तिहिं ब्याला॥

क्योंकि परसुरामजी ने उसे धनुष देते हुए समझाकर कहा था कि, यह जिस किसी के हाथ से टूटेगा, वह मनुष्य निश्चय ही तुम्हारा काल होगा; इस प्रसङ्ग का स्मरण करके, उसे साँप सूँघ गया।

दुराधरष अरि तें मम पाला। अब धौं काह होइ मम हाला॥
सयन कीन्ह एहि चिंता माहीं। सुख सपनेहुँ धरमरिपु नाहीं॥

वह सोचनें लगा कि अब की बार मेरा पाला दुराधर्ष शत्रु से पड़ा है; अब न जाने मेरा क्या हाल होगा? इसी चिन्ता में वह सो गया; किन्तु धर्म से विमुख मनुष्य, स्वप्न में भी सुख नहीं पाता।

जदपि प्रथम परि नींदहिं नाहीं। किन्तु सएहुँ जब माय अगाहीं॥
देखा सपुन निजहिं बिनु मुंडा। ससिहिं होत देखे दुइ खंडा॥

यद्यपि पहले तो उसे नींद ही नहीं आई; किन्तु फिर भगवान की माया के वश हो जब वह सो गया, तब उसनें स्वप्न में स्वयं को बिना मुण्ड के देखा और चन्द्रमा के दो टुकड़े होते हुए देखे।

कालदूत धरि मारहि डाटहि। जम्बुक कबहुँ घेरि धड़ काटहि॥
बन लखि परि दावानल भारी। सबिबर निज परिछाह निहारी॥

(स्वप्न में कभी) यमदूत उसे पकड़कर डाँटते व मारते हैं, तो कभी सियार उसके धड़ को चारों ओर से घेरकर, काटने लगते हैं। (स्वप्न में ही) उसे वन में भयङ्कर दावाग्नि जलती हुई दिखाई पड़ी और उसनें अपनी परछाई में छेद हो गया देखा।

तासुहि रच्छक धरि अति पीटा। प्रेत बाँधि पुनि लाग घसीटा॥

(फिर उसने देखा कि,) उसके अपने अङ्गरक्षकों ने मिलकर उसे बहुत पीटा और प्रेत उसे बाँधकर घसींटने लगे।

दोहा- **बहुरि तेल अन्हवाइ तिन्हँ नगन खरारुढ़ कीन्ह।**
जपाकुसुम गर हार दइ तदुप काटि सिरु लीन्ह॥५२॥

फिर तेल में नहलाकर, प्रेतों ने उसे नग्न ही गदहे पर बैठा दिया और (बलपूर्वक) उसके गले में जपा कुसुम की माला पहनाकर; तदुपरान्त उन्होंने उसका सिर काट लिया।

चौ.- **रुंड तासु खर दच्छिन आसा। लिए जात लखि भइ अति त्रासा॥**
अवचट उठि बैठा हँहराई। भँवत निसा सब दीन्हि बिताई॥

फिर वह गदहा उसके रुण्ड को; दक्षिण दिशा की ओर लिये जा रहा है; यह देखकर उसके मन में अत्यधिक भय होने लगाा। तब वह घबराकर उठ बैठा और सारी रात उसनें टहलते हुए ही बिता दी।

प्रात सभा पुनि सचिव हकारी। कहि लागा अस सपुन बिसारी॥
तुरत अरम्भिअ मल्ल अगारा। जथाजोग रच्छिअ सब द्वारा॥

फिर सवेरा होने पर उसने मन्त्रियों को बुलवाया और स्वप्न को अनदेखा करके, वह उनसे कहने लगा कि, तुरंत ही मल्ल अखाड़ा आरम्भ किया जायँ और उसके सब द्वारों की यथायोग्य रक्षा की जायँ।

सुनतहिं सचिव तेहिं सवँ धाई। तुरत दीन्ह तिन्ह बात बजाई॥
सभा बितान बिसाल बिभागा। पुरबासिन्हँ समूह अति लागा॥

यह सुनते-ही मन्त्रियों ने उसी समय दौड़कर, उसका आदेश तुरन्त पूर्ण कर दिया। फिर सभा के विशाल प्राङ्गण में पुरवासियों की बड़ी भारी भीड़ आ जुटी।

हाटक खंब जतन करि गाड़े। मनि झालरि जिन्हँ सुषमा बाढ़े॥
कंचन मंच सुभग सोपाना। राय अतिथि हित जिन्हँ बिरचाना॥

वहाँ सोने के बने खम्भे यत्नपूर्वक गाड़े गए थे, मणियों की झालरें जिसकी सुन्दरता बढ़ा रही थी। वहाँ सुन्दर सीढ़ियों से युक्त, सोने का एक मंच था; जो अतिथि राजाओं के लिये बनवाया गया था।

नृप हित भिन्न उच्च अति चारू। मंच कीन्ह तिन्ह जथा पहारू॥
इत्र सींचि तहँ कीन्हि सुबासा। पाटम्बर बिछवन पुनि डासा॥

राजा के लिये अलग से ऊँचा और अत्यन्त सुन्दर मञ्च बनवाया गया था; जो पहाड़ के समान (दुर्गम) था। उस पर इत्र छिड़ककर ऊपर से रेशमी वस्त्र बिछाया गया था।

दोहा- **जीति सुरेसहिं छीनि खल सिंघासनु जे आन।**
सचिव ताहि बड़ जतन करि धरा सजतन मचान॥५३॥

(पूर्वकाल में) इन्द्र को जीतकर, वह दुष्ट उससे जो सिंहासन छीनकर लाया था; मंत्रियों ने उसे बड़ा यत्न करके, मञ्च पर रखवाया था।

चौ.- **पूर भूमिपति दरप अपारा। पैठेहुँ सभा जिअत महिभारा॥**
उठे सचिव सब आवत पाई। बैठा खल सिंघासनु जाई॥

हे परीक्षित्! (तदुपरान्त) अपार दर्प से भरा, पृथ्वि के लिये जीवंत भाररूप कंश सभा में पहुँचा। उसे आया जानकर, सारे मन्त्री उठ खड़े हुए; (इस बीच) वह अपने सिंहासन पर बैठ गया।

छत्र तासु ससिमँडलाकारा। करइ प्रकास बिचित्र अपारा॥
कर गहि मनिकृत परम मनोहर। चेरि करइ चाँमर अति सुन्दर॥

उसका छत्र चन्द्रमण्डल के आकार का था, जो अपार और अद्भुत प्रकाश उत्पन्न कर रहा था। दासियाँ हाथों में मणियों से बनें मनोहारी व अत्यन्त सुन्दर चवँर लिये, पवन कर रही थी।

सिंघासनु उन्नत दस हाथा। धरे बिबुध थपतिहिं गुनगाथा॥
तापर बैठि सोह खल कैसे। सहज गरुअ सुभटहि उर जैसे॥

उसका सिंहासन दस हाथ ऊँचा था, जो विश्वकर्मा के शिल्पकौशल की महिमा धारण किये था। उस पर बैठकर वह दुष्ट कैसी शोभा पानें लगा; जैसे उत्तम योद्धा के मन में स्वभाविक ही अहङ्कार स्थित होता है।

जथाजोग सब कहँ सनमानी। आसनु दीन्ह सभहुँ अभिमानी॥
सोधि प्रजाजन निज अस्थाना। जुरे लखे हित दुंद महाना॥

अभिमानी कंस ने सबका यथोचित सम्मान करके, आसन दिये। प्रजाजन भी कुश्ती के उस महान आयोजन को देखने के निमित्त, वहाँ अपना-अपना स्थान चुनकर आ बैठे।

एतनहुँ आवा गोप समाजा। धरा नृपति सन भेंट सुसाजा॥
तदुप भाट खल गुनगन गाए। बहुबिध पटह मृदंग बजाए॥

इतनें में ही गोपसमुदाय वहाँ आया और उसने कंस के सन्मुख भेंट आदि की उत्तम वस्तुएँ रख दी। तदुपरान्त भाटों ने पटह, मृदङ्गादि बजाकर, अनेक प्रकार से उस दुष्ट के गुणसमूहों का गान किया।

दोहा- **रहा द्वार कुबलय कठिन आसव प्रमत्त झूमि।**
मुष्टिकादि सब मल्ल रहे आगारहुँ अति धूमि॥५४॥

रङ्गभूमि के द्वार पर 'कुवलयापीढ़' नामक एक विशाल हाथी, मदिरा के नशे में उन्मत्त हो झूम रहा था और रङ्गभूमि के भीतर अखाड़े में मुष्टिक आदि मल्ल अत्यधिक ऊधम मचा रहे थे।

चौ.- राम स्याम जब आए द्वारा। भा पथसूल सोइ मतवारा॥
तेहिं राखि खल सुरा पिबाई। यह कुचाल बूझे दुहुं भाई॥

जब बलराम और कृष्ण दोनों भाई रङ्गभूमि के द्वार पर आए; तो उसी गजराज ने उनका मार्ग रोक लिया। दुष्ट कंस ने उसे मदिरा पिलवा रखी थी; उसकी इस चाल को वे दोनों भाई ताड़ गए।

करिहि कुम्भ अंकित कसतूरी। पत्रावलि कइ सुषमा रूरी॥
घुंघचिमाल गर करइ सुनादा। अकथ हेमभूषन अहलादा॥

उस हाथी के कुम्भ-स्थल पर कस्तूरी से रची गई पत्रावली की सुन्दरता अद्भुत थी। उसके कण्ठ में बँधी हुई घण्टिकाओं की माला, उत्तम ध्वनि उत्पन्न कर रही थी और उसे पहनाये गये स्वर्णाभूषणों की दर्शनीयता से प्राप्त होनेवाला आनन्द अवर्णनीय था।

ते दस सहस करिन्हँ पर भारी। रहा गंडथल मद अति झारी॥
पथ अवरुद्ध निरखि खलकाला। महावतहि कह बचन रसाला॥

दस हजार हाथियों पर अकेला ही भारी वह गजराज; अपने गण्डस्थल से मद की घनी वर्षा कर रहा था। गज के कारण अपना मार्ग अवरुद्ध हुआ देखकर, दुष्टनिकन्दन श्रीकृष्ण ने महावत से बड़ी मीठी वाणी में कहा-

भीतर प्रबिसि चहै हम भाई। तुम करिबर कहु लेहुँ चलाई॥
रे दुसाहसि अलपमति ग्वाला। कुंजर नहिं तुम्हार यह काला॥

हे भाई! हम रङ्गशाला के भीतर जाना चाहते हैं, अतः तुम गजराज को एक ओर हटा लो। तब उस महावत ने कहा- रे दुस्साहसी, अल्पमति ग्वाले! यह हाथी नहीं; अपितु तुम्हारा काल है।

कहत गजहिं सठ अंकुस तारा। सो रिसान करि लग चिक्कारा॥

यह कहकर उस मूर्ख ने हाथी को अङ्कुश से पीड़ित किया, जिससे वह क्रुद्ध हो चिग्घाड़नें लगा।

दोहा- पुनि तिहि उनमत नागहि बाढ़ा दुहुँ समुहाइ।
करि करि सूँड धरा कन्हहि किन्तु छुटे निबुकाइ॥५५॥

फिर महावत ने उस उन्मत्त गजराज को, उन दोनों भाईयों के सम्मुख बढ़ाया। (निकट जाकर) हाथी ने अपनी सूँड़ बढ़ाकर, कन्हैया को पकड़ लिया; किन्तु उन्होंने घुड़की देकर, स्वयं को छुड़ा लिया।

चौ.- तिन्ह पद धाइ दुरे दुहुँ ऐसे। दुरहि भानु बारिद बिच जैसे॥
लखि गयंदु निज सूँदि बढ़ाई। किन्तु चले पुनि ताहिं छकाई॥

फिर वे दोनों ही दौड़कर, उसकी टाँगों के बीच इस प्रकार छिप गए; जैसे बादलों के समूह में सूर्य छिप जाता है। यह देख हाथी ने अपनी सूँड़ बढ़ाई; किन्तु उसे छकाकर, वे पुनः भाग चले।

तब खिसान गजराज रिसाना। पुनि धरि धाइ बाहु भगवाना॥
सो बहोरि उन्हँ लाग भँवाई। तकि हरि तिन्हँ सिरु मुष्ठि चलाई॥

तब (दोनों भाईयों को पकड़ने में असफल होने से) लजाया हुआ वह गजराज क्रुद्ध हो उठा और दौड़कर उसने पुनः श्रीकृष्ण की भुजा पकड़ ली। फिर वह उन्हें (इधर-उधर) घुमाने लगा; तब श्रीकृष्ण ने तककर, उसके सिर पर एक मुक्का मारा।

भा अति बिकल महाधुनि गर्जा। धरन ढिलान फिरा पुनि तर्जा॥

जिससे अत्यधिक पीड़ित हुआ वह, भयङ्कर ध्वनि से गर्जने लगा; (शत्रु पर) उसकी पकड़ ढीली पड़ गई; किन्तु वह उन्हें ललकारता हुआ पुनः लौटा।

महिधर तेहिं समय करि क्रोधा। कूदि ताहिं सन मारग रोधा॥
आपु सूँद धरि कान्हँ लूम धरि। लागे खींचि परसपर बल करि॥

उस समय क्रोध करके महाबलि दाऊ ने उसके सम्मुख कूदकर, उसका मार्ग रोक लिया। उन्होंने स्वयं तो उसकी सूँड़ पकड़ ली और कन्हैया ने पूँछ; फिर बलपूर्वक वे दोनों उसे अपनी-अपनी ओर खींचनें लगे।

जातें सभय अतुल बलि नागा। चिक्कारत उझकन महि लागा॥
पुनि लग मुक्क चपेटन्हि मारा। करहि महावत हाहाकारा॥

जिससे भयभीत हुआ वह अतुलनीय बलवान हाथी, चिंग्घाड़ते हुए भूमि पर उछलनें लगा। फिर वे भाई मिलकर उसे घूँसों और थप्पड़ों से मारनें लगे; जिससे महावत घबराकर हाहाकार करने लगा।

देखि महावत दूसर धाए। गजहिं लगे अरि आस बढ़ाए॥

यह देखकर अन्य महावत दौड़े और हाथी को शत्रु की ओर बढ़ानें लगे।

दोहा- **गजहिं सोंद बल गहेहुँ तब बलि ब्रह्मंड अखंड।**
नभ भँवाइ महिं पटकेहुँ भुज आबेग प्रचंड॥५६॥

तब ब्रह्माण्डभर में एकमात्र अखण्ड बलसम्पन्न श्रीकृष्ण ने उस गजराज को सूँड़ से पकड़ लिया और आकाश में घुमाकर, अपने भुजदण्डों के प्रचण्ड आवेग से भूमि पर दे मारा।

चौ.- **तब सो महानाग तजि प्राना। पाइ गयउ हरिपद सुखखाना॥**
इत उत सब करिपाल महि परे। चितवहि कंस दसन अँगुरि धरे॥

तब वह महागजराज प्राण गँवाकर, श्रीकृष्ण के सुखदायक चरणों को प्राप्त हो गया। उस समय सारे महावत इधर-उधर गिर पड़े और कंस अपने दाँतों तले अँगुली दबाकर देखता रहा।

तदुप दुहुन्हँ गज दसन उखारे। महावतन्हँ लागे परचारे॥
लखि कछु कादर दुरे पराई। जस घन दुरहि बिगत बरषाई॥

तदुपरान्त दोनों ने मृत हाथी के दाँत उखाड़ लिये और महावतों को ललकारनें लगे। यह देखकर कुछ कायर, भागकर इधर-उधर छिप गए; जैसे वर्षा के बीतने पर मेघ छिप जातें हैं।

दुहुँन्ह गात श्रमकन अति सोहा। गजमद बिलसित पट मनु मोहा॥

सुनत नगरबासिन्ह जयकारे। उभय रंगमेदिनि पइसारे॥

उन दोनों के मनोहर अङ्गों पर पसीनें की छोटी-छोटी बूँदें अत्यन्त शोभा दे रही थी और हाथी के मद में भीगे हुए उनके वस्त्र, मन को मोह लेते थे। इधर नगरवासियों की जयध्वनि सुनते हुए, वे दोनों भाई रङ्गभूमि के भीतर प्रविष्ट हुए।

श्रमबस गात भए अरुनारे। सबनि लगे उन्ह वदनु निहारे॥
मनहर अंगकान्ति गजबिचरनि। देखि दुहुँन्ह बिमोहिं पुररवनी॥

श्रम के कारण उनके अङ्ग कुछ लाल पड़ गए थे; वहाँ उपस्थित समस्त लोग उनके मुखों को देखने लगे। उनके अङ्गों की मनोहर कान्ति और उनकी हाथी जैसी चाल देखकर, नगर की स्त्रियाँ अत्यधिक मुग्ध हो उठी।

उन्हँ देखा हरि मनसिज रूपा। संत निसैनि गना भवकूपा॥

उन्होंने श्रीकृष्ण को कामदेव-सा सुन्दर देखा और उपस्थित संतों ने उन्हें भवरूपी कूप में सीढ़ी के समान समझा।

दोहा- **गोपन्ह ब्रजभूषन सरिस भगत गना जगपाल।**
मल्ल लखा वलिमल्ल उन्ह द्विजन्हँ गना भूपाल॥५७॥

गोपों ने उन्हें व्रजभूमि का अलङ्कार और भक्तों ने सम्पूर्ण जगत का स्वामी समझा। मल्लों ने उन्हें अपने से भी बड़ा मल्ल और ब्राह्मणों ने (सम्पूर्ण) पृथ्वी का पालनकर्ता समझा।

चौ.- **ब्रह्म बिराट बिचारक जाना। जोगिन्ह परमतत्व अनुमाना॥**
लखि परे खलन्ह दंडधर काला। सखन्हँ संगचर गनेउँ गुपाला॥

विचारकों ने उन्हें विराट ब्रह्म और योगियों ने परमतत्व समझा। दुष्टों को वे दण्डधारी यम दिखाई पड़े और ग्वाल सखाओं ने उन गोपालकृष्ण को अपने साथ रहनेंवाला सखा समझा।

हरि प्रति भाउ रहा जिन्हँ जैसा। प्रभुसरूप देखा उन्हँ तैसा॥
देखि पराक्रम उभयन्हँ भारी। पुरबासी अति भए सुखारी॥

श्रीकृष्ण के प्रति जिसकी जैसी भावना थी; उसे भगवान का वैसा ही विग्रह दिखाई पड़ा। दोनों भाईयों का ऐसा महान पराक्रम देखकर, सारे मथुरावासी अत्यन्त सुखी सुखी हो गये।

चितवा कंस बधाएहुँ सिंधुर। कंपित भा अति भई चिंत उर॥
पुरजन लगे परसपर काना। प्रमुदित उभयन्ह कर गुनगाना॥

कंस ने देखा कि गजराज मारा गया है; तब वह भय से काँपने लगा और उसके मन में बड़ी भारी चिन्ता हुई। नगरनिवासी एक-दूसरे के कानों से लगकर; आनन्दित हुए से दोनों का गुणगान करने लगे।

बाजहि बिबिध बाजने तहवाँ। मल्ल अगार गरजि रहे जहवाँ॥
मत्त देखि उन्ह गरुअ घनेरा। कंस सैन चानूरहिं प्रेरा॥

अखाड़े में जहाँ मल्ल गर्जना कर रहे थे; वहाँ अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। उन्हें इस प्रकार उन्मत्त हुआ देखकर, कंस ने अत्यंत गर्वपूर्वक चाणूड़ को सङ्केत करके, कुछ कहा।

बूझि सैन सो गा दुहुँ पासा। बोला भाँति एहिं कछु त्रासा॥

उसका सङ्केत समझकर, वह उन दोनों भाईयों के निकट गया और कुछ भयभीत हुआ-सा इस प्रकार बोला-

दोहा- **राम स्याम तुअ परम भट अस सुनि राखा राइ।**
सो हमार सँग द्वंद्व तव देखन उन्ह अतुराइ॥५८॥

हे बलराम और कृष्ण! महाराज कंस ने सुना है कि, तुम दोनों ही अत्यंत बलशाली योद्धा हो। इसलिये उन्हें हमारे साथ तुम्हारा मल्लयुद्ध होता हुआ देखने की बड़ी उत्कण्ठा है।

चौ.- **तुम अगार निज बलु देखरावौ। करि सुजतन राउहि हरषावौ॥**
जे प्रसन्न भै नृपति जुझाई। होहिं तोर सबभाँति भलाई॥

तुम अखाड़े में अपना बल दिखलाओं और अपने उत्तम यत्न से महाराज को प्रसन्न करो। यदि महाराज तुम्हारे युद्ध से प्रसन्न हुए; तब सब प्रकार से तुम्हारी भलाई ही होगी।

कान्हँ कहा हम बालक भाई। मसक कि करि सक मुद खगराई॥
जदपि महीप कृपा दिनु राती। हमरे सिरु न एक आराती॥

तब कन्हैया ने कहा- हे भाई! हम तो बच्चे हैं; भला! मच्छर भी कहीं गरुड़ को आनंदित कर सकता है। यद्यपि महाराज की दिनरात की कृपाछाया के कारण हमारा एक भी शत्रु नहीं है।

इहइ बिचारि इहाँ हमु आए। हिय तें नृप कहँ देन बधाए॥
अब तुम सबनि राखु अस ध्याना। हम बालक रनुबात अजाना॥

इसी बात को विचारकर, महाराज को हृदय से धन्यवाद देने, हम दोनों यहाँ तक आए हैं। अब तुम सभी इस बात का ध्यान रखना कि हम बच्चे हैं और युद्ध की कला से अनभिज्ञ हैं।

तातें हाथ धरै हरुआई। मल्ल खेल करु हम तें भाई॥
बल तुम्हार हम देखा भाई। तनुहि अलपु भुज बलधि अथाई॥

इसलिये हे भाई! तुम थोड़ा हल्के हाथों से हमारे साथ मल्ल का खेल खेलना। (तब चाणूड़ ने कहा-) हे भाई! (गज को मारते समय) हमने तुम्हारा बल देखा है। तुम शरीर से ही छोटे हो; किन्तु तुम्हारी भुजाएँ बल का अथाह सागर है।

दोहा- **सात रातिदिनु गिरिहिं धरि मोरेहुँ घनपति मान।**
पुनि हमरे चितवत बधा मत्त गयंदु महान॥५९॥

तुमनें गोवर्धन को सात दिनों व सात रातों तक धारण करके, मेघराज इन्द्र का मान भङ्ग किया था और यहाँ हमारे देखते हुए तुमने मदमस्त महागजराज कुवलयापीढ को भी मार डाला।

चौ.- **एहिबिधि अनुकृत बिनय देखाई। मल्ल भिरे उभयन्ह तें धाई॥**
धरि भुजदंड परसपर भिरही। परहि धरनि उठि पुनि बल करही॥

इस प्रकार बनावटी विनम्रता दिखाकर, वे मल्ल दौड़कर दोनों भाईयों से जा भिड़े। वे एक-दूसरों की भुजाएँ पकड़कर परस्पर भिड़ते हैं; भूमि पर गिर पड़ते हैं और उठकर पुनः जोर लगाते हैं।

इत जूझहि चानूर मुकुंदा। उत मुष्टिक अहिपति कर द्वंदा॥
भट बलधाम अहहिं दुहुँ जोरी। लगे परसपर साहस तोरी॥

इधर एक ओर चाणूड़ और बालमुकुन्द युद्ध कर रहे हैं; तो दूसरी ओर मुष्टिक व बलरामजी द्वन्द्व कर रहे हैं। दोनों जोड़ियों के योद्धा बल के धाम थे; जो जूझते हुए एक-दूसरे का साहस तोड़नें में लग गये।

हरि उठान प्रतिभट कहँ ऐसे। धरम जीव कहँ तौलहिं जैसे॥
महि पटकत खल पुनि उठि धावा। हरिहि उठाइ भुजन्हि गरुआवा॥

(द्वंद्व में) कन्हैया ने प्रतिद्वंद्वी चाणूड़ को अपनी भुजाओं पर ऐसे उठा लिया; जैसे धर्मराज किसी जीव को (उसके कर्मों के आधार पर) तौलते हैं। भूमि पर पटके जाने पर, वह दुष्ट पुनः उठ दौड़ा और कन्हैया को अपनी भुजाओं पर उठाकर गर्वित हो उठा।

लखि उन्ह हनि मुठिका सिरु भारी। गरजि मेघ सौं परा सुरारी॥
चेत भई तब उठा सँभारी। क्रुद्ध भिरा पुनि कन्हहिं पचारी॥

यह देखकर उन्होंने उसके सिर पर, बड़ा ही भयङ्कर घूँसा मारा; जिससे देवताओं का वह शत्रु, मेघ के समान गरजता हुआ भूमि पर गिर पड़ा। फिर जब उसे चेतना हुई, तब वह सम्भलकर उठा और क्रोधपूर्वक पुनः कन्हैया से जा भिड़ा।

जानु पानि पग मारि चपेटा। पटक परसपर भुजन्हि लपेटा॥

घुटनों, हाथों, लातों और चपेटों से मारते हुए, भुजाओं की लपेट से, वे योद्धा एक-दूसरे को भूमि पर पटक देते हैं।
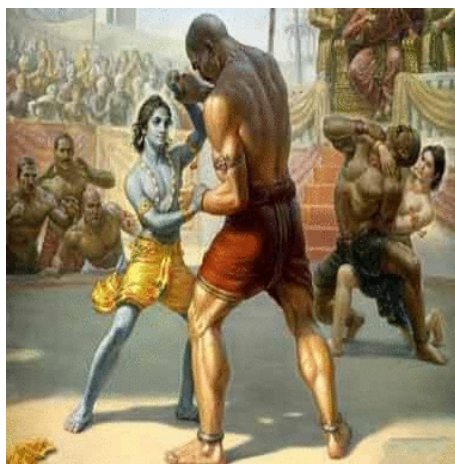
छन्द- **लपटान चारिउ भट्ट बल अति करष कर सम कुंजरा।**
भुज छाति लहँ बल थाह गर्जत घोर खल भै जर्जरा॥
दुहुँ भ्रात मनहर अंग श्रमकन भास ससि दुइ अमि लसे।
लखि गोप पुरजन सहित कह उचित न सुनत गिरिधर हँसे॥

अत्यधिक बल लगाकर, चारों योद्धा एक-दूसरे से लिपट गये और हाथियों के समान परस्पर युद्ध करने लगे। घोर गर्जना करके, अपनी भुजाओं व छाती से शत्रु के बल की थाह लेते हुए

दुष्ट चाणूड़ और मुष्टिक के शरीर जर्जर हो गए। दोनों भाईयों के मनोहर अङ्गों पर पसीनें की बूँदें हैं, जिससे वे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, जैसे अमृत में भीगे हुए दो चन्द्रमा हों। यह देखकर (कि बालकों से बड़े भारी मल्ल युद्ध कर रहे हैं,) गोपों सहित समस्त मथुरावासी कहने लगे कि यह तो (खुला) अनौचित्य है; यह सुनकर कन्हैया मुस्कुराए।

सो.- देखु कंस कस दुष्ट जम तें सिसुन्हँ जुझात।
मल्लजुद्ध परिपुष्ट देव उभय भ्रातन्ह करु॥६०॥

देखो तो! यह कंस कितना दुष्ट है; (छोटे-छोटे) बालकों को यमतुल्य मल्लों से लड़वा रहा है। हे विधाता! आप इन दोनों बच्चों को मल्ल-युद्ध में सब प्रकार से निपुण कर दो।

चौ.- नंद द्रवित भै सुत बछलाई। यह नृप केर कवन मनुषाई॥
दुसह इंद्र हित जिन्हँ गति भारी। काल न जिन्हँ तें करि सक रारी॥

नन्दजी पुत्रवत्सलता से द्रवित हो विचारने लगे कि, यह राजा की कौन-सी मनुष्यता है? जिनका प्रचण्ड आवेग इन्द्र के लिये भी दुःसह है और स्वयं यम भी जिनसे युद्ध नहीं कर सकते;

सोउ उद्भट्टन्हि जीतब कैसे। मम बालक गौसावक जैसे॥
ताताहिं जब ब्याकुल अति जाना। कान्हँ अरिदवन निरनय ठाना॥

उन्हीं उद्भट योद्धाओं को मेरे गौशावकों जैसे कोमल बालक कैसे जीत सकेंगे? जब पिता को अत्यन्त व्याकुल होते देखा; तब कन्हैया ने मन-ही मन शत्रु के वध का निश्चय कर लिया।

पुनि रन घन दुहुँ कीन्ह अरंभा। मल्ल लाग उन्ह सनमुख खंभा॥
तबहि चानुरहि भुजन्हँ उठाई। नभ संचारेउँ कान्हँ भँवाई॥

फिर दोनों ने पुनः भयङ्कर युद्ध आरम्भ कर दिया; (उस समय) वे मल्ल उनके सन्मुख किसी खम्भें के समान (उन्नत) प्रतीत हो रहे थे। तभी कन्हैया ने चाणूड़ को अपनी भुजाओं पर उठा लिया और घुमाकर आकाश की ओर फेंक दिया।

जात घोर गति खल सो कैसे। पात वात प्रेरित उड़ जैसे॥
खसा उरधमुख अस धड़छूटा। धूमकेतु नभ तें जनु टूटा॥

वह दुष्ट बड़े वेग से आकाश में इस प्रकार उड़ चला; जैसे वायु की चपेट में आया हुआ कोई पत्ता उड़ता है। फिर अधोमुख हुआ वह, सीधा भूमि पर ऐसे आ गिरा; जैसे आकाश से कोई धूमकेतू टूटा हो।

सँभरि उठा पुनि तुरत पचारी। कन्हहिं बिषम तेहिं मुठिका मारी॥
गौकुचपान लहे अबधाई। रहे अचल कन्हँ लग मुसुकाई॥

वह सम्भलकर पुनः उठा और उसनें ललकारकर, कन्हैया को बड़ा भारी घूँसा मारा। किन्तु गौमाता के दुग्धपान से अवध्यता प्राप्त कर चुके श्रीकृष्ण अचल ही रहे और मुस्कुरानें लगे।

छन्द- रहे अचल गिरिधर पुनि झपटि उन्हँ खलहि महितल पटकियो।
टूटे दसन तनु रुधिर बह अति मनहि मन ते भय भियो॥
लहि दुरदसा अस भाष भा तिन्हँ कान्हँ कान्हँ न काल है।

बिनसेउ गरुअ तब सोचि लग अब नास मोर अटल अहै॥

गिरिधर श्रीकृष्ण अचल रहे, फिर उन्होंने पैर पकड़कर क्रोधपूर्वक उसे भूमि पर दे मारा; जिससे उसके दाँत टूट गए, शरीर से अत्यधिक रक्त बहनें लगा और वह मन-ही मन भयभीत हो उठा। इस दुर्दशा को प्राप्त होकर उसे इस बात का आभाष भी हो गया कि कृष्ण, कृष्ण नहीं; अपितु स्वयं काल है। तब उसका सारा अहङ्कार जाता रहा और वह सोचने लगा कि अब मेरी मृत्यु निश्चित है।

दोहा- **तब सोउ थिति परचारि लग हरि भुज धरि तिन्ह दोइ।**
प्रबल बेग पारेउ महि खलहि दीन्हँ जिअ खोइ॥६१॥

तब वह (चाणूड़) उसी स्थिति में (भूमि पर पड़े-पड़े ही) पुनः कन्हैया को ललकारनें लगा। तब श्रीकृष्ण ने उसकी दोनों भुजाएँ पकड़कर उसे अत्यधिक वेगपूर्वक पृथ्वी पर पछाड़ दिया, जिससे उस दुष्ट ने अपने प्राण गवाँ दिये।

मासपारायण बाईसवाँ बिश्राम

चौ.- **तैसेहि मुष्टिक कहँ धरि रामा। धरनि पछारि दीन्ह हरिधामा॥**
अस लखि सल तोसल बलवाना। कूट सहित धाए सगुमाना॥

उसी प्रकार बलरामजी ने मुष्टिक को भी पकड़ लिया और भूमि पर पछाड़कर वैकुण्ठ लोक पहुँचा दिया। यह देखकर कूट के साथ शल, तोशल नामक बलवान मल्ल दर्पपूर्वक दौड़े।

तब हरि बाहिन मुठिका मारी। कूट टूटि महि खसा चिकारी॥
गहि सल तुसलहि दाउ रिसाए। पटकि पटकि अस धूरि मिलाए॥

तब कन्हैया ने बायें हाथ से कूट को एक घूँसा जमा दिया; जिससे गरजता हुआ वह निष्प्राण होकर, भूमि पर गिर पड़ा। इधर शल व तोशल को दाऊ ने पकड़ लिया और पटक-पटककर इस प्रकार धूल में मिला दिया,

सुरपति कर सतपरुअ प्रतारे। परे धरनि भूधर जस भारे॥
एहिबिधि सबन्हि मल्ल उन्ह मारे। लखि पुरजन करि लग जयकारे॥

जैसे इन्द्र के वज्र की चोट से विशाल पर्वत भूमि पर गिर पड़े हों। इस प्रकार दोनों भाईयों ने समस्त मल्लों का संहार कर दिया; यह देखकर मथुरावासी जय-जयकार करने लगे।

धरनि धन्य भइ जुग रज पाई। धन्य धन्य इन्ह पितु अरु माई॥
जय जय नंदलाल सुखरासी। कहे लाग एहिबिधि पुरबासी॥

मथुरा की यह धरती इन दोनों के चरणों की रज पाकर धन्य हो गई; इनके माता-पिता धन्य है; सुख की राशि नन्द के पुत्रों की जय हो; वे नगरवासी इस प्रकार पुकार उठे।

छन्द- **पुरबासि कर जयनाद बिबुध प्रसून बरषत हरषही।**
ब्रजनाथ लखि श्रीदाम आदिक सखन्हँ सँग कर दुंदही॥

इत मृतक मल्लन्ह कंस मंचहि समुख हरि संचारए।
मानहुँ चुनौती दइ खलहि लखि हितु नृपति भय भारए॥

पुरवासी जयनाद कर रहे हैं और हर्षित हुए देवता अनेक प्रकार के पुष्प बरषा रहे हैं। यह देखकर व्रजपति नन्दरायजी, श्रीदामा आदि कृष्णसखाओं के साथ प्रसन्नता से उछल रहे हैं। इधर मल्लों के मृत शरीरों को श्रीकृष्ण ने कंस के मञ्च के सन्मुख फेंक दिया। मानों उन शवों के माध्यम से उन्होंने उस दुष्ट को चुनौती दी हो; यह देखकर (वहाँ उपस्थित) कंश के मित्र राजा भय से व्याकुल हो गये।

दोहा- **जानि दलन निज उदभटन्हँ खल उर अति कंपान।**
तुरत सँभरि फरकत अधर गर्जा अस अभिमान॥६२॥

अपने उत्तम योद्धाओं का वध हुआ देखकर कंस का हृदय अत्यंत काँप उठा; किन्तु फिर वह तुरन्त ही सम्भला और फड़कते हुए अधरों से अभिमानपूर्वक इस प्रकार गर्जा-

चौ.- **बसुद्यौ कर दुहुँ सुत अति कपटी। अतिरिपु मम मर्दहुँ उन्ह झपटी॥**
अवचट बाँधहुँ सहित समाजहिं। आनहु समुख मोर ब्रजराजहिं॥

वसुदेव के ये दोनों पुत्र अत्यन्त कपटी और मेरे अतिशत्रु हैं; इन्हें झपटकर मार डालो। नन्द को भी समाज सहित एकाएक बन्दी बनाकर मेरे सन्मुख प्रस्तुत करो।

पुनि बरिआन धेनु धन हरहूँ। उग्रसेन सिरु छेदन करहूँ॥
बसुदेवादिक जादव जेते। सुरन्हँ अंस सब हरिहि चहेते॥

फिर बलपूर्वक उनकी गायें व सम्पत्ति हर लो और उग्रसेन का सिर काट दो। वसुदेवादि जितनें भी यादव हैं, वे सब देवताओं के अंश और विष्णु के चहेते (भक्त) हैं।

तातें बाँधि सबन्हँ बरिआई। देहुँ छितिहिं जदु लोइ सिंचाई॥
करत रहा अस बागबिलासा। उझकि चढ़े हरि तब तिन्हँ पासा॥

अतः उन सबको बलपूर्वक बंदी बनाकर भूमि को यादवों के रक्त में डुबो दो। कंस जब इस प्रकार से बकबक कर रहा था; उसी समय कन्हैया उछलकर मञ्च पर उसके समीप जा पहुँचे।

खल देखा रिपु समुख मचाना। लग परचारि हृदय भय माना॥
पुनि उठाइ कर खड़ग कराला। झपटा कन्हँ दिसि गरुअ बिसाला॥

उस दुष्ट ने जब शत्रु को मञ्च पर अपने सम्मुख देखा, तो वह उन्हें ललकारनें लगा; यद्यपि मन में वह भयभीत था। फिर अपने हाथ में कठोर खड्ग उठाकर वह बड़े घमण्ड से कन्हैया की ओर झपटा।

किन्तु त्रिपुरपति जब हुंकारे। कम्पि उठा खल अति भय मारे॥
धरा बहुरि कस तिन्ह सो बाहू। ससिहि धरहिं जस नभ पर राहू॥

किन्तु त्रिलोकपति श्रीकृष्ण ने जैसे ही हुँकार भरी; वैसे ही वह दुष्ट भय से अत्यधिक काँप उठा। फिर उन्होंने उसकी खड्गयुक्त वह भुजा कैसे पकड़ ली; जैसे आकाश पर चन्द्रमा को राहु पकड़ लेता है।

छन्द- राहू ग्रसित जिमि ससि बिकल तिमि कंस अति ब्याकुल भयो।
भयबस्य कम्पत बपुष सब तिन्ह स्वेद अति भींजत भयो॥
पुरजोर बल करि भोजराज छराइ भुज तब नभ गवा।
पै हरि उझकि तिन्हँ पुनि धरा तहँ बाज जस पकरहि लवा॥

जैसे राहू से ग्रस्त चन्द्रमा व्याकुल हो जाता है; ठीक उसी प्रकार कृष्णपीड़ित कंस भी अत्यन्त व्याकुल हो उठा। भय से काँपता हुआ उसका सम्पूर्ण शरीर पसीनें से नहा उठा। तब अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर, भोजराज कंश ने अपना हाथ छुड़ा लिया और आकाश में चला गया। किन्तु वहाँ भी उछलकर उसे वहाँ भी ऐसे जा पकड़ा; जैसे बाज पक्षि किसी बटेर को पकड़ लेता है।

दोहा- नभहिं पचारि परसपर क्रुद्ध जुज्झ अस दोइ।
दुइ गयन्दु उन्मत्त बिच मल्ल बिपिन जस होइ॥६३॥

क्रुद्ध हुए वे दोनों योद्धा एक-दूसरे को ललकार कर आकाश में ही इस प्रकार युद्ध करने लगे; जैसे वन में उन्मत्त हुए दो हाथियों के मध्य युद्ध हो रहा हो।

चौ.- पुनि तिन्ह चरन धरे करतारा। नभ तें कोपि मचान पछारा॥
परत तासु खंबन्हँ भै खंडा। तरु टूटे जनु तड़ित प्रचंडा॥

फिर भगवान श्रीकृष्ण ने उसके चरण पकड़कर, आकाश से उसे मञ्च पर पटक दिया। उसके गिरते ही मञ्च के खम्भे वैसे ही टूट गए, जैसे बिजली गिरनें से वृक्ष टूट जाते हैं।

उठि तें पुनि कृतांत सम गर्जा। हिय हारा न तजहि जय अर्जा॥
द्वंद्वजुद्ध कर सो पटु जोधा। भिरा हरिहि सन पुनि करि क्रोधा॥

वह पुनः उठ कर काल के समान गर्जा; यद्यपि उसका मन हार चुका था; इस स्थिति में भी वह विजय की इच्छा को नहीं छोड़ता। फिर द्वन्द्वयुद्ध का विशेषज्ञ योद्धा कंस क्रुद्ध होकर, पुनः श्रीकृष्ण से जा भिड़ा।

हरि बहोरि तिन्हँ मंचहु पारा। बैठि हृदयतल मुकुट उतारा॥
कच गहि बहुरि देत तिन्हँ झटका। परम बेग महितल अस पटका॥

तब श्रीकृष्ण ने फिर से उसे मञ्च पर पछाड़ दिया और उसकी छाती पर बैठकर उसका मुकुट उतार लिया। फिर केश पकड़कर झटका देते हुए; उन्होंने उसे वेगपूर्वक इस प्रकार भूमि पर पटक दिया,

सैल सिखर तें प्रस्तर खंडा। जथा परहि महिं सबद प्रचंडा॥
अखिल जगत लोचन सुखरासी। अगम अजेय अकल अबिनासी॥

जैसे पर्वत के शिखर से कोई शिलाखण्ड, प्रचण्ड शब्द करता हुआ भूमि पर गिरता है। सम्पूर्ण जगत के नेत्रों को सुख देनेवाले, अगम्य, अजेय, कलारहित, अविनाशी,

छन्द- अबिनासि बज्राघात सम धुनि करत अति गर्जन लगे।
उन्मत्त दिगसिंधुर सरिस उन्ह क्रुद्ध लखि खल नृप चगे॥

तब किलकि हरि खल छाति कूदे भार तनु तिहुँपुर धरे।
महिं खसि नृपति तिन्ह प्रानखग उड़ि गयउ हँहरत खल परे॥

भगवान वज्रपात की ध्वनि जैसा गम्भीर गर्जन करने लगे। उन्हें उन्मत्त दिग्गज-सा क्रुद्ध जानकर, कंस के मित्र राजा वहाँ खिसक गए। तब अपने शरीर में त्रिलोक का भार लिये भगवान श्रीकृष्ण किलकारी मारकर, उस दुष्ट की छाती पर कूद पड़े; जिससे हे परीक्षित! वहाँ की भूमि धँस गई और कंस का प्राणरूपी पक्षी उड़ गया; यह देखकर सारे दुष्ट राजा घबराकर वहाँ से भाग छूटे।

दोहा- **डोलन लगि महि ब्याकुल दिसिगयंद बिचलाइ।**
बिधि हर बिबुधन्ह सहित नभ लगे हरिहि गुन गाइ॥६४॥

पृथ्वी डोलनें लगी, दिशाओं के हाथी विचलित हो उठे और शिवजी व ब्रह्माजी आकाश में स्थित होकर देवताओं के साथ दुष्टनिकन्दन भगवान श्रीकृष्ण का गुणगान करने लगे।

चौ.- **कचन्हि धरे खल मृतक सरीरा। कान्हँ हँसिटि लग रोष गभीरा॥**
हरि कहँ खल गनि निज आराती। भजत रहा भयबस दिनुराती॥

इधर उस दुष्ट के शरीर को सिर के केशों से पकड़कर कन्हैया अत्यन्त कुपित होकर घसीटनें लगे। दुष्ट कंस उन श्रीहरि को बैरी मानकर भयवश दिनरात स्मरण किया करता था।

एहि कारन निज कलुष नसाई। हरिपुर गयउ मुकुति बर पाई॥
आठ बंधु जे रहे खल केरे। धाए आयुध गहि जम प्रेरे॥

इसी कारण अपने पापों से छूटा हुआ, वह उत्तम मुक्ति पाकर वैकुण्ठ लोक को चला गया। उस समय उसके जो अन्य आठ भाई थे, शस्त्र धारण करके, काल के वश होकर दौड़े।

देखि तेन्ह बल गर्जेउ ऐसे। मृगन्ह समुख मृगनायकु जैसे॥
हल मूसल गहि पुनि तें धाए। सबन्हँ मर्दि हठि धरनि डसाए॥

उन्हें देख बलराम ऐसे गरजे, जैसे पशुसमूह के सन्मुख सिंह गरजता है। फिर अपना हल व मूशल उठाकर वे भी दौड़े और हठपूर्वक उनका वध करके, उन्होंने उन्हें भूमि पर डाल दिया।

हरषे सब पुरबासि अगाहा। सुतन्हँ हृदय लाएहुँ ब्रजनाहा॥
देवन्ह हनी दुंदुभी तबही। नाचि परेहुँ गोप सख सबही॥

समस्त मथुरावासी महान हर्ष से भर गए और व्रजराज ने दोनों पुत्रों को छाती से लगा लिया। तभी देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजाई और वहाँ उपस्थित समस्त ग्वाले व कृष्णसखा नाच उठे।

नभ तें सुमन झरी तहँ लागी। सुरतिय हरिहि गाव सचु पागी॥

आकाश से पुष्पों की झड़ी लग गई और देवाङ्गनाएँ आनन्द से, भगवान का सुयश गानें लगी।

छन्द- **पागे हृदयँ सचु सुररवनि कर नित्य दुख सिर तें टरौ।**
गन्धर्व किन्नर गिरा नारद सुजसु गावहि सुख भरौ॥
जय जयति जय बसुदेवनंदन अभय अज तिहुँपुर भयौ।

तेहिं समय अज हर साजि बाहन ठाढ़ सुर सँग नभ छयौ॥

समस्त देवाङ्गनाओं के मन आनन्दित हो उठे, क्योंकि उनके सिर से कंसरूपी नित्य का दुःख टल गया। गन्धर्व, किन्नर, सरस्वतीजी और देवर्षि नारदजी सुखपूर्वक भगवान का सुयश गानें लगे। हे वसुदेवनन्दन! आपकी जय हो! जय हो! जय हो! आज त्रिलोक भयमुक्त हो गया। उसी समय ब्रह्माजी व शिवजी देवों के साथ वाहनों पर सवार हो वहाँ प्रकट हुए और सम्पूर्ण आकाश भर गया।

दोहा- इत कंसहि रनिवास गइ खबरि तासु संघार।
अस्ति प्राप्ति रोदति बदति धाई करत पुकार॥६५॥

इधर कंस की मृत्यु का समाचार ज्यों ही उसके रनिवास में गया, त्यों ही अस्ति व प्राप्ति नाम की उसकी दो रानियाँ (पति को) पुकारकर अत्यधिक रुदन करती हुई दौड़ी।

चौ.- भूषनगत उन्ह वदनु मलीना। उरुझे कच अति दुख भइ दीना॥
आइ जानि पति दुरगति भारी। अति बिलाप करि लागि पुकारी॥

उन आभूषणरहित स्त्रियों के मुख मलीन व केश उलझ गए और सघन दुःख से वे दीन हो गई। रङ्गभूमि में आते ही पति की महान दुर्गति हुई देख वे पुकारकर बड़ा भारी विलाप करने लगी।

नृप तब बिलपत रानिन्ह स्यामा। धीर बँधाइ दीन्ह बिश्रामा॥
मलय चिता पुनि रचि सरि कूला। दाह कीन्ह पितु श्रुति अनुकूला॥

हे परीक्षित्! तब विलाप करती कंसपत्नियों को श्रीकृष्ण ने धैर्य बँधाकर शान्ति प्रदान की और उग्रसेनजी ने यमुनातट पर चन्दन की चिता बनाकर वेदोक्तरीति से कंस का दाहसंस्कार किया।

दाउहिं आपन संग लगाई। इहाँ हरषि हिय अति अतुराई॥
तात मातु पहि गए मुकुंदा। छूटे आपु तासु सब फंदा॥

इधर बलदाऊ को साथ लेकर मन में हर्षित होते हुए भगवान मुकुन्द, बड़ी ही उतावली से अपने माता-पिता के पास गए। उस समय उनकी सारी बेड़ियाँ अपने-आप ही खुल गई।

जनु उरगारिहि आवत पाई। नागपास छूटहि अकुलाई॥

जैसे गरुड़जी को आते देखकर भयभीत होकर नागपाश स्वयं ही छूट जाता है।

राम स्याम हम बालक तोरे। सुनतहि उभय अकथ सचु बोरे॥
लाए हृदयँ बिकल पितु छोहा। सुत किसोरबय उन्ह मनु मोहा॥

बलराम व कृष्ण नाम के हम आपके पुत्र हैं, ऐसा सुनते ही वसुदेवजी व देवकीजी अकथनीय आनन्द में डूब गए। वात्सल्य से अधीर होकर पिता ने उन्हें छाती से लगा लिया। पुत्रों की किशोरावस्था पर उनका मन मुग्ध हो उठा।

तदुप बिगत दुख सकल बिसारी। मिलि महतारि आँचल पसारी॥
सुत सम्बत बारह कित रहेऊँ। रीति गोद हिय संतत दहेऊ॥

तदुपरान्त पिछला सब दुःख भुलाकर देवकीजी दोनों से आँचल पसारकर मिली। उन्होंने कहा- हे पुत्रों! तुम बीते बारह वर्षों तक कहाँ थे; अपनी सूनी गोद पर मेरा मन निरन्तर जलता रहा।

दोहा- हमहिं मिलेउँ नहिं नेह जे उत्तम तव पितु मात।
मैआँ बाबा सोउ रस दीन्ह हरखि दिनुरात॥६६॥

तब दोनों भाईयों ने कहा कि माता-पिता का जो उत्तम स्नेह (देववश) हमें नहीं मिल पाया, वहीं स्नेह दिनरात हमें मैय्या यशोदा और बाबा नन्द ने बड़ी ही उदारतापूर्वक दिया।

चौ.- बड़ दुरभाग मातु पितु मोरा। सहे मोर हित तुम दुख घोरा॥
मैं बालक कछु सारि न पावा। पै कुभाग अज देअँ नसावा॥

फिर कन्हैया ने कहा- हे माता-पिता! यह मेरा बड़ा दुर्भाग्य है कि मेरे कारण आपनें घोर दुःख सहा। मैं बालक था, अतः कुछ कर नहीं पाया। किन्तु आज विधाता ने हमारा दुर्भाग्य हर लिया।

मनुज सरीर पाइ जे प्रानी। करहिं मात पितु गुर अवमानी॥
लाग छुधा आमिष मरनोपर। तासुहिं तनु खवात तिन्हँ जमचर॥

मनुष्य शरीर पाकर भी जो प्राणी अपने गुरु और माता-पिता की अवज्ञा करता है, मृत्यु के उपरान्त भूख लगनें पर यम के दूत उसे उसके ही शरीर का माँस (काटकर) खिलाते हैं।

सुनि अस बच बसुद्यौ हरषाए। तिय अरु सुतन्हँ सहित घर आए॥
तब हरि पाइ मंत्र सबही का। उग्रसेन कर कीन्हेंउ टीका॥

उनके ये वचन सुन वसुदेवजी हर्षित हो उठे और देवकीजी व अपने दोनों पुत्रों सहित अपने घर आ गए। तत्पश्चात् कन्हैया ने सबका मत पाकर उग्रसेनजी का राजतिलक कर दिया।

जादव सो जे कंसहि त्रासा। परपुर पूरब कीन्हँ निवासा॥
जदुपालक उन्ह बोलि बसावा। नगर नित नवल मंगल छावा॥

कंस के भय से पहले जो यादव मथुरा छोड़कर अन्य नगरों में जा बसे थे, यदुपाल श्रीकृष्ण ने उन्हें पुनः मथुरा में बुलवा लिया, जिससे नगर में नित्य नवीन मङ्गल होने लगे।

कछु दिनु बिगत बलहिं सन जाई। कहन लाग जगपति सिरु नाई॥
बंधु दिवस बीते बहुतेरे। हम सखान्हँ अब लौ नहिं फेरे॥

कुछ दिन पश्चात् श्रीकृष्ण बलराम के सन्मुख गए और उन्हें सिर नवाकर कहने लगे कि हे भाई! बहुत दिन बीत गए, किन्तु हमनें अब तक सखाओं को (व्रज के लिये) विदा नहीं किया।

तात नंद पुनि आस लगाई। अहहिं इहहिं हम कहँ लै जाई॥
तातें चलि हम दुहुँ समुझाई। ब्रज सगोप उन्ह देहिं फिराई॥

हमें व्रज ले जाने की आशा लिये बाबा नन्द भी यहीं है, इसलिये हम दोनों चलकर उन्हें समझाते हुए, गोपों सहित व्रज के लिये विदा कर देते हैं।

दोहा- मैय्या दुहुँ बात्सल्य निज हम कहँ दीन्ह समान।
जोहति होब हमार पथ आतुरि धरे महान॥६७॥

मैय्या यशोदा और मैय्या रोहिणी ने हम दोनों को समानरूप से अपना वात्सल्य दिया। वे इस समय बड़ी ही अधीरता से हमारी बाट जोह रही होंगी।

चौ.- सखन्हँ केर हम पर बड़ छोहा। एहि बिचारि मोहि लग घन मोहा॥
तातहि हेरि होत गर गाढ़ा। जेहिं सपनेहुँ न हम कहँ ताड़ा॥

सखाओं को भी हमारे प्रति बड़ा स्नेह है, यही सोचकर मुझे बड़ा मोह होता है। नन्दबाबा को स्मरण करके, मेरा गला भर आता है, जिन्होंने कभी स्वप्न में भी हमें दुःख नहीं दिया।

सो अज बिदा करत उन्ह भाई। बिरति मोर अति करुना छाई॥
तात मात सुरतरु जग माहीं। सब सुखमूल जहाँ श्रमु नाहीं॥

अतः हे भैय्या! आज उन्हें विदा करते, मेरा वैराग्य करुणा से भर रहा है। संसार में माता-पिता कल्पवृक्ष समान समस्त सुखों के मूल होते हैं, जिनकी छाया में कभी कष्ट नहीं होता।

जिन्हँ उछंग सिसु बयस हमारी। बिगसि सुमन सौं आनँद भारी॥
ते जब जानिहिं हम दोउँ भाई। मथुरहि बसि चह ब्रज बिसराई॥

जिनकी गोद में हमारी बाल्यावस्था बड़े ही आनन्दपूर्वक, किसी पुष्प के समान विकसित हुई है। यदि वे यह जानेगे कि हम व्रज को छोड़कर मथुरा में ही निवास करना चाहते हैं,

तब सोइ मयधि धरिहि कस धीरा। इहइ हेरि हिय होत अधीरा॥
जोइ पितु कर गहि बिचरनि पाई। मैं तिन्ह केहि बिधि देउँ बिदाई॥

तब ममता के वही सागर कैसे धैर्य धरेंगे; यही सोचकर, हे भैय्या! मेरा हृदय अधीर हुआ जा रहा है। जिन पिता की अँगुली पकड़कर हमनें चलना सीखा, मैं उन्हें ही कैसे विदा करूँ?

नयनन्हँ मोहजनित दुख छावा। तब बल उन्ह कहँ धीर बँधावा॥
पुनि पितु मात सहित दोउँ भाई। चले नृपहि करि जहँ ब्रजराई॥

ऐसा कहते हुए कन्हैया के नेत्रों में मोहजनित दुःख छा गया, तब दाऊ ने उन्हें धैर्य बँधाया। फिर वसुदेवजी व देवकीजी सहित महाराज उग्रसेन के साथ वे दोनों वहाँ गए जहाँ नन्दजी थे।

हरि रसु उमगि गहे पितु चरना। भगति प्रताप बँधे भवहरना॥

उस समय भगवान श्रीकृष्ण ने प्रेम में उमगकर बाबा नन्द के पैर पकड़ लिये। यह भक्ति का ही प्रताप है कि भव के बन्धन का नाश करनेवाले भगवान स्वयं मोहरूपी बन्धन में बँध गए।

दोहा- बसुद्यौ राउ मुदित हृदयँ भेंटे उन्ह सनमानि।
मिले उभय पुनि सब सखन्हँ पेमुगंग उमगानि॥६८॥

वसुदेवजी और राजा उग्रसेनजी प्रसन्न मन से सम्मानपूर्वक नन्दरायजी से मिले। फिर बलराम व कृष्ण दोनों अपने सब सखाओं से मिले, जिससे वहाँ प्रेमरूपी गङ्गा उमड़ पड़ी।

चौ.- कहा नंद सन तब जननेही। पितु तव रिनि मम आतम देही॥
अति सप्रेम तैं पालेउँ मोही। उरिन न होउँ तात मैं तोही॥

उस समय स्वजनस्नेही श्रीकृष्ण ने कहा- हे बाबा! मैं शरीर व आत्मा से आपका ऋणि हूँ। आपनें बड़े ही प्रेम से मेरा पालन किया है। इसलिये हे तात! मैं आपसे उऋण नहीं हो सकता।

अवचट सुनत चौंकि कह नंदा। चखचकोर मोरे प्रिय चंदा॥
कहसि काह यह सुत सुखमूला। सुनतहिं जे लागेउँ हिय सूला॥

अचानक यह सुनते ही, नन्दरायजी ने चौंककर कहा- हे मेरे नेत्रचकोरों के प्रिय चन्द्रमा! हे सुख के मूल पुत्र! यह तू क्या कह रहा है, जिसे सुनते-ही मेरे हृदय में शूल-सा लगा?

पितु अति सकुच कहत जेहिं होई। हृदयँ धीर धरि सुनु बच सोई॥
गरग बचन सुनि सत्य न माना। तुम मोहि सबबिधि आपन जाना॥

हे तात! जिसे कहते हुए मुझे अत्यन्त सङ्कोच हो रहा है, आप हृदय में धैर्य धरकर मुझसे वही वचन सुनिये। महर्षि गर्ग के वचन को सुनकर भी आपनें सत्य नहीं माना और मुझे सब प्रकार से अपना ही पुत्र समझा।

अनत होहिं मकु मोर निवासा। तदपि गनिअ तैं नित मोहि पासा॥
मैं कहाउँ नित तव प्रिय ढोटा। धरिअ धीर करिअ न मनु छोटा॥

मेरा निवास भले-ही कहीं और हो, फिर भी आप मुझे निरन्तर अपने समीप ही समझियेगा। मैं सदैव आपका ही प्रिय पुत्र कहलाऊँगा। इसलिये आप धैर्य धरिये और मन छोटा न कीजिये।

पूरब पाइ कंस कइ त्रासा। बहुतक जदुन्ह तज्यो इहँ बासा॥
कछुक फिरे अबही कछु बाकी। चहुँ फिराइ निधि सो मथुरा की॥

पूर्वकाल में कंस के भय से अनेक यादवों ने यहाँ (मथुरा में) रहना त्याग दिया था। उनमें से कुछ तो लौट आये हैं और कुछ अभी भी शेष हैं। इसलिये मथुरा की सम्पदारूप उन्हें मैं वापस लौटा लाना चाहता हूँ।

दोहा- **तातें कछु दिनु इहाँ बसि गठित करउँ जदुबंस।**
होब जाहिं तें कुल सुहित यह कारज मम अंस॥६९॥

इसलिये कुछ दिनों तक यहाँ रहकर मैं यदुवंश को पुनः संगठित करूँगा, जिससे की कुल का उत्तम हित हो सके। (क्योंकि) इस कार्य का भार मेरे ही कन्धों पर है।

चौ.- **अस सुनि करुना करि अति भारी। परे नंद कह भए दुखारी॥**
सुनि तव बच हिय लाग कुठारू। सुत तव बिनु कस ब्रज पगु धारूँ॥

ऐसा सुनते-ही नन्दरायजी बड़ा भारी रुदन करते हुए गिर पड़े और दुःखी हो कहने लगे- हे पुत्र! तेरे वचन सुनकर हृदय पर जैसे कुठार लगा है। हे पुत्र! तेरे बिना मैं व्रजभूमि पर कैसे लौटूँ?

आवत निरखि मोहि तव माई। अइ हहि करन तोर अगुआई॥
सुत तब तिन्ह कस मैं समुझैहौं। दुसह बिरहु कस धीर बँधैहौं॥

मुझे आता हुआ देखकर जब तुम्हारी मैय्या तुम्हारी अगवानी करने के लिये आयेगी, तब हे पुत्र! मैं उसे किस प्रकार समझा पाऊँगा और तुम्हारे असहनीय विरह में उसे किस प्रकार धैर्य बँधाऊँगा।

किन्हँ दैइहि ते दधि उठि प्राता। उबटन चरचिहि अब किन्ह गाता॥

किसु सिसुकेलि देखि मुद भरिही। दधि चोरत अब को सुखि करिही॥

प्रातः उठकर वह किसे दहीं खिलायेगी और अब वह किसके अङ्गों में उबटन लगायेगी। किसकी बालक्रीड़ा देखकर वह सुखी होगी और दहीं चुराकर अब उसे कौन सुखी करेगा।

होत प्रात कल्ह आँगन मोरे। खग पूछिहि जब आतुर तोरे॥
तब कहु कान्हँ कि यह पितु तोरा। सकिहि जिअत रहि सहि दुख घोरा॥

कल सवेरा होने पर मेरे आँगन में आए हुए पक्षिगण जब आतुर होकर मुझसे तुम्हें पूछेंगे, तब हे कन्हैया! कहो! क्या तुम्हारा यह पिता इस भयङ्कर दुःख को सहकर जीवित रह सकेगा?

स.- **मोर निकेतहिं कान्ह मसान करौं न तुम्हार बिना जेइ होई।**
ताहि परै निसि नींद कहौ कस सोइ जे तोहिं सुनावत लोई॥
सूनपनौ ब्रज कुंजन कज्जलि तीरन्हँ कौन हरै बिनु तोही।
तोर बियोग जरौ ब्रज सीतलता लहँ कैसे कहौ सुत मोही॥

हे कन्हैया! मेरे घर को श्मसान न बनाओ, जो तुम्हारे न होने पर बन ही जायेगा। तुम ही कहो! भला उसे रात्रि में नींद कैसे आऐगी; जो माता तुम्हें लोरियाँ सुनाकर सुलाने के पश्चात् सोया करती थी? व्रज की गलियों और यमुना के तटों का सूनापन तुम्हारे बिना कौन हर सकता है? हे पुत्र! तुम्ही बता दो, तुम्हारे वियोग में जलता हुआ व्रज कैसे शीतलता पायेगा?

दोहा- **दारुन बिरहानल जरत जब चलि लग सुत प्रान।**
तब किन्ह बिधुनिंदक बदनु लखि सुधरिहिं अवसान॥७०॥

हे पुत्र! तुम्हारे विरह की दारुण अग्नि में जलते हुए जब मेरे प्राण शरीर छोड़नें लगेंगे, तब किसका चन्द्रविनिन्दक मुख देखकर मेरा मरण सार्थक होगा।

चौ.- **सखा सुनत करि कहइ बिषादा। हरि हिय उपजेहुँ लोभ अगाधा॥**
तेहिं प्रेरित सो बिसिख समाना। कहि बच तीछ लाग समुझाना॥

कन्हैया के इन वचनों को सुनते ही सखा विषाद करके, कहने लगे कि कन्हैया के मन में लोभ उत्पन्न हो गया है, जिससे वह बाण के समान तीखे वचन कहकर हमें समझा रहा है।

कन्हहिं पुर बिभव लीन्ह रिझाई। जातें यह इहँ बसि चह भाई॥
एहिं बिनु ब्रज कर होइहिं काहा। बूझ भाँति भलि तद्यपि चाहा॥

इस नगर के वैभव ने कन्हैया को रिझा लिया है, जिसके कारण हे भाई! यह यहाँ नगर में ही रह जाना चाहता है। इसके बिना व्रज का क्या होगा, इस बात को यह भली-भाँति जानता है, किन्तु फिर भी यह ऐसा ही चाहता है।

खल बीतेहुँ देखा मखसाजा। इहाँ सेष कवनेहुँ अब काजा॥
ललितादिक समेत इहि राधा। जिन्हँ के इहि प्रति प्रीति अगाधा॥

यज्ञोत्सव देख चुके, दुष्ट कंस भी मारा गया, भला अब यहाँ क्या काम रह गया है? ललिता आदि व्रजाङ्गनाओं के साथ-साथ इसकी राधा, जिनके हृदय में इसके प्रति अगाध प्रीती है,

ते इन्हँ बसनि इहाँ जब सुनिही। तजिहि बपुष सीसहि कबु धुनिही॥

तिन्ह कोमल हिय धरि निठुराई। अहौ कान्हँ चह बरछि चलाई॥

जब वे इसका यहाँ रह जाना सुन पायेंगी, तो पछताऐंगी कब, अपने शरीर ही त्याग देंगी। उनके कोमल हृदयों पर अहो! कन्हैया स्वयं ही बरछी चला देना चाहता है।

क.- ऐसे न कठोर बनौ घनस्याम मृदुगात, हिय पर गाज पीर तुम भल भोगिही।
पूरब बिसारौ बपु तात तोर बिरहनि, बिधि सोइ भाबि अज पुनि चह लिखिही॥
लघु भ्रात तोहि बिनु तापस रहे नगरु, भोगजुत भवन मसान सम पेखिही।
अजहू बसौ इहाँ पे पाछे मोर प्रिय सखा, आइ अवधहि सम लेहुँ ब्रज देखिही॥

सखाओं ने पुनः कहा- हे कोमल अङ्गोंवाले घनश्याम! तुम ऐसे कठोर न बनों। हृदय पर गाज गिरने से जो पीड़ा होती है, उसे तुम (रामावतार में) भली-प्रकार देख चुके हो। पूर्वकाल में पिता ने तुम्हारे वियोग में शरीर त्याग दिया था, वही भावी आज विधाता पुनः (नन्दजी के भाग्य में) लिखना चाहता है। तुम्हारे वियोग में ऐश्वर्य से भरे हुए भवन को श्मसान तुल्य जानकर तुम्हारा भाई नगर (अयोध्या) में भी तपस्वी बनकर रहा था। तुम आज यहाँ रह तो जाओ, किन्तु हे मेरे प्रिय सखा! बाद में आकर व्रज को भी अयोध्या के समान ही देख लेना।

दोहा- जहँ तहँ करहि बिषाद सब एहिंभाँति तेहिं काल।
मुख मलीन तनु सोक दह पुनि बोले कछु ग्वाल॥७१॥

इस प्रकार उस समय वे सब जहाँ-तहाँ विषाद कर रहे थे। उनके मुख उदास और हृदय शोकरूपी ज्वाला में जल रहे थे। कुछ ग्वाल-सखाओं ने पुनः कन्हैया से कहा-

चौ.- जेहिं तुम्हार सँग सुरभि चराई। सखा सो तनु कस राखिहिं भाई॥
तातें फिरि चलु पुनि ब्रज माहीं। इहाँ बसनि केउ हितप्रद नाहीं॥

हे भाई! जिन ग्वालबालों ने तुम्हारे साथ गायें चराई थी, वे अपना शरीर कैसे धरेंगे? इसलिये तुम व्रज लौट चलो, तुम्हारा यहाँ रह जाना किसी के लिये भी हितकर नहीं होगा।

इहाँ करै बन नृप सेवकाई। ब्रज महुँ रहुब तुमहिं ब्रजराईं॥
मानेहुँ नहिं कन्हँ बहुत बुझाना। तब तें कह सुनु नंद सुजाना॥

यहाँ रहकर तुम्हें राजा की सेवा करनी पड़ेगी और व्रज में स्वयं तुम ही सबके स्वामी रहोगे। उन्होंने बहुत समझाया, किन्तु कन्हैया नहीं माने। तब उन्होंने कहा- हे सुजान नन्दजी! सुनिये!

चलिअ आगहुँअ हम समुझाइहि। समय देखि बर इहि लै आइहि॥
अस सुनि नंद मौन धरि ठाढ़े। सुत मुख निरखहि लोचन गाड़े॥

आप आगे चलिये, हम कन्हैया को समझायेंगे और उत्तम अवसर देखकर साथ लौटा लाऐंगे। यह सुन नन्दरायजी चुप हो खड़े हो गए और आँखें गड़ाकर कन्हैया का मुख देखने लगे।

तब दाऊ कह धीर बँधाई। देइअ तात बिषाद बिहाई॥
सारि काज सब हम पुनि आइहि। तब लौ धीर देहुँ तुम माइहि॥

तब बलरामजी ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा- हे तात! आप इस विषाद को त्याग दीजिये। (यहाँ का) सारा कार्य सम्पन्न करके हम पुनः लौट आऐंगे। तब तक आप (जाकर) मैय्या को धैर्य बँधाईये।

सुनि अति बिकल कहहिं ब्रजनाहा। तुम बिनु पद न परइ ब्रज राहा॥

यह सुनकर नन्दजी अत्यन्त व्याकुल हो बोल- तुम्हारे बिना व्रज के पथ पर पाँव नहीं पड़ेंगे।

स.- प्रान पिआरे बिलोचन तारक बोल कठोर न मोहि सुना रे।
कानन्ह सूल खसे जरौ जात ये मोर हियौ कोउँ पाहन ना रे॥
रीतेहिं मोहि फिरान चहै ब्रज देखउँ भा तू कठोर घना रे।
हौं तजु प्रान जसोमति संग जिआउब कालहि आइ मना रे॥

हे प्राणों से भी अधिक प्यारे पुत्र! हे नेत्रतारक! मुझे ऐसे कठोर वचन न सुना, मेरे कानों में शूल-सा गड़ता है। जलता हुआ मेरा ये हृदय हृदय है, कोई पत्थर नहीं है। हे पुत्र! मैं देख रहा हूँ कि तू बड़ा ही कठोर हो गया है, मुझे रीते हाथ ही व्रज लौटाना चाहता है। किन्तु जब मैं तुम्हारी मैय्या के साथ अपने प्राण त्याग दूँ, तो तू आकर काल को मनाकर हमें जीवित करवा लेना।

दोहा- अस कहि करत बिलाप घन धरनि खसि परे तात।
हरि बिचार कर एहिबिधि बनिहिं न परहित बात॥७२॥

ऐसा कहकर अत्यधिक विलाप करते हुए नन्दजी (मूर्छित होकर) भूमि पर गिर पड़े। तब भगवान श्रीकृष्ण ने विचार किया कि ऐसी स्थिति में परोपकार की बात नहीं बनेगी।

चौ.- जानि पितुहि ममता अधिकाई। मनुज धरम उन्ह लाग बुझाई॥
बाबा जग सुत सब कर होई। पर बड़भागि मात पितु सोई॥

तब (स्वयं पर) पिता नन्दरायजी का अत्यधिक स्नेह जानकर वे उन्हें मानवधर्म समझानें लगे। हे बाबा! इस संसार में पुत्र तो सबके हुआ करते हैं, किन्तु उन माता-पिता के बड़े भाग्य हैं,

जिन्हँ सुत राखहि तनु दुखि हेतू। तेइ सृजहि उन्ह हित भव सेतू॥
संतत मनुज हितू तरु जैसे। अति दुर्लभ जग आत्मज ऐसे॥

जिनका पुत्र दीनदुखियों के लिये शरीर बनाये रखता है, वही उनके लिये भवसिन्धु में सेतू का बनाता है। वृक्ष जैसे निरन्तर मानव का हित करनेवाले, ऐसे पुत्र संसार में अत्यन्त दुर्लभ होते हैं।

भूतमात्र हित ताकर अंतर। प्रेम दया वज बसहि निरंतर॥
ऐहि पितहि हित गरुए जोगा। रति न होत हिय तिय धन भोगा॥

उनके अंतःकरण में प्राणीमात्र के लिये निरन्तर प्रेम, दया और सम्मान बसता है। ऐसे पुत्र पिता के लिये गर्व किये जाने योग्य होते हैं। इनके मन में स्त्री, धन व भोग की आसक्ति नहीं होती।

इन्ह के रुचि जीवन्हँ सेवकाई। ए जीवन धर बारिद नाई॥
एहि बिपरीत बहूतन्ह ताता। तनय होत अति सुन्दर गाता॥

इनकी रुचि प्राणीमात्र की सेवा में होती है और ऐसे पुत्र जलयुक्त मेघों के समान पराये हित के लिये जीते हैं। हे तात! इसके विपरीत बहुत से लोगों के पुत्र शरीर से अत्यन्त सुन्दर होते हैं।

केतेन्हँ होत कुसल बैपारी। इत उत करि धन जोरहिं भारी॥
कोउँ के कबि मतिमंत जुगारी। रह कछुकन्ह के पंडित भारी॥

कितनों ही के पुत्र व्यापारकुशल होते हैं और इधर की उधर करके, बड़ा भारी धन जोड़ते हैं। किन्हीं के पुत्र कवि, प्रबुद्ध और जुगाड़ी होते हैं, तो कुछ के बड़े पहुँचे हुए पण्डित होते हैं।

पै सब तिय अरु धन के चेरे। अति श्रमुही कर इन्ह के प्रेरे॥
उन्ह के हिय स्वारथ तम माना। कपट लोभ निजपनु के खाना॥

किन्तु वे सब धन व स्त्री के दास होते हैं और इनकी प्राप्तिमात्र के लिये ही अत्यधिक परिश्रम करते हैं। उनका हृदय स्वार्थ, झूठ, मद, कपट, लोभ और निजत्ववादिता की खान होता है।

अस गुनि सीलवंत सुत काहू। परिनय अवसर पाइ पिताहू॥
बहुत प्रसंसहि कहि कहि हीरा। निज मूढ़ता न चितव गभीरा॥

ऐसे गुणी और चरित्रवान पुत्र को विवाह का अवसर आया देखकर पिता स्वयं अपने मुख से हीरा कह-कहकर अत्यधिक प्रशंसित करता है, किन्तु अपनी महामूर्खता को नहीं देखता।

जे अस पितहि एक दृग कहिए। जग दृगहीन अपर तें अहिए॥
जे सुनि सुत कर बागबिलासा। करइ सँवधि सन बिभव प्रकासा॥

जो यदि ऐसे पिता को काना कहा जाय, तो संसार के वे पितागण तो अन्धे ही हुए, जो अपने पुत्रों की बक-बक सुनकर अपने समधी के सन्मुख अपने वैभव का बखान करते हैं।

सनमुख बात भली ए रोपी। पाछ ब्यइहि पहिरावहि टोपी॥
जुबा अजहू के निजपनु लाई। नारि धनहिं निज साध बनाई॥

मुँह पर अपनी बात भली प्रकार जमाकर ऐसे ही लोग पीछे समधी को मूर्ख बनाते हैं। आज के युवा अपने हितों के विषय में सोचते हुए, स्त्री और धनार्जन को जीवन का लक्ष्य बनाकर,

जीवन बृथा गँवावहि सारा। चह अधिकार न धरम बिचारा॥
जन्महि जग प्रतिदिनु सुत ऐसे। पितु जिमि जन्महि जीअहि भैंसे॥

सम्पूर्ण जीवन व्यर्थ खो देते हैं। वे अधिकार तो पाना चाहते हैं, किन्तु कर्तव्य के विषय में नहीं सोचते। हे तात! ऐसे पुत्र संसार में दिनरात जन्मते हैं, वैसे ही जैसे भैसा जन्मता व जीता है।

जग प्रतिदिनु उपजहि अस धाड़ा। होत तेन्ह मोल न जिमि पाड़ा॥
कहिअत एहि हित जुबा आज के। काम न काज के अरि अनाज के॥

संसार में ऐसे पुत्र तो नित्य झुण्ड के झुण्ड जन्म लेते हैं, किन्तु भैंस के पाड़े के समान उनके होने का कोई अर्थ नहीं होता। आज के ऐसे ही युवाओं के लिये कहा गया है, "न काम के न काज के, दुश्मन अनाज के।"

पर पितु हम न तनक इन्ह जैसे। पसु इव रहि चहै भोगहुं बैसे॥
भाउँ निकाम हृदयँ धरि ताता। हम त होइ चहै जग हितदाता॥

किन्तु हे पिता! हम इनके समान पशुओं की भाँति भोगों में तनिक भी स्थित नहीं रहना चाहते। हे तात्! अपने हृदय में निष्कामभाव धरे हम दोनों भाई तो इस संसार का हित करनेवाले बनना चाहते हैं।

सो तैं चिंत तनक जनि करिए। कछुक काल लगि धीरज धरिए॥
हम करि मनुज धरम निरबाहा। पुनि पइहहिं तव नेहु अगाहा॥

इसलिये आप तनिक भी चिन्ता न कीजिये और कुछ समय तक प्रतीक्षा कीजिये। मनुष्य-जाति के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करके, हम पुनः आकर आपका अगाध वात्सल्य प्राप्त करेंगे।

गरुए हृदयँ नंद सुनि ताकर। परहितजुत अस बिचार सुन्दर॥
जे चहुँ मथुरा बसन कन्हाई। तब तुम पर मम कवन बसाई॥

परोपकारयुक्त कन्हैया के ऐसे विचार सुनकर नन्दजी अपने मन में अत्यन्त गर्वित हो गए। फिर उन्होंने कहा- हे कन्हैया! यदि तुम मथुरा में ही रह जाना चाहते हो, तो तुम पर मेरा क्या वश?

पर सुत हमहुँ न देहिं बिसारी। तोर बिरहु हम रहब दुखारी॥
कहत बिदा लहिं ग्वालन्हँ संगा। नंद चले धरि सोक अभंगा॥

किन्तु हे पुत्र! तुम हम व्रजवासियों को भुला न देना, तुम्हारे विरह में हम सदैव दुःखी रहेंगे। ऐसा कहकर ग्वालों के साथ विदा हो नन्दजी मन में कभी न नष्ट होनेंवाला शोक लिये व्रज को चले।

हृदयँ बिकल बिरहानल जारे। सूझहि पथु न डगमगहि सारे॥
चलत तनक पग परइ न आगे। फिरि फिरि पुरहि चितव दुख पागे॥

उनके हृदय कृष्णविरहाग्नि से दग्ध हो रहे हैं, लड़खड़ाते हुए उन्हें मार्ग नहीं सूझता। चलते समय पाँव जरा भी आगे नहीं पड़ते। वे दुःखी हो मुड़-मुड़कर मथुरा की ओर देखते रहते हैं।

दोहा- **चलहि पयादेहि सकट तजि जिअत मनहुँ केउ जंत्र।**
एहिबिधि आए ब्रज निकट सुमिरत प्रिय कर मंत्र॥७३॥

छकड़ों को छोड़कर वे पैदल ही चल रहे हैं, मानों कोई सजीव यन्त्र हों। इस प्रकार वे सब अपने प्रिय कन्हैया की बातों का स्मरण करते हुए, व्रज के निकट आ पहुँचे।

चौ.- **इहाँ जसोमति सुतन्हँ बिचारा। दृग भरि भरि मोचहि रसु धारा॥**
निरखे बिनु बिधुबदन कन्हाइहि। दिनु बीते बहु मोर बृथाही॥

इधर यशोदाजी पुत्रों के विषय में विचार करते हुए आँखें भर-भरकर प्रेम की धाराएँ बहा रही थी। (वे सोचनें लगी कि,) कन्हैया का चन्द्रमुख देखे बिना मेरे कई दिन व्यर्थ-ही बीत गए।

खल अक्रूर गयउ लै संगा। प्रान मात्र भइ हृदय उमंगा॥
भरि सनेह अब किन्ह हिय लावौं। किन्ह पर ममतहि उदधि लुटावौं॥

दुष्ट अक्रूर उन्हें अपने साथ ले गया है, मेरे हृदय में उत्साह प्राण-मात्र रह गया है। अब स्नेह में भरकर मैं किसे अपने कण्ठ से लगाऊँ और किस पर अपनी ममता का समुद्र लुटाऊँ।

किन्ह खवाउँ माखन उठि प्राता। बूझहि नयन केन्ह सुखदाता॥
खेलत अजिर सुखद को होई। मम सन हठ करि अब को रोई॥

अब सवेरे उठकर किसे माखन खिलाऊँ और ये नेत्र किसे सुख देनेवाला पुत्र समझे। आँगन में खेलते हुए अब कौन मुझे सुख देनेवाला हो और मेरे सन्मुख हठ करके, अब कौन रोये।

कबु अैहहि सुत सुखनिधि प्राना। को फिराव सो प्रमुद पराना॥
मैआँ सबद सुनै बिनु काना। प्रतिछिन लहहि निरास महाना॥

प्राणों की सुखरूपी सम्पदा मेरे वे पुत्र अब कब लौटेंगे और उस आनन्द को कौन लौटाकर लायेगा, जो (उनके साथ ही) जा चुका है। 'मैय्या' यह शब्द न सुन पानें से मेरे कान प्रतिक्षण महान निराशा पा रहे हैं।

दोहा- तेहिं मिलिबे धरु प्रान मैं पै न अए जे दोइ।
लाहु काह अस जीअनि अवसि मरनु मम होइ॥७४॥

उनसे मिलनें के लिये मैं अपने इन प्राणों को बनाए रखती हूँ, किन्तु यदि वे दोनों नहीं लौटे, तो फिर ऐसे जीनें से क्या लाभ? तब तो अवश्य ही मेरा मरण होगा।

चौ.- एहिबिधि सुतन्ह फिरन आसा धरि। मैय्या जोअ गाढ़ अंतर करि॥
आवत पति पुनि जब सुनि पाई। प्रेमाधिक्य परम अतुराई॥

इस प्रकार पुत्रों के लौटनें की आशा लिये मन गाढ़ा करके, मैय्या प्रतीक्षा करने लगी। जब उन्होंने सुना कि नन्दजी मथुरा से लौट रहे हैं, तब प्रेम की अधिकता से अत्यधिक अधीर होकर

प्रमुदित चलि करिबे अगवानी। श्रवनन्हि चलि मानहुँ मृदु बानी॥
तेहिं सवँ अनत गोपि रसु भारी। किए बृंद उन्ह संग सिधारी॥

महान आनन्द से वे अगवानी करने चली, मानों कानों में पड़नें के लिये मधुर वाणी निकली हो। उस समय गाँव की दूसरी गोपियाँ भी समूह बनाकर बड़े आनन्द से उनके साथ चली।

इहाँ नंद जमुना तट आई। बैठे उभय हाथ सिरु लाई॥
उत जननिहिं हिय उठहि जुआरा। भयउँ बपुष दामिनि संचारा॥

इधर नन्दरायजी यमुना के तट पर आ पहुँचे और दोनों हाथ अपने सिर पर धरे, वहीं बैठ गए। उधर मैय्या यशोदा के हृदय में चिन्ता होने लगी और शरीर में कँपकपी हो आई

नंद लखेहुँ जब आव जसोमति। उन्ह करुनानिधि हिय उमगेउँ अति॥
तेहिं सवँ दसा भई उन्ह ऐसे। जमहि हिसाबु देइ नर जैसे॥

जब नन्दजी ने देखा कि यशोदा आ रही है, तो उनका मन, जो करुणासागर था, अत्यन्त अधीर हो उठा। उस समय उनकी दशा ऐसी हो गई, जैसे मनुष्य यम को कर्मों का विवरण दे रहा हो।

छन्द- जेहिं भाँति नर निज कुकृत कालहि कहत निज मुख सोचही।
सोइ दसा ब्रजपति कर भई का कहब जसुमति पूछही॥
सुत बिरह अतिसय जरेउँ अंतर सूझ नहिं अब का करौं।

भल होय केतौ महि दरहिं मैं जिरहुँ तहँ जिअत न मरौं॥

जैसे मनुष्य अपने कुकर्मों को यम के सन्मुख कहने पर चिन्ता में पड़ जाता है, ठीक वही स्थिति नन्दजी की हो गई। वे सोचनें लगे, अब मैं क्या कहूँगा, यशोदा तो पूछेगी ही। पुत्रविरह में उनकी अंतरात्मा अत्यन्त जल उठी, उन्हें सूझ ही नहीं रहा था कि अब क्या किया जाय? कितना अच्छा हो, जो पृथ्वी फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ, ताकि जीते-जी मरना न पड़े।

दोहा- **ऐतनेहुँ जसुमति आइ तहँ करि सँग ग्वालिन्ह बृंद।**
आस भइ न साकार जब भई स्वास उन्ह मंद॥७५॥

इतनें में ही गोपियों का समूह साथ लिये, मैय्या उस स्थान पर आ पहुँची और जब (कन्हैया को न देख पानें के कारण) उनकी आशा साकार न हो पाई, तब उनकी श्वास मन्द पड़ गई।

चौ.- **दुति मलीन भइ दारुन पीरा। मुख न बचन भा कंठ गभीरा॥**
मौन चित्रवत लोचन बारी। मानहुँ पुरइनि तड़ित प्रतारी॥

दारुण पीड़ा से उनका तेज मन्द पड़ गया। मुख से बात नहीं निकलती और कण्ठ भी गम्भीर हो गया। नेत्रों में अश्रु लिये वे चित्र-सी निश्चेष्ट हैं, मानों बिजली से आहत कोई कमलिनी हो।

करि रहि जहँ तहँ सबनि बिषादा। यह फल कवन पाप दुखदाता॥
हिय निरास अतिसय दुख सहई। बछु हित मनहुँ धेनु केउ अकुलइ॥

सभी गोपियाँ जहाँ-तहाँ विषाद करने लगी कि यह किस पाप का दुःखद फल है। उनका निराश हृदय सघन दुःख अनुभव कर रहा है, मानों कोई गाय बछड़े के लिये अकुला रही हो।

बिनु बोले कछु छिन एहिंभाँती। रहि मैय्या दूरहि अकुलाती॥
पूछे भय लहँ हृदयँ गभीरा। भाबी उतरु डगावहि धीरा॥

कुछ क्षण बिना बोले इसी प्रकार मैय्या दूर खड़ी अकुलाती रही। पूछनें में हृदय भीषण दुःख अनुभव कर रहा है, क्योंकि सम्भावित उत्तर की कल्पना उनके धैर्य को डिगा रही है।

नंद दसा अस तेन्ह निहारी। रहे चुपहिं जलमय दृग ढारी॥
प्रस्तर धरि अंतहुँ महतारी। परम कष्ट एहिंभाँति उचारी॥

उनकी ऐसी दशा देखकर नन्दरायजी अश्रुओं से भरे हुए नेत्रों को नीचा करके, चुपचाप ही बैठे रहे। अंततः मैय्या यशोदा हृदय पर पत्थर रखकर बड़ी ही कठिनाई से इस प्रकार बोली-

ब्रज भूषन मुदसिंधु अपारा। पति मम कन्हँ सो कहाँ बिसारा॥
कत ब्रजेस मम दृग उजिआरा। गाइ ग्वाल जीवन आधारा॥

जो व्रज का भूषण और आनन्द का अपार समुद्र है, हे नाथ! मेरे ऐसे कान्हाँ को कहाँ छोड़ आए? हे व्रजेश! मेरे नेत्रों का प्रकाश व गायों और ग्वालबालों का जीवनाधार, मेरा वह पुत्र कहाँ है?

दाउ मोर गुनि आग्याकारी। हिय महि कर नीरद सुखकारी॥
कान्हनेहि आतम सुखदायक। कत बालक सो मम सब लायक॥